श्री गणेशाय नमः

प्रो. अभिराज राजेन्द्र मिश्रकृत

"जानकीजीवनम्" महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

कोटा विश्वविद्यालय, कोटा

पीएच.डी. उपाधि हेतु

शोध–प्रबन्ध

(कला संकाय)

शोध निर्देशक

डॉ. अनीता गुप्ता

विभागाध्यक्ष
संस्कृत–विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
कोटा (राज.)

शोधार्थी

ओम प्रकाश बैरवा

प्राध्यापक–संस्कृत,
राजकीय महाविद्यालय,
झालावाड़ (राज.)

कोटा विश्वविद्यालय,कोटा

वर्ष–2015-16

समर्पण

"श्यामाम्बुदाभमरविन्दविशालनेत्रं

बन्धूकपुष्पसदृशाधरपाणिपादम्।

सीतासहायमुदितं धृतचापबाणं

रामं नमामि शिरसा रमणीयवेषम्।।"

प्रमाण–पत्र

प्रमाणित किया जाता है कि **ओम प्रकाश बैरवा** ने संस्कृत विभाग, राजकीय महाविद्यालय, कोटा में दो वर्ष से अधिक समय तक उपस्थित रहकर ''**जानकीजीवनम्'' महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन** विषय पर शोध कार्य किया है।

इनका यह कार्य पूर्णतया मौलिक है। मैं इनके उज्ज्वल भविष्य की कामना करती हूँ।

शोध निर्देशक

डॉ. अनीता गुप्ता
विभागाध्यक्ष, संस्कृत विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
कोटा (राज.)

प्राक्कथन

''नरत्वं दुर्लभं लोके विद्या तत्र सुदुर्लभा।
कवित्वं दुर्लभं तत्र शक्तिस्तत्र सुदुर्लभा।।''

संस्कृत साहित्य में अनेक काव्य व महाकाव्यों का प्रणयन सुधी सुकवियों द्वारा किया गया है। भगवान राम और भगवती सीता के सरस, सुमधुर पावन चरित को आधार बनाकर लिखे गये अनेकानेक महाकाव्यों में 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य महाकवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचा गया है। इस महाकाव्य में उदात्त जीवन मूल्यों से सम्वलित जीवनोपयोगी संदेश हैं। विलक्षण प्रतिभा के धनी डॉ. राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचित इस महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत करते हुए मुझे एक ऐसा सुअवसर प्राप्त हुआ है कि 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का सार्वभौमिक कालजयी संदेश में जन–मन तक पहुँचा सकूँ।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य का वैशिष्ट्य यह है कि महाकाव्य के परम्परागत लक्षणों के अनुरूप नायक पुरुष पात्र को न बनाकर नारी पात्र सीता को इसका नायकत्व प्रदान किया गया है। शील–सौन्दर्य एवं सदाचार की साकार अनुपम प्रतिमा जानकी का करुणामय जीवन कवि हृदय को सदैव प्रेरित करता रहा है। राम की प्रिया सीता की हृदयस्थ पीड़ा को अभिव्यक्त करने में कवि की लेखनी इस उच्च कोटि के महाकाव्य का प्रणयन करती है। इक्कीस सर्गों में सीता के मनोहर चरित को पूर्ण भास्वरता के साथ कवि अभिराज राजेन्द्र मिश्र ने उकेरने का प्रयत्न किया है। चन्द्रज्योत्स्ना के समान जानकी के स्वरूप को रमणीय कल्पना से सम्वलित करते हुए हृदयहारी बनाया गया है। इस महाकाव्य के प्रत्येक सर्ग का नामकरण सीता की दिव्यता को उद्घाटित करता है, जैसे – अवतार सर्ग में भूमि की पुत्री होने के कारण सीता अयोनिजा है। शिशुकेलि सर्ग में विदेहराज जनक की पुत्री के रूप में सीता की भोली चित्त को आकर्षित करने वाली बाल क्रीड़ाओं से माता–पिता एवं सभी प्रजाजन आह्लादित होते हैं। अतः यहां सीता जनकनंदिनी के रूप में चित्रित हुई है।

स्मराङ्कुर नामक सर्ग में जानकी का चंचल, शांत एवं गंभीर हो जाना इस बात को प्रतिपादित करता है कि सीता का स्वरूप नवयौवना के रूप में दिखाई देता है। इसी तरह राघवानुराग नामक सर्ग में विदेह की पुत्री का स्वरूप लोकविश्रुत है। रघुराजसङ्गम् नामक सर्ग में सौभाग्यवती रूप में चित्रित की गई हैं। इस प्रकार कवि ने पूर्वराग, स्वयंवर, श्वसुरालय आदि सर्गों में 'जानकीजीवनम्' की विशिष्टताएँ उकेरी हैं। वध्वाचार, वनवास, रावणापहार, अशोकवनाश्रय, हनुमत्प्राप्ति, लंकाविजय, अग्निपरीक्षा, राज्याभिषेक, जनापवाद, अपवाद निर्णय, लवकुशोदय, अश्वमेध, रामायणगान नामक सर्गों में सीता के उदात्त चरित को कवि के द्वारा बहुत ही सुंदर रूप में ग्रथित किया गया है। 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य को पढ़ने के बाद मुझे लगा कि इस महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन करना चाहिये।

सर्वप्रथम 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के विषय में मुझे राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड़ में संस्कृत की विदुषी विभागाध्यक्ष डॉ. वत्सला ने इस महाकाव्य पर पीएच.डी. करने का सुझाव दिया। उनकी सत्प्रेरणा से प्रेरित होकर मैंने ''जानकीजीवनम्'' महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन करने की इच्छा रखते हुए प्रो. कृष्ण बिहारी भारतीय (उपाचार्य, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, झालावाड, राजस्थान) से शोध प्रबन्ध की रूपरेखा सम्बन्धी परामर्श किया। प्रो. भारतीय ने जो कि मेरे अग्रज तुल्य हैं, सहृदय एवं सहज रूप से मुझे शोध प्रबन्ध की रूपरेखा का प्रारंभिक स्वरूप बतलाया, मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

इस शोध कार्य की पूर्णता के लिए मैं शोध निर्देशक डॉ. अनीता गुप्ता का हृदय से आभारी हूँ जिनके सत्प्रयासों के कारण यह शोध ग्रन्थ सुधीजनों के अवलोकनार्थ प्रस्तुत हो सका, विलक्षण विभूति प्रो. अभिराज राजेन्द्र जी का मैं विशेषतः आभारी हूँ जिन्होंने शोध का विषय बताया तथा अपना मार्गदर्शन एवं सहयोग प्रदान किया। मेरे परम मित्र आचार्य बाबूलाल मीना (प्राध्यापक–संस्कृत, एम.एस.जे. राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, भरतपुर, राजस्थान) डॉ. राजेश कुमार बैरवा (प्राध्यापक–संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी, राजस्थान), डॉ. हरकेश बैरवा (प्राध्यापक–संस्कृत, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, बूंदी, राजस्थान) तथा डॉ. उमेश चन्द्र शर्मा, वृन्दावन, मथुरा (उ.प्र.) का आभारी हूँ जिन्होंने मेरा सहयोग एवं उत्साहवर्धन किया, जिसकी वजह से मेरा यह शोध कार्य पूर्ण हो सका। मेरे अग्रज श्री बाबूलाल बैरवा (प्रधानाध्यापक) एवं श्री चौथीलाल बैरवा (प्रधानाचार्य) का अतिशय आभारी हूँ जो मुझे शोध कार्य करने के लिए प्रेरित करते रहे तथा मेरा हमेशा मार्गदर्शन करते रहे।

इस शोध प्रबन्ध की संपूर्णता में जिन लेखकों एवं विद्वज्जनों की पुस्तकों का प्रत्यक्षतः या परोक्षतः सहयोग लिया गया है, उनका मैं हृदय से आभारी हूँ।

यद्यपि शोध–प्रबन्ध के टंकण एवं प्रूफ रीडिंग का कार्य पर्याप्त सावधानी से किया गया है तथापि मानव प्रकृतिवश कुछ त्रुटि रह जाना स्वाभाविक है जिसके लिए मैं सुधी पाठकों का क्षमा प्रार्थी हूँ।

अन्त में, मैं श्री रवि कुमार गौड़ को हृदय से धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने यथोचित रूप से टंकण कार्य करने में पर्याप्त सहयोग प्रदान किया।

अनुसन्धित्सु

ओम प्रकाश बैरवा
प्राध्यापक–संस्कृत
राजकीय महाविद्यालय,
झालावाड़ (राज.)

जानकी जीवनम् महाकाव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

क्रम **पृष्ठ**

प्रथम अध्यायः– संस्कृत महाकाव्य परम्परा : संक्षिप्त परिचय 1–90

(1) प्राचीन महाकाव्य परम्परा

(2) आधुनिक महाकाव्य परम्परा

द्वितीय अध्यायः– महाकवि का जीवन परिचय तथा कार्य **91–104**

(1) जन्म स्थान तथा कार्य

(2) शिक्षा, शैक्षणिक उपलब्धियां, राजकीय सेवाएं

(3) व्यक्तित्व एवं कृतित्व, साहित्यिक अवदान स्थापनाएं

(4) पुरस्कार एवं सम्मान

तृतीय अध्याय :– महाकाव्य के इतिवृत्त का विवेचन **105–122**

(1) कथानक का मूल स्रोत

(2) कथानक का परिणत स्वरूप

(3) सर्गानुसार कथासार

चतुर्थ अध्याय :– जानकीजीवनम् महाकाव्य का महाकाव्यत्व **123–293**

(1) महाकाव्य का लक्षण

(2) वस्तु – कथावस्तु का भेद

(3) पात्र – पात्रों का चरित्र चित्रण

(4) रस– महाकाव्य में प्रयुक्त रस, गुण, अलंकार, छन्द आदि का विवेचन

(5) भाषाशैली – वर्णन कौशल, पूर्व कवियों का प्रभाव और वर्तमान काल को कवि की देन

पंचम अध्याय :– अभिनव प्रस्थान महाकाव्य परम्परा की उपादेयता **294–309**

उपसंहार :– शोध अध्ययन की उपलब्धि **310–314**

संदर्भ ग्रन्थ सूची **315–318**

प्रथम अध्याय

संस्कृ त महाकाव्य परम्परा : संक्षिप्त परिचय

(1) प्राचीन महाकाव्य परम्परा

संस्कृत-साहित्य के इतिहास को विद्वानों ने दो भागों में विभाजित किया है- वैदिक और लौकिक। वैदिक परम्परा में भी सर्वप्रथम श्रुति परम्परा प्रचलित थी। इस परम्परा में शिक्षा-दीक्षा (ज्ञान) गुरु-शिष्य के मध्य मौखिक ही हुआ करती थी। इसके अनन्तर ज्ञान को काव्यों में निबद्ध करने की परम्परा प्रचलित हुई, जिसके प्रमाण चारों वेद हैं। वेदों में वर्णित संवाद-सूक्त काव्यों के उत्तम उदाहरण हैं। यथा- यम-यमी संवाद (ऋ. 10/11), पुरूरवा- उर्वशी संवाद (ऋ. 10/95), सरमा-पणि संवाद (ऋ. 10/130), इन्द्र-वरुण संवाद (ऋ.4/42), वरुण-अग्नि संवाद (ऋ. 10/51), इन्द्र-इन्द्राणि संवाद (ऋ.10/86), आदि। ये संवाद-सूक्त आख्यान के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनके अतिरिक्त वेदों में दान-स्तुतियों का विवेचन है, जिनमें राजाओं के नामों का उल्लेख है। संसार में इनसे वृहत्तर अन्य कोई महाकाव्य नहीं हुए हैं। वेदों के अनन्तर ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् तथा पुराण की परम्परा प्रचलित हुई, जिनमें अनेक आख्यान विस्तार को प्राप्त हुए। ये समस्त ग्रन्थ वर्तमान में भी विभिन्न व्याख्यानों के साथ विद्यमान हैं। वैदिक साहित्य में महाकाव्य के जो सूक्ष्म बीज प्राप्त होते हैं वे ही पुराण काल में अंकुरित एवं विकसित हुए हैं।

इन वैदिक ग्रन्थों के अनन्तर लौकिक संस्कृत-साहित्य के अन्तर्गत रामायण और महाभारत का क्रम आता है। रामायण और महाभारत से ही लौकिक संस्कृत साहित्य का प्रारम्भ माना जाता है, जो समस्त ग्रन्थों की सामग्री के आधारभूत कारण हैं। साहित्य की इसी क्रमिक विकास परम्परा में विभिन्न काव्यों का निर्माण हुआ, जिसका पूर्वाचार्यों ने भिन्न-भिन्न स्वरूप निर्धारित कर उनके भेद और लक्षण प्रतिपादित किए हैं, क्योंकि लक्ष्य ग्रन्थों के निर्माण के अनन्तर ही लक्षण ग्रन्थों का प्रणयन होता है।

आचार्य भामह (छठीं शताब्दी) सर्वप्रथम आचार्य हैं, जिन्होंने महाकाव्यों का लक्षण कर काव्यकोटि से उसके स्वरूप को भिन्न रूप में निर्धारित किया। यद्यपि इनके पूर्व भी महाकाव्यों की रचना की जा चुकी थी तथापि महाकाव्यों के स्वरूप का निर्धारण करने वाले प्रथम आचार्य भामह ही हैं। संस्कृत महाकाव्य के लगभग समस्त रचनाकारों ने प्रायः अपने महाकाव्यों की कथावस्तु का चयन रामायण एवं महाभारत से ही किया है। प्राचीन कालीन राजतन्त्र की समाप्ति के बाद लोकतन्त्र के आगमन से अनेक महाकाव्यों की सन्दर्भ सामग्री तथा उनके लक्षण भी बदले हैं। २०वीं तथा २१वीं शताब्दी के कतिपय आचार्यों ने अनेक आधुनिक सन्दर्भों को संग्रहीत कर महाकाव्यों की रचना की है। जिस प्रकार आचार्यो ने नूतन सन्दर्भो (वर्तमान समसमायिक

सन्दर्भों) को लेकर महाकाव्य की रचना की है, उसी प्रकार आचार्यों ने महाकाव्य के नवीन लक्षणों का भी निर्धारण किया है।

संस्कृत साहित्य की परम्परा में 17 वीं शताब्दी से आधुनिक काल माना जाता है। परम्परा और आधुनिकता में पारस्परिक अविनाभाव (सम्बन्ध) है। ये दोनों एक दूसरे के पूरक हैं, क्योंकि एक के बिना दूसरे का अस्तित्त्व ही सम्भव नहीं है। प्रत्येक युग का तत्कालीन साहित्य आधुनिक ही हुआ करता है। परन्तु कुछ काल विशेष तक की अवधि के साहित्य को साहित्यकार किसी काल विशेष में विभाजित कर, उसका नियमन करते हैं और उसे परम्परा के अन्तर्गत एक निश्चित समय सीमा प्रदान करते हैं, वही समय किसी नामांकित काल विशेष का बोध कराता है। इसी प्रकार संस्कृत साहित्य के भी विशेषज्ञ, संस्कृत रचना की परम्परा में पण्डितराज जगन्नाथ के पश्चात् के साहित्य को आधुनिक मानते हैं। पं० बलदेव उपाध्याय का मत है कि आधुनिक काल को 1750 ई० से माना जाना चाहिए। प्रो० राजेन्द्र मिश्र भी आधुनिक संस्कृत साहित्य की 17 वीं शदी की परम्परा को आधुनिक मानते हैं तथा वहीं से इसके प्रारम्भ का भी संकेत करते हैं। प्रो० राजेन्द्र मिश्र ने अपनी कृति सप्तधारा में 17 वीं शताब्दी से लेकर अब तक के सृजित साहित्य को आधुनिक माना है।

पण्डितराज जगन्नाथ (17 वीं शताब्दी) से लेकर अब तक सृजित साहित्य, परम्परा और आधुनिकता दोनों का बोध कराता है। इस समय के साहित्यकारों में ऐसा नहीं है कि उन्होंने अपनी पुरातन पद्धति और संस्कारों तथा सामग्रियों का परित्याग कर दिया हो, अपितु प्राचीन साहित्य के मौलिक और उपादेय स्रोतों को ग्रहण करते हुए, आज के युग के अनुरूप उसमें अपने नूतन विचारों का सन्निवेश कर परम्परा को आगे बढ़ाया है। इसी कारण आधुनिक संस्कृत साहित्य की परम्परा प्राचीन परम्परा की अपेक्षा अतिव्यापक और समृद्धशाली प्रतीत होती है। इसके अन्तर्गत कवियों ने एक विपुल साहित्य की रचना की है, जो संस्कृत की विभिन्न विधाओं में दर्शनीय है।

संस्कृत के विद्वान् मनीषियों ने आधुनिक संस्कृत साहित्य के विकास क्रम में जिस प्रकार संस्कृत की विविध विधाओं (यथा–श्रव्य और दृश्य में आने वाले विविध भेदों) में काव्य ग्रन्थों की रचना की है, उसी प्रकार संस्कृत विद्या के समुपासक पण्डितों ने विविध प्रकार की आधुनिक और पारम्परिक सामग्री को चयनित कर महाकाव्यों की एक विशाल परम्परा को स्थापित किया है। आधुनिक संस्कृत साहित्य में प्राचीन साहित्य से अतिरिक्त यह वैशिष्ट्य परिलक्षित होता है कि आधुनिक कवियों ने महाकाव्यों की रचना के क्षेत्र में विविध राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा अन्य कथावस्तुओं को लेकर महाकाव्यों की रचना की है। आधुनिक कवियों ने अपने–अपने महाकाव्यों में नायक–नायिकाओं का विशेष रूप से परिवर्तन कर स्वतन्त्रता सेनानियों, राजनयिकों,

भारत के महापुरुषों, दार्शनिकों तथा भारत की वीराङ्गनाओं को नायक-नायिका के रूप में स्थापित किया है। पं० क्षमाराव कृत सत्याग्रहगीता एवं उत्तरसत्याग्रहगीता, श्री सखारामशास्त्री कृत अहिल्याचरितम्, पं० रामावतार मिश्र कृत देवीचरितम्, श्री वंसत त्र्यम्बक शेवड़े विरचित विन्ध्यवासिनीविजयम् तथा शुम्भवध, आचार्य कालिका प्रसाद शुक्ल विरचित श्रीराधाचरित-महाकाव्यम्, श्रीकृष्ण प्रसाद घिमिरे प्रणीत श्रीकृष्णचरितम्, महाकवि दिगम्बर पात्र कृत सुरेन्द्रचरितमहाकाव्यम्, प्रो० सत्यव्रतशास्त्री द्वारा प्रणीत गुरुगोविन्दसिंहचरितम्, पं० अखिलानन्द कविरत्न प्रणीत-दयानन्ददिग्विजयम्, भगवताचार्य प्रणीत-भारतपारिजातमहाकाव्यम्, गोस्वामि बलभद्रप्रसाद शास्त्री कृत नेहरूयशः सौरभमहाकाव्यम्, प्रो० रसिक बिहारी जोशी कृत मोहभङ्गम्, प्रो० राजेन्द्र मिश्र प्रणीत-जानकीजीवनम् तथा वामनावतरणम्, प्रो० रेवाप्रसाद द्विवेदी विरचित उत्तरसीताचरितम्, स्वातन्त्र्यसम्भवम्, कुमारविजयम् आदि महाकाव्य आधुनिक-संस्कृत- साहित्य के प्राण हैं। इन महाकाव्यों में पारम्परिकता और आधुनिकता का पारस्परिक सन्निवेश देखने को मिलता है। इसी प्रकार आधुनिक संस्कृत साहित्य के अन्तर्गत फलीभूत हुए महाकाव्यों का विशाल भण्डार है।

मानव जीवन पूर्व युग में अस्थिर था 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' उनके जीवन का मार्गदर्शक था। बलवती खलु नियतिः में विश्वास करने वाला मानव जीवन उस समय सामुहिक भावना से प्रेरित था। मानव समाज में विकास के साथ विभिन्न कारणों के परिणाम स्वरूप कृषि युग का उदय हुआ। इन तीनों ही अवस्थाओं को हम, भारत वर्ष में वैदिक काल से लेकर 19 वीं शती तक के लम्बी समयावधि में फैली पाते हैं, अतएव इन तीनों ही अवस्थाओं में यहा काव्य के रूप को जन्म दिया।[1]

महाकाव्य की सामग्री इस युग के आदिकाल में उदभूत होकर मध्यकाल में विकसित हुई और मध्यकाल में ही महाकाव्य के रूप में ही दिखाई देने लगी। इस युग में तृतीय काल के रूप में ही, यह अलंकृत महाकाव्य के रूप में परिणत हुई। इसी सामन्त युग में विविध कारणों से आर्य भाषाओं का विकास होने से विकसन शील और उत्कृष्ट अलंकृत महाकाव्यों की रचनायें हुई। उल्लेखनीय यह है कि कृषि युग के पश्चात् औद्योगिक क्रान्ति होने से सामन्ती बन्धन शिथिल हो जाते हैं। अब वैयक्तिक भावनाओं का प्राघान्य रहता है।[2]

सामाज शास्त्रियों के अनुसार मानव के सामूहिक नृत्य गीतों में ही उनकी धार्मिक क्रियायें निहित थी। इष्ट देवी देवता या पितरों के सम्बन्ध में अपने मनोगतों की अभिव्यक्ति के लिये वे एकत्र होकर सामूहिक नृत्य गान करते थे।[3] बाद में देवी देवताओं के कृत्यों व पराक्रम से सम्बन्धित विविध कल्पनाओं का उदय हुआ। शनैः शनैः कथासूत्र, दन्त कथा आख्यान आदि का

सूत्र भी आबद्ध किया गया। स्पष्ट ही इसमें महाकाव्यों का बीज निहित था।[4]

महाकाव्य यह एक सामाजिक शब्द है, यह 'महत' और काव्य इन दो शब्दों के समास से बना है। इस सामासिक महाकाव्य शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम वाल्मीकि रामायण[4] के उत्तर काण्ड में हुआ है। यथा–

किम्प्रमाण मिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः।
कर्ता काव्यस्य महतः क्वचासौ मुनि पुंगवः।।[5]

अर्थात् यह काव्य कितना बड़ा है और महात्मा की क्या प्रतिष्ठा है। महत् काव्य के रचयिता के श्रेष्ठ मुनि कहा है। प्रस्तुत श्लोक में कर्ता काव्यस्य महतः इसी महत् और काव्य के योग से बने हुए महाकाव्य शब्द की ओर संकेत करते हैं।

भारतीय परम्परा रामायण को आदिकाव्य और महाभारत को इतिहास, पुराण धर्म ग्रन्थ एवं महाकाव्य मानती रही है।

रामायण :- इसकी सम्पूर्ण कथा सात काण्डों में विभक्त है, काव्योपयुक्त आकर्षण, सूत्रबद्ध, दीर्घ एवं भव्यादि गुणों से युक्त ही सर्वप्रथम रामायण कथा है। प्रमुख राम कथा के साथ प्रसंगानुसार अनेक उप कथानकों की नियोजना भी की गई है। अधिकांश उप कथा में बाल काण्ड (नायक के वंश से सम्बन्धित) और उत्तर काण्ड (प्रतिनायक के रावण से सम्बन्धित) में आती हैं, इनमें से प्रमुख ये हैं, बालकाण्ड में वामन अवतार, कार्तिकेय जन्म, गंगावतरण, समुद्र मंथन और उत्तरकाण्ड में ययातिकथा, नहुष कथा, वृत्रबध कथा, पुरूरुवा-उर्वशी कथा, शम्बू कथा। दो काण्डों में इनकी अधिकता एवं पूर्व कथानक में उनके संकेताभाव से अधिकांश विद्वान बालकाण्ड और उत्तर को प्रक्षिप्त मानते हैं, जर्मन विद्वान याकोबा मूल रामायण में अयोध्या काण्ड से युद्ध काण्ड तक केवल पाँच काण्ड ही मानते हैं। कतिपय प्रमाणों से सिद्ध होता है कि उत्तर काण्ड बाद में जोड़ दिया गया है। वैसे तो मूल रामायण में भी अर्थात् 2 से 5 तक के काण्डों में भी अनेक प्रक्षिप्त अंश मिलते हैं।

रामायण में अन्यान्य रसों-श्रृंगार, वीर, रौद्र, अदभुत के साथ करूण रस की ही प्रधानता है। वस्तुतः रामायण वीर रसात्मक वीणा काव्य है। श्री राम का चरित्र वीर रस प्रधान, कल्पना रम्य एवं उदात्त है। इनके अन्तर्गत राम और लक्ष्मण प्रारम्भ से ही अनेक राक्षसों का वध करते हुए अपनी वैयक्तिक वीरता से तथा अन्य वीरों की सहायता से रावण को जीतते हैं, किन्तु यह वैयक्तिक पराक्रम नैतिक विवेक से अनुप्राणित रहता है।

उत्तर कालीन रामायण के विकसित एवं परिवर्तित रूप को देखकर उसके प्रधान रस के सम्बन्ध में विद्वानों में मत भेद है। आचार्य कुन्तक के अनुसार तो रामायण का अंगीरस तो शान्त

ही है।[6] आनन्द बर्धन के अनुसार रामायण का अंगीरस करुण है। "रामायणे हि करुणोरस:" स्वयं आदि कविता सूत्रित: शोक: श्लोकत्वभागवत:"। वस्तुत: रामायण की प्रतिष्ठा आदर्श गृहस्थ धर्म की स्थापना के साथ-साथ बाहुबल वीरता पराक्रम और राष्ट्र गौरव करने में ही है।[7] वाल्मीकि के राम नर-चन्द्रमा हैं। रामायण के राम मानव सुलभ गुणों एवं दुर्बलताओं से युक्त होने से पूर्ण मानव ही हैं। रामायण काव्य के सभी पात्र अलौकिक आवरणों में मानव ही हैं। उनमें गुणों और दुर्बलताओं का एक मिश्रण है। रामायण के पात्र वीरता से समन्वित होकर आदर्श गृहस्थ धर्म के प्रतिष्ठापक हैं। यहाँ तक कि राम राज्य सुराज्य का प्रतीक ही बन गया। वाल्मीकि ने अपने पात्र वीर गाथाओं से लिये हैं। और उनका चरित्र अपने युग के स्तर के अनुसार निर्मित किया है। युक्ति युक्त प्रतीत होता है।[8] रामायण का कवि-यद्यपि भाव पक्ष का ही प्रेमी है तथापि वह कलापक्ष का भी समर्थक है।

रामायण में अर्थालंकार एवं शब्दालंकारों की भी कमी नहीं है। उसमें उपमा, उत्प्रेक्षा, रूपक, अन्वय, काव्यलिंग जैसे अलंकारों का छटा दर्शनीय है। सुन्दर काण्ड में तो चन्द्र वर्णन में शब्दालंकार का प्रयोग ही किया गया है। संप्रति प्राप्त रामायण में तो चौदह विविध छन्दों का प्रयोग किया गया है। वे इस प्रकार हैं- (1) अनुष्टुप, (2) उपजाति, (3) वंशस्थ, (4) इन्द्रबज्रा, (5) उपेन्द्रवज्रा, (6) पुष्पिताग्रा, (7) प्रहर्षिणी, (8) वैश्वदेवी, (9) अपरबक्र, (10) रूचिरा, (11) बसंत तिलका, (12) मालिनीर, (13) वियोगिनी, (14) भुजंग प्रयात इति वृत्त को काव्य का आकर्षक रूप देने के लिये विविध वर्णन की योजना अग्याज मनोहर शैली में की गई है। रामायण में उत्तर कालीन महाकाव्य के खाके का बीज सन्निहित है।[9]

रामायण में प्रकृति के कतिपय चित्र ऐसे मिलते हैं जिसमें प्रकृति की क्रिया या उसकी स्थिति का सूक्ष्म चित्रण किया गया है। ऐसे स्थलों पर कवि का हृदय उन दृश्यों के साथ रहने के कारण तदाकार रूप धारण कर लेता है। इसलिये ये चित्र पूर्ण संशलिष्ट हैं। श्रीराम, सीताजी को मन्दाकिनी नदी का दृश्य बता रहे हैं।

विचित्र पुलिनां रम्यां हंस सारस सेविताम्।
कुसुमै रूप संपन्नां पश्य मन्दाकिनी नदीम्।।
मारूतो द्धुत शिखरैः प्रनृत्त इव पर्वत:।
पादपैः पुष्प पत्राणि सृजदिशमितो नदीम्।।
पोप्लूय मानानरपरान्पश्य त्वं तनुमध्यमे।।[10]

अर्थात् हे सीते, इस विचित्र रमणीय पुलिन वाली मन्दाकिनी नदी को देखो जिसके तट पर हंस और सारस पक्षी विचरण कर रहे हैं और पुष्पों से युक्त हैं। पवन से प्रताड़ित वृक्षों से युक्त

यह पर्वत ऐसा लगता है। मानो वह नृत्य कर रहा है। और नदी पर चारों ओर पुष्प पत्रों को देखो और उनको भी देखो जो नदी जल में उड़कर जा गिरे हैं वे कैसे तैर रहे हैं।

भाषा एवं शैली की दृष्टि से रामायण वेद और अलौकिक संस्कृत के महाकाव्यों के मध्य श्रृखंला स्वरूप है। लौकिक भाषा में है। रामायण की रचना हुई है। वस्तुतः वाल्मीकि रामायण एक विकसनशील महाकाव्य है। इसके मूल रूप में प्रधानता वीर रस की ही है, किन्तु अपने स्वरूप के अनुसार से प्रति यह दूसरे ही रूप में प्रतिष्ठित है। इसका प्रधान उद्देश्य युगानुरूप संयमित वीरता के साथ-साथ भारतीय आदर्श ग्रार्हस्थ जीवन को अभिव्यक्त करना ही है। इस प्रकार रामायण प्राचीन राष्ट्रीय इतिहास एवं संस्कृति का एक रमणीय कलात्मक महाकाव्य है।

महाभारतः

महाभारत के प्रणेता वेदव्यास जी का संबंध महाभारत के पात्रों से था। वे कौरव और पाण्डवों के पितामह थे। महाभारत के युद्ध के पश्चात् व्यासजी के तीन साल के अथक श्रम से इस ग्रंथ की रचना की[11] सम्प्रति महाभारत में एक लाख श्लोक मिलते हैं। इसीलिये इसे शतसाहस्त्री संहिता कहते हैं।[12] गुप्तकालीन शिलालेख में यह शत साहस्त्री नाम मिलता है।[13] पाणिनी ने महाभारत शब्द का अर्थ महायुद्ध बताया है।[14] महाभारत के विकास के संदर्भ में तीन अवस्थाओं को स्वीकार किया गया है।

1. जय, 2. भारत, 3. महाभारत

इस महाकाव्य कृति का प्राचीन नाम जय था।[15] महाभारत युद्ध के पश्चात इस जय नामक ग्रंथ की व्यास ने रचना की और अपने शिष्य वैशंपायन को सुनाया। इसी को वैशंपायन ने नाग यज्ञ के समय जनायेजय को सुनाया। वैशंपायन के ग्रंथ का नाम भारत था, इस भारत में केवल युद्ध वर्णन था। उपाख्यानों का समावेश नहीं किया गया था। इसी भारत को लोमहर्षण के पुत्र उग्रश्रवा ने शौनक के द्वादश वर्षीय यज्ञ के अवसर पर सुनाकर उसे महाभारत के रूप में परिणत कर दिया। महाभारत में एक ही कथा अनेक स्थानों पर परस्पर विरोधी दिखाई देती है।[16] विद्वानों के मतानुसार महाभारत एक संकल्पात्मक या विकसनशील महाकाव्य है। राजनैतिक, धार्मिक और सामाजिक परिस्थितियों ने इसके रूप वृद्धि में योग दिया है। महाभारत के अन्तर्गत प्राचीन इतिहास, पुराण और आख्यान सूतों-मागधों द्वारा परिवर्तित परिवर्धित होते हुए महाकाव्य का रूप धारण कर लिया इसकी मूल कथा के चतुर्दिक शतशः उपाख्यान, काव्यात्मक, दार्शनिक और धार्मिक वर्णन एकत्र होने के भी ये ही कारण हैं। इस कथानक की अपेक्षा पाँच गुना अधिक उपदेश या नीति प्रधान भाग उसमें सम्मिलित है।[17]

महाभारत की कथा के खण्डों या भागों को पर्व कहा है। सम्पूर्ण महाभारत 18 पर्वों में विभक्त है। ये अठारहों पर्व इस प्रकार हैं।

1. आदि पर्व, 2. सभा पर्व, 3. वन पर्व, 4. विराट पर्व, 5. उद्योग पर्व, 6. भीष्म पर्व, 7. द्रोण पर्व, 8. कर्ण पर्व, 9. शल्य पर्व, 10. सौप्तिक, 11. स्त्री पर्व, 12. शान्ति पर्व, 13. अनुशासन पर्व, 14. अश्वमेध पर्व, 15. आश्रम वासी, 16. भोसल पर्व, 17. महा प्रस्थानिक पर्व, 18. स्वर्गारोहण पर्व

महाभारत का प्रारम्भ मंगलाचरण से अर्थात् नारायण, नर और सरस्वती की वन्दना से होता है। तत्पश्चात् कवि ग्रन्थ का उपक्रम ग्रंथ में कहे हुए अधिकांश विषयों की संक्षिप्त सूची एवं पात्रों और कथा का परिचय देता है। मुख्य कथानक के अतिरिक्त महाभारत में उपकथा में भी है। जो बहुत पुरातन हैं। शकुन्तला, ययाति, नहुष, नल, ययाति, नल, रामचन्द्र, सावित्री आदि उपाख्यान बहुत सरस और मानवीय मनोविकारों के सजीव चित्र होने के कारण यह एक श्रेष्ठ महाकाव्य है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह विदित होता है कि कथा का विस्तार अधिक होने पर भी उसमें एकता और पूर्णता है लक्ष्य विच्छेद करने वाली असंबद्धता नहीं है। व्यासजी ने इस महाकाव्य में विषयान्तर करने वाले प्रसंगों का नियोजन नहीं किया है। महाभारत की वर्णन शैली प्रभावोत्पादक है। इसके द्वारा व्यास जी ने जीवन की नि:सारता प्रतिपादित की है। इस नि:सारता द्वारा प्राणियों को मोक्ष की ओर उत्सुक किया है।[18]

महाभारत में अनेक उपाख्यानों, नीति उपदेशों एवं वर्णनों की बहुलता होते हुए भी सर्वत्र आदि से अन्त तक एक ही व्यापक सूत्र ग्रथित दिखाई देता है, महाभारत की प्रत्येक कथा या घटना का एक ही व्यापक हेतु है, और वह 'यतो धर्मस्ततो जय: कर्तव्य या धर्म से पराङ् मुख होकर सुख या आनंद प्राप्त नहीं हो सकता, कर्तव्य या धर्म से पराङ्मुख मानव मानवता से वंचित रहता है, समग्र कर्म सृष्टि का केन्द्रविन्दु मानव है, उससे श्रेष्ठतर कोई वस्तु नहीं है।[19] इसलिये इसमें निहित मानवता की रक्ष कर्तव्य या धर्म से पराङ् मुख होकर नहीं हो सकती। उसके लिये अपेक्षित है सत्यानुसन्धान और इन्द्रिय निग्रह। प्रस्तुत इन उभय पक्षों का इतना धनिष्ट सम्बन्ध है कि अन्तिम लक्ष्य की सिद्धि के लिये अनायास ही ये तत्व ग्रथित हो जाते हैं। इसी को लक्ष्य कर व्यास जी ने एक स्थान पर कहा है कि – वेद का रहस्य उपनिषद सत्य है, सत्य का रहस्य है दम और दम का रहस्य है मोक्ष।[20]

वस्तुत: यदि विचार किया जाये तो रामायण व महाभारत दोनों ही उत्तर कालीन महाकाव्यों की आधारशिला हैं, कालिदास ने रधुवंश की 9–16 सर्गों का आधार रामायण की कथा से ही लिया गया है।[21] रधुवंश व कुमार सम्भव आदि काव्यों के नाम भी रामायण से ही लिये हैं।[22] यहाँ तक

कि मेघदूत की कल्पना भी हनुमान सन्देश पर ही आधारित है। कुमार सम्भव की रूप रेखा व कथानक भी रामायण से ग्रहण की है।[23] कुमारदास का जानकी हरण, भट्टि का रावण वध और धनंजय के राघव पांडवीय काव्य पर भी रामायण का प्रभाव है।

उत्तर कालीन कवियों के महाभारत की कथा पर आधारित महाकाव्य निम्नवत हैं–

(1) किरातार्जुनीय, (2) शिशुपाल वध, (3) नैषधीय चरित। इनके अतिरिक्त कृष्णानन्द का सहृदयानन्द, बन्धारू भट्ट का उत्तर नैषध, राघव पांडवीय, राघव नैषधीय, पांडवाभ्युदय और बालभारत, युधिष्ठिर विजय आदि। इसके अतिरिक्त तीन आधार और हैं यथा–

(1) पुराण, (2) धार्मिक या चरित्र कथा, (3) अर्वाचीन इतिहास। पुराणों के अनुसार शिव या विष्णु, हरिवंश और भागवत पुराण हैं। जिन पर महाकाव्य आधारित हैं, इन पुराणों में भाव पक्ष तथा कलापक्ष की दृष्टि अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। पंख कवि का भी कंठ चरित, लिंग, मत्स्य और शिव पुराणोक्त कथा पर आधारित पच्चीस सर्गों का महाकाव्य है।

विद्या माधव का पार्वती रूक्मिणीय, शैव पुराण और हरिवंश पर आधारित काव्य है। कविराज का पारिजात हरण, भागवत पुराण पर ही आधारित है। बेंकटाध्वरि का 'यादवराघवीय' भागवत और रामायण पर आधारित है। रत्नाकर राजानक का हर विजय पचास सर्ग का महाकाव्य लिंग, पद्य और स्कन्द पुराणों पर ही आधारित है।

धार्मिक चरित्र कथाः–

बौद्ध कवि अश्व घोष के बुद्ध चरित और सौदरानन्द महाकाव्य ललित विस्तर सदृश चरित्र विषयक धार्मिक कथा पर ही आधारित है। शिव स्वामी का कप्फणाभ्युदय महाकाव्य अविद्वान शतक पर आधारित है। भट्टारहरिचन्द्र का धर्मनाथ के जीवन चरित पर आधारित धर्म शर्माभ्युदय, वाम्भट का नेमिनाथ तीर्थकंर के जीवन चरित पर आधारित नेमिनिर्माण और हेमचन्द्र का त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित महाकाव्य है।

अर्वाचीन इतिहासः–

ऐतिहासिक प्रमाण सिद्ध महाकव्य संस्कृत में ग्यारह शताब्दी तक उपलब्ध नहीं हैं। भुंजराज का दरवारी कवि पद्यगुप्त का मालवे के सिंधुराज के चरित्र पर आधारित नवसाह सांक चरित अठारह सर्ग का महाकाव्य है। इसके पश्चात कल्याण के चांलुक्य राजा त्रिभुवन वल्ल पर आधारित कवि विल्हण कृत अठारह सर्गों का विक्रमांक देव चरित, अनहिल वाड़ा के चालुक्य राजा कुमार पाल के चरित पर आधारित हेम चन्द्र कृत अठ्ठाईस सर्गो का बीस सर्ग संस्कृत आठ

सर्ग प्राकृत। कुमार पाल चरित महाकाव्य पृथ्वीराज और चह्वाण कुलोत्पन्न हंभीर के चरित्र पर आधारित न्याय चन्द्र कृत चौदह सर्गों का हम्भीर महाकाव्य आदि है।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि महाकाव्यों की आधार स्वरूप सामग्री तीन प्रकार की है– (1) काव्य विषयक, (2) इतिहास विषयक, (3) पुराण विषयक। प्रस्तुत तीनों प्रकार की सामग्री का प्रतिनिधित्व करने वाले रामायण, महाभारत, पुराण हैं।

वैदिक काल से अद्यतन काव्य शैली का निरन्तर विकास दिखाई देता है, किन्तु विदग्ध काव्य का स्वतंत्र रूप हमें ईसवी सन् से अर्थात् अश्वघोष की वृतियों में देखने को मिलता है। ईसवी सन् के प्रारम्भ तक संस्कृत की विदग्ध काव्य शैली निखर चुकी थी। उसका स्वरूप निश्चित हो चुका था। और उसके लक्षण और आदर्श भी सर्वमान्य हो चुके थे।[24] अश्वघोष का बुद्ध चरित निश्चित रूप से सिद्ध करता है कि उनके पूर्ववर्ती अनेक महान कवि मनुष्य के सूक्ष्म से सूक्ष्म मनोरागों और जटिल से जटिल मानसिक ग्रंथियों के प्रकट करने में पूर्व रूप से समर्थ हो गये थे।[25]

जनश्रुति के आधार पर पाणिनी ने 'जाम्मवती जय' और पाताल विजय नामक दो काव्य लिखे किन्तु विद्वानों में इसका पर्याप्त मतभेद है। इस संदर्भ में आचार्य बलदेव उपाध्याय अपने संस्कृत साहित्य के इतिहास में लिखते हैं कि संस्कृत साहित्य में सर्व प्रथम महाकाव्य के लिखने का श्रेय पाणिनी को ही प्राप्त है।[26] क्षेमेन्द्र ने पाणिनी के उपजाति छन्द को चमत्कार का सार बतलाया है।[27]

बुद्ध चरितः

बुद्ध चरित के प्रणेता अश्वघोष हैं। उनके काव्यों को अन्तरंग प्रमाणों के आधार पर कहा जा सकता है कि वे जन्म से ब्राह्मण, वैदिक साहित्य और रामायण महाभारत के विद्वान तथा पौराणिक ब्राह्मण धर्म के प्रति सहिष्णु थे।[28] प्रस्तुत बुद्ध चरित आपका विदग्ध महाकाव्य है। इसके सत्रह सर्ग हैं। जिनमें अन्तिम चार सर्ग 19 वीं शती के आरम्भ में अमृतानन्द द्वारा जोड़े गये हैं। इस काव्य की कथा बुद्ध जन्म से प्रारम्भ होती है। (1 सर्ग) और अन्त: पुर विहार (2 सर्ग) संवेग उत्पत्ति (3 सर्ग) स्त्री निवभूण (4 सर्ग) अभि निष्क्रमण (5 सर्ग) छन्दक विसर्जन (6 सर्ग) तपोवन प्रवेश (7 सर्ग) अन्तपुर विलाप (8 सर्ग) कुमार अन्वेषण (9 सर्ग) विम्ब सार का आगमन (10 सर्ग) काम निन्दा (11 सर्ग) आराड दर्शन (12 सर्ग) भार की पराजय (13 सर्ग) आदि का क्रमश: वर्णन करता हुआ कवि बुद्धत्व प्राप्ति (14 वॉ सर्ग) तक हमें पहुँचा देता है। उपर्युक्त सर्गों के अतिरिक्त काव्य कथा अंश डा. जान्स्टन के आंग्ल अनुवाद से प्राप्त होता है, जिसमें बुद्ध के शिष्यों, उपदेशों, सिद्धान्तों तथा अस्थित विभाजन से उत्पन्न कलह का वर्णन और अशोक के काल और प्रथम संगति का चित्र है। इस प्रकार अश्वघोष ने बुद्ध के संघर्षमय जीवन का सजीव चित्र अंकित करने का प्रयत्न किया है।

काव्य की दृष्टि से बुद्ध चरित के कुछ तो सर्ग प्रथम, पंचम, अष्टम तथा त्रयोदश सर्ग के भार विजय का कुछ अंश सुन्दर है। और शेष सर्ग धार्मिक विचारों और दार्शनिक तत्वों से आक्रान्त होने से बुद्धि चरित धार्मिक तथा नीतिवादी बन गया है।

सौन्दरानन्द

प्रस्तुत महाकाव्य अश्व घोष की द्वितीय कृति है। इसके अन्तर्गत 18 सर्ग हैं, नेपाल नरेश के ग्रंथागार में इसकी दो प्रतियाँ हैं, जिनके आधार पर महामहोपाध्याय हर प्रसाद शास्त्री ने इसका प्रकाशन विब्लिोथेका इंडिका में कराया है। बुद्ध चरित में जिन घटनाओं का उल्लेख संक्षिप्त रूप में है या नहीं है, उन्हीं का इस काव्य में विस्तार पूर्वक वर्णन होने से यह बुद्ध चरित का पूरक काव्य है। सौन्दरानन्द में कुछ के विभातृज भाई नन्द और उसकी स्त्री सुन्दरी की ही कथा प्रधान है। नन्द सुन्दरी में उसी तरह आसक्त है जैसे चक्रवाक चक्रवाकी में।[29]

नन्द तथा सुन्दरी के इस यौवन सुलभ प्रेम की आधार शिला लेकर प्रेम तथा धर्म के विषय संघर्ष में नन्द की प्रव्रज्या का वर्णन कवि को अभीष्ट है। इस अद्‌भुत काव्य में बुद्ध चरित की धार्मिक और दार्शनिक तत्वों की रूक्षता स्निग्धता तथा सौन्दर्य में परिणत हो जाने से, यह बुद्ध चरित की अपेक्षा एक प्रौढ़ हाथ की रचना दिखाई देती है। प्रथम तीन सर्गों में कवि ने शाक्यों की वंश परम्परा, सिद्धार्थ नन्द जन्य, सिद्धार्थ के अभिनिष्क्रमण, उन्हें बुद्धत्व की प्राप्ति और कपिलवस्तु में आने का सत्यात्मक रीति से सुन्दर वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में कामासक्त नन्द और सुन्दरी का विवाह–वर्णन जब नन्द आनन्द कर रहा था बुद्ध ने भिक्षा के लिये उसके प्रासाद में प्रवेश किया।

उस घर में युवती स्त्रियाँ स्वामी की क्रीड़ा के अनुरूप सुन्दर कार्य करने में संलग्न थीं। उसी समय किसी दासी ने नन्द को सूचना दी कि बुद्ध भिक्षा के लिये उसके द्वार पर आये थे पर भिक्षा न मिलने पर चले गये। यह सुनकर दुखी होता है और क्षमा याचनार्थ बुद्ध के पास जाना चाहते हैं, जाने के लिये वह सुन्दरी से आज्ञा मांगता है, सुन्दरी उसे इस शर्त पर छोड़ती है कि उसके 'विशेषक' के सूखने से पहले ही लौट आये। पंचम सर्ग में नन्द बुद्ध के पीछे–पीछे जाता है और एकान्त पाकर मार्ग में बुद्ध को प्रणाम करता है। बुद्ध अनुग्रह करने के लिये उसके हाथ में भिक्षा पात्र रख देते हैं वे उसे ले जाकर धर्म दीक्षित कर भिक्षु बना देता हैं। अनिच्छुक नन्द के मस्तक की केश–शोभा को अलग कर दिया जाता है। बाल घुटाने के समय वह आंसू गिराता है, षष्ठ सर्ग में सुन्दरी के विलाप का वर्णन। अष्टम सर्ग में नन्द को किसी भिक्षुक का उपदेश और यह शिक्षा–उपदेश नवम सर्ग चलता है, दशम सर्ग में नन्द की स्थिति का ज्ञान बुद्ध को होता है, बुद्ध नन्द को बुलाते हैं, और उसे अपने हाथ से लेकर योग विद्या से आकाश में उड़ जाते हैं, बुद्ध हिमालय की तलहटी में एक वृक्ष पर बैठी कानी बन्दरी को दिखाते हुये नन्द को पूछते हैं क्या

सुन्दरी इससे अधिक सुन्दर है नन्द हाँ उत्तर देता है। इसके पश्चात बुद्ध उसे स्वर्ग की अप्सराएं दिखाते हैं, जिसके सौन्दर्य से अभिभूत होकर नन्द सुन्दरी को भूल जाता है। प्राप्त करने की इच्छा करता है। बुद्ध उसे बताते हैं कि उन्हें तपस्या से प्राप्त किया जा सकता है। एकादश और द्वादश सर्ग में कोई भिक्षु स्थायी स्वर्ग की प्राप्ति के प्रति इच्छा को छोड़ने के लिये उपदेश देते हुए कहता है कि अप्सराओं को प्राप्त करने के लिये धर्माचरण कर रहे हो यह सुनकर नन्द लज्जित होता है। नन्द वीतरागी होकर बुद्ध के पास जाता है, त्रयोदश सर्ग से षोडश सर्ग तक बुद्ध का उपदेश तथा आर्य सत्य का वर्णन है। सप्तदश तथा अष्टादश सर्ग में अमृत (परमशान्ति) प्राप्ति के लिये नन्द की तपस्या, मार विजय तथा विगत मोह स्थिति का वर्णन है।[30] अन्त में कवि ने काव्य की रचना का उद्देश्य स्पष्ट करते हुये कहा है– मोक्ष धर्म की व्याख्या से गर्भित यह कृति शन्ति प्रदान करने के लिये है, न कि आनन्द देने के लिये। अन्य मनष्क श्रोताओं को आकृष्ट करने के लिये यह रचना काव्य शैली में रची गई है। इस कृति में मोक्ष धर्म के अतिरिक्त मेरे द्वारा जो कुछ कहा गया है, केवल काव्य–धर्म के अनुसार सरस बनाने के लिये, जैसे कि तिक्त औषधि को पीने के लिये उसमें मधु मिलाया जाता है।[31]

सौन्दरानन्द महाकाव्य में शान्त रस की चर्चा पुष्पिका में की गई है। विरोधी रूप में या उसकी भूमिका के रूप में अन्य रसों, वीर करूण तथा श्रृंगार की भी योजना की है। शान्तरास के विभाव के रूप में अश्वघोष ने संसार की दु:ख भयता, नश्वरता तथा सौन्दर्यता की वीभत्सता का वर्णन भी किया है। जो सद्य: प्रभावात्मक होने से विशेष रूप से दृष्टव्य है। चार तथा दसवें सर्ग में श्रृंगार रस का सरस वर्णन मिलता है किन्तु अश्वघोष का मन बौद्ध धर्म से प्रभावित होने के काव्य के नायक की तरह इनमें नहीं रमता। शान्तरस के प्रभाव में भरी सौन्दर्य को अनित्य, नश्वर, क्षणिक जानकर, जर्जर–भाण्ड के समान दूषित, कलुषित एवं वीभत्स समझते हैं।[32] फिर भी शान्त रस के लिये श्रृंगार की सरसता को सर्वथा कुचल देना भिक्षु अश्वघोष की सबसे बड़ी ईमानदारी है।[33] अश्वघोष ने चतुर्दिक वातावरण के द्वारा करूणरस की मार्मिकता को और भी बढ़ा दिया है।

वीर रस का समावेश अश्वघोष ने बड़े ही कलात्मक रूप से किया है। जैसा हमने समर प्रसंग के अवसर पर देखा है, मूर्त और अमूर्त का समर प्रसंग मूर्त समर प्रसंग की अपेक्ष कहा। अधिक कलात्मक तथा महत्वपूर्ण होता है। काव्य में भार–जय प्रसंग रूपक के द्वारा चित्रित किया है। सिद्धार्थ तथा नन्द भार की सेना को बोधिअङ्ग रूपी तेज शस्त्र लेकर (स्मृति, धर्म, वीर्य, प्रीति, प्रश्न, समाधि, उपेक्षा) जीतते हैं।

प्रस्तुत महाकाव्य में अंलकार और छन्द स्वयमेव ही प्रयुक्त होते चले गये हैं। फिर भी उनके काव्यों में साधर्म्य मूलक अलंकार उपमा, रूपक, उत्पेक्षा, व्यतिरेक, अप्रस्तुत प्रशंसा, इसके अतिरिक्त शब्दालंकार अनुप्रास तथा यमक भी मिल जाते हैं।

कुमार संभव

प्रस्तुत महाकाव्य के प्रणेता बहुमुखी प्रतिभा सम्पन्न महाकवि कालिदास संस्कृत साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। आप महाकाव्य निर्माता, नाटककार, गीति काव्य कर्ता थे। उपलब्ध कुमार-संभव की प्रतियों में सत्रह सर्ग हैं। ग्यारह सौ श्लोकों में ग्रसित है। अन्य के द्वारा रचित है। जनश्रुति के आधार पर अष्टम सर्ग के शिव-पार्वती के संभोग-वर्णन के कारण कवि को कुष्ठ हो गया था तथा काव्य अधूरा ही रह गया। सुप्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथ की संजीवनी टीका भी प्रथम आठ सर्गों पर ही है।

कुमार सम्भव का मूलाधार आर्ष काव्य रामायण और महा भारतान्तर्गत आयी कथाएँ हैं। कथानकों की अम्लान प्रतिभाशाली कालिदास ने अपनी विदग्धता से परख कर एवं सहृदयता के रस से सिञ्चित कर एक मनोरम कथानक में परिणत कर दिया है। महाभारत के अनुशामन पर्व में अध्याय। 30-37 कार्तिकेय की जन्म की कथा है। रामायण के बालकाण्ड में (सर्ग 36-37) भी यही कथा है। किन्तु यह कथा अत्यन्त सरल विसंगत एवं प्राकृत अवस्था में है। इसी प्रकार बालकाण्ड में मदन दहन की कथा आयी है। इस प्रकार उक्त सभी आधार कालिदास को सहज ही प्राप्य होगा। कुमार सम्भव का कथानक एक समग्र, आदि, मध्य और अन्त से समन्वित रूप में सामने आता है। उसके अनुरूप इस महाकाव्य का विषय भी भव्य और महान है। त्रैलोक्य को अपनी निरंकुश सत्ता से त्रासित करने वाले अनियंत्रित तथा अन्यायी तारकासुर की आसुरी सत्ता के विनाश का चित्रण ही इस काव्य का प्रधान विषय है। "वस्तुत: इस काव्य के विषय की महानता रामायण-महाभारत पूर्व कालीन दो परस्पर संस्कृति के मानव वंशों के मिश्रण में निहित है। शंकर प्राकृत अविकसित और महा पराक्रमी जाति तथा वंश के देवता हैं। शिव-पार्वती का विवाह शंकर-संस्कृति तथा आर्य-संस्कृति के एक्य का द्योतक है। कवि ने इस ऐक्य का समर्थन अनेक स्थानों पर किया है। इस प्रकार कुमार सम्भव की घटना दैवी और आसुरी शक्तियों से जन्म है। अत: उसमें स्थल और काल की दृष्टि से पार्थिवता कम है, इसमें प्राय: अति मानुष शक्ति का व्यवहार होने से अद्‌भुतता का सर्जन अनायास ही हुआ है। कुमार सम्भव के देव मानवी विचारों की अभिव्यक्ति करते हैं।[34]

कालिदास के महाकाव्य उस उच्च कोटि में आते हैं, जिनमें महान विषय महदुद्‌देश्य और गुरुत्व जैसे आवश्यक और शाश्वत लक्षणों की पूर्ति अम्लान-प्रतिभा के द्वारा की गई है। इसका प्रधान कारण उनका प्रतिभाशाली व्यक्तित्व। कुमार सम्भव में वीर रस प्रधान है, और उत्साह प्रधान भाव किन्तु भय, जुगुप्सा, विस्मय, निर्वेद आदि भावों की भी यथा स्थान मनोरम व्यंजना हुई है। महाकाव्यों में प्रधान रस के अतिरिक्त अन्य रसों को भी गौड़ रूप में रखने का नियम है।[35] प्रस्तुत महाकाव्य का द्वितीय रस श्रृंगार रस है इस दृष्टि के मदन का शंकर के तपोवन में प्रवेश,

निखिल वन की मदन विद्ध स्थिति, पार्वती का आगमन और क्षणमात्र के लिये शंकर का मोहित होना। कालिदास के इस श्रृंगार क्षेत्र में मानव प्रकृति तथा अचेतन प्रकृति का चेतन रूप सम्मिलित है। श्रृंगार के आलम्बन रूप में कुमार सम्भव का 1, 3, 7 सर्ग का पार्वती रूप वर्णन अप्रतिम है। हिमालय के वर्णन में अद्‌भुत रति के विलाप व देवों की दुर्दशा वर्णन में करुण। अजविलाप व रति विलाप के करुण वर्णन मार्मिक होते हुए भी उतने प्रभवोत्पादक नहीं हैं। शंकर के तपोवन व उनकी समाधि स्थिति के वर्णन में शान्त रस (सर्ग 3, 33, 51) है।

संस्कृत साहित्य में कालिदास 'उपमा' के लिये विशेष प्रसिद्ध हैं, उपमा अलंकार की सिद्धि ने उन्हें दीप-शिखा की उपाधि से विभूषित किया है। उन्होंने अपनी उपमाओं को विविध स्रोतों से ग्रहण किया है। (1) सृष्टि पदार्थीय, (2) शास्त्रीय, (3) आध्यात्मिक, (4) व्यावहारिक।

उपर्युक्त उपमा के विविध क्षेत्र के अतिरिक्त उनकी उपमा में मनोवैज्ञानिकरमणीयता यथार्थता, औचित्य तथा पूर्णत: के तत्व भी निहित है। यहाँ उनकी उपमा में मनोवैज्ञानिक संकेत का उदाहरण देना उचित होगा।

जब ब्रह्मचारी की बातों से क्रोधित पार्वती वहाँ से जाने के लिये तैयार होती है तो शंकर अपना रूप धारण कर उसे वहीं रोक लेते हैं। उनको प्रत्यक्ष देख कोमलाँगी पार्वती कांपने लगती है, वहां से जाने के लिये उठाया हुआ पैर उठा ही रह जाता है, उसकी स्थिति मार्ग में पर्वत के द्वारा रोकी हुई क्षुब्ध नदी की तरह हो जाती है। जो न आगे बढ़ पाती है और न ठहर पाती है।[36] उपमा के अतिरिक्त कालिदास के अन्य प्रिय अलंकार वस्तुत्प्रेक्षा, समासोक्ति तथा रूपक हैं, इनके अतिरिक्त कालिदास के महाकाव्यों में अन्य अलंकारों का भी प्रयोग हुआ है। जिनमें अपन्हुति अतिशयोक्ति, व्यतिरेक, दृष्टान्त, तुल्योजिता, अर्थान्तर न्यास, मालोपमा आदि प्रसिद्ध हैं।[37] कालिदास की शैली कोमल तथा प्रसाद गुण युक्त है। वे वैदर्भी रीति के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं, उनकी भाषा व्यंजना प्रधान है। आचार्यो ने तपस्या करती पार्वती के रूप में चित्रण को ध्वनि काव्य का उत्कृष्ट उदाहरण माना है।[38]

रसवादी कवि कालिदास ने छन्दो योजना में विशेष सतर्कता दिखाई है। कुमार संभव में निम्न लिखित छन्दों का प्रयोग किया गया है। (1) उपजाति, (2) मालिनी, (3) वसन्त तिलका, (4) अनुष्टुप, (5) पुष्पिताग्रा, (6) वंशस्थ, (7) रथोद्धता, (8) शार्दुल विक्रिड़त, (9) हरिणी, (10) वेतालीय, (11) मन्दाक्रान्ता

कुमार सम्भव में प्राय: सगन्ति में छन्द परिवर्तन कर दिया गया है किन्तु यह छन्द परिवर्तन के वल अन्त में एक नवीन छन्द से ही नहीं हुआ है, कहीं-कहीं अन्त में दो-दो छन्द नवीन प्रयुक्त हुये है। जैसे तीसरे सर्ग में 1 से 74 वें श्लोक में मालिनी छन्द है।

रघुवंश महाकाव्य

कालिदास महाकवि का रघुवंश[39] द्वितीय महाकाव्य है, इसे सर्वोत्कृष्ट महाकाव्य माना गया है। यह परिपक्व प्रतिमा का परिचायक है। इसका विस्तार 19 सर्गों में विभाजित है, इसके अन्तर्गत उन्तीस राजाओं का वर्णन है, प्रस्तुत काव्य में कोई समग्र इतिवृत्तात्मक कथा नहीं है। इसमें राजा दिलीप से लेकर अग्निवर्ण तक कई चरित्र सामने आते हैं। इन चरित्रों में से कतिपय चरित्रों में कवि का मन विशेष रूप से रमा है। अन्य को साधारण तरीके से आगे बढ़ा दिया गया है। निखिल काव्य में कालिदास की नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिमा को रघु और राम के चित्र को विशेष प्रज्ञा रंग से उन्मीलित करने का प्रवास किया है। रघुनायक राजा विशेष प्रतापी और दानशील हुआ था और उसके वंशीय राजाओं का इस काव्य में वर्णन होने से इस काव्य का नाम रघुवंश है। रघु और राम के चरित्रों के पश्चात तपस्याारत दिलीप का प्रौढ़ एवं गम्भीर चरित्र और अज का कोमल रूप अधिक आकर्षक बन पड़ी है। राजा दशरथ और कुश के चरित्र कुछ समय के लिये पाठकों का मन स्थिर रखते हैं। इसके अतिरिक्त कई राजाओं के चरित्र छाया रूप में हमारे सामने आते हैं। तथा तीव्रगति से अलोप हो जाते है। अन्त में अग्निवर्ण का चरित्र समक्ष होकर ठहर जाता है। इसी स्थल पर यह महाकाव्य विराम लेता है।

आलोच्य महाकाव्य का प्रथम सर्ग प्रस्तावना स्वरूप का है, नमन विनय प्रदर्शन के पश्चात् रघुवंशीय राजाओं का मार्मिक शब्दों में चरित्र चित्रण है।[40] इसके अन्तर्गत राजा दिलीप कोई सन्तान न होने से वसिष्ठ जी के यहाँ जाता है, मार्ग में प्राप्त प्रकृति वर्णन, वशिष्ठ आश्रम में राजा का स्वगत वसिष्ठ ने कहा हुआ सन्तान न होने का कारण राजा दिलीप को सपत्नीक नन्दिनी की सेवा के लिये कही हुई आज्ञा का वर्णन है। द्वितीय सर्ग में नन्दिनी ने राजा दिलीप की ली हुई परीक्षा का वर्णन है। इस सर्ग के काव्य मय प्रसंग वर्णन दिलीप-सिंह संवाद परीक्षा और नन्दिनी प्रसाद आदि हैं। तीसरे सर्ग में गर्भवती वर्णन, रघु का जन्म, बाल्य, दिग्विजय प्रयाण, इन्द्र के साथ रघु का युद्ध व इन्द्र का वरदान आदि का वर्णन है। चतुर्थ सर्ग में रघु का दिगविजय वर्णन और इस दिगविजय में प्राप्त धन का विश्वजित नामक यज्ञ में लगाने का वर्णन है। पांचवे सर्ग में रघु की वीरता के दूसरे रूप दानवीरता का वर्णन है। अज का जन्म, स्वयंवर के लिये अज का प्रस्थान, गन्धर्व की हस्तियोनि से मुक्तता तथा संमोहन अस्त्र की प्राप्ति का वर्णन है। छठे सर्ग में स्वयं वर वर्णन, सातवें सर्ग में पौर स्त्रियों के अज को त्वरा तथा उत्सुकता पूर्ण देखने का वर्णन, अज और इन्दुमति का विवाह। मार्ग में अज का अन्य राजाओं के साथ युद्ध। आठवें सर्ग में अज का इन्दुमति के साथ उपवन में विहार, इन्दुमति की नारद की माला से मृत्यु, अज का विलाप, वसिष्ठ का अज के लिये उपदेश, नवें सर्ग में दशरथ को मृगया एवं मुनि का शाप, दसवें सर्ग में अनुष्टुप छन्द में राम जन्म तक वर्णन। ग्यारहवें सर्ग में तारकावध, शिवधनुर्भंग और विवाह वर्णन है। बारह वें सर्ग

में रामवन वास, सीता हरण, रावण वध व सीता शुद्धि। तेरहवें सर्ग में विमान द्वारा अयोध्या में आते समय राम ने सीता को बतलाये हुए पूर्व परिचित स्थलों का वर्णन चौदह वें सर्ग में सीता–त्याग, लक्ष्मण का सीता को वन में छोड़ आना, सीता का राम को सन्देश। पन्द्रहवें सर्ग में शंबूक वध, राम सभा में राम चरित गायन, भूमि में सीता का अदृश्य होना। सोलहवें सर्ग में राम के पश्चात् आयोध्या की दशा कुश का पुन: अयोध्या में आना और कुश को कुमुदवती की प्राप्ति। सत्रहवें सर्ग में अतिथि का राज सिंहासन पर बैठना और राजनीति के अनुसार उसके व्यवहार का वर्णन है। अठारहवें सर्ग में इक्कीस राजाओं का वर्णन है। जिनमें से बीस राजाओं का वर्णन करने में कवि ने प्रत्येक के लिये एक या दो श्लोकों से काम लिया है। अन्तिम सर्ग उन्नीसवें में अग्नि वर्ण के चरित्र का वर्णन है।

रघुवंश में राज–चरित्रों का वर्णन उन्नीस सर्गों में 1569 एक हजार पाँच सौ उन्हत्तर श्लोकों में है। इसके अन्तर्गत एक ही कुल के विभिन्न राजाओं ने चरित्रों का गुणानुवाद एक समन्वित तथा एक सूत्र में ग्रथित करने का सफल प्रयास है। उसमें भिन्नता में भी एक सूत्रता ढूड़ी जा सकती है। आलोच्य महाकाव्य की भव्योदात्तता मानवीय अशं में दैवी अंश मिश्रण से उत्पन्न हुई है। इसकी घटना तथा विषय, स्थल, काल तथा राजवंश के वर्णन से मर्यादित है। वर्ण्य व्यक्ति मूलत: मानवी होने से वातावरण यथार्थ स्तर का है। रघुवंश के वर्ण्य पात्र स्वर्गीय या आदर्श उपात्रता से आक्रान्त है। स्वर्ग, पृथ्वी, मानुष, अमानुष व अति मानुष, इतिहास पुराण, सत्य और अद्‌भुत का एक असाधारण रसायन तैयार करते हुए कालिदास द्वारा मानवी रूप सहृदय पाठक के साधारणी करण का कारण बनता है।

राजधर्म में त्याग का महत्व बतलाने के लिये कलिदास के रघुवंशी अनेक राजाओं को त्यागी वर्णित किया है। दिलीप ने मात्र धर्म की रक्षा के लिये अपने शरीर का, रघु ने यज्ञ के लिये सर्वस्व का त्याग, अज ने अपनी पत्नी के लिये स्वप्राण का, दशरथ ने अपने औदार्य की रक्षा के लिये स्वपुत्रों का, रामचन्द्र ने प्रजानुरंजन के लिये सीता का और कुश ने इन्द्र की सहायता के लिये अपने प्राणों का त्याग किया।

रघुवंश के द्वितीय सर्ग में सिंह–दिलीप संवाद एक नाटकीय संवाद रूप में त्याग की ही पार्श्व भूमि पर स्थित है। जिनके अन्तर्गत उपयुक्ततावादी सिंह पर ध्येय वादी दिलीप की विजय दिखाई गई है। इसी प्रकार रघुवंश के पाँचवें सर्ग में नैतिक महत्त्व को इस प्रकार उद्‌घोषित किया गया है।

न्याय से धन का उपार्जन करना, बहाना, रक्षा करना तथा उसे सत्पात्रों को देना आदि चार प्रकार के राजाओं के व्यवहार में स्थित रहने वाली राजा की भूमि अभिलषित वस्तुओं को पैदा करने वाली यदि हो, तो क्या आश्चर्य ?[41]

रघुवंश में वस्तु वर्णन के अन्तर्गत जो महाकाव्य हेतु आवश्यक वर्ण्य वस्तुओं का वर्णन कर, कवि ने एक ही वंश के अनेक राजाओं के वर्णनों में एक सूत्रता लाने का सफल प्रयत्न किया है, जैसे कुमारोत्पत्ति नगर वर्णन, पर्वत वर्णन, समुद्र वर्णन, ऋतुवर्णन, मधुपान वर्णन, विवाह, युद्ध वर्णन, सुरत क्रीड़ा वर्णन, जल क्रीड़ा वर्णन।

रघुवंश नायक प्रधान काव्य होने से स्वभावत: ही स्त्री पात्रों की प्रकृति चित्रण, विशिष्ट गुण व बोधक बिन्दुओं में ही किया गया है। यहाँ तक कि रघुवंश में रघुपत्नी का नामोल्लेख भी नहीं है। सीता भी हमारे सामने कुछ विशेष रूपों में आती है।

रघुवंश के सभी राजाओं का एक विशेष स्वभाव होने पर भी अपने व्यक्तित्व अपने व्यक्तित्व से एक दूसरे से भिन्न दिखाई देते हैं। जैसे धीर गंभीर दिलीप, उदार रघु, कोमल अज, वचनवद्ध दशरथ, सत्यनिष्ठ राम, कामुक अग्निवर्ण।

रघुवंश के आदर्श तथा उदात्त वातावरण में श्रृंगार संयमित रूप में सामने आता है। केवल अग्निवर्ण के चरित्र में उसका मर्यादातिरेक होना वैराग्य का कारण बन जाता है। इस काव्य में भी वीर, करुण, भक्ति, शान्त, श्रृंगार, वात्सल्य, भयानक रस आदि की मनोरम व्यञ्जना हुई है। जैसे रधु व इन्द्र का द्वन्द्व युद्ध सर्ग 3, रघु दिग्विजय सर्ग 4, अज और अन्य राजपुत्रों का युद्ध सर्ग 7, राम, और परशुराम का प्रसंग सर्ग 11; राम रावण युद्ध सर्ग 12, आदि स्थानों पर करूण रस की व्यञ्जना हुई है। दिलीप का निस्सन्तान होना सर्ग 1, अज विलाप सर्ग 8, सीता त्याग सर्ग 14 और सीता का पृथ्वी के गर्भ में अन्तर्धान होना सर्ग 15, राम निर्वाण सर्ग 14, आदि स्थनों पर करूण रस की व्यञ्जना है, रघु का बाल्यकाल, सर्ग 3, कुश लव की बाल्यावस्था सर्ग 15, सुदर्शन बाल्यकाल 18 आदि स्थानों पर वात्सल्य रस की मनोरम छटा है। वसिष्ठ के आश्रम वर्णन में शान्त रस, रघु के वान प्रस्थाश्रम वर्णन में यही छटा विद्यमान है। सर्ग 8 विष्णु स्तुति, सर्ग 10 में भक्ति रस, कुमार सर्ग. 3 के 71 में रौद्र रस की व्यञ्जना है। सुदक्षिणा की गर्भावस्था सर्ग. 3, इन्दुमति का स्वयंवर वर्णन। 6 सर्ग बसन्त ऋतु वर्णन, सर्ग व आदि में श्रंगार रस की व्यञ्जना है। दशरथ के अपशकुन में भयानक रस की छटा, सर्ग 11 अग्निवर्ण के विषयोपभोग में श्रंगार किन्तु अनौचित्य का द्रष्टि से तथा भयानक परिणाम होने से रसाभास प्रतीत होता है। नन्दिनी दिलीप की परीक्षा 2 सर्ग, रघु के कोष में सुवर्ण वृष्टि सर्ग 5, आदि स्थानों पर अद्‌भुत रस की व्यञ्जना हुई है।

रधुवंश छन्दो योजना विशेष दिखाई देती है, रघुवंश के नवम सर्ग में विभिन्न छन्दों का प्रयोग हुआ है। इसमें 54 वें श्लोक तक द्रुत विलंवित छन्द है, इसके आगे नये-नये छन्दों के प्रयोग में कवि ने नैपुण्य दिखाया है।

कालिदास के काव्यों में निश्चित प्रसंगों में निश्चित छन्दों का उपयोग किया गया है। जिससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि कालिदास कुछ विशेष छन्दों को कुछ विशेष भावों या रसों के उपयुक्त समझते थे जिसे इस प्रकार रखा जा सकता है–

1. छन्द	विषय भाव या रस
उपजाति	वंश वर्णन, तपस्या तथा नायक नायिका का सौन्दर्य।
2. अनुष्टुप	लंबी कथा को संक्षिप्त करने तथा उपदेश
3. वंशस्थ	देने में वीरता के प्रकरण में चाहे युद्ध हो
	या युद्ध की तैयारी हो रही हो।
4. बैतालीय	करुण रस में
5. द्रुत विलम्बित	समृद्धि के वर्णन में
6. रथोद्धता	जिस कार्य का परिणाम खेद के रूप में परिणत हो चाहे
	वह खेद रति जनित हो, दुष्टकर्म जनित हो या पश्चाताप जनित हो।
	अतएव काम क्रीड़ा, आखेट आदि का वर्णन इसी छन्द में है।
7. मन्दाक्रान्ता	प्रवास, विपत्ति या वर्षा के वर्णन में
8. मालिनी	सफलता के साथ पूर्ण होने वाले सर्ग के अन्त में।
9. प्रहर्षिणी	हर्ष के साथ पूर्ण होने वाले सर्ग के अन्त में यदि मध्य में भी कहीं इस का प्रयोग हो तो वहाँ भी दु:ख की धारा में हर्ष या हर्ष की धारा में हर्षातिरेक वर्णित है।
10. हरिणी	नायक का अभ्युत्थान हो या सौभाग्य का वर्णन हो।
11. बसन्त तिलका	कार्य की सफलता पर। ऋतु वर्णन में भी पुरूषों की सफलता
	तभी सिद्ध हो सकी है। जब उसका उपभोक्ता उन वस्तुओं
	का उपभोग कर रहा हो।

इसी प्रकार, सफलता के लिए प्रस्थान या प्राप्ति में अन्वर्थ नाम पुष्पिताग्रा निराशा के साथ निवृत्ति में तोटक कृतकृत्यता में शालिनी तथा वीरता प्रदर्शन में औपच्छगन्दिसिक, क्रीड़ा के वर्णन

में चाहे काम क्रीड़ा हो चाहे अन्य क्रीड़ा रथोद्धता, संयोग से स्वयं प्राप्त विपत्ति या संपत्ति में स्वागता घबराहट में मत्त मयूर प्रपञ्चों के परित्याग में नाराच तथा वीरता आदि के वर्णन में शार्दूल विक्रीड़त का प्रयोग किया गया है।[42]

पद्य चूड़ामणिः–

पद्य चूड़ामणि के प्रणेता बुद्धघोष जन्मना ब्राह्मण थे, परन्तु बाद में बौद्ध धर्मानुयायी हो गये थे। आपने दस सर्गों का एक महाकव्य पद्यचूड़ामणि लिखा है, जिसमें बुद्ध के जन्म, विवाह और उनके जीवन की अन्य घटनाओं का वर्णन है: यह कथा ललित विस्तार तथा अश्वघोष कृत 'बुद्ध चरित' की कथा से कुछ अंशों में भिन्न है। बौद्ध धर्म के अनुसार 387 ई० में बुद्ध के त्रिपिटक का पाली अनुवाद लाने के लिये कवि को लंका भेजा गया था, बुद्ध घोष ने अनेक बौद्ध ग्रन्थों की प्रतिलिपि की है, तथा बहुतों का अनुवाद भी किया है। 'पद्य चूड़ामणि' की भाषा व अलंकारों से ज्ञात होता है कि ये कालिदास के पश्चात भाषी सिद्ध करते हैं।[43]

पद्य चूड़ामणि महाकाव्य का कथा सार संक्षिप्त में इस प्रकार है– कपिल वस्तु में शाक्य वंशीय राजा शुद्धोधन राज्य करता था। उसकी रानी का नाम मायादेवी था। सन्तान प्राप्ति के लिये उसने तपस्या की। उसी समय देवों के आग्रह पर प्रभुतुसित ने संसार में ज्ञानोदय के लिये माया देवी के गर्भ में प्रवेश किया। सिद्धार्थ का जन्म हुआ। जन्मोत्सव के पश्चात उसके खेल व शिक्षा आदि की व्यवस्था की गई। युवा होने पर उसका विवाह निश्चित किया गया। उसका विवाह कालीय देश के राजा की कन्या के साथ किया गया। विवाह के पश्चात राजपुत्र अपनी स्त्री के साथ राजपुत्र नगर में वापस आया। राजा ने विभिन्न ऋतुओं में राजपुत्रों के आनन्द के लिये विशेष व्यवस्था दी। शरद ऋतु में राजपुत्रों ने धनुर्विद्या का अभ्यास कर केवल सात दिनों में उसमें निपुणता प्राप्त की।

एक दिन बसन्त ऋतु में जब वह उपवन विहार के लिये जा रहा था, देवों की पूर्व व्यवथा के अनुसार उसने एक वृद्ध पुरूष, रोगी तथा मनुष्य शव को देखा, इन दृश्यों को देख उसने अपने सारथी से इनके विषय में पूछा, सारथी से उपर्युक्त अवश्यम्भावी अवस्थाओं को जानकर वह घर वापस आ गया। मार्ग में उसे तपस्वी मिले जिन्होंने मानव रोग-दुख से मुक्ति का मार्ग जान लिया था। वह पुन: उपवन में गया और वहीं सम्पूर्ण दिवस व्यतीत किया। वह घर वापस आया। जहाँ उत्सव किये गये। अकस्मात उसने राजकीय भवन त्यागने का निश्चय किया। 30 योजन की यात्रा कर अनावामा नदी पार कर राजकीय सेवकों को विदा कर तपस्वी वेष धारण किया। उसने कठिन तपस्या की और विंवसार नगर में भिक्षा वृत्ति से जीवन यापन करना प्रारम्भ किया। मोक्ष प्राप्ति में असफल होने से उसे प्राप्त करने के साधन पर विचार किया। रात्रि में उसने पाँच स्वप्न देखे और प्रात: उनका अर्थ संकेत जानकर, निर्वाण प्राप्ति के साधन पर विचार किया। वृक्ष नीचे

बैठकर एक स्त्री से पायस प्राप्त किया। बाद में नैरञ्जना नदी पर जाकर भोजन लिया। साल के सान्द्रिवन में दिवस व्यतीत किया। बोधिवृक्ष के समीप पहुँच कर सायंकाल उसी के नीचे अलौकिक रूप से प्राप्त आसन पर बैठा। देवों ने उसकी प्रशंसा की, कामदेव ने इस वार्ता को सुनकर उस पर विजय प्राप्त करने का निश्चय किया। कामदेव की सेना ने सर्वप्रथम आक्रमण किया, किन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। बाद में मन्मथ ने स्वयं आक्रमण किया किन्तु वह भी प्रत्यावर्तित हुआ। अन्तिम उपाय की दृष्टि से मन्मथ ने अपनी स्त्रियों को भेजा। जिन्होंने बुद्ध के सम्मुख सुन्दर नृत्य किये और उसे आकर्षित करने और उस पर वर्चस्व प्राप्त करने का यथेष्ट प्रयत्न किया किन्तु प्रयत्नों की वन्ध्यता जानकर वे भी प्रत्यावर्तित हुई। इस प्रकार उन्हें मोक्ष पर अधिकार प्राप्त हुआ। यही उनका अविनाशी पद था, वे सर्वज्ञ हुए।

बुद्ध घोष की कलात्मक मान्यता उत्तरकालीन कवियों की तरह चमत्कार प्रियता है। पद्य चूड़ामणि का लक्ष्य भी 'रतये' न होकर व्युपशान्तये अर्थात् मोक्ष प्राप्ति है और इस लक्ष्य की पूर्ति कवि ने बुद्ध के चरित्र कथन के द्वारा की है।[44]

पद्य चूड़ामणि का नायक देवों की प्रार्थना पर-

विद्वेषता मखिलं जगतां विनेतुं शक्तिस्त्वमेव शरणागत पुण्य राशे।
धाराधरं तरलविद्युतमन्तरेण दावानलं शमयितुं भुवि कः क्षमेत।।[45]

इस पृथ्वी पर बोध करने हेतु शुद्धोधन के पुत्र रूप में आते हैं-

शुद्धोधनस्य सतुतामहमेत्य सत्यं सबोधनं त्रिजगतां नियतं करिष्ये।
अंगैर्घनैरसुभिरप्यहमेतदेव संप्रार्थ्य पुण्यनिचयं कृतवान पुरेति।।[46]

रसाभिव्यक्तिः- पद्य चूड़ामणि प्रधानतः शान्तरस का काव्य है। इसके अतिरिक्त अन्य रसों की अंग रूप में नियोजना की गई है। प्रथम सर्ग में नगरी वर्णन के अन्तर्गत विलासिनियों के विलास वर्णन, माया देवी का नख शिख वर्णन माया देवी के गर्भ लक्षण वर्णन, ऋतु वर्णन, चन्द्रोदय वर्णन, तथा कुमार दर्श नौत्सुक्य आदि। ये सभी उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत हैं। कवि ने प्रकृति वर्णन में अपनी श्रंगार वर्णन प्रियता की पूर्ति करने का प्रयत्न किया हैं, जिसने रसाभास का रूप धारण कर लिया है। यथा-

उस तरुण भ्रमर ने संयोग से खिन्न अपनी कान्ता का अशोक लता के पुष्पों के गुच्छों का आसव अपने मुख से लाकर पिलाया।[47]

वीर रस के अन्तर्गत काम आक्रमण का वर्णन है। इस रस की अभिव्यक्ति कवि ने रसोचित सामासिक भाषा एवं ओजपूर्ण शैली द्वारा की है। इनमें केवल दो-दो सामासिक पदों से निर्मित श्लोक हैं। यथा-

**वैतण्डमण्डल विडम्बित चण्ड वायु वेगाव खण्डित कुला चल गण्डशैलम्।
संवर्त सागरस मुद्गत मंगतुं गत्वं गन्तु रंगमत रंगित सर्व दिक्कम्।।[48]**

अर्थात् प्रचण्ड वायु की तरह वेग से दौड़ते हुए, हाथियों के समुदाय ने कुलाचल के बड़े-बड़े पत्थरों को तोड़ दिया और प्रलय कालीन सागर में उत्पन्न उत्ताल तरंगों की तरह चलने वाले घोड़ों ने दिशाओं को मानो तरंगित कर दिया।[49] इनके अतिरिक्त अन्य भावों की भी छटा है। देवकृत स्तुति स्तोत्र वर्णन में भक्तिभाव, कुमार जननोत्सव में वात्सल्य भाव।[50]

प्रस्तुत महाकाव्य के अन्तर्गत कवि ने विभिन्न अलंकारों तथा छन्दों से अपने काव्य को अलंकृत करने का प्रयत्न किया है। जैसे अलंकृति व विदग्धता का एक उदाहरण समासोक्ति अलंकार में - मेघ जल से प्रथम स्नाता, शरद् कालीन मेघ रूपी उत्तरीय वस्त्रों से आच्छादित एवं चन्द्र किरण रूपी चन्दन से लिप्त दिशाओं ने तारकाओं का हार धारण किया।[51] इस काव्य में उपमा रूपक श्लेष, विरोधाभास, निदर्शना, अर्थान्तरन्यास, सहोक्ति, हेतुत्प्रेक्षा, व्यतिरेक,[52] समासोक्ति आदि अलंकार मिलते हैं।

इस महाकाव्य में छन्द का प्रयोग भी अति सुन्दर रूप में किया गया है- (1) इन्द्र बज्रा, (2) मालिनी, (3) वसन्त तिलका, (4) वियोगिनी, (5) उपजाति, (6) शालिनी, (7) मन्दाक्रान्ता, (8) शार्दूल विक्रीड़त, (9) अनुष्टुप। इनके अतिरिक्त कवि ने छन्द परिवर्तन प्रियता का भी संकेत किया है। उपजाति, वैतालीय, रथोद्धता।[53] भाषा की दृष्टि से पद्य चूड़ामणि में प्रसाद गुण दृष्टव्य है तथा वैदर्भी शैली है।

किरातार्जुनीयम् महाकाव्य -

किरातार्जुनीय महाकाव्य के प्रणेता भारवि हैं। यह कवि का एक मात्र महाकाव्य है। इसके अन्तर्गत भारवि ने व्यास की उपदेशामृत के अनुसार पशु पतास्त्र प्राप्ति के लिये की गई अर्जुन की तपस्या एवं किरातवेष धारी भगवान शंकर के साथ हुए अर्जुन का युद्ध अठारह सर्गों में वर्णित किया है। कवि ने काव्यारम्भ श्री: शब्द युक्त मंगलाचरण से किया है और साथ ही प्रत्येक सर्गान्त श्लोक में लक्ष्मी शब्द का प्रयोग भी। यहाँ उल्लेख्य है कि किसी विशेष शब्द का प्रयोग कवि भारवि से ही प्रारम्भ होता है, जिसे उत्तरवर्ती कवियों ने प्राय: अपनाया है। भारवि सभा पण्डित होने से स्वभावत: ही राजनीति के विशेष जानकार थे।

किरातार्जुनीयम् का कथानक महाभारत से अवतरित है, द्यूत क्रीड़ा में हारने के पश्चात युधिष्ठिर अपने अनुजों के साथ द्वैतवन में रहने लगे, किन्तु यहाँ वे दुर्योधन की ओर से चिन्तित हैं, अत: वे दुर्योधन की प्रजापालन सम्बन्धी नीति को जानने के लिये एक वनेचर-दूत को नियुक्त करते हैं,[54] ब्रह्मचारी बना हुआ वह वनेचर-दूत लौटकर दुर्याधन के शासन की पूर्ण जानकारी

युधिष्ठिर को देता है और साथ ही यह संकेत करता है कि दुर्योधन द्यूत में जीती हुई पृथ्वी को नीति से भी जीत लेने के प्रयत्न में है।[55] अभीष्ट जानकारी देने के पश्चात् वह चला जाता है। द्रौपदी युधिष्ठिर को उनके पूर्व मुक्त-ऐश्वर्य एवं पराक्रम का स्मरण कराती है।।[56] साथही शत्रुओं के प्रति असामयिक उदासीन एवं क्षमाशील रहने से होने वाली अनुजों की दयनीय दशा की ओर ध्यान आकर्षित करती हुई युधिष्ठिर को उत्तेजित करती है।।[57] तथा उसकी शान्ति पूर्ण नीति की भर्त्सना करती है।

द्वितीय सर्ग के अन्तर्गत, द्रौपदी के विचारों का समर्थन करते हुए भीम कहते हैं कि हे प्रजानाथ आपके अनुजों की पराक्रमशाली भुजाऐं फिर कब सफल होगी। उसके पराक्रम को कौन सह सकता है।[58] किन्तु युधिष्ठिर भी उनके उत्तेजित वचनों को संयुक्तिक नीतिमय उपदेशों से शान्त कर देते हैं।[59] इसी सर्ग में भगवान व्यास का आगमन होता है।

युधिष्ठिर के व्यासजी से आगमन का कारण पूछने पर, व्यासजी के पाण्डवों के विजय लाभ का ध्यान रखते हुए उत्तर दिया- पराक्रम से ही आपको पृथ्वी पर अधिकार करना होगा। आपके शत्रु आप से अधिक बलशाली हैं, अतः शत्रु से बढ़ने के लिये आपको उपाय करना आवश्यक है। जिस मन्त्र विद्या से अर्जुन तपस्या करके पाशुपतास्त्र प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे और भीष्म प्रभृत्ति वीरों का नाश करने में समर्थ होगें। वहू मन्त्र विद्या प्रदान करने के लिये मैं आज यहाँ उपस्थित हुआ हूँ। बाद में अर्जुन को उक्त मन्त्र विद्या प्रदान कर, दिव्यास्त्र प्राप्ति के लिये इन्द्र की तपस्या करने के लिये कहते हैं, साथ ही मार्ग-निर्देशन करने के लिए एक यक्ष को आदेश देकर अन्तर्हित हो जाते हैं, व्यास के भेजे यक्ष के साथ अर्जुन तपस्या करने इन्द्रकील पर्वत पर पहुँचता है। यक्ष अर्जुन को तप तथा तप में होने वाले विघ्नों के बारे में कहता है और आशीर्वाद देकर चला जाता है। वनेचरों के मुख से अर्जुन की कठोर तपस्या का वृतान्त सुनकर इन्द्र भयभीत होता है। और उसके तप में विघ्न डालने के लिये अप्सराओं को भेजता है। परन्तु जितेन्द्रिय अर्जुन के प्रति उन अप्सराओं के सभी प्रयत्न विफल हो जाते हैं। अर्जुन के तपानुष्ठान देखने के लिये मुनिवेश धारण कर इन्द्र उपस्थित होता है। अनेक युक्ति -प्रयुक्ति से समझाने पर भी अर्जुन के तपोनुष्ठान न छोड़ने पर प्रसन्नता से इन्द्र रूप में प्रकट होकर अर्जुन को शिव की तपस्या करने का उपेदश देता है। अर्जुन पुनः तपस्या प्रारम्भ करता है, एक मायावी दैत्य अर्जुन को मारने के लिये वराह रूप धारण करता है इस तथ्य को जानकर शंकर अर्जुन की रक्षा करने के हेतु किरात का मायावी रूप धारण करते हैं, भगवान शंकर वराह को लक्ष्य कर वाण चलाते हैं, और अर्जुन भी उसी समय वाण चलाता है, परिणामतः दोनों के वाणों से आहत वह वराह कटे वृक्ष की तरह गिर कर पंचत्व को प्राप्त होता है, बाद में अर्जुन अपने वाण को लेना चाहता है और इस पर किरात तथा अर्जुन वाद-विवाद चलता है। यह विवाद पंचदश सर्ग में युद्ध का रूप धारण करता है। युद्ध में प्रथम

शिव और अर्जुन अस्त्र शास्त्रों से युद्ध करते हैं। पश्चात दोनों बाहुयुद्ध पर तैयार होते हैं। अर्जुन की वीरता तथा एक निष्ठता से शंकर प्रकट होते हैं, फलतः अर्जुन को पाशुपतास्त्र की प्राप्ति होती है। 'जाओ शत्रुओं पर विजय प्राप्त करो' इस प्रकार शंकर के द्वारा आशीर्वाद प्राप्त कर, अर्जुन जो उनके चरणकमलों में नत था, देवताओं द्वारा प्रशंसित होते हुए, उसने महान विजय लक्ष्मी के साथ अपने घर पहुंचकर जेष्ठ भ्राता युधिष्ठिर को प्रणाम किया।[60] यहीं यह महाकाव्य समाप्त होता है।[61]

आलोच्य महाकाव्य का नायक धीरोदात्त अर्जुन वीर रस अंगी है। अर्जुन की तपस्या में विघ्न स्वरूप अप्सरा विरहा आदि श्रृंगार इसी मुख्य रस का अंग है। जैसा कि पूर्व में देखा है कि महाकाव्य की रूढि[62] की पूर्ति करने के लिये इस महाकाव्य में अठारह सर्ग हैं, तथा षड ऋतुओं, सूर्योदय, सूर्यास्त, पर्वत, नदी, जल क्रीड़ा सुरत आदि का वर्णन है। इस प्रकार भारवि वीर तथा श्रृंगार के कवि हैं, आरम्भ में द्वितीय सर्ग के भीम की उक्तियाँ[63] वीर रसो चित हैं, वह अपने बाहुबल से राज्य चाहता है। वह यह कभी नहीं चाहता कि उन्हें दुर्योधन की कृपा से राज्य मिल जाय उसके विचार में जैसे मृगेन्द्र अपने मारे हुये मद स्त्रावी दन्तियों के द्वारा अपना आहार सम्पादन करता है। वैसे ही महान व्यक्ति संसार को अपने प्रताप तथा वीरता से अभिभूत करता हुआ किसी अन्य की सहायता से अपने अभ्युदय की अभिलाषा नहीं करता। वीर रस की दृष्टि से चार सर्ग इस महाकाव्य में हैं।[64]

अर्जुन वेग से वाणों रूपी नदी के सम्मुख उसी तरह आया जैसे मगर वेग से गंगा की जलधारा को चीरकर जल सतह से ऊपर उठ आता है और उसने त्रिनेत्र शिव के सुवर्ण की चट्टान के सदृश दृढ और विस्तीर्ण वक्षः स्थल पर भुजाओं से प्रहार किया।[65]

प्रस्तुत काव्य के अन्तर्गत आठवें, नवे तथा दसवें सर्ग में श्रृंगार रस के कई चित्र हैं अप्सराओं के वन विहार, पुष्प वचय, जल क्रीड़ा तथा रतिकेलि आदि जैसा है, इस काव्य में तीनों सर्गो के श्रृंगारिक स्वरूप मुक्तक श्रृंगार वर्णनों जैसा दिखाई देता है। इसके अन्तर्गत नायिका भेदों के मुग्धा, खण्डिता, प्रगल्भा आदि अवस्था के रूपक पर मुक्तत्व की छाप दिखाई देता है। जैसे-

कोई अन्य नायिका अपने प्रिय के वार्तालाप में तन्मय एक होकर एक टक देखने लगी और उसकी ओर मुख किये हुये खड़ी रही। उसकी नीवी खिसक गई। वह उसे सम्हालना भूल गई। पुष्पों की तरह पल्लव की सदृश उसका हाथ ठीक नहीं पड़ रहा था। यह भी उसे नहीं मालूम हो सका।[66]

श्रृंगार रस का एक रूपक दृष्टव्य है – "जल क्रीड़ा के समय एक अप्सरा ने अपने प्रिय पर जल उछालना चाहा और ज्यों ही उसने अञ्जलि से जल उठाया उसके प्रिय गन्धर्व ने हँसकर उसका

हाथ पकड़ लिया। कर स्पर्श से उस नायिका का मन कामासक्त हो गया। उसका नीवी बन्धन ढीला हो गया किन्तु जल से मिटी हुई उसकी करधनी ने उसके वस्त्र को रोक लिया जैसे एक सखी अपनी सखी की लाज रखने के लिये करती है।[67] इसके अतिरिक्त सर्ग-6 में 34 से 40, करुण रस, 18 वें सर्ग में अर्जुन कृत स्तुति में भक्तिभाव, 22 से 44 में भयानक रस की छटा, सर्ग बारह श्लोक 45 से 51 तक कृति वर्णन और अन्य में अप्सरा विहार वर्णन, सूर्यास्त वर्णन रात्रिवर्णन, प्रभात वर्णन, श्रृंगार रस, के उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं।[68] आलम्वन रूप में प्रकृति का रूप चतुर्थ तथा पंचम सर्ग दृष्टिगत होते हैं।

भारवि कला पक्ष का समर्थक है, उनके काव्य में अर्थ गांभीर्य ही अधिक प्रखर हो उठा है, उनके कला विषयक सिद्धान्त से यह ज्ञात होता है कि काव्य के पद प्रयोग में, स्पष्टता का अभाव, अर्थगाभीर्य में वाणी के अर्थ में पौनरूकत्य न हो और अर्थ सामर्थ्य को कुचल न दिया जाय।[69] भारवि ने आलोच्य महाकाव्य में विभिन्न अंलकारों से अंलकृत करने का यथेष्ट प्रयत्न किया है। उनके वर्णन सर्वत्र हृदय ग्राही हुये हैं, उनके प्राकृतिक वर्णनों में प्रयुक्त अंलकार और अप्रस्तुत विधान के सौन्दर्य पर रीझ कर ही पंडितों ने भारवि को 'आत पत्र' की उपाधि दी थी। सील कमल के वन से कमलों का पराग हवा से आकाश में छा गया है। हवा उसे आकाश में चारों ओर फैलाकर मण्डलाकार बना देती है। और वह मण्डलाकार पराग संघात ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे सुवर्ण सूत्र निर्मित छत्र की शोभा को धारण कर रहा हो। उक्त निदर्शन भारवि की मौखिक कल्पना है। उसकी तरल कल्पना का निदर्शन किरात और अर्जुन को भंयकर वाणों से हुई वराह की मृत्यु के वर्णन में मिलता है। मृत्यु के पूर्व वराह की मानसिकता और शारीरिक स्थिति का ऐसा स्पष्ट और सूक्ष्म स्वरूप क्वचित ही देखेने को मिलता है।[70] अर्थालंकारों के विशेषत: साधर्म्य मूलक अलंकारों के प्रयोग उचित स्थानों पर किये गये हैं। उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, समासोक्ति, निदर्शना और उनके अतिरिक्त यमक, श्लेष तथा प्रहेलिकादि चित्र काव्यों का भी प्रयोग किया गया है। पंचम सर्ग में यमक के अनेक प्रकार के योग किये है।[71] इस प्रकार भारवि के काव्य में पांडित्य प्रदर्शन की भावना अधिक दिखाई देती है। आप अपने राजनैतिक ज्ञान की तरह स्थान-स्थान पर व्याकरण ज्ञान का प्रदर्शन करते हैं।

पांडित्य प्रदर्शन की भावना से काव्य काठिन्य अवश्य आ गया है, किन्तु अर्थ गौरवान्वित ओजपूर्ण भाषाशैली के प्रवर्तक रूप में भारवि का नाम संस्कृत महाकाव्य की परम्परा में सदा स्मरणीय रहेगा। अर्थगौरव से तात्पर्य है थोड़े शब्दों में प्रभूत अर्थ व्यक्त करने का गुण। इसी गुण को भारवि ने भीम की वाणी में स्पष्ट किया है। भारवि का सांसारिक, व्यावहारिक तथा शास्त्रीय अनुभव उच्च कोटि का होने से उनके हृदय तल से निकले विचारों में तत्व ज्ञान की गंभीरता स्वयमेव निहित रहती है और वे औचित्य पूर्ण सीमित शब्दों द्वारा अभिव्यक्त होते हैं, वक्ता के मूल

विचारों या भावों के अनुसार उसकी शब्द योजना निर्मित होती है। इसकी पुष्टि हमें भीम तथा इन्द्र के वचनों में होती है।[72] भारवि के प्रत्येक पात्र की भाषा शैली उसके व्यक्तित्व को स्पष्ट करती है।[73] वक्ता कोई भी हो अर्थात् चाहे वह गुह्यक हो या किरात वेषधारी शंकर का दूत हो[74] या सत्य तथा शान्ति का मार्ग अनुशरण करने वाले धर्मराज हों। यदि द्रौपदी के तीखे वचनों में धर्मराज को व्यंग्य सुनाने की क्षमता है तो भीम की ओजस्वी वाणी में उसकी वीरता तथा घमण्ड की स्पष्ट अभिव्यक्ति एवं युधिष्ठिर की वाणी उसके शान्त स्वभाव तथा विरक्त भाव का संकेत देती है।

युधिष्ठिर की कायरता तथा उसकी शान्ति प्रियता की ओर संकेत करती द्रौपदी कहती है। इस पृथ्वी पर कौन ऐसा राजा है जो अनुकूल सहायक सामग्रियों के रहते हुए तथा जिसको क्षत्रिय होने का गर्व है। सन्धि आदि तथा सौन्दर्य आदि राजोचित गुणों से युक्त, वंश परम्परा से रक्षित राज्यश्री को अपनी मनोरमा प्रियतमा की भांति देखते हुए अपहृत होने देगा। इस उक्ति के द्वारा द्रौपदी ने सम्पूर्ण भूत का चित्र युधिष्ठिर के द्वारा उसे जुए के दाव पर लगाना तथा दु:शासन के द्वारा उसके अपमान की घटना को व्यञ्जना कराकर युधिष्ठिर के सम्मुख उपस्थित कर एक तीखा व्यंग्य सुना दिया।

गुणानुरक्तामनुरक्त साधनः कुलाभिमानी कुलजो नराधिपः।
परस्त्वदन्यः क इवा पहारयेन्मनोरमामात्मवधूमिवश्रियम्।।[75]

उपुर्यक्त उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है कि भारवि की भाषा को मेल भावों की अपेक्षा उग्र तेजस्वी भावों को व्यक्त करने में अधिक समर्थ है।

भारवि ने अपनी भाषा का आदर्श इस प्रकार व्यक्त किया है। पुण्यशाली व्यक्तियों की सरस्वती सदा गंभीर पदों से युक्त होता है। उसके स्फुट वर्ण होते हैं और कानों को प्रसन्न करते हैं, वह शत्रुओं के हृदय को भी प्रसन्न करती है–

विविक्त वर्णाभरणा सुख श्रुतिः प्रसादयन्ती हृदयान्यपि
प्रवर्त्तिनाकृत पुण्यकर्मणां प्रसन्नगम्भीरपदा सरस्वती द्विषाम्।[76]

भारवि की भाषा शैली का संक्षेप में यही रहस्य है।

किरातार्जुनीय में विविध छन्दों का प्रयोग हुआ है, भारवि वंशस्थ छन्द के प्रयोग में कुशल हैं,[77] इसका संकेत क्षेमेन्द्र ने सुवृत्तातिलक में किया है। इसके अतिरिक्त उपजाति, वैतालीय[78] हुत विलम्बित प्रमिताक्षरा, प्रहर्षिणी।[79] स्वागता[80] उद्गता[81] पुष्पिताग्रा[82] इनके अतिरिक्त औपछन्दसिक, अपरवक्र, जलोद्धगति, चन्द्रिका, मत्तमयूर आदि अप्रसिद्ध छन्दों का भी प्रयोग किया है।

रावणवध

रावण वघ महाकाव्य का प्रणयन महाकवि भट्टि ने किया है। आपका समय सातवीं शती का प्रथम चरण (610ई.-615) आप श्रीधरण सैन राजा के सभा पण्डित थे। इसके अतिरिक्त आपके समबन्ध में किसी प्रकार की जानकारी साहित्य जगत के महामनीषियों के पास उपलब्ध नहीं हो सकी।

भट्टि कवि के ग्रंथ का नाम रावण वध है किन्तु संस्कृत साहित्य जगत में आलोच्य ग्रंथ के नाम को सम्बोधित न करते हुये इसका भट्टि काव्य के नाम से ही परिचय दिया जाता है। दूसरे शब्दों में इसे महाकवि की सफलता का संकेत ग्रहण किया गया है। कवि ने भगवान रामचन्द्र जी के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की रामायण की कथा को इस महाकाव्य का इतिवृत्त बनाया है। काव्य को बाइस सर्गों में विभक्त किया गया है।

सभी सर्गों के चार काण्ड निर्धारित महाकवि ने किये हैं, जो निम्नवत हैं-

1. प्रकीर्ण काण्ड : प्रथम सर्ग से पंचम सर्ग तक यह काण्ड प्रकीर्ण काण्ड के नाम से अभिहित किया गया है। प्रस्तुत काण्ड भगवान राम के जन्म से सीता हरण तक की कथा का समायोजन है। व्याकरण की दृष्टि से प्रथम चार सर्गों में कोई विशेष बात सामने नहीं आती किन्तु कवित्व को दृष्टि से प्रथम चार सर्ग ही महत्व पूर्ण दिखाई देते हैं। पंचम सर्ग में पद्य प्राय: प्रकीर्ण कोटि के हैं। केवल दो स्थलों पर क्रमश: ट प्रत्यय (टाधिकार 97-100) तथा आमधिकार (104-107) के प्रयोगों की योजना है।

2. अधिकार कांड : प्रस्तुत काण्ड में षष्ठ से लेकर नवम सर्ग तक का भाग आता है, इन सर्गों में भी कई श्लोक प्रकीर्ण हैं। किन्तु अधिकतर श्लोकों में व्याकरण के नियमों की दृष्टि से दुहादिद्विकर्मक धातु[83] ताच्छीलिक कृदधिकार[84] भावेकर्तरिप्रयोग[85] आत्मने पदाधिकार[86] अननमिहितेऽधिकार[87] आदि पर कवि का विशेष ध्यान रहा है।

3. प्रसन्न कांड : आलोच्य कांड में चार सर्ग है, दस, ग्यारह, बारह, तेरह आते हैं, इनमें व्याकरण की अपेक्षा कवि ने अंलकार शास्त्र पर ध्यान केन्द्रित किया है। इसलिये इस काण्ड का नाम प्रसन्न काण्ड रखा गया है। दशम सर्ग में शब्दालंकार तथा अर्थालंकार के अनेकों भेदोपभेदों का प्रयोग किया गया है। इसके अतिरिक्त शेष सर्गों में अर्थात् बारह में क्रमश: माधुर्य और भाविक तथा तेरह सर्ग में भाषा सम नायक श्लेष भेद आदि काव्योपांगों का वर्णन है।

4. तिङन्त कांड : प्रस्तुत कांड के अन्तर्गत, चौदह से बाइस तथा सर्गों का समावेश किया जाता है, इससे संस्कृत व्याकरण के नौ अलंकारों अर्थात काल तथा अर्थ को बतलाने वाले

क्रियापदों के रूपों। लिङ्, लुट, लङ्, लट्, लिंङ्, लोट्, लृङ्, लुट् का क्रमशः एक-एक सर्ग में एक-एक लकार का प्रयोग है। इस प्रकार कवि ने व्याकरण के अनेक प्रयोगों पर व्यावहारिक दृष्टिगत किया है।

कथा की दृष्टि से प्रथम सर्ग में राम जन्म, द्वितीय में राम का सीता के साथ विवाह, तृतीय से पञ्चमान्त तक राम प्रवास, सीताहरण सुर्गीवाभिषेक, षष्ठ में सीताशोध, सप्तम में अशोक वन विनाश, अष्टम में मारुति बन्धन, नवम में सीता जी को अंगुली कार्पण, दशम में लंका प्रभात वर्णन, एकादश में विभीषण का राम की ओर आगमन, द्वादश में सेतु बन्धन, त्रयोदश में शरबन्ध, चर्तुदश में कुम्भ कर्ण वघ, पंचदश में सेतु बन्धन, त्रयोदश में शरबन्ध चर्तुदश में कुम्भ कर्ण वध, पंचदश में रावण विलाप षोडश में रावण वध, सप्तदश में विभीषण विलाप, अष्टदश में विभीषण अभिषेक, नवदश में सीतादोष चर्चा विंशति में सीता संशुद्धि, एक विंशति में और द्वाविंशति में अयोध्या में पुनरागमन आदि का वर्णन है।

प्रस्तुत महाकाव्य का उद्देश्य व्याकरण की शिक्षा देना है। भट्टि ने साधन रूप मानकर व्याकरण की शिक्षा प्रदान करने का प्रयास किया है। सुकुमार मति छात्रों के लिये रूक्ष विषयों को सरल तथा सरस बनाने के लिये इस मार्ग को अपनाया जाता रहा है। भट्टि काव्य का फलक भी विस्तृत है। भट्टि काव्य व्याकरण का अच्छा ग्रंथ होने के साथ-साथ काव्य सौन्दर्य से मण्डित भी है। कवि ने महाकाव्य के आवश्यक नियमों की पूर्ति करने का प्रयत्न किया है। उदाहरण के लिये दशम सर्ग से त्रयोदश सर्ग तक, चार सर्ग की सृष्टि काव्य की विशेषताओं को प्रदर्शित करने के लिये है। दशम सर्ग में शब्दार्थालंकार की सुन्दर योजना है। यमकालंकार के भिन्न-भिन्न उदाहरण इस सर्ग में उपलब्ध होते है। एकादश सर्ग का प्रभात वर्णन तथा द्वितीय सर्ग का वन वर्णन व्याकरण की रूक्षता दूर करने के लिये पर्याप्त है।

रस की दृष्टि से आलोच्य काव्य का अंगी वीर रस है और श्रृंगार अंग रूप में किन्तु कवि का लक्ष्य काव्य की ओर न होने से भाव पक्ष के चित्रण में जैसे युद्ध वर्णन में भाषा श्रुति कटू रसोचित होने पर भी उसे सफलता नहीं मिली है। यथा-

अधिज्यचापः स्थिरबाहु मुष्टि रुदं चितऽक्षोंऽचित दक्षिणोरुः।
तान् लक्ष्मणः सन्न तवाम जंघो जघान शुद्धेषुरमन्द कर्षी।।[44]

अर्थात् दृढ़वाहु और मुष्टि से युक्त लक्ष्मण जी ने आकाश की ओर देखकर दक्षिण जंघा को संकुचित और वाम जंघा को कुछ झुकाकर तीक्ष्ण वाण को तेजी से प्रत्यंचा से खींचते हुये उन राक्षसों को मारा।

एकादश सर्ग के अन्तर्गत प्रभात वर्णन में श्रृंगार रस की नियोजना की गई है, किन्तु इसमें भी कतिपय विशिष्ट शब्दों की योजना करने से रसोद्रेक नहीं हो सका है। यथा– "सामनीति का प्रयोग करते हुए किसी नायक के द्वारा आच्छुरित कर दिये जाने पर कोई नायिका रोमांचित हो गई, परिणामत: उसके हृदय का क्रोध शान्त हो जाने पर वह नायिका चंञ्चल हो उठी और नायक ने उसे हठपूर्वक वश में कर लिया है।[89]

द्वितीय सर्ग के प्रकृति वर्णन में कुछ स्थल अवश्य ही भट्टि के सूक्ष्म निरीक्षण तथा उसकी सहृदयता की पुष्टि कर सकते हैं, यथा–

वितृत्तपार्श्वे रुचि रांगहारं ममुद्वहच्चारु ममुद्वहच्चारु नितम्बरम्यम्।
आमन्द्रमन्यध्वनिदत्ततालं गोपांगना नृत्य मनन्दयत्तम्।।[90]

अर्थात् राम दही मथती हुई गोपियों के उस नृत्य को देखकर प्रसन्न हुए जिसमें अंग के दोनों पार्श्व इधर उधर संचालित होते थे, उनका अंग सुन्दर दिखाई पड़ रहा था। उनके सुन्दर नितम्ब इधर–उधर हिलने से रमणीय लग रहे थे तथा उनके नृत्य में नन्द एवं गम्भीर गति वाला दही मथने का शब्द ताल दे रहा था।

सूर्योदय का वर्णन[91] एकावली अंलकार का सुन्दर उदाहरण शरत् कालीन सुषमा का चित्र उपस्थित करता है। यथा– "कवि प्रात:काल का रमणीय चित्र खींचता है। नदी किनारे स्थित पेड़ के पत्तों से ओस की बूंदें गिर रही हैं पेड़ पर बैठे हुये पक्षी कलरव कर रहे हैं। इस पर कवि उत्प्रेक्षा करता है मानो प्रिय चन्द्रमा के चले जाने के कुमुदिनी को दुखी देखकर नदी किनारे का पेड़ रो रहा है–

निशातुषा रैर्नयनाम्बुकल्पै: पत्रान्त पर्यागलदच्छ विन्दु:।
उपारुरोदेव नदत्पतंग कुमुद्वती तीरतरुर्दिनादौ।।[92]
किसी में नायक–नायिका का आरोप भी दिखाई देता है।[93]

व्युत्पत्ति की दृष्टि से भट्टि ने अपने काव्य को अलंकृत करने का प्रयत्न भी किया है, इस काव्य के द्वादश सर्ग में प्रयुक्त विभीषण की उक्तियाँ भट्टि के राजनीति ज्ञान का परिचय देती हैं। इसके अतिरिक्त व्याकरण का तो ग्रंथ ही निर्मित किया है।

राम ने प्रत्येक लता के पास जाकर फूलों को तोड़ा, नदी में जाकर आचमन किया और सुन्दर पत्थर पर बैठ कर विश्राम भी किया। उक्त श्लोक में लतानुपात नद्यव स्कन्दं तथा शिलोपवेशं के प्रयोग विशेषत: व्याकरण के नियमों के प्रदर्शन के लिये किये गये हैं। इन प्रयोगों के द्वारा यह बतलाना चाहता है विश पद (वत) स्कन्द आदि धातुओं से वीरसार्थ में ठामुल् प्रत्यय होता है।[94]

शैली की दृष्टि से– इस सर्ग में समासांत पदावली दिखाई देती है। और इसमें भट्टि ने एक साथ संस्कृत और प्राकृत का भाषा समय प्रयोग किया गया है। छन्द के आधार पर भट्टि ने सेतुबन्ध में स्कन्धक छन्द का प्रयोग किया है। अधिक लम्बे छन्दों का प्रयोग बहुत कम पाया जाता है। उसका प्रधान छन्द लम्बे श्लोकों में है। जिनका प्रयोग 4, 9 तथा 14–22 व्याकरण सम्बन्धी सर्गों में किया गया है। अन्य स्थलों पर जैसे प्रकीर्ण सर्गों में उपजाति रुचिरा, मालिनी आदि छन्दों का प्रयोग मिलता है। दसवें सर्ग में पुष्पिताग्रा का प्रयोग है। इनके अतिरिक्त अन्य छन्द भी प्रयुक्त हैं। प्रहर्षिणी, औपछन्दसिक, वंशस्थ, वैतालीय, नन्दन, अश्वलालित, मन्दाक्रान्ता, शार्दूल विक्रीड़त और स्रग्धारा है।

अंलकारों में भ्रान्तिमान् संकर, उपमा, संसृष्टि, उत्प्रेक्षा, संदेह, अर्थान्तरन्यास, विषम, श्लेष, समासोक्ति, यथासंख्य, निदर्शना, रूपक आदि का प्रयोग है।

जानकी हरण :

जानकी हरण महाकाव्य के रचयिता कविवर कुमारदास जी हैं। यह ग्रंथ पूर्ण रूप में उपलब्ध नहीं है।[95]अन्य ग्रंथों व सूक्ति संग्रहों से कवि परिचय मिलता है।[96] राज शेखर की काव्य मीमांसा के आधार पर ये जन्माध थे।[97]

श्री नन्द रंगीकर ने जानकी हरण की भूमिका में कवि का काल 8 वीं शती के अन्तिम और 9 वीं सदी के पूर्वार्द्ध में माना है। किन्तु कुमार दास की भाषा–शैली एवं पाण्डित्य प्रदर्शन की भावना उस कवि माध के पूर्ववर्ती सिद्ध करती है।

आलोच्य काव्य के अन्तर्गत पच्चीस सर्ग बताये जाते हैं।[98] कवि ने रामायण के छः काण्डों की कथा का आधार लेकर विदग्धता पूर्ण रीति से काव्य का निर्माण किया है। सर्गो के आधार पर कथा वस्तु निम्नवत है–

प्रथम सर्ग में अयोध्या नगरी उसकी समृद्धि, राजा दशरथ, उसका पराक्रम, भवन और तुककीश राजाओं पर उसकी विजय, उसकी महारानियों का वर्णन, दशरथ की मृगया और श्रवण की मृत्यु।

द्वितीय सर्गान्तर्गत वृहस्पति आदि देव शेषशायी विष्णु के पास सहायता मांगते समय रावण के चरित्र का वर्णन करते हैं। विष्णु राम अवतार के रुप में देवों की सहायता देने का वचन देते हैं।

तृतीय सर्ग में वर्णित वसंत ऋतु, राजा दशरथ की अपनी रानियों के साथ जल केलि तथा सन्ध्या का काव्य मय रमणीय वर्णन। रात्रि तथा प्रभात का वर्णन। चतुर्थ सर्ग में दशरथ पुत्रकामेष्टि यज्ञ करते हैं। पुत्र जन्म। विश्वामित्र अपने यज्ञ की रक्षा के लिए श्रीरामचन्द्र तथा लक्ष्मण को ले जाते है; ताड़का वध और रामचन्द्र को दैवी अस्त्र का दान।

पंचम सर्ग में विश्वामित्र राम लक्ष्मण को जनकपुर ले जाते हैं। मार्ग में गौतम पत्नी अहिल्या का उद्धार, 'मारुतम' के जन्म स्थान पर विश्वामित्र सहित राम लक्ष्मण का गमन, मिथिला नारी का वर्णन, राजा जनक से राम लक्ष्मण की भेंट। रामचन्द्र को महान् धनुष का दर्शन।

सप्तम सर्गान्तर्गत राम और सीता का पूर्वानुराग वर्णन, राम के मुख से जानकी के सौन्दर्य का वर्णन, राम और सीता का प्रेम वर्णन और विवाह।

अष्टम सर्ग में राम और सीता केलि वर्णन, सूर्यास्त, चन्द्रादय और रात्रि का काव्यमय वर्णन, मधुपान।

नवम सर्ग में चारों भाई अयोध्या लौटते हैं। मार्ग में परशुराम और राम की भेंट। राज्य कैकेम अपने पुत्र युवाजित को भरत और शत्रुघ्न को लेने के लिये भेजते हैं।

दशम सर्ग में- राजा दशरथ राजनिति के सिद्धान्तों का प्रतिपादित करते समय एक लंम्बा भाषण देते हैं, राम का राज्याभिषेक, राम का वन गमन। विराध वध, शूपर्णखा वृतान्त, खर दूषण वध और सर्ग समाप्ति के पूर्व सीता हरण हो जाता है।

एकादश सर्ग के अन्तर्गत राम तथा हनुमान की मित्रता, बालिवध और वर्षा ऋतु वर्णन।

द्वादश सर्ग में - शरत् काल में भी सुग्रीव के अन्वेषण काम में न लगने पर लक्ष्मण की फटकार। सुग्रीव का आगमन तथा पर्वत वर्णन।

त्रयोदश सर्ग में- बानरी सेना एकत्र होती है।

चतुर्दश सर्ग में- समुद्र पर सेतु निर्माण व सेना का समुद्र पार जाने का चमत्कारी वर्णन।

पंचदश सर्ग में - अंगद का रामदूत के रूप में रावण की सभा में गमन।

षोडश सर्ग में - राक्षसों की केलियों का वर्णन।

सप्तदश से विशंति सर्ग तक - संग्राम का वर्णन और अन्त में राम की विजय। यहीं पर काव्य समाप्त हो जाता है।

प्रस्तुत महाकाव्य का स्रोत वाल्मीकि रामायण है। कथानक के विचार किसी प्रकार परिवर्तन परिलक्षित नहीं होता। किन्तु इसमें श्रृंगार को अधिक महत्त्व दिया है। पूर्व में यह श्रृंगार वर्णन राक्षसों तक ही सीमित था।[99] यहाँ कुमारदास ने जो राम और सीता का केलि वर्णन किया है वह अश्लीलता की सीमा को स्पर्श कर रहा है।[100]

मूल कथा-वस्तु के अन्तर्गत अहिल्या के शिला में परिवर्तित हो जाने के अतिरिक्त अन्य कोई परिवर्तन कवि ने नहीं किया है। इसके बाद अन्य भाइयों के विवाह का वर्णन भी किया है।[101]

समूचे काव्य में श्रृंगारत्मक वर्णनों को पर्याप्त स्थान दिया गया है। जैसे-

(1) दशरथ और उनकी पत्नियों का विहार-जलकेलि वर्णन।[102]

(2) राम सीता के पूर्वानुराग का वर्णन।[103]

(3) मिथिला में विवाह के पश्चात राम और सीता का संभोग वर्णन

(4) सेतुबन्ध के अनुकरण पर राक्षसों की युद्ध के पूर्व केलि का वर्णन।[104]

उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त महाकाव्यों के नियमों के आधार पर युद्ध, प्रसाद, ऋतु आदि का वर्णन स्थान पर विस्तार पूर्वक किया गया है।

जानकी हरण के अंलकृत वर्णन अधिक अधिक विदग्ध प्रतीत होते हैं, जैसे 'स्त्रियों' के चंचल नेत्र युक्त कमल रूपी मुखों से व्याप्त झरोखों की कतार नील कमलों से परिपूर्ण सरोजिनी की तरह दिखाई देती थी।।[105] जानकी हरण में यही रथोद्धता छन्द का प्रयोग किया गया है।

आलोच्य काव्य का वणर्य विषय केवल जानकी का हरण प्रतीत होता है। परन्तु इसमें पूरी राम कथा का समावेश किया गया है। अतः इस महाकाव्य का अंगीरस वीर है। अंग रूप में अन्य रसों की भी नियोजना की गई है। अंग रूप में श्रृंगार रस है। नायक धीरोदात्त राम हैं।

वीर रस की अभिव्यक्ति राजा दशरथ के यवनराज और तुर्कीश राजाओं की विजय में रामचन्द्र के ताटकावध राक्षस सुवाहु आदि के वध में तथा राम और रावण के युद्ध में हुई है। वीर रस के अन्य अंगों दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर। इसके अन्तर्गत युद्ध वीर का चित्र तो विस्तार पूर्वक चित्रित है। दया वीर का चित्र राजा दशरथ के मृगया वर्णन में मिलता है।[106] श्रृंगार रस का वर्णन राजा दशरथ और उसकी स्त्रियों के केलि वर्णन, राम और सीता के संभोग वर्णन तथा राक्षसों की कमनीय केलियों के वर्णन में मिल जाता है।

सीता का नखशिख वर्णन है।[107] ऋतु वर्णन[108] उद्दीपन विभाव के अन्तर्गत आते हैं, करुण रस की व्यञ्जना श्रवण के तथा उसके माँ बाप के विलाप में है। वात्सल्य - अपनी सन्तान या उसी श्रेणी के अन्य प्रिय सम्बन्धी से रहने वाला स्नेहवात्सल्य के नाम से अभिहित होता है।[109] जनक का सीता को उपदेश, वात्सल्य के अन्तर्गत ही आता है। देवों का विष्णु के पास जाना और उद्धार के लिये उनकी स्तुति करना आदि में, देव विषय भक्ति रति भाव ही है।[110] इस काव्य के अन्तर्गत विभिन्न शास्त्रों के ज्ञान का उपयोग किया है, जैसे विष्णु स्तुति में वेदान्त, राजा दशरथ का राजनीति उपदेश[111] केलि वर्णनों में वात्स्यायन- काम शास्त्र, पौराणिक कल्पनाएं, व्याकरण शास्त्र, दर्शन, ज्योतिष शास्त्र।[112]

कुमारदास ने अपने काव्य का सौन्दर्य, विदग्धता से चित्रित करने का प्रयत्न किया है। कवि राम के बाल सुलभ स्वभाव का सूक्ष्मांकन करते हुए कहता है कि प्रासाद की स्त्रियाँ पूछती थीं कि राम कहाँ चला गया, यह जानकर वह बालक अपने हाथों की अंगुली से अपने मुख को ढक लेता है तथा छिपने की चेष्टा करता। यथा –

न स राम इह क्व यात इत्यनुयुक्तो वनितानिरग्रत:।
निजहस्तपुटावृतान नो विदधेऽलीक निलीनमर्मक:।[113]

रानी के सौंदर्य निर्माण की समस्या के विषय में कवि ने एक प्रश्न उपस्थित किया है, विद्‌वानों को भी उसके निर्माण के विषय में तर्क वितर्क होता था। विधाता ने उसकी वे दोनों जंघाएं कैसे बनाई (क्योंकि) देखने पर तो वह काम देव के वाणों के प्रहारों से त्रस्त होता और आंख बन्द कर लेने पर बनाना ही संभव नहीं, तब बनाया कैसा ?[114]

श्लेष और पर्याय, यमक और चित्र अंलकारों का प्रयोग जानकी हरण में यथेष्ट मिलता है।[115] अनुप्रास तो कवि का प्रिय अलंकार है। इनके अतिरिक्त उपमा, अर्थान्तर न्यास, रूपक, उत्प्रेक्षा और आक्षेप अलंकार भी मिलते हैं। जानकी हरण में वैदर्भी रीति का प्रयोग किया गया है।[116] भाषा प्रसाद गुण विशिष्टा है, जिसमें संगीतात्मकता का गुण विशेष है। कुमारदास ने इस काव्य में व्याकरण का अच्छा प्रयोग किया है, जिससे वे व्याकरण के सूक्ष्म अध्येता थे।।[117]

जानकीरमण में विभिन्न छन्दों का प्रयोग नहीं है, श्लोक छन्द[118]

युत विलंवित[119], प्रमिताक्षरा[120], उपजाति[121], वंशस्थ[122], वैतालीय[123], रथोद्धता[124], इनके अतिरिक्त शार्दूल विक्रीड़त शिखरिणी, स्रग्धरा, पुष्पिताग्रा[125], प्रहर्षिणी वसन्त तिलका, अवितथ, मन्दाक्रान्ता और मालिनी।

नैषध चरित

नैषध: नैषध महाकाव्य के प्रणेता भी हर्ष है, नैषधीय चरित महाकाव्य चतुर्दश विद्याओं के ज्ञाता काश्मीरी पण्डितों के द्वारा आदृत हुआ था। "काश्मीरैर्महिते चतुर्दशतयीं विद्या विद्भिर्दर्महाकाव्ये तदमि नैषिधीय चरिते।"।[126] और इस असाधारण सफलता का रहस्य यह है कि उक्त काव्य चिन्तामणि मन्त्र उपासना का फल था।[127]

आलोच्य महाकाव्य में बाइस सर्ग हैं, जिनमें 2830 श्लोक हैं। इसमें निषध देश के पुण्य श्लोक अधिपति नल के जीवन का पूर्व भाग ही वर्णन किया गया है, आरम्भ में राजा नल के चरित विद्याम्यास, धर्माचरण प्रताप एवं दिनचर्या का विशद वर्णन है। नल का सौन्दर्य त्रैलोक्य में अनुपम था। किस स्त्री ने रात को स्वप्न में नल को नहीं देखा। विदर्भ कुमारी दमयन्ती ने अपनी

रुप सम्पत्ति के योग्य तथा अनेक बार सुने हुए नल में अपना मन लगाया। प्रतिदिन बन्दीजनों से नल का वर्णन सुनकर दमयन्ती रोमांचित हो जाती थी। उसी प्रकार नल ने भी दमयन्ती के रुप और गुणों को सुना। काम ने नल के धैर्य को नष्ट कर दिया। किन्तु नल ने कामार्त होने पर भी भीम से दमयन्ती को नहीं मांगा। अन्त में शान्ति की अभिलाषा से उपवन में उसने प्रवेश किया। उस उपवन में एक सरोवर के किनारे सुरत क्लान्त एक पैर पर खड़े हुए एक स्वर्णिम हंस को देखा। नल ने उसे पकड़ लिया। हंस करुणोत्पादक विलाप करते-करते मूर्च्छित हो गया। यह देख नल के भी करुण आंसू हंस पर उमड़ पड़े, हंस पुनः प्रकृतिस्थ हुआ नल ने उसे मुक्त कर दिया। हंस के आग्रह पर नल ने हंस को दमयन्ती के पास भेजा। हंस कुण्डिनपुर में पहुंचा। क्रीड़ावन के एकान्त स्थल पर हंस ने दमयन्ती के समक्ष नल के सौन्दर्य का वर्णन किया। इसके पश्चात दमयन्ती के पूर्वानुराग का हृदयग्राही वर्णन किया गया है। मदन मथितां दमयन्ती की अस्वस्थता का कारण जानकर राजा भीम ने दमयन्ती के लिये स्वयंवर की रचना की। इन्द्र, वरुण, अग्नि और यम देवताओं ने दमयन्ती के रूप गुण की कथा सुन स्वयंवर में उपस्थित होना चाहा। किन्तु नल की रूप सम्पत्ति को देख देव दमयन्ती से निराश हो गये। अतः वंचना कुशल इन्द्र ने नल को ही तिरस्करणी विद्या के सहारे दूत बनाकर दमदन्ती के पास भेजा। वहाँ नल ने देवों की ओर से पर्याप्त प्रयास किया किन्तु दमयन्ती अपने निश्चय पर दृढ़ रही। निश्चित समय पर स्वयंवर रचा गया। चारों देव नल के रूप में उपस्थित हुये। उपस्थित राजाओं का परिचय देने के लिये सरस्वती स्वयं आई और उसने उनका परिचय दिया। नल की प्रकृतिवाले पांच पुरुषों को देख दमयन्ती चिन्तित हुई। यह देख देव उसकी पति भक्ति पर प्रसन्न हुये और अपने विशिष्ट चिन्हों को स्पष्ट किया। फलतः दमयन्ती ने नल को पहचान कर उसके गले में वरमाला डाल दी। दोनों का विवाह हुआ। देव स्वर्ग को लौट गये। स्वर्ग जाते हुये देवों ने मार्ग में कलि को देखा। उसके साथ वाक् युद्ध हुआ। इसमें नास्तिक वाद के खण्डन के साथ-साथ कलि की हार हुई, नल दमयन्ती के प्रथम मिलन, सुरत क्रीड़ा पर काव्य की समाप्ति की गई है।

आचार्यो ने काव्य कथानक के लिये इतिहासोद्भव वृत्त की प्रधानता स्वीकार की है, किन्तु उसमें भी एक मर्यादा अंकित की है, महाकाव्य में समूचे ऐतिहासिक इतिवृत्त को अंकित नहीं किया जाता, अपितु उस वृत्त का जितना अंक कार्य रस विशेष के लिये नितान्त आवश्यक समझा जाता है, कवि उतने मात्र को ग्रहण कर लेता है।

आलोच्य महाकाव्य का अंगीरस श्रृंगार है, और रति प्रधान भाव तथा अंग रूप से रस है वीर, रौद्र अद्भुत, करुण, हास्य, बीभत्स, भयानक। नैषघ में श्रृंगार के दोनों पक्षों का (संयोग और वियोग) मनोरम सांगोपांग चित्रण हुआ है। इसमें नव साहसांक वियोग या विप्रलंग पक्ष प्रथम आया है। संभोग बाद में। नैषध का प्रारम्भ नल दमयन्ती के पूर्वराग से होता है।

नल दमयन्ती का प्रेम लोक विमुख ऐकान्तिक प्रेम नहीं है उसमें लोक व्यवहार की चिन्ता तथा कर्तव्य की भावना सदा साथ रही है। इस विन्दु को दृष्टि से ओझल करते ही नल धीरोदात्त नायक के पद से धीर ललित नायक पद पर आ जाते हैं, नैषध का वियोग प्रथम प्रकारान्तर्गत आता है।

दमयन्ती का नल में अनुराग अत्यन्त स्वाभाविक रीति से उत्पन्न होता हुआ, वर्णित किया गया है। इसके लिये भूमिका के रूप में नल के यश और पराक्रम का वर्णन करते हुये कवि ने उसके रूप सौन्दर्य का वर्णन किया है। दमयन्ती की वय: सन्धि के अवसर पर इन बातों का सुनना या देखना अधिक प्रभावोत्पादक होता है।

पिता के पास द्विज, बन्दि, चारणों के मुख से नल की प्रशंसा सुनकर रोमाञ्चित होना और चित्रकार से भित्ति पर अपना और नल का चित्र बनबाना आदि मनोभिलाष अवस्था के सूचक हैं।

आचार्यो ने पूर्वरात्र की अवस्था में अभिलाषा, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता, स्मृति आने वाली इन दश दशाओं को कामदशा कहा है। सुन्दरी दमयन्ती की करुण दशा सूचक एक चित्र–

कामदेव के बाण रूप सर्पो से काटे जाने के कारण फैले हुये वियोग रूप विष से विह्वल हुई दमयन्ती के सूर्य की किरणों से पीड़ित हुई चन्द्रकला की तरह किसे करुण समुद्र में नहीं डाला।

नैषघ में भी हर्ष ने इन दश अवस्थाओं को नल तथा दमयन्ती दोनों में क्रमिक चित्रिता कर दोनों में तुल्यानुराग दिखाते हुये लक्षणग्रंथ का एक उदाहरण ही मानों प्रस्तुत कर दिया है। श्री हर्ष ने आदर्शभूत नल–दमयन्ती का प्रेम वर्णन अत्यन्त मर्यादित रूप में चित्रित किया। प्रयत्न की अधिकता नायिका की ओर से वर्णित कर चित्र को स्वाभाविक बना दिया है। नायक की ओर से हंस को भेजने के अतिरिक्त किसी प्रकार का उल्लेख नहीं है। इससे नायक के चरित्र की उदात्तता तथा गम्भीरता ही प्रतिष्ठित हुई है।

नैषध में श्रृंगार रस के दूसरे पक्ष संयोग का आरंभ स्वयंबर सभा से ही होता है। जब दमयन्ती ने देवताओं में से नल को पहचान लिया तब दमयन्ती को माला डालने की त्वरा ने एक ओर अग्रसर किया किन्तु दूसरी ओर लज्जा ने उसे रोका। त्वरा और त्रपा के मध्य आन्दोलित दमयन्ती की स्थिति दर्शनीय है।

एक और चित्र नल के गले में डालने के लिये माला से सुसज्जित दमयन्ती का हाथ नल के सामने हुआ किन्तु लज्जा से निवृत्त हुआ। उसी प्रकार दमयन्ती का चंचल कटाक्ष नल के मुख के आधे रास्ते तक जाकर फिर लौट आया।[128]

इस संभोग श्रृंगार के अन्तर्गत, आचार्यों द्वारा निर्दिष्ट स्त्रियों के शरीरज (हाव, भाव) अयत्नज (शोभा, कान्ति) तथा स्वभावज (लीला विलास) अंलकारों का वर्णन नैषध में मिलता है। वस्तुत: श्री हर्ष श्रृंगार के कवि हैं। वात्स्यायन के कामसूत्र का वर्णन अप्रस्तुत रूप में किया है।[129] दमयन्ती का नख शिख वर्णन तथा रति वर्णन उसी ज्ञान का फल है।[130]

वीररस –

वीर रस के चारों (दानवीर, धर्मवीर, युद्धवीर तथा दयावीर) रूप नल में दिखाने का प्रयत्न किया गया है, किन्तु दानवीरता का ही विशेष वर्णन मिलता है।[131]

रौद्ररस, क्रोध भाव की व्यञ्जना, देव-केलि संवाद में देखने को मिलती है। करुण रस की व्यञ्जना, नल के कर पंजर में पड़े हंस के शब्दों में हुई है। कभी वह अपने दैव को उपलंग देता है, कभी वह अपनी वृद्धा माता की असहाय अवस्था का स्मरण कराता है तो कभी नव प्रसूता अपनी प्रिया के अकथनीय दुख वाले क्षण का चित्र अंकित करता है।[132] हास्य रस की छटा भी उपलब्ध होती है।[133]

श्री हर्ष ने अपने काव्य को विभिन्न अंलकारों से अलंकृत किया है, अर्थपुष्टि के लिये ही अंलकारों का प्रयोग किया है। शब्दालंकारों में उन्हें अनुप्रास और श्लेष ही अधिक प्रिय होने से, पर्याप्त मात्रा में काव्य प्रयुक्त हैं। यमक प्राय: सीमित मात्रा में ही प्रयुक्त हुआ है।

श्री हर्ष ने अपने काव्य को अतिनव्य कृति कहा है, आचार्यो का मत है कि रस सिद्ध एवं सर्वांगीण उत्कृष्ट नैषध का परवर्ती काव्यों पर भी पर्याप्त प्रभाव पड़ा। परिणामत: नैषध की वर्णन शैली के साथ-साथ नल कथाओं को भी कवियों ने अपना कर अनेक काव्य नाटक चम्पू लिखे।[134] इसके अतिरिक्त नैषध पर उपलब्ध अनेक टीका उसकी लोकप्रियता तथा प्रसिद्धि उद्‌घोषित करती है।

संदर्भ सूची

1. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा, डॉ. केशवराव मुसलगांवकर पृ. 93

2. वही

3. The earliest poetry of all races - it is not al together a conjecture - appears to have been the balled dance. English Epic and Heroic Poetry M-DIXION PAGE 28

4. To this God the assemoled multitude sange hyren at first merely chorus, exclation & ncoherent ehant full of repetitions, As they sang teey kept time with the font in a solemn dance which was inceperable form the chant itself & Governed the words.

F.B. Gummere. A hand book of poeties London Page - 9

5. वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड - 14/23

6. व. जी. कुन्तक (कारिका) 17 की वृत्ति

7. रवीन्द्र नाथ ठाकुर प्राचीन साहित्य हिन्दी पृ. 4-5

8. The Heroic age of India. Prof. N.K. Sidhant. London 1929. P 89-90

9. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा पृ. 165

10. रामायण अयोध्या काण्ड सं. 15, 3, 8, 10

11. त्रिमिर्वषैः सदोत्थायी कृष्णद्वैपायनो मुनिः।

महाभारतमाख्यानं कृत वानिद मुत्तमम्।। आदि पर्व 56/32

12. इदं शत सहस्त्रंतु लोकानां पुण्य कर्मणाम्।

उपाख्यानैः सह ज्ञेयमाद्यं भारत मुत्तमम्।। 101

13. संस्कृत साहित्य का इतिहास - वलदेवउपाध्याय चतुर्थ सस्क०, पत्र 87

14. 4, 2-56

15. अ. नारायणं नमस्कृत्य नरंचैव नरोत्तमम्।

दैवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत्।। महाभारत मंगल श्लोक

ब. जयोनामेतिहासोऽयं श्रोतव्यो विजिगीषुणा, महाभारत आदि पर्व 20-62

16. लाक्षाग्रह के सम्बन्ध में अनेक स्थानों पर उल्लेख मिलता है किन्तु एक दूसरे का विरोधी प्रतीत होता है।

(अ) आदि पर्व अ. 2 श्लोक 43

(ब) आदि पर्व अ. 61 श्लोक 14-23

(स) वन पर्व अ. 12 श्लोक 86 से 92 तक

(द) आदि उर्प अ. 147; अ. 61 श्लोक 17 से 23 के अनुसार पाण्डवों ने स्वयं लाक्षागृह में आग लगाकर सुरंग द्वारा के भाग निकले हैं।

17. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा पृ. 176

18. महाभारतेऽपि शास्त्र काव्य रूपच्छायान्वयिनि वृष्णिा पाण्डव विरसाव सान वैमनस्य दायिनी समाप्तिमुप निबहनता महामुनिना वैराग्य जवनं तात्पर्य प्राधान्येन स्व प्रबन्धस्य दर्शयन् मोक्ष लक्षणः पुरूषार्थः शान्तों रसश्च मुख्य तथा सूचितः।। ध्वन्यालोक 4 उद्योत।

19. नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित् शान्ति 180/12

20. संस्कृत महा काव्य की परम्परा पृ. 180

21. बालकाण्ड स्यांतिमे अध्यायेऽयं श्लोक-

प्रकृत्यैव प्रियासीता रामस्यासीन्महात्मनः।

प्रिय भावः स तु तथा स्वगुणौ रेव वर्धितः।।

चि० ह्वी० वैद्य रिड्ल आफ द रामायण 1920 पे 26

22. रघुवंश 1, 4, 14, 70, 15, 33, 64

23. बाल काण्ड 36-37

24. ईस्वी सन् के आरम्भ में निश्चित रूप से संस्कृत काव्य शैली निखर चुकी थी। काव्य सम्बन्धी रूढ़ियाँ बन चुकी थी। कथानक में भी मोहक गुण, मादक प्रवृत्ति ले आने वाले काव्यगत अभिप्राय प्रतिष्ठित हो चुके थे। - संस्कृत महाकाव्य परम्परा; आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी 'आलोचना' जुलाई 1952 पृ. 9

25. वही

26. सर्वेसर्व पदादेशा दाक्षी पुत्रस्य पाणिनेः महाभाष्य 1.1.20, संस्कृत साहित्य का इतिहास पृ. 143

27. सुवृत्त तिलक 3/30

28. हिस्ट्री आफ लिटरेचर, सुशील कुण्डे. पृ. 78-1947 कलकत्ता।

29. सौन्दरानन्द 4/2 सचक्रवाम्येव हि चक्र वाकस्तथा समेत प्रियया प्रियार्हः।

30. सौन्दरानन्द- 18/61

31. वही- 63/64

32. सौन्दरानन्द 9/26

33. संस्कृत कविदर्शन डा. भोला शंकर व्यास पृ. 61

34. कुमार सम्भव का कोई भी पात्र मनुष्य नहीं है, जो प्रधान नामक हैं, वे स्वयं परमेश्वर हैं, नायिका परमेश्वरी है। इसी प्रकार मनो वृत्तियों को लेकर कवि ने नायक-नायिका बनाकर लोगों की प्रीति के लिए लौकिक देवताओं के नाम से उनका परिचम दिया है। इसका कारण यही है कि कालिदास ने देव-चरित को मनुष्य-चरित्र के साँचे में ढालकर उसमें अमित माधुर्य भर दिया है। - बंकिम चन्द्र चट्टोपाध्याय- प्रकृत और अतिप्रकृत, बंकिम ग्रंथावली, पृ. 56-57

35. अंगानि सर्वेऽपि रसाः सा० द. 6/317

36. तं वीक्ष्य वेपथुमती सरसांगयष्टि र्निक्षेणाय पदयद्भुत मुद वहन्ती।

मार्गाचलव्यतिकराकुलितेव सिन्धुः शैलाधिराजतनया न भयौ न तस्थौ।

कुमार सम्भव 5/85

37. कुमार० (1) 3, 25, 28, 2, 40, 1, 18

38. कुमार० 5/24

39. राजा दिलीप ने अपने पुत्र का नाम 'रघु' इसलिये रखा था-

श्रुतस्य यायादयमन्तय र्मकस्तक्षा परेषां युधि चेति पार्थिवः।

अवेक्ष्य घातोगमनार्थमर्थाविच्चकार नाम्ना रघुमात्मसम्भवम्।।

रघुवंश सर्ग 3, श्लोक० 21

40. अथाम्यर्च्य विधातारंप्रयतौ पुत्रकाम्यया।

तौ दम्पति वशिष्ठस्य गुरो र्जग्मतुराश्रमम्।।

रघुवंश सर्ग 1 श्लोक 35

41. रघुवंश - सर्ग-5/श्लोक -33

42. कालिदास ग्रन्थावली, तीसरा खण्ड पृ० 100-105

43. The peculiarity in the diction of this poem shows that the work was composed at a time later than kalidas... Almost all the alankaras defined in later works are represented by illustrations in the poem. The Preface of Padyacudamani, Madras 1921

44. पद्य चूड़ामणि - मंगलाचरण 1-3 श्लोक

45. वही 2/45

46. वही 2/43

47. पद्य चूड़ामणि - 6/19

48. वही सर्ग 10 श्लोक 5 व 6, 9-

49. वही सर्ग 2 श्लोक 9

50. वही सर्ग 3 श्लोक 8

51. वही सर्ग 5 श्लोक 47

52. (1) मिश्र रूप में मिला है, (2) 9/43, (3) 1/174, (4) 7/34, (5) 8/15/3/5 (6) 9/23 (7) 3/48, (8) 6/3, 1

53. पद्यचूड़ामणि सर्ग 6 श्लोक क्रम 16, 28, 31 आदि।

54. किरातार्जुनीयम् 1/1

55. पुरोदरच्छद्मजितां समीहते नयेन जेतुं जगकर्ती सुयोधनः 1/7 किरातार्जुनीयम्।

56. वही 1/34, 1/35, 36, 38, 39, 40

57. वही विहाय शान्ति नृप! घायतत्पुनः प्रसीद संघेहि वधाय विद्धिषाम्1/42, 44, 45

58. वही 2/17, 23

59. किरातार्जुनीयम् 2/27, 28, 30

60. किरातार्जुनीयम् 18/48

61. यह महाकाव्य महाभारत के वन पर्व के 27 से 40 तक चौदह अध्यायों की कथा के आधार पर है।

62. किरात 7/20, 7/5

63. किरात 2/18

64. किरात 15, 16, 17, 18

65. किरात 17/63

66. किरात 8/15

67. वही 8/51

68. वही सर्ग - 9

69. वही 2/27

70. किरात 13-30-31

71. वही, आदि सर्ग श्लोक, 5, 7, 9, 11, 13, 20, 23

72. किरात 2, 28/11, 41

73. सर्ग – 1

74. सर्ग–13

75. वही सर्ग – 1, 31 चौखम्बा प्रकाशन

76. किरात 14–3, 4 आदि

77. सुवृत्त तिलक काव्य माला, तृतीयोविन्यास; श्लोक – 31

78. कि. सर्ग – 2

79. कि. सर्ग – 6

80. कि. सर्ग – 9

81. कि. सर्ग – 12

82. कि. सर्ग – 10

83. रावण वध 6; 8–10 श्लोक

84. वही 7; 28–33 श्लोक

85. वही 1; 68–77 श्लोक

86. रावण वध 8, 70–84 श्लोक

87. वही 9, 95–131 श्लोक

88. भट्टि काव्य रावण वध 2–31

89. भट्टि काव्य सर्ग 11, 14

90. वही सर्ग 2, 16

91. वही सर्ग 11, 20

92. वही सर्ग 2, 4

93. वही सर्ग 2, 6

94. इन रूपों में पाणिनी के 3, 4/56 तथा 8/1/56 के सूत्रों की ओर संकेत किया गया है।

95. पं. हरिदास शास्त्री द्वारा प्रकाशित मूलमात्र 15 सर्ग के बाइस श्लोक तक (कोलकता) श्री नन्द रंगीकार द्वारा संपादित प्रथम दस सर्ग बम्बई 1907 मद्रास गवर्नमेण्ट लाइब्रेरी।

हस्तलिखित प्रति नं. 2935

96. राजशेखर ने इनकी प्रशंसा में यह श्लोक लिखा है-

जानकी हरणं कर्तु रघुवंशे स्थिते सति।

कविः कुमार दासश्च रावणश्व यदि क्षयौ।

97. काव्य मीमांसा पटना प्रकाशन पं. केदारनाथ पृ. 27

98. Reconstructed and edited (with the sinhalere sanna) cantos 1-xx and one verse of xxv by dharmarama stharira in sinhalere character, colombo 1891, History of Sanskrit lit. S.K.de 1947 page 185.

99. सेतुबन्ध सर्ग 10

100. सर्ग 8 श्लोक 26

101. सर्ग 9 श्लोक 1 व 10

102. सर्ग 3

103. सर्ग 7, 1, 34

104. सर्ग 16

105. सर्ग 8 जानकी हरण

106. सर्ग 1 श्लोक 57 जानकीहरण

107. सर्ग 7 जानकी हरण

108. सर्ग 3 जानकी हरण

109. सर्ग 8:13, सर्ग 9; श्लोक 4,9 जानकी हरण

110. सर्ग 2 जानकी हरण

111. सर्ग 10 जानकी हरण

112. जानकी हरण सर्ग 7 श्लोक 36, 41

113. जानकीहरण 4/8

114. वही 1/29

115. वही सर्ग 11, 14

116. डॉ. नन्दरंगीरकर के मत में जानकी हरण के में गौड़ी रीति का प्रयोग किया गया है। कुमारदास पृ. 24

117. जानकीहरण सर्ग 1-55, सर्ग 3-55, 73 सर्ग 4, 27-62 आदि में निदर्शन है।

118. सर्ग 2, 6, 10

119. सर्ग 11

120. सर्ग 13

121. सर्ग 1, 3, 7

122. सर्ग 5, 9, 12 सर्ग 3 के 64-76

123. सर्ग 14

124. सर्ग 8

125. सर्ग 16

126. नैषध 16/131

127. नैषध चिन्तामणिमन्त्र चिन्तन फले महाकाव्ये 1/145

128. नैषध 14/25, 26, 28

129. नैषध सर्ग 18 और 20 में रति केलि वर्णनों में देखें।

130. नै० सर्ग 7

131. नैषध सर्ग 1, 3, 5

132. वही 1/130, 136, 137

133. वही सर्ग 16, 17

134. हिस्ट्री ऑफ संस्कृत लिटरेचर ड० सु० कु० देव हिस्ट्री ऑफ क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर डॉ० एम० कृष्णमाचारिया।

(2) आधुनिक महाकाव्य परम्परा–

संस्कृत वाङ्मय को भारतीय साहित्य की आत्मा कहें तो अति रंजना न होगी। विगत पाँच सौ शताब्दियों से भी अधिक पुरातन इस साहित्य के अन्तर्गत भारतीय मनस्वी महत् पुरूषों, कवियों की श्रेष्ठ भावनाओं, सुन्दर कल्पनाओं एवं शिव संकल्पों की प्रतिच्छवि भास्वर रूप में अंकित हुई है। अपनी सम्पन्नता व विविधता में यह साहित्य विश्व वाङ्मय में अद्वितीय है। आर्ष संस्कृति के अभ्युदय काल से लेकर आज तक प्रवाहित होती हुई साहित्य–स्यन्दिनी की निर्मल अजस्त्र धारा जिसके सत्व एवं सुगन्ध से जन मन रञ्जन बनी हुई है। वह रसोवेत महाकाव्य ही है।

आधुनिक समय में संस्कृत साहित्य की रचनात्मक प्रवृत्ति में विविधता दिखाई देती है, बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही अंग्रेजी बंगला, हिन्दी प्रभृति भाषाओं के सम्पर्क से इसमें लघुकथा, उपन्यास, जीवनी, यात्रा साहित्य, पत्र लेखन, निबन्ध, प्रबन्ध मुक्तक तथा मात्रिक छन्दो की तुकान्त कविताएँ आदि अभिनव विधाओं का द्रुतगति से विकास हुआ है। रेडियो रूपक, रेडियोवार्ता आदि संस्कृत की नवीन विधाएँ प्रचलन में आई हैं, किन्तु संस्कृत की अन्य संरचनात्मक प्रवृत्तियों में महाकाव्य का समाधिक महत्व है। महाकाव्य का रचनाफलक अधिक वृहद होने के कारण अन्य काव्यागों की अपेक्षा इसमें जीवन को विस्तृत फलक पर चित्रित किया जाता है। मानव–जीवन के अन्तरंग एवं बहिरंग दोनों ही पक्ष महाकाव्य में प्रतिबिम्बित हो सकते हैं। इसमें व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र की जटिल समस्याओं का गम्भीर, उदात्त विचारोत्तेजक तथा सरस वर्णन होता है। महाकाव्य में छन्दों की योजना रहने से भावों में सहज प्रवाह रहता है। जिससे सहृदयों की वृत्तियाँ द्रवित हो जाती है। एवं रसोद्रेक होता है। महाकाव्य कान्ता सम्मित शैली में रामादिवत आचरण उपदेश करता है।

काव्यं यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये।
सद्यः पर निर्वृन्तये कान्ता सम्मिततयोपदेश युजे।।[1]

महाकाव्य स्वान्तः सुखाय होने के साथ ही बहुजन हिताय भी होता है। महाकाव्य में व्यक्त वर्णन के माध्यम से शाश्वत सत्य की ओर संकेत किया जाता है। इसी कारण संस्कृत में व्यापक दृष्टि सम्पन्न प्रज्ञावान् कवियों ने महाकाव्य प्रणयन को ही वरीयता दी। अन्य भाषाओं के साहित्यकारों की रुचि महाकाव्य–प्रणयन की ओर अपेक्षाकृत कम हो गई है। अंग्रेजी, जर्मन, हिन्दी, फ्रेंच आदि भाषाओं में तो अंगुलिण्य ही महाकाव्य लिखे गये हैं किन्तु संस्कृत में अनेक विध महाकाव्यों का प्रणयन किया गया है, जो न केवल संस्कृत साहित्य की अपितु विश्व साहित्य की स्पृहणीय थाती है।

अतीत में जो काव्यधारा अश्वघोष, कालिदास, माघ श्री हर्ष प्रभृति स्वनाम धन्य महाकवियों

के समय से अविरल प्रवाहित हुई वहीं आधुनिक काल में विषय वैविध्य व नव प्रतिमानों के साथ अबाध रूप से प्रवाहित है। आधुनिक संस्कृत कवियों ने युगबोध के स्पन्दन को भाँपकर एक से बढ़कर एक ऐसी विलक्षण तथा विपुल काव्य सृष्टि की जिससे संस्कृत वाङ्मय संवर्धित तो हुआ ही गुणात्मक उदात्तता के अभिनव प्रतिमनों को संस्थापित करने में भी सफल रहा।

वर्तमान काल के महाकाव्यों में परम्परागत मान्यताओं के साथ अनेक नवीन उद्‌भावनाओं का समावेश हुआ है।

इनमें शास्त्रीयता के लक्षणों का यथाविधि पालन नहीं किया गया है, भामह, दण्डी, विश्वनाथ आदि की शास्त्रीयता मान्यताओं तथा प्राचीन महाकाव्यों के शिल्पों को स्वीकार एवं परिहार दोनों ही दृष्टि गोचर होते हैं, कथावस्तु नायक, रस विषयक नवीन प्रतिमानों को स्वीकार किया गया है।

महाकाव्य का नायक धीरोधात्त गुणों से सम्पन्न, कुलीन, देव या महामानव हो यह आवश्यक था किन्तु वर्तमान कालीन महाकाव्य के नायक सन्त, महात्मा, क्रांतिकारी, समाज सुधारक, योगी, विद्वान, सेनानी एवं साधारण जन है। आधुनिक काल में स्वतंत्रता संग्राम के यशस्वी व्यक्तित्वों को आधार बनाकर बहुत से महाकाव्यों का प्रणयन किया गया है, राष्ट्र नेताओं को काव्य के नायक के रूप में प्रतिष्ठित करने का संस्कृत कवियों ने श्लाघ्य प्रयास किया है।

परम्परा प्राप्त रामायण, महाभारत से वस्तु ग्रहण के साथ वर्तमान जनमानस में परिव्याप्त शिवाजी, झाँसी की रानी, तिलक, मालवीय, गाँधी, सुभाष चंद्र बोस, पं. जवाहर लाल नेहरु आदि स्वतंत्रता संग्राम के सैनानियों, शंकराचार्य, तुलसीदास, रामानुज, दयानंद, विवेकानन्द, एकनाथ, श्री नारायण, योगी भक्त, ज्ञानानन्द प्रभृतिसन्त-महात्माओं, लेनिन जैसे सामाजिक एवं आर्थिक क्रांतिकारियों तथा राष्ट्र एवं समाज में अभिव्याप्त समस्याओं, कुरीतियों एवं विसंगतियों को महाकाव्यों की विषय वस्तु के रूप में ग्रहण किया गया है। इसके अतिरिक्त नारी प्रधान महाकाव्यों का प्रणयन इस युग की महती विशेषता रही है।

आधुनिक महाकाव्य परम्परा में शोमन रस-परिपाक हुआ है। श्रृंगार, वीर, करुण, शान्त, अद्‌भुत, हास्य, भयानक, रौद्र, वीभत्स, रसों का समावेश परम्परागत रूप से होते हुए भी नवीनता लिये हैं, इसके अतिरिक्त देवविषयक रति को भक्ति रस के रूप में तथा पुत्र विषयक रति को वात्सल्य रस के रूप में संस्थापित करने का श्लाघनीय प्रयास किया गया है।

यहाँ आधुनिक परम्परा के कतिपय महाकाव्यों का लधु परिचय प्रस्तुत है-

1. श्रीकृष्ण चरितामृतम्ः- श्रीकृष्ण चरितामृतम् के रचनाकार नेपाल के निवासी कृष्ण प्रसाद शर्मा घिमिरे है, श्रीमद्‌भागवत पर आधारित यह एक विशालकाय महाकाव्य है। इसके

प्रथम भाग का कथानक अठ्ठावन सर्गों में विभक्त है तथा इसमें तीन हजार छै: सौ पद्य हैं, इसके अन्तर्गत कवि कल्पना अत्यन्त रोचक व आकर्षक रूप से कथावस्तु प्रस्तुत की गई है। घिमिरे जी की यह कृति भारतीय शताधिक लब्ध प्रतिष्ठित विद्वानों द्वारा प्रशंसित है।

प्रस्तुत महाकाव्य के नायक दिव्यातिदिव्य भगवान श्रीकृष्ण को पात्र रूप में ग्रहण किया है। परमलो कोपकारी श्रीकृष्ण का चरित्र मुखरित हुआ है। भक्ति ही इसका अंग रस है। जो विशेष रूप आह्लाददायक है। छन्दयोजना व सूक्ति, संवाद आदि की दृष्टि से यह महाकाव्य परिमार्जित शिल्प में उपनिबद्ध है।

2. अद्भुत दूतम :- प्रस्तुत महाकाव्य के रचनाकार जग्गूवकुल भूषण हैं। बीसवी शती के संस्कृत कवियों में आपका स्थान शिखरस्थ है। आलोच्य अद्भुत दूतम महाकाव्य की कथावस्तु महाभारत के उद्योग पर्व से संदर्भित है, भगवान श्रीकृष्ण दुर्योधन आदि को समझाने हेतु पाण्डवों की ओर से दूत बनकर आते हैं। इसी अंश विशेष को कवि ने अपने बुद्धि कौशल से पन्द्रह सर्गों में पल्ल्वन किया है। मध्य भाग में लीलापुरुषोत्तम श्रीकृष्ण की लीलाओं व आर्तिनाश के प्रयासों का उल्लेख किया गया है।

विविध वर्ण्य विषयों से सम्पन्न अति स्वाभाविक वस्तु विन्यास सृजित है। वैदर्भी रीति युक्त प्रसाद सुभग सालकार भाषा रस परिपाक में अतिशय सहायक है। पात्र चित्रण में औचित्य निर्वाह तथा स्वाभाविकता अनुपम है। इस महाकाव्य के धीरोदात्त नायक-भगवान श्रीकृष्ण हैं।

समूचा प्रबन्ध भक्ति रस से आलोड़ित है, विविध रसों की यथा स्थल अवस्थिति अत्यन्त मनोरम है। महाकाव्य अन्य समस्त अनुशासनों से अतीव परिमार्जित शिल्प में प्रबन्धित है।

3. रुक्मिणी हरणम् :- आदि कवि वाल्मीकि व महर्षि व्यास द्वारा राम और कृष्ण के काव्य की जो धारा प्रवाहित की गई वह आज भी सतत प्रवाह मान है तथा रुक्मिणी हरणम् महाकाव्य इसी परम्परा का चारुतम उदाहरण है। काशीनाथ द्विवेदी द्वारा रचित रुक्मिणी हरणम् महाकाव्य पाण्डित्यपूर्ण मौलिक उद्भावनाओं के कारण गौरवपूर्ण पद का अधिकारी है।

रुक्मिणी हरणम् महाकाव्य की रचना श्रीमद्भागवत पुराण के दशम स्कन्ध के उत्तरार्द्ध के 52, 53, 54 अध्यायों पर आधारित है। इसके अन्तर्गत रुक्मिणी के पूर्व राग से उसके हरण पर्यन्त की घटना उपनिबद्ध है। आलोच्य महाकाव्य में इक्कीस सर्ग व दो हजार पाँच सौ सैंतालीस पद्य हैं। काव्य की विशिष्टता यह है कि श्रृंगार प्रधान होते हुए भी सर्वथा मर्यादित एवं देव विषयारति से अनुप्राणित है। महाकाव्य का अंगीरस पूर्वराग विप्रलम्भ श्रृंगार है तथा वीर, वात्सल्य, शान्त, रौद्र, वीभत्स आदि अंग रस के रूप हैं। कवि ने रचना का उद्देश्य 'स्वत: जगतां हितायं विदुशं मनो

विनोदाय' इस प्रकार व्यक्त किया है। कृष्ण एवं रुक्मिणी का मिलन ही इस काव्य का फल है। इसमें दाम्पत्य जीवन की व्याख्या इस प्रकार है।

प्रयोजनं प्रेम परं परस्परं गृहस्थ धर्माचरण तथाऽनिशम्।
पशुप्रवृत्तेः परितृप्तिरेव चेतफलं वृषा तर्हि विवाह बन्धनम्।।[2]

भाव एवं शिल्प की दृष्टि से काव्य अनुपम है, तथा कवि ने मालोपमा द्वारा रुक्मिणी की गरिमा द्यूतिमत्ता एवं नयनाभिरामता का प्राख्यान सुरुचि पूर्ण किया है।

कमले कमलेव नीरदे चपलेवाम्बुजिनीव पुष्करे।
भवने किल तस्य रुक्मिणीत्यवतीर्णा स्वयमिन्दिराऽभवत्।।[3]

अभिनव प्रस्तुताप्रस्तुत विधानों द्वारा रुक्मिणी का सर्वातिशायी सौन्दर्य वर्णन मनोहर है। अभिनव आरोप में अतिशयोक्ति का एक चाक्षुष बिम्ब द्रष्टव्य–

अमुया निज रुप सागरे लघु लावण्यजले निमंजनात्।
अवितुं नयने विभूषणं विहितं द्वीपतमा स्थले स्थले।।[4]

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि रुक्मिणीहरणम् प्राचीन शिल्प का सर्वथा अनुगमन करने वाला एक अनूठा महाकाव्य है।

4. श्री राम कीर्ति महाकाव्यम्:– वाचस्पति पुरस्कार से सम्मातिन श्रीराम कीर्ति महाकाव्यम् एक उत्कृष्ट कृति है। बीसवीं शताब्दी के राम कथा आधारित महाकाव्यों में सबसे बड़ी पच्चीस सर्गों में उपनिबद्ध महाकाव्य है। भारत से बाहर की राम कथा पर लिखा जाने वाला यह पहला संस्कृत महाकाव्य है, इसमें थाई देश की राम कथा जिसे राम कियन नाम से जाना जाता है। यद्यपि मूल कथानक राम कियन का वही है, जो भारत में प्रचलित राम कथा का है। तथापि अनेक नवीन अवान्तर कथाएँ इसमें है जो भारत की किसी भी रामायण में उपलब्ध नहीं है। भारत की रामकथा के विपरीत वहाँ की रामकथा सुखान्त है। और यही इस महाकाव्य की विशिष्टता है।

प्रति शतवर्ष पूर्ण होने पर भगवान शंकर के द्वारा कैलाश पर्वत पर देव सभा के आयोजन का उल्लेख है जहाँ उपस्थित देवगण सृष्टि में जहाँ–जहाँ भी जो–जो हो रहा है। उसका विवरण भगवान के समक्ष निवेदन करते हैं, श्रीराम राज्याभिषेक तथा सीता निर्वासन के पश्चात् आयोजित की गई। इसी प्रकार की एक सभा में देवगण महाप्रभु को भू–लोक की गति विधि के प्रसंग में बतलाते हैं कि वहां सर्वथा शान्ति है, किसी प्रकार का कोई उपद्रव व अव्यवस्था नहीं। राक्षस श्रीराम के प्रभाव के कारण सर्वथा परास्त हो चुके हैं, किन्तु वे स्वयं अशान्त हैं, इस पर शिव के आदेश से श्रीराम को अयोध्या से एवं सीताजी को पाताल से कैलाश में बुलवाकर राम तथा सीता का मिलन कर वाया जाता है। यथा–

विदेह जाया अभिलक्ष्य बुद्धिं दृढां महेशः पुनरुचिवांस्ताम्।
मैवं शुभे! बुद्धिमियां कृषास्त्वं पतिर्हि नार्याः परमेश्वरोऽस्ति।।[5]
अङ्गीकुरुष्वात इयं प्रसादान्मत्वाऽत्र सीते! खलु मत्प्रसादम्।
नात्रान्यथा ते मतिरस्तु भद्रे! बचो मम त्वं परिपालयस्व।।[6]
प्रसन्नता पूर्वक राम-सीता अयोध्या लौट जाते हैं- यथा
रामोऽपि भक्त्या प्रणनाम शम्भुं विदेहजा सङ्गम सम्प्रहृष्टः।
विसर्जितस्तेन सुरैश्चतुष्टैः पुरीमयोध्यां प्रययौ ससीतः।।
सम्प्राप्य तां चापि परं प्रतीतः सोऽडयापयत्स्वं समयं ससीतः।
तस्मिन्प्रतीते सकला स्तदीयाः प्रजा ननन्दुजहि सुर्जहसुर्जगुश्च।।[7]

5. श्री मल्ललित राम चरित्रम्ः- सुमधुर राम कथा जीवनी शक्ति है, जो सहृदय कवि काव्य प्रणयन की अदृश्य शक्ति प्रदान करती है, इसीलिये रामचरित्र पर आधारित महाकाव्यों की श्रृंखला में श्री मल्ललित राम चरित्रम पर आधारित महाकाव्यों की श्रृंखला में श्री मल्ललित राम चरित्रम् महाकाव्य नवीन एवं उत्कृष्ट कड़ी है। इस कृति के कृतिकार बालचन्द्र शास्त्री है।

इस महाकाव्य का कथानक विश्व प्रसिद्ध सरस राम चरित्र ही है, इस दशरथ कृत पुत्रेष्टि यज्ञ से लेकर रावण वध तक की कथा का समधिक चारुता से प्रस्तुतिकरण हुआ है। सात काण्डों एवं पाँच सौ तेरह श्लाकों में उपनिबद्ध कथानक लालित्यपूर्ण व औदात्यपूर्ण है।

महाकाव्य में कथा का सहज प्रवाह, अतिशय शोमन चरित्र-चित्रण, भावानुकूल रसों का सन्निवेश, चातुर्यपूर्ण शिल्प विधान है। अनुप्रास, यमक, अर्थान्तरन्यास आदि अलंकारों की शोभा देखते ही बनती है, यथाः-

जघनस्तर भार मरोद भव मौक्तिक निन्दक धर्मकणाक्तमुखाः।
रघुनन्दन चन्दन विन्दु मुखेन्द्र नियुक्त पिपासु चकोर दृशः।।[8]

6. परशुराम दिग्विजय :- परशुराम की चर्चा अनेको बार रामायण व पुराणों में प्रचुर हुई है, किन्तु स्वतंत्र रूप से संस्कृत महाकाव्य के रूप में यह सम्भवतः प्रथम कृति है। यद्यपि इस कृति पर रामायण, रामचरित मानस (हिन्दी), ब्रह्म वैवर्त पुराण का प्रभाव पूर्ण रूप से दृष्टि गोचर होता है। तथापि सुन्दर कल्पनाओं से सज्जित सरस महाकाव्य है।

प्रस्तुत महाकाव्य में परशुराम की कथा बारह सर्गों में उपनिबद्ध है। इसका रचना फलक लघुकाय किन्तु महाकाव्योचित है। कामधेनु गाय के नहीं मिलने पर रेणुका का शोकाकुल होना, परशुराम द्वारा इक्कीस बार पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर देने की भयंकर प्रतिज्ञा, पिता की आज्ञा से परशुराम का ब्रह्म लोक गमन, वहाँ से शिवलोक जाकर शिव को प्रसन्न करके पाशुपत अस्त्र

व परशु को प्राप्त करना, परशुराम कार्त्त वीर्य से युद्ध व विजय, मुदित मन परशुराम का शिव लोक जाना किन्तु गणेशजी के द्वारा द्वार पर ही रोक लेने से क्रोधित होकर गणेश से युद्ध व गणेश जी का एक दन्त हो जाना, मिथिला में राम जी द्वारा शिवजी के धनुष भंग कर देने पर राम-लक्ष्मण पर कुपित होना, सत्य को जान लेने पर परशुराम का महेन्द्र पर्वत पर गमन, लौटने पर माता-पिता के वध का समाचार सुनकर सहस्त्र क्षत्रियों का वध, परशुराम द्वारा अश्वमेघ यज्ञ, गोकर्ण क्षेत्र में समुद्र निग्रह तथा भीष्म के साथ युद्ध में विजय।

इस सम्पूर्ण कलेवर को कवि ने बड़े चातुर्यपूर्ण ढंग से संजोया है, परशुराम दिग्विजय महाकाव्य में वीर रस की प्रखर अभिव्यंजना हुई है। यथा-

धिक् धिक् क्षत्रबलं नूनं ब्रह्मतेज्ञो बलं बलम्।
एकेन ब्राम्णेनैव ससेनोऽहें पराजित:।।[9]

यही इसका प्रधान रस है। भक्ति, रौद्र, शान्त, करुण आदि रस गौण हैं। यथा द्रष्टव्य -

चुक्रोश राम रामेति यावदु:खेत कर्षिता,
आजगाम क्षणाद रामः हृदयेन विदूयता।।[10]
कीर्तवीर्य हनिष्यामि प्रथमं दुर्मदं हितम्।
पितरं तर्पयियामि प्रतिज्ञा क्रियते मया।।[11]

इस प्रकार प्रस्तुत महाकाव्य अत्यन्त स्वाभाविक एवं सरस है।

7. गोस्वामी तुलसीदास चरितम् :- यह महाकाव्य हिन्दी के यशस्वी कवि गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर आधारित एक प्रशस्त महा काव्य है। इसके रचनाकार हरिप्रसाद द्विवेदी हैं, इस महाकाव्य में तुलसी को श्री राम का चरण चंचरीक, महात्मा, महाकवि, त्यागी बुद्धिमान एवं भक्ति के रूप में प्रस्तुत किया गया है। कवि के तुलसी के जन्म स्थान एवं परिवार का गवेषाणात्मक विवरण देने का सफल प्रयास किया है। तुलसी के चरित्र को पथगत रेखाकंन करके उसी में रंग भर कर सज्जित किया गया है। कवि ने तुलसी के सम्बन्ध में प्रचलित किबदन्तियों को काव्यानुरुप एवं स्वयं की विशिष्ट धारणाओं के अनुसार परिवर्तित एवं परिवर्धित करके उन्हें आवर्जक बनाने का प्रयास किया है।

8. भारत-दिग्दर्शनम् :- आलोच्य महाकाव्य के प्रणेता सत्य नारायण शास्त्री हैं, इसके अन्तर्गत तेरह सर्ग हैं तथा एक हजार पाँच सौ चउअन श्लोक हैं, प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने भारत माता को नायिका माना है देश के विभाजन के समय हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदाय के मध्य हुए भीषण नरसंहार से विषण्ण हृदय कवि ने तत्कालीन भारत देश की दुर्दशा का विशद विवेचन बड़ी

सजीवता के साथ किया है। इस महाकाव्य में भारत माता का सन्देश, कृषक–दुर्दशा, वर्णाश्रम, विद्वद दुर्दशा, गोदुर्दशा, नो आखली हत्याकाण्ड का हृदय स्पर्शी वर्णन है।

इस महाकाव्य का सृजन शास्त्रीय परम्परा से पृथक हुआ है। काव्य का अंगीरस करुण तथा वीर, रौद्र, वीभत्स रसों का अङ्गरस के रूप में सम्मिलन कथावस्तु को सम्प्रेषण बनाने में सहायक रहा है। एकादश सर्ग में सूर्योदय के रमणीय चित्रण की एक झलक इस काव्य की चारुता का सहृदयों को ज्ञान करवा जायेगी।

मनोरमां भानु तनूः समन्ततो विकीर्य मञ्जुकिरणावली शुभम्।
उदज्यमानाऽप्युदया चलात्तदा रराज चामीकर–निर्मितेव सा।।
करस्य सम्पर्क मि वास्य को मला मृणालिनी मीलित शालिनी तदा।
निधाय चित्तेदयितस्य कोमलं स्फुताऽभवत्पाणिममोघ हर्षसः।।[12]

9. राजलक्ष्मी स्वयं वरम् :– प्रस्तुत महाकाव्य का प्रणयन रामदेव द्वारा किया गया है। काव्य की कथावस्तु वर्तमान काल की निर्वाचन प्रणाली पर प्रकाश डाला गया है। यह कृति युग प्रवृत्ति बोधक है, राष्ट्र भक्ति, सांस्कृतिक चिन्तन एवं राजनैतिक दलों के सिद्धान्त, अन्य विरोधी दलों द्वारा उनका खण्डन, मण्डन का चित्रण है। शासन के राजतंत्र से लोक तंत्र में आने को कवि ने कलियुग का प्रवेश माना है। वल्लभ भाई पटेल द्वारा उनका खण्डन, मण्डन का चित्रण है। शासन के राजतंत्र से लोक तंत्र में आने को कवि ने कलियुग का प्रवेश माना है। वल्लभ भाई पटेल द्वारा सभी राज्य सत्ताओं का एकत्रीकरण, राजलक्ष्मी तथा सरस्वती का परस्पर कथोपकथन, वोट वैभव वर्णन, विभिन्न चुनाव प्रत्याशियों के राज्य लक्ष्मी स्वयंवर में भाग्य आजमाने का व्यंग्यपूर्ण वर्णन आदि कथावस्तु के मुख्य मोड़ है। विभिन्न घटनाओं तथा इन्दिरा शासन बांग्लादेश युद्ध, जगजीवन राम तथा चरण सिंह का संवाद, साम्यवादी दलों की रीति–नीति का वर्णन भी काव्य व्यंग्य की वृद्धि में सहायक है। राजीव गांधी के निर्वाचन कालीन स्थिति का वर्णन करने के साथ ही लोकतंत्र एवं धर्म निरपेक्षता पर व्यंग्य किया है।

10. भृत्याभरणम् :– इस महाकाव्य के अन्तर्गत वर्तमान समाज की विसंगतियों का बड़ी सशक्त चित्रण किया गया है। आज नाम के लिये धनोपार्जन करना भगवान की पूजा के समान हो गया है। इसके लिए भागवता का हनन करना, भ्रष्टाचार का आश्रय लेना आम प्रचलन हो गया है। प्रस्तुत महाकाव्य में नौकरशाही की प्रवृत्तियों का वर्णन है। महाकाव्य कार ने भृत्या को नायिका बनाकर उसके चारों ओर के विभिन्न विषयों का व्यंग्य पूर्ण वर्णन किया है। काव्य के प्रारम्भ में काव्येप्सितम् में राष्ट्र उन्नति में मानवीय दुर्बलता किस प्रकार घातक हो सकती है? इसका दिग्दर्शन करवाया गया है। प्रथम सर्ग में ही चिर अभीप्सित स्वतंत्रता प्राप्त हो जाने के पश्चात् भारत की विपरीत स्थिति पर कवि हृदय की कैसी वेदना झलकती है–

लुप्ताऽस्मिता कथमितः परिपालितार्यैः।
किंवा व्यापाश्रमहतो निज राष्ट्र धर्मः।।
मन्ये मृगेन्द्र मर्दना विक्रमोऽयं।
देवाद्धि सर्वदमनो निगडे निबद्ध।।[13]

11. अपराजित वधूः- प्रस्तुत काव्य प्रबन्ध नव सर्गो में विभक्त है। इसके रचयिता पूर्णचन्द्र कलावटिया है। इस महाकाव्य की कथावस्तु विषम व जटिलतम परिस्थितियों में अपराजेय वधू के आस-पास स्थित रहती है। कवि ने भारतीय नारी का यर्थाथ चित्रण किया है। महाकाव्य का परिचय कवि के शब्दों में निम्नवत् है-

रचित नव सर्गेषु षट् शत श्लोक संचयम्।
नारी गाथात्मकं काव्यं पूर्ण चन्द्रेश शास्त्रिणां।।[14]

आलोच्य महाकाव्य नायिका प्रधान है; इसके अन्तर्गत नायिका प्रभा के माध्यम से नारी मन की वेदना को सशक्त रुप से मुखरित किया गया है। समाज में नारी को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है इसी को प्रमुख रुप से चित्रित किया है। इसमें प्रभा और उकस पति, सास, श्वसुर, सपत्नी आदि गुण दोषों का विवेचन किया गया है। बाढ़, अकाल आदि परिस्थितियों के वर्णन में वीभत्स रस प्रभाव व उसकी सखियों के द्वारा बाढ़ग्रस्त लोागों की सहायता करने में वीर स तथा अन्य सभी रसों का समुचित विवेचन है। जीवन की विकट स्थितियों में संघर्ष करने वाली अपराजित वधू का यहाँ स्वाभाविक चित्रण किया गया है।

11. रक्ताक्त हिमालयम् :- प्रस्तुत महाकाव्य के अन्तर्गत भारत व चीन की उस समय की राष्ट्रीय नीतियां का समुचित रुप से प्रति क्रिया के साथ आकर्षक आंकलन किया गया है। इस काव्य की शैली सर्वथा नीवन व प्रभावोत्पादक है। इसको प्रशस्त राष्ट्रीय संस्कृत महाकाव्य से अभिहित किया गया है। महाकाव्य का प्रणयन परमेश्वर दत्त त्रिपाठी ने किया है। यह काव्य एक घटना प्रधान है; भारत व चीन के संघर्ष की घटनाओं को आवर्जक रुप से अभिमण्डित किया है। पश्चिमी काव्य शास्त्रियों ने किसी विशिष्ट घटना का वर्णन महाकाव्य के लिए अपेक्षित माना है, वस्तु विषय की दृष्टि से जहाँ यह पाश्चात्य काव्य शास्त्र के निकष का भाजन है, वहीं सैनिकों के प्रतापातिशय एवं युद्धादिके वर्णन के मध्य संयोग-विप्रलम्भ तथा ऋतु आदि के वर्णन में भारतीय आचार्य विश्वनाथादि की वर्ण नीय व्यवस्था का अनुमोदक है। काव्य वस्तु का विन्यास घटनानुरोध से क्रम बद्ध एवं स्वाभाविक है। विविध वस्तु-संपृक्त वर्णनों के समावेश से युगीन भारतीय संस्कृति एवं प्रकृति शतधा अभिव्यंजित हुई है।

12. क्षत्रपति चरितम् :- स्वतंत्रता के प्रेम से सरावोर यह एक प्रशस्त महाकाव्य कृति है। श्री उमाशंकर त्रिपाठी जी ने वीर शिवाजी के जीवन-चरित्र को लक्ष्य बनाकर इस काव्य की रचना

की है। इसके अन्तर्गत उन्नीस सर्ग और दो हजार दो सौ तिरानरवे श्लोक हैं। राष्ट्र प्रेम तीव्रतम अभिव्यजंना इस काव्य में ध्वनित है। शिवाजी को बन्दी बनाने के बाद बड़ी चतुराई के साथ बन्दीगृह से पलायन करना, इस घटना को बड़े ही रोचक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। कथा विन्यास अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। सभी पात्रों का चित्रण ओजस्वी है। कवि की कल्पना भारतीय स्वतंत्रता के प्रति अत्यन्त रुचि प्रधान है। शिवाजी के सुदृढ़ संकल्प व उत्साहित साहस को गहरे प्रभावोत्पादक रुप से गहन भाव भूमि पर अंकित किया गया है। इस काव्य का अंगीरस वीर है। अन्य रस भी समुचित रूप से प्रस्तुति कर सौन्दर्य को द्विगुणित करने में पीछे नहीं हैं। राष्ट्रीय प्रेम पूरित चेतना, कवि प्रतिभा, छन्द, अलंकारों का यथोचित प्रयोग परिलक्षित है।

15. झाँसीश्वरी चरितम :- प्रस्तुत महाकाव्य के प्रणेता श्री सुबोध चन्द्र पंत जी है, आलोच्य महाकाव्य के अन्तर्गत झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई का समूचा जीवन चरित्र चित्रित किया गया है। भारतीय वीरांगनाओं में झाँसी की रानी का स्थान प्रायः सर्वोपरि है। युद्ध वीरांगना लक्ष्मीवाई ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ा दिये एवं अन्ततः वीरगति को प्राप्त किया। कवि ने संस्कृत महाकाव्य के आयाम में इनके चरित को बाइस सर्गो तथा एक हजार सात सौ सतत्तर श्लोकों में उपनिबद्ध किया है। लक्ष्मी बाई के महनीय चरित तथा महाकाव्य की रचना कला में दक्ष कवि का यह नायिका प्रधान काव्य है।

आलोच्य महाकाव्य का अंगीरस वीर है, अन्य समस्त रस स्वाभाविक रूप से विद्यमान हैं। काव्य की मूलधरा राष्ट्रीय चेतना है। प्रसाद समन्वित वैदर्भी रीति में समूचा काव्य उपनिबद्ध है यथा स्थल विविधवर्ण्य विषयों का वस्तु संपृक्त समावेश किया गया है, सूक्तियों एवं संवादों की योजनाओं से काव्य का सौन्दर्य अनुपम बन पड़ा है, नारी गौरव की सशक्त अभिव्यंजना में यह महाकाव्य पूर्णतम सफल कृति है।

मान्दयं गतं झणझणायित माशु झांस्यां।
तत्कंकणोत्थमथ किंकिणिका-प्रसुतम्।।
आघात जातममि कन्दुक जात माय-
न्तद्धि स्मृति खणखणायित माप शस्त्रम्।।[15]

16. गान्धिचरितम्:- प्रस्तुत महाकाव्य के प्रणेता श्री साधुशरण मिश्र हैं, महात्मा गांधी के प्रति अटूट श्रद्धा कवि ने अपने काव्य में अभिव्यक्त की है, इस महाकाव्य के नायक महात्मा गांधी हैं, इसमें स्वतंत्रता आन्दोलन का सजीव चित्रण किया गया है। कवि वर्णित विषय का प्रत्यक्षदर्शी रहा है। उन्नीस सर्गों में विभक्त इस काव्य कृति के अन्तर्गत गान्धी का जन्म, अध्ययनार्थ विदेश गमन, माँ का गान्धी से सुरा, सुन्दरी माँस स्पर्श नहीं करने का वचन लेना, लन्दन में उच्च शिक्षा प्राप्त करना, स्वदेश आगमन, भारत-दुर्दशा को देखकर स्वतंत्रता-संग्राम में संलग्न हो जाना,

दक्षिण अफ्रीका यात्रा, गोखले, तिलक, मालवीय जी के सम्मोहन व्यक्तित्व से प्रभावित होना, राघव राय का स्वप्न आँखों में संजोये गांधी जी का सत्याग्रह आन्दोलन का सूत्रपात, भारत छोड़ो आन्दोलन, भारत का स्वाधीन हो जाना, गान्धी जी का निधन इस प्रकार महनीय वृतान्त को कवि ने कुशलता से चित्रित किया है।

आलोच्य महाकाव्य सर्गबद्ध सज्जनाश्रय है, गायक चरित्र उदात्त है, इस काव्य का अंगीरस करूण है, वीर, श्रृंगार अंग रस के रूप में है। कथा वस्तु की महनीयता, उदात्त पात्र सृष्टि तथा उद्देश्य की महत्ता के कारण। श्रेष्ठ महाकाव्य है- यथा

सत्य व्रतं सत्यग भूयद यदीपं सर्वेश्वहि सात्मक मेक रूपम्।।
यज्ज्ञान राशि: सबिवेत लोक प्रकाश कोऽसौ जयतान्महात्मा।।[16]

17. श्रीमालवीय चरितम् :- इस महाकाव्य का प्रणयन राम कुबेर मालवीय जी ने किया है, आप सहित्यालंकार हैं। प्रस्तुत महाकाव्य में पन्द्रह सर्ग है। इसकी कथावस्तु पं. मदन मोहन मालवीय जी के जीवन चरित पर आधारित है। मालवीय जी का कुल वर्णन, प्रयाग वर्णन, जन्म, शैशव, अध्ययन-अध्यापन, काशीवर्णन, काशीराज के पास गमन, विश्व विद्यालय निर्माण प्रस्ताव, रामेश्वर सिंह की राजधानी मिथिला की ओर प्रस्थान एवं वापसी, काशीराज से पुनः परामर्श हिन्दू वि. वि. की स्थापना, प्रारम्भ से कालूराम श्री माली तक कुलपतियों का उल्लेख। काव्य सालंकार है। भाषा प्रौढ़ सहित्यिक है। इसका अंगीरस धर्मवीर है, नायक का उद्देश्य राष्ट्र कल्याण के साथ आदर्श वि.वि. की स्थापना है। प्रयाग व काशी का सरल व सरस वर्णन किया गया है।

18. दयानन्द दिग्विजयम्:- प्रस्तुत काव्य के प्रणेता श्री मेघाव्रता चार्य जी हैं। काव्यकार ने सत्ताइस सर्गो में दयानंद जी जीवन-चरित का अत्यन्त रोचक रूप से संजोया है। इसके अन्तर्गत दो हजार सात सौ श्लोक हैं। स्वामीजी की जन्म स्थली टंकारा की तुलना अयोध्या से की है। टंकारा को पवित्र तीर्थ स्थल के रूप वर्णित किया है। इस काव्य में मानव-समाज को व उसके हित को सर्वोपरि माना है। भव सागर को सहज रूप से पार करने के लिए धर्म ही सहायक है। इस तथ्य का सशक्तता से प्रतिपादन किया गया है। अतएव धर्म रूप से नौका का सदैव आश्रय लिये रहना चाहिये।

19. स्वामी विवेकानंद चरितम् :- स्वामी विवेकानंद चरितम महाकाव्य का प्रणयन भण्डारकर उपनाम धेय त्र्यम्बक शर्मा हैं। प्रस्तुत महाकाव्य अठारह सर्गों में विखेरा गया है, एक हजार एक सौ बारह श्लोकों से सृजित है। इस काव्य की यह विशेषता है कि स्वा-मि-वि-वे-का-नं-द-च-रि-त-ना.म. म-हा-का-व्य-म् इन अठारह शब्दों से प्रत्येक सर्ग प्रारम्भ होता है।

इसमें संकल्प-विकल्प, श्रीरामकृष्ण परमहंस संगम, दीक्षा प्राप्ति, पूर्णता लाभ, लक्ष्य का निर्धारण, गुरू प्रस्थान, हिमालय दर्शन, भारतभ्रमण, शिकागो गमन, अमेरिका की धर्म सभा में उदबोधन, यूरोप भ्रमण, रामकृष्ण मिशन की स्थापना, उपदेश निर्वाण की कथा परिस्कृत एवं अलंकृत शैली में प्रस्तुत की गई है। प्रत्येक सर्ग के अन्तिम श्लोक में शान्ति शब्द के प्रयोग से इसे 'शान्त्यंक काव्य' से अभिहित किया गया है। इसकी भाषा प्रौढ़ व साहित्यिक है। राष्ट्रीय महत्त्व की शतशः उद्भावनाएँ प्रेरक शैली में की गई है। यथा-

जातिः कथं नश्यति पश्यतां नः सम्पर्कतो हीन-जनेन सार्द्धम्।
स्वर्ण तु सर्वत्र सुवर्ण मेववयं कि मुच्चा अपने च नी चाः।।[17]

20. शिवराज्योदयम् :- इस महाकाव्य के रचनाकार श्रीधर भास्कर वेर्णेकर हैं। मराठा केसरी, हिन्दुत्व के उन्नायक, वीर सेनापति, झुझारू व्यक्तित्व कर्मयोगी शिवाजी के प्रेरणादायी चरित्र को आधार मानकर प्रस्तुत महाकाव्य का प्रणयन किया है। यह वीर रस प्रधान ओजस्वी महाकाव्य है। इसमें शिवाजी के जन्म से राज्याभिषेक तक का कथानक लिया गया है। अड़सठ सर्गों के दीर्घ आयाम में उपनिबद्ध है। तीन हजार आठ सौ बामन श्लोकों का सुन्दर सृजन है। महाकाव्य में आद्यन्त कहीं भी भाव अथवा भाषा में शैथिल्य नहीं है। जो कवि के अगाध ज्ञान व्याकरण में निपुणता के साथ गौरवपूर्ण भारतीय संस्कृति से असीम प्रेम का परिचायक है।

शिवाजी शौर्य की प्रतिमूर्ति थे। उनके ओजस्वी व्यक्तित्व का चित्रण सम्यक प्रकार से हुआ शिवाजी का सिर कहाँ झुकता है और वे किससे डरते हैं इसका प्रतिपादन देखिये।

आजन्मतो नूनमहं वियोमि श्रीरामचन्द्रादति पूजनीयात्।
तथैव पापा चरणाद धर्म्यान्नैयान्यतो जातु कुतोऽपि मर्त्यात।।[18]

महाकाव्य का प्रधान रस वीर है तथा भक्ति वात्सल्य अद्भुत, भयानक, करूण, हास्य रस है। इसके साथ अलंकारों का शोभन सन्निवेश है। कथानक लोक प्राण्यात तथा सन्धियों का सम्यक निर्वाह किया गया है। विविध वर्णन, पात्र चित्रण, रस परिपाक, भाषा शिल्प, छन्द योजना की दृष्टि से यह महाकाव्य एक अनुपम रचना है।

21. गंङ्गासागरीयम् :- बीसवीं शती के संस्कृत साहित्य में गंगा सागरीयम् को सम्माननीय स्थान प्राप्त है। रूपकात्मक महाकाव्य विद्या का यह संस्कृत भाषा का प्रथम नारी महाकाव्य है। इस महाकाव्य के प्रणेता विष्णुदत्त शुक्ल नवीन युग के प्रतिनिधि कवि है। इन्होंने प्रायः पचास वर्षों तक हिन्दी व संस्कृत साहित्य की अभिवृद्धि की गंगा सागरीयम् की कथावस्तु नौ सर्गों में विभक्त है। इस महाकाव्य में श्लोक संख्या चार सौ उन्यासी है।

महाकाव्य की कथावस्तु का आधार पतित पावनी भागीरथी गंगा माता का जीवन वृत्त है। इसमें हिमवान् के राज्य का वर्णन, हिमवान मैना का सन्तान प्राप्ति हेतु आशुतोष के पास प्रस्थान, कैलाशपुरी का मनोहर वर्णन समाधिस्थ शिव का हिमालय की प्रार्थना से मुदित हो श्रेष्ठ कन्या प्राप्ति का वरदान देना सृष्टि का सुहावनी हो जाना तथा शुभ वेला में सुलक्षणा भगवती गंगा का जन्म, गंगा की नैसर्गिक मोहक व बाल लीलाएँ, बंगोदधि नामक देश के राजा वरूण के पुत्र सागर का गंगा के लिए विवाह प्रस्ताव, गंगा का सागर मिलन को स्वयं ही प्रस्थान, कपिल मुनि के द्वारा गंगा का सागर से विवाह करवाना, श्रावण पूर्णिमा को गंगा-सागर मिलन।

यह एक सर्गबद्ध रचना है। महाकाव्य के अंगीरस का निर्धारण कठिन कार्य है। गंगा और सागर की परस्पर मिलन की उत्कंठा को पूर्वराग विप्रलम्भ श्रृंगार की संज्ञा दी जा सकती है, किन्तु रति का स्थायित्व नहीं है, वात्सल्य, वीर करूण, देव विषया रति अंग रस हैं, यद्यपि पूरे महाकाव्य में तीव्रतर रस व्यंजना दृष्टिगत नहीं होती। तथापि काव्य में सुरूचि उत्पन्न करने के लिए शोभन रस परिपाक हुआ है। यह प्रसाद गुण एव वैदर्भी रीति से युक्त संक्षिप्त सरस महाकाव्य है।

22. उर्मिलीयं:- प्रस्तुत महाकाव्य के प्रणेता श्रीनारायण जी शुक्ल हैं। नारी प्रधान महाकाव्यों में इस महाकाव्य का विशिष्ट स्थान है। यह महाकाव्य रामानुज लक्ष्मण की पत्नी उर्मिला के जीवन पर आधारित है। इस काव्य का शुभारम्भ् जनकपुरी के वर्णन तथा उर्मिला के जन्म से किया गया है, तदनन्तर सीता का जन्म, राम लक्ष्मण द्वारा विश्वामित्र यज्ञ-रक्षा, धनुर्भंग उर्मिलादि का विवाह, अयोध्या गमन, राम लक्ष्मण सीता वनवास, राम-रावण युद्ध, राम-लक्ष्मण की विजय, लव-कुश, चन्द्रकेतु जनम, अश्वमेघ रक्षा, चन्द्रकेतु विवाह, कारू राज्य पर विजय इस महाकाव्य में सुललित पद योजना तथा अभिव्यंजक शब्द-विन्यास का प्रयोग है। मैथिलीशरण गुप्त के हिन्दी काव्य साकेत से कवि ने प्रेरणा तो ली है किन्तु कवि ने स्वकीय कल्पना का सहारा लेकर इसे संवर्धित किया है।

महाकाव्य में भारतीय संस्कृति के उच्चादर्शों की प्रतिष्ठा करने का प्रयास किया गया है, उर्मिला की विदाई के अवसर पर उनकी माँ ने जो कहा वह भारतीय संस्कृति का प्रतिबिम्बन करती है। यथा-

परोक्ति तैक्ष्णयं मृदुता सहस्व वचः स्वकीयं प्रयुक्षं।
क्षतस्तरु रोहति शस्त्रसंघेर्वचो हतं नो पुनरेति सन्धिम्।।[19]

23. शिवलीलार्णव[20]**, गंगावतरण तथा मुकुन्दविलास**- 17वीं शताब्दी में रचित इन तीनों महाकाव्यों के रचनाकार नीलकण्ठ दीक्षित हैं। शिवलीलार्णव महाकाव्य में 22 सर्ग तथा 2000 पद्य हैं। इसमें भगवान् शिव की लीलाओं के अन्तर्गत मदुरा के पाण्ड्य राजाओं की कथा

का वर्णन किया गया है। भगवान् शिव ने पांड्यवंश के राजा सुन्दर पांड्य के रूप में अवतार लिया और विविध लीलाएँ की। उन लीलाओं का तथा पार्वती के मलयहवजकन्या के रूप में अवतरण का वर्णन इस महाकाव्य में सरस मधुर रीति में किया गया है। दक्षिण की सांस्कृतिक परम्पराओं के ज्ञान की दृष्टि से यह महाकाव्य बड़ा महत्वपूर्ण है। शिवलीलार्णव महाकाव्य पौराणिकता, राष्ट्रभावना, इतिहास और संस्कृति का अनुपम संगम है। गंगावतरण महाकाव्य कवि का द्वितीय महाकाव्य है। यह आठ सर्गों तथा 597 पद्यों से युक्त है। इस महाकाव्य में भागीरथ द्वारा गंगा को पृथ्वी पर लाने के लिए तपस्या आरम्भ करना, गंगा की दर्पोक्ति और अहंकार, भगीरथ का शिव की आराधना के लिए कठोर तप करना, उससे प्रसन्न होकर शिव का अपनी जटाओं में गंगा को समेटना, शिव की जटाओं से निकलकर गंगा का काशी में प्रवेश करना तथा काशी से पाताल तक की गंगा की यात्रा और भागीरथ की सफलता का चित्रण किया गया है। कवि ने गंगा के प्रवाह का प्राकृतिक चित्रण प्रस्तुत किया।[21] इस महाकाव्य में जीवन में साधना, संकल्प और तपस्या के मूल्यों की श्रेष्ठता का वर्णन प्राप्त होता है। मुकुन्दविलास महाकाव्य कवि का तृतीय और अन्तिम महाकाव्य है। यह महाकाव्य चतुर्थ सर्ग तक प्राप्त होता है, जिसमें कवि ने श्रीकृष्ण के जन्मोत्सव तक की कथा वर्णित की है। इस महाकाव्य के इतने भाग का प्रकाशन डॉ0 राधावल्लभ त्रिपाठी के सम्पादन सहित संस्कृत परिषद्, सागर विश्वविद्यालय, सागर से सन् 1980 ई0 में हुआ।

24. पतञ्जलिचरित– रामभद्रदीक्षित ने 17वीं शताब्दी में पतञ्जलिचरित महाकाव्य की रचना की है। यह 8 सर्गों में तथा 538 श्लोकों में निबद्ध महाकाव्य है। इसमें कवि ने महाभाष्यकार तथा योगदर्शन के व्याख्याकार पतञ्जलि के जीवन चरित को प्रस्तुत किया है। यह महाकाव्य काव्यमाला गुच्छक 51 में प्रकाशित है।

25. रघुनाथभूपविजय– इस महाकाव्य की रचना यज्ञानारायण दीक्षित ने 17वीं शताब्दी में की है। इस महाकाव्य के 16 सर्गों में 1340 पद्य हैं। इसमें कवि ने तंजौर के शासक रघुनाथ नायक का चरित्र प्रस्तुत किया है। इस महाकाव्य का अन्य नाम साहित्यरत्नाकर भी है। यह ग्रन्थ टी॰ आर॰ चिन्तामणि की भूमिका के साथ प्रकाशित है।

26. रुक्मिणीकल्याण तथा शंकराभ्युदय– 17वीं शताब्दी के प्रस्तुत दोनों महाकाव्यों की रचना राजचूड़ामणि दीक्षित ने की है। रुक्मिणीकल्याण महाकाव्य आड्यार लाइब्रेरी मद्रास से सन् 1929 ई0 में सर्वप्रथम दो सर्ग तक प्रकाशित हुआ। पुनः वाणी विलास प्रेस श्रीरङ्गम् संस्कृत सीरीज संख्या 9 में पूर्णरूप से दश सर्ग में प्रकाशित हुआ, जिसमें 724 पद्यों में कवि ने श्रीकृष्ण के प्रति रुक्मिणी का पूर्वानुराग, उसकी विरहावस्था, रुक्मिणीहरण तथा उनके विवाह का वर्णन किया है। इनके द्वितीय महाकाव्य शंकराभ्युदय में 10 सर्ग बताये जाते हैं। परन्तु यह आठ सर्गों

तक ही प्राप्त होता है। इसमें कवि ने आदिशंकराचार्य के जीवन को वर्णित किया है। इसका प्रकाशन संस्कृत-पत्रिका 'सहृद्या' न्यू-सीरीज वा. 5-6 में हुआ है।

27. नटेशविजय- इस महाकाव्य की रचना वेंकटकृष्ण दीक्षित द्वारा 17वीं शताब्दी में की गयी। इस महाकाव्य में दश सर्ग तथा 681 पद्य हैं, जिनमें कवि ने नटेश अर्थात् भगवान् शिव की कथाओं सहित उनकी कलि नामक असुर पर विजय का वर्णन प्रस्तुत किया है। यह महाकाव्य भी वाणीविलास प्रेस, श्रीरङ्गम् से ही सन् 1912 ई0 में प्रकाशित हुआ।

28. राजप्रशस्ति तथा अमरकाव्यम्- रणछोड़ भट्ट कवि ने 17वीं शताब्दी में राजप्रशस्ति तथा अमरमाव्यम् नामक दो महाकाव्यों की रचना की। कवि रणछोड़ भट्ट राजसिंह के आश्रित कवि थे। इनका राजप्रशस्ति 24 सर्गों वाला महाकाव्य है। इसमें 1106 पद्य हैं, जिनमें अनेक राजाओं के चित्रण के साथ उदयपुर के महाराजा राजसिंह को प्रधान विषय बनाया गया है। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। अमरकाव्यम् कवि की द्वितीय कृति है। इसमें कवि ने मेवाड़ के अमर महाराणाओं का वर्णन किया है। इसका प्रकाशन साहित्य संस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर से सन् 1973 ई0 में हुआ।

29. हरिभूषण- यह महाकाव्य गंगाराम द्वारा 17वीं शताब्दी में लिखा गया। ये राजस्थान के देवलिया के राजा हरिसिंह के आश्रित कवि थे। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। इस महाकाव्य की पूर्णतः उपलब्धि नहीं होती, इसके केवल नौ सर्ग ही प्राप्त होते हैं। जिसका प्रकाशन प्रतापगढ़ स्टेट से सन् 1932 ई0 में हुआ। इसमें राजस्थान के देवलिया के काठलेन्द्र राजाओं का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

30. जानकीपरिणय- 17वीं शताब्दी में रचित इस महाकाव्य के लेखक चक्रकवि हैं। इस महाकाव्य में आठ सर्ग हैं, जिसमें कवि ने राम के जन्म से लेकर उनके विवाह तक की कथा को वर्णित किया है। इसका प्रकाशन त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज के क्रमांक 24 में सन् 1913 ई0 में हुआ था।

31. रामचन्द्रोदय[22]- इस कृति के रचयिता वैष्णव कवि वेंकटेश हैं। इन्होंने 17वीं शताब्दी में इस महाकाव्य की रचना की। यह 30 सर्गों का महाकाव्य है। इसमें कवि ने राम के वंश परिचय से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा को प्रस्तुत किया है।

32. रघुनाथाभ्युदय- प्रकृत महाकाव्य कवयित्री रामभद्राम्बा द्वारा लिखा गया है। इस महाकाव्य में 12 सर्ग हैं, जिनमें कवयित्री ने तंजौर के राजा रघुनाथनायक के जीवन चरित, वंश, सभा आदि को काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। इस महाकाव्य का प्रकाशन मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास से सन् 1934 ई0 में हुआ।

33. देवानन्द, दिग्विजय तथा सप्तसंधान– इन महाकाव्यों की रचना उपाध्याय मेघविजयगणि द्वारा 17वीं शताब्दी में की गयी। देवानन्द महाकाव्य में 7 सर्ग हैं, जिसमें कवि ने जैनाचार्य विजयदेव सूरि के जीवन–चरित का वर्णन किया है। इसका प्रकाशन सन् 1937 ई0 में सिंधी जैन ग्रन्थमाला, अहमदाबाद से हुआ। दिग्विजय महाकाव्य कवि का द्वितीय महाकाव्य है। इस महाकाव्य में त्रयोदश सर्ग हैं, जिनमें जैनाचार्य विजयप्रभ सूरि का चरित्र चित्रण किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सिंधी जैन ग्रंथमाला के ग्रथांक 14 में हुआ है। सप्तसंधान कवि का तृतीय महाकाव्य है। इस महाकाव्य में नौ सर्ग हैं, जिनमें कवि ने ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर, रामचन्द्र तथा श्रीकृष्ण आदि सात महापुरुषों के जीवनचरित को श्लेषात्मक रूप में प्रस्तुत किया है। यह महाकाव्य जैन विद्यासाहित्य–शास्त्रमाता, बनारस से प्रकाशित है।

34. विजयप्रशस्ति– हेमविजयगणि ने 17वीं शताब्दी में इस महाकाव्य की रचना की है। यह महाकाव्य 21 सर्गों का है, जिसके प्रथम 16 सर्ग तो हेमविजयगणि द्वारा तथा अन्तिम 5 सर्ग इनके शिष्य गुणविजयगणि द्वारा रचित हैं। इस महाकाव्य में जैनाचार्य हरिविजय सूरि, विजयसेन सूरि और विजयदेव सूरि आदि आचार्यों के जीवनचरित को चित्रित किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन श्रीयशोविजय जैन ग्रन्थमाला के 23वें अंक में संवत् 2097 में हुआ।

35. नानकचन्द्रोदय– देवराजशर्मा कवि ने इस महाकाव्य की रचना 17वीं शताब्दी में की। इसमें 21 प्रस्ताव हैं, जिनमें 1–19 प्रस्ताव तक गुरुनानक के जीवनचरित को वर्णित किया गया है तथा 20 और 21 प्रस्तावों में अन्य गुरुओं के जीवन और कार्यों का वर्णन है। इसमें कुल 3579 श्लोक है। इस महाकाव्य का प्रकाशन वि. स. 1939 में हरिप्रसाद के द्वारा बम्बई से तथा सन् 1977 ई0 में सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी से हुआ है।

36. मृत्युंजयप्रद्युम्नोत्तरचरितम्– सत्रहवीं शताब्दी में राजचूड़ामणि दीक्षित ने मृत्युंजय–प्रद्युम्नोत्तरचरितम् नामक महाकाव्य की रचना की। यह महाकाव्य 11 सर्गों में निबद्ध है। इसमें कवि ने वज्रपुरी के असुर की कन्या से प्रद्युम्न के विवाह की कथा को वर्णित किया है।

37. मुकुन्दविलास– इस महाकाव्य की रचना 17वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में कवि जतिन्द्र रघुत्तम तीर्थ द्वारा की गयी। इसका प्रकाशन सन् 1989 ई0 में शारदा प्रेस, बेरहम पुर, श्री माँ प्रिन्टर, भुवनेश्वर से हुआ है। इसके सम्पादक डॉ0 भगवान् पण्डा हैं, जो संस्कृति निदेशालय भुवनेश्वर, उड़ीसा के सम्पादक थे। 12 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य में भगवान् कृष्ण और गोपियों के रास का वर्णन है।

38. विजयदेवमाहात्म्यम्[23]– 17वीं शती में, प्रकृत महाकाव्य की रचना श्रीवल्लभ पाठक कवि ने की थी। यह महाकाव्य 21 सर्गात्मक है। इसमें कवि ने जैन साधु विजयदेवसूरि के जीवन–चरित्र को प्रस्तुत किया है।

39. सुदर्शनचरितम्, महावीरपुराण, श्रीपादचरितम् एवं वृषभानुचरितम्- इन चारों महाकाव्यों की रचना जैनाचार्य सकलकीर्ति द्वारा की गयी है। सुदर्शनचरितम् महाकाव्य में जैन साधु सुदर्शन के जीवन-चरित्र तथा महावीर पुराण नामक महाकाव्य में महावीर के जीवन-चरित को वर्णित किया गया है। इसी प्रकार श्रीपाद्चरितम् महाकाव्य में जैन साधु श्रीपाद और वृषभानुचरितम् महाकाव्य में जैन साधु वृषभानु के जीवन-चरित्र को प्रस्तुत किया गया है।

40. देशावलिविवृत्ति- जगन्मोहन नामक कवि ने 17वीं शताब्दी में देशावलिविवृत्ति नामक महाकाव्य की रचना की। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें कवि ने तत्कालीन 56 राजाओं के चरित्र का वर्णन प्रस्तुत किया है।

41. ताराचन्द्रोदयम्[24]- 17वीं शताब्दी में कवि मैथिल ने इस महाकाव्य की रचना की। इस महाकाव्य में 20 सर्ग हैं। इस महाकाव्य में कवि ने ताराचन्द नामक राजा के चरित्र को प्रस्तुत किया है।

42. शिवभारतम्- 17वीं शताब्दी में शिवाजी के ही आश्रित कवि परमानन्द ने इस महाकाव्य की रचना की। इसमें 32 अध्याय हैं, जिनमें शिवाजी के उदात्त जीवन-चरित्र का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन शक् सम्वत् 1849 में श्री दत्तात्रेय विष्णु आप्टे की मराठी भूमिका के साथ किया गया है।

43. पर्णालपर्वतग्रहणाख्यानम्- जयराम पिण्डले नामक कवि ने 17वीं शताब्दी में इस महाकाव्य को लिखा। इसमें पाँच अध्याय हैं, जिसके अन्तर्गत कवि ने 'पन्हाल' किले पर शिवाजी के वीरता पूर्ण पराक्रम का वर्णन किया है। इस महाकाव्य को मराठी भाषा के अनुवाद के साथ पूना के भारत इतिहास संशोधक मण्डल के प्रसिद्ध संशोधक सदाशिव महादेव दिवेकर ने प्रकाशित किया।

44. शिवाजीचरितम्- इस महाकाव्य के प्रणेता कवि कालिदास विद्याविनोद हैं। इसमें छत्रपति शिवाजी के जीवन चरित्र को प्रस्तुत किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन कलकत्ता की संस्कृत साहित्य पत्रिका के 11वीं अंक में हुआ है।

45. शम्भुराजचरितम्[25]- हरिकवि ने 17वीं शताब्दी में इस महाकाव्य की रचना की। प्रस्तुत महाकाव्य में कवि ने अपने आश्रय दाता छत्रपति शिवाजी के पुत्र सम्भाजी (1680 ई0 - 1689 ई0) के जीवन-चरित को प्रस्तुत किया है।

46. ईश्वरविलास[26]- 17वीं शताब्दी में श्रीकृष्णभट्ट ने इस महाकाव्य की रचना की है। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसे महाराज जयसिंह के पुत्र ईश्वरसिंह के अनुरोध पर लिखा गया। इसमें पृथ्वीराज, मानसिंह, अकबर, फरुखसियर, सैय्यद अब्दुल्लाहखान आदि राजाओं के

साथ राजा सवाई जयसिंह तथा उनके पुत्र ईश्वर सिंह का विशेष रूप से चित्रण हआ है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण महाकाव्य है, जिसमें अत्यन्त दुर्लभ और अज्ञात पक्षों का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य में राजा सवाई जयसिंह द्वारा किये गए अश्वमेध यज्ञ का वर्णन है, जो उस काल की एक महत्त्वपूर्ण घटना है।

47. राघवीयम् तथा विष्णुविलास- प्रकृत दोनों महाकाव्यों की रचना राम पाणिपाद द्वारा 18वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में की गयी। राघवीयम् महाकाव्य 20 सर्गीय महाकाव्य है, जिसमें 1572 श्लोक हैं इसमें पूर्वार्द्ध तथा उत्तरार्द्ध दो भाग हैं। जिसमें कवि ने राम के जन्म से लेकर राज्याभिषेक तक की कथा को वर्णित किया है। यह महाकाव्य त्रिवेन्द्रम् संस्कृत सीरीज की संख्या 146 में प्रकाशित है। कवि के द्वितीय विष्णु-विलास महाकाव्य का आधार भागवत् पुराण है। इसमें विष्णु के नौ अवतारों का वर्णन किया गया है। यह आठ सर्गीय महाकाव्य है।

48. अजितोदय- 32 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य का प्रणयन 18वीं शताब्दी जगज्जीवन भट्ट द्वारा किया गया। यह महाकाव्य महाराजा मानसिंह पुस्तक प्रकाशन, मेहरानगढ़ म्यूजियम, जोधपुर से सन् 1986 ई0 में श्री नित्यानन्द दाधीच के सम्पादन के साथ प्रकाशित हुआ। इसमें मारवाड़ के शासक महाराजा अजित सिंह के चरित्र का वर्णन है। यह महाकाव्य सन् 1674 ई0 से लेकर सन् 1724 ई0 तक के इतिहास को वर्णित करता है। जिसमें ओरंगजेब का मारवाड़ को हथियाने का प्रयास तथा सन् 1707 ई0 में ढक्कन में उसकी मृत्यु का वर्णन है।

49. श्रीरामविजय तथा गढेशनृपवर्णनम्- कवि रूपनाथ द्वारा प्रणीत दोनों महाकाव्य 18वीं शताब्दी के महाकाव्य हैं। श्रीरामविजयमहाकाव्य गवर्नमेण्ट संस्कृत कॉलेज, बनारस से 1932 ई0 में पं0 गणपतिलाल झा शर्मा के सम्पादन के साथ प्रकाशित है। 9 सर्गों से युक्त इस महाकाव्य में मृग के लिए वन में गए हुए दशरथ के द्वारा वाण से श्रवण को मारने तथा उनके माता-पिता द्वारा शाप दिये जाने के प्रसंग से लेकर रावण-वध के पश्चात् राम के राजसिंहासनाधिरोहण तक का वर्णन किया गया है। गढेशनृपवर्णनम् एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें मांडला के गोंड राजाओं का वर्णन किया गया है।

50. पद्मनाभविजय- प्रकृत महाकाव्य 18वीं शताब्दी में लिखा गया। इसके लेखक सुब्रह्मण्य तिरुनाल रामवर्मा महाराज के आश्रित कवि थे। यह आठ सर्गों का महाकाव्य है। इसमें पद्मनाभ की विजय का वर्णन किया गया है।

51. रामचरितम्[27]- कांगनोर के युवराज रामवर्मा द्वारा इस महाकाव्य की रचना 1800 ई0 में की गयी। इस महाकाव्य में 12 सर्ग हैं। इसमें राम के जीवन-चरित्र का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

52. भरतचरित- इस महाकाव्य के रचयिता कृष्णाचार्य हैं। इन्होंने इस महाकाव्य में शकुन्तला के पुत्र भरत का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया है। इसमें 12 सर्ग हैं। इस महाकाव्य पर कालिदास का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है।

53. भगवत्पादचरित तथा वेंकटेशचरित- 18वीं शताब्दी में घनश्याम कवि ने भगवत्पादचरित तथा वेंकटेशचरित नामक दो महाकाव्यों की रचना की। इन महाकाव्यों में इनके नाम के अनुसार ही कथा का प्रस्तुतीकरण किया गया है।

54. गुरुवंशम्- 1740 ई0 में श्रीलक्ष्मण शास्त्री ने गुरुवंशम् महाकाव्य की रचना की। यह महाकाव्य कालिदासकृत रघुवंश के आधार पर रचा गया है। जिस प्रकार कालिदास ने रघुवंश में रघुवंशीय राजाओं का चित्रण प्रस्तुत किया है, उसी प्रकार श्रीलक्ष्मण शास्त्री ने शृंगेरी मठ के परम्परागत गुरुवर्यों के चरित्रों का वर्णन इस महाकाव्य में प्रस्तुत किया है। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है।

55. रामवर्मायशोभूषणम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना 18वीं शताब्दी में कोक्कणनाथ कवि के पुत्र सदाशिव मखी नामक कवि ने की। इसमें त्रावणकोर के राजा रामवर्मा का यशोवर्णन अलंकारिक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

56. श्रीरामचरितम् तथा बाल्युद्भव (महेन्द्रविजय)- गोदवर्मा युवराज ने 19वीं शताब्दी में इन दोनों महाकाव्यों की रचना की। श्रीरामचरितम् महाकाव्य की रचना 13 सर्ग के 31 वें पद्य तक गोदवर्मा युवराज कवि द्वारा की गई तत्पश्चात् उनके परिवार के कोच्चुण्णिराज ने इसे चालीस सर्गों में पूरा किया। प्रकृत महाकाव्य का प्रकाशन निर्णय सागर प्रेस, बम्बई से हुआ। पुनः सन् 1985 ई0 में पं0 के. पी. नारायण पिषारोटि के सम्पादन के साथ कलिक्कट् आदर्श संस्कृत विद्यापीठ, केरल से प्रकाशित हुआ। यह महाकाव्य तीन भागों में विभक्त है। इसकी कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है। जिसमें राम के जन्म से लेकर सीता के साथ विवाह तक और रावण वध तक का वर्णन किया गया है। इनका द्वितीय महाकाव्य बाल्युद्भव है। इसमें सोलह सर्ग हैं।

57. श्रीरघुनाथगुणोदय- कवि नव्य चण्डीदास द्वारा विरचित श्रीरघुनाथगुणोदय महाकाव्य 13 सर्गों में निबद्ध है। इस महाकाव्य की कथा का आधार वाल्मीकि रामायण है। इसके एक से दस सर्गों में लंकाविजय का वर्णन किया गया है तथा ग्यारहवें सर्ग में लंकाविजय के बाद राम के पुष्पक विमान से आते हुए नीचे के मार्ग का बड़ा मनोहारी वर्णन किया गया है, कवि ने यह वर्णन कालिदास के रघुवंश से प्रभावित होकर किया है। बारहवें सर्ग में रामराज्य और षड्ऋतु का प्राकृतिक चित्रण है। तेरहवें सर्ग में कवि ने अपने आश्रयदाता महाराज रणवीरसिंह के विद्याप्रेम

तथा उनके जम्मूनगर का वर्णन किया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन डॉ0 गंगादत्त शर्मा विनोद के सम्पादक के साथ श्री रणवीर केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, जम्मू से सन् 1979 ई0 में हुआ।

58. रामवर्मामहाराजचरित- केरल के संस्कृत विद्वान् परमेश्वरन् मूत्ततु द्वारा लिखा गया प्रकृत महाकाव्य आठ सर्गों में प्राप्त होता है। इसमें आइल्यम तिरुनाल महाराज (1860-1880) के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन पं0 वी. वी. शर्मा विद्याभूषण, 607 बोलिया स्ट्रीट, त्रिवेन्द्रम् से 1957 ई0 में म. म. पण्डित वेङ्कट राम शर्मा के सम्पादन के साथ हुआ है।

59. नृपविलास, नलविलास, राघवचरित्रम्, जयवंश तथा लघुरघुकाव्य- इन पाँचों महाकाव्यों की रचना सीताराम भट्ट पर्वणीकर द्वारा 19वीं शताब्दी में की गयी। नृपविलास महाकाव्य 16 सर्गीय महाकाव्य है। इसमें ''नृपवीर'' नामक राजा की कथा को वर्णित किया गया है। नलविलास महाकाव्य में 32 सर्ग हैं। इसमें नल के विलास पूर्ण जीवन का वर्णन किया गया है। इसके प्रथम 28 सर्ग श्रीहर्ष द्वारा प्रणीत नैषधीयचरित पर आधारित हैं तथा बाद के 10 सर्ग महाभारत में वर्णित नलोपख्यान की कथा पर आधारित हैं। राघवचरित्रम् महाकाव्य राम की कथा पर आधारित महाकाव्य है। जयवंश महाकाव्य 19 सर्गों का एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। इसमें कवि ने अपने आश्रयदाता सवाई जयसिंह तृतीय तथा उनके वंशजों के गुणों का वर्णन किया है। इसका प्रकाशन राजस्थान विश्वविद्यालय से सन् 1952 ई0 में पं0 पट्टाभिराम शास्त्री के सम्पादन के साथ हुआ। लघुरघुकाव्य 19 सर्गों में निबद्ध महाकाव्य है। इसमें कवि ने कालिदास के रघुवंश के समान ही रघुवंश का वर्णन प्रस्तुत कया है।

60. लक्ष्मीश्वरप्रताप- लक्ष्मीश्वरप्रताप महाकाव्य की रचना शिवकुमार मिश्र ने 19वीं शताब्दी में की। इसमें दरभंगा के नरेशों की वंशावली का वर्णन दरभंगा नरेश लक्ष्मीश्वरसिंह तक प्रस्तुत किया गया है।

61. चन्द्रशेखरचरित- दु:खभंजन कवि अनेक विषयों के ज्ञाता तथा विद्वान् व्यक्ति थे। इन्होंने 19वीं शताब्दी में इस महाकाव्य की रचना की। यह एक प्रशस्तिकाव्य है। इसमें राजा चन्द्रशेखर त्रिपाठी के जीवन चरित का वर्णन किया गया है।

62. आङ्ग्लसाम्राज्यम्- ए. आर. राजराजवर्मा ने 19वीं शताब्दी में इस महाकाव्य की रचना की है। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। इस महाकाव्य में 23 सर्ग हैं, जिसमें अंग्रेजी शासन का वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इस महाकाव्य का प्रारम्भ लन्दन नगर के वर्णन से तथा अन्त सन् 1858 ई0 में रानी विक्टोरिया के द्वारा आज्ञापत्र दिये जाने के साथ किया गया है।

63. रामाभ्युदयम् तथा महाप्रस्थानम्– प्रकृत दोनों महाकाव्यों की रचना 19वीं शताब्दी में अन्नदाचरण तर्कचूड़ामणि द्वारा की गयी। रामाभ्युदयम् महाकाव्य 19 सर्गों का महाकाव्य है, जिसमें राम के बाल्यावस्था से लेकर उनके विवाह तक की घटनाओं को प्रस्तुत किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1897 ई0 में नोआखाली से हुआ है। महाप्रस्थानम् नामक द्वितीय महाकाव्य में 22 सर्ग हैं। इस महाकाव्य की कथा का स्रोत महाभारत है। इसमें पाण्डवों के स्वर्गारोहण की कथा वर्णित है।

64. कृष्णराजाभ्युदयमहाकाव्य– मन्दिकल सी. एन. रामशास्त्री (1849 ई0) ने कृष्णराजाभ्युदय नामक महाकाव्य की रचना की। इसमें मैसूर के महाराज कृष्णराज वाडियर का वर्णन किया गया है। महाराज कृष्णराज वाडियर ने इन्हें ''कविरत्न'' की उपाधि से सम्मानित करने के साथ-साथ महाराजा संस्कृत कॉलेज मैसूर का प्रधान पण्डित भी नियुक्त किया था।

65. कृष्णराजगुणालोक– 19वीं शताब्दी में ही त्रिविक्रम शास्त्री ने भी मैसूर के महाराजा कृष्णराज पर कृष्णराजगुणालोक नामक महाकाव्य की रचना की।

66. रुक्मिणीपरिणय– 19वीं शताब्दी में विश्वनाथदेव वर्मा ने इस महाकाव्य का प्रणयन किया, जो आठगढ़ उड़ीसा के महाराज थे। इसमें रुक्मिणी के विवाह का वर्णन किया गया है।

67. श्रीरामविजयम्– सोंठी भद्रादि राम शास्त्री ने श्रीरामविजयम् महाकाव्य का निर्माण 19वीं शताब्दी में किया। इसमें राम की विजय का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

68. कृष्णलीलामृतम्– तमिलनाडु के कवि लक्ष्मण सूरि मद्रास के पचयप्पा कॉलेज में संस्कृत के प्राध्यापक थे। इन्होंने 19वीं शताब्दी में कृष्णलीलामृतम् नामक महाकाव्य की रचना की, जिसमें कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है।

69. पाण्डवचरितकाव्यम्– उत्तरप्रदेश के दिवाकर कवि ने 14 सर्गों के इस महाकाव्य की रचना की है। इसमें पाण्डवों के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है।

70. सौन्दर्यविजय– तमिलनाडु के भट्ट नारायणशास्त्री ने 19वीं शताब्दी में इस काव्य की रचना की है। यह 24 सर्गों में निबद्ध महाकाव्य है।

71. दशाननवधकाव्य– योगीन्द्रनाथ तर्कचूडामणि ने दशाननवध काव्य की रचना 19वीं शताब्दी में की। इसमें दशानन (रावणवध) की कथा को प्रस्तुत किया गया है।

72. श्रीनिवासगुणाकरः – तिरुपति के अभिनव रामानुजाचार्य ने श्रीनिवासगुणाकर महाकाव्य की रचना 19वीं शताब्दी में की। यह महाकाव्य भगवान् वेंकटेश की प्रशस्ति में लिखा गया है।

प्रकृत महाकाव्य 17 सर्गों में विभक्त है। इसके प्रथम आठ सर्गों की व्याख्या (टीका) स्वयं कवि द्वारा की गई है, शेष की व्याख्या कवि के भ्रातृज वरदराज ने की है।

73. वासुदेवविजय– रामनाथ तर्करत्न द्वारा इस महाकाव्य की रचना 1883 ई0 में की गई। यह महाकाव्य 18 सर्गों में विभक्त है। इस महाकाव्य में कंस के अत्याचार, श्रीकृष्ण जन्म, नन्द के घर कृष्ण को ले जाना आदि का वर्णन किया गया है। इसका प्रकाशन सन् 1890 ई0 में कलकत्ता के 2न. नवाब दि ओस्तागार लेन स्थित इंराजियनत्र से श्रीपीताम्बर बन्द्योपाध्याय द्वारा कराया गया।

74. उमाचरितचित्तम्– यह महाकाव्य बंगाल के रामचरण भट्टाचार्य द्वारा 19वीं शताब्दी में लिखा गया। इस महाकाव्य में माता पार्वती के जीवन–चरित्र का वर्णन किया गया है।

75. पार्थाश्वमेध तथा विष्णुविक्रम– 19वीं शताब्दी में इन दोनों महाकाव्यों की रचना पञ्चानन तर्करत्न ने की है। पार्थाश्वमेध महाकाव्य में पार्थ (अर्जुन) के अश्वमेध तथा विष्णुविक्रम महाकाव्य में विष्णु के पराक्रम का वर्णन किया गया है। डॉ0 हीरालाल शुक्ल आधुनिक संस्कृत साहित्य के उत्कृष्ट विद्वान् हैं। इन्होंने विष्णुविक्रम महाकाव्य को आधुनिक साहित्य की उत्कृष्ट रचना माना है।

76. आङ्ग्लजर्मनीयुद्धविवरणम्– यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। जिसकी रचना 19वीं शताब्दी में तिरुमल बुक्कपट्टनम श्रीनिवासाचार्य द्वारा की गई। इसमें अंग्रेजों के साथ हुए जर्मनी के युद्ध का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

77. चालुक्यराजअय्यणवंशचरितम्– श्याम भट्ट भारद्वाज द्वारा चालुक्यराज–अय्यणवंशचरितम् नामक महाकाव्य की रचना सन् 1825 ई0 की गई। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें चालुक्यराजअय्यणवंश के राजाओं का चरित्र–चित्रण प्रस्तुत किया गया है। यह 19 सर्गों का महाकाव्य है। इसका प्रकाशन सन् 1966 ई0 में श्रीलालबहादुर शास्त्री केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, दिल्ली से हुआ है।

78. उत्तरनैषधम्– इस महाकाव्य की रचना आरुर माधवन् अड़ितिरि द्वारा सन् 1830 ई0 में की गई। इस महाकाव्य में 16 सर्ग है।

79. सत्यानुभाव और योगिभक्तचरित– इन दोनों महाकाव्यों की रचना कालीपद तर्काचार्य द्वारा 19वीं शताब्दी में की गई। सत्यानुभाव 24 सर्गीय महाकाव्य है, जिसमें सत्यनारायण की कथा को वर्णित किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन संस्कृत साहित्य परिषद्, कलकत्ता से हुआ है। इनकी दूसरी कृति योगिभक्तचरित है।

80. अंग्रेजचन्द्रिका– सन् 1801 ई0 में अंग्रेजचन्द्रिका नामक महाकाव्य की रचना विनायक भट्ट द्वारा की गयी। इस महाकाव्य में अंग्रेजी साम्राज्य का विस्तृत वर्णन किया गया है।

81. राजाङ्ग्लमहोद्यानम्– प्रस्तुत महाकाव्य की रचना रामस्वामी राजा द्वारा सन् 1834 ई0 में की गई। इसमें अंग्रेजी शासन के भारत में प्रसार की कथा को वर्णित किया गया है।

82. गीतभारतम्– प्रस्तुत काव्य की रचना त्रैलोक्यमोहन गुह द्वारा 19वीं शताब्दी में की गई। इसमें कवि ने आङ्ग्ल साम्राज्य तथा सम्राज्ञी विक्टोरिया के यशोगान का वर्णन प्रस्तुत किया है। यह महाकाव्य सन् 1902 ई0 में कलकत्ता से प्रकाशित है।

83. श्रीपूर्णानन्दचरितम्– 19वीं शताब्दी में श्री शेवालकर शास्त्री ने विदर्भ के प्रसिद्ध साधु श्रीपूर्णानन्द स्वामी का जीवन चरित्र वर्णित किया है। इसमें सर्गों के स्थान पर अध्यायों में कथा को विभक्त किया गया है। इस काव्य का अनुवाद मराठी भाषा में कवि द्वारा स्वयं किया गया है। इसका प्रकाशन संस्कृत मासिक पत्रिका भवितव्यम् में हुआ है।

84. जयाजी-प्रबन्ध– महाकवि श्री बालशास्त्री गर्दे ने इस महाकाव्य की रचना 19वीं शताब्दी में की। इसमें 33 अध्याय तथा 2499 पद्य हैं, जिसमें महादजी सिंधिया से लेकर महाराज जयाजीराव तक का ऐतिहासिक वृत्तान्त प्रस्तुत किया गया है।

85. दिल्लीमहोत्सव तथा विजयिनीचरित– प्रस्तुत दोनों महाकाव्य की रचना 19वीं शताब्दी में श्रीश्वर विद्यालंकार द्वारा की गई। दिल्ली महोत्सव महाकाव्य में कवि ने लॉर्ड कर्जन के शासनकाल की घटनाओं का वर्णन प्रस्तुत किया है तथा विजयिनीचरित महाकाव्य में महारानी विक्टोरिया का चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया गया है।

86. अहल्याचरितम्– इस महाकाव्य[28] की रचना श्री सखाराम शास्त्री ने की है। इनका जन्म सन् 1886[29] ई0 में महाराष्ट्र के गारगोटी गाँव में हुआ था। देवी अहल्या ने प्रयाग, काशी और गया में धर्मशाला तथा विष्णु मन्दिर का निर्माण करवाया। अतः इनके त्यागपूर्ण, धार्मिक जीवन से प्रभावित होकर ही कवि को प्रकृत महाकाव्य को रचने की प्रेरणा प्राप्त हुई। देवी अहल्या के जीवन वृत्त को उद्घाटित करने के उद्देश्य से कवि ने 'अहल्याचरितम्' नाम से इस महाकाव्य को नामांकित किया है, इस महाकाव्य में महाराष्ट्र के महल्लारिराय वंश में उत्पन्न खण्डूजिराय के देवी अहल्या के साथ विवाह तथा उनके सम्पूर्ण जीवन का वर्णन किया गया है। यह महाकाव्य 17 सर्गों में निबद्ध है। इस महाकाव्य का सम्पादन श्री गोविन्दचन्द्र राजोपध्याय ने किया है।

87. श्रीतुकारामचरितम्– प्रस्तुत महाकाव्य[30] की रचना कवयित्री पण्डिता क्षमाराव ने सन् 1947 ई0 में की। नौ सर्गो में निबद्ध इस रचना में महाराष्ट्र के सन्त श्रीतुकाराम का जीवन-चरित

वर्णित है। यह एक चरित काव्य है परन्तु आठवें सर्ग में शिवाजी को श्रीतुकाराम द्वारा राजधर्म का उपदेश दिए जाने के कारण इसमें राजनीति का भी वर्णन प्राप्त होता है। पण्डिता क्षमाराव ने अनेक ग्रंथों की रचना कर संस्कृत साहित्य जगत् को समृद्ध किया है। इन्होंने कुल मिलाकर 50 से अधिक कृतियों की रचना की, जिनमें से 12 कृतियाँ प्रकाशति हो चुकी हैं। इनकी विद्वता के कारण ही अयोध्या की संस्कृत कल्याण संस्था द्वारा 1938 ई0 में इन्हें 'पण्डिता' की उपाधि से अलङ्कृत किया गया।

88. आर्योदय[31]- प्रस्तुत महाकाव्य के रचनाकार श्रीगंगाप्रसाद उपाध्याय है। इनका जन्म सन् 1881 ई0 को एटा जनपद में कासगंज के समीप कालीनदी के तटवर्ती 'नदरई' गाँव में हुआ। इनके द्वारा रचित आर्योदय महाकाव्य पूर्वाद्ध और उत्तराद्ध दो भागों में विभक्त है। पूर्वाद्ध में 10 सर्ग और प्रस्तावना के बीस छन्दों समेत 580 श्लोक हैं और उत्तराद्ध के 11 सर्गों में कुल 582 श्लोक हैं। इसमें सृष्ट्युत्पत्ति और सृष्टि की आरम्भिक सुख-समृद्धि, वैदिक धर्म में विकार और उसका ह्रास, राष्ट्रीय मानसिकता की क्षति, विदेशीय मतोत्पत्ति, पृथ्वीराज और जयचन्द में वैर, मुहम्मद गौरी का आक्रमण, अलाउद्दीनखिलजी का शासन, सिक्खगुरु गुरुनानक, गुरुगोविन्दसिंह, स्वामी दयानन्द सरस्वती आदि का वर्णन किया गया है।

89. कनकवंश- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना महाकवि श्री बालकृष्ण भट्ट ने की है। इनका जन्म टिहरी गढ़वाल के जाखौली ग्राम में हुआ था।[32] इन्होंने अपने ही जिले के राजकीय संस्कृत महाविद्यालय, टिहरी गढ़वाल के प्रधानाचार्य के पद को अलङ्कृत किया।[33] इनके द्वारा रचित कनकवंश महाकाव्य 27 सर्गों और 1844 पद्यों में विभक्त है। यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें कवि ने सप्तम शताब्दी के उत्तराद्ध के गढ़वाल शासक कनकपाल से लेकर बींसवी शताब्दी के मध्यकाल के शासक श्री मानवेन्द्र शाह तक का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन स्वयं कवि द्वारा चार भागों में कराया गया है।[34]

90. श्रीरामदासचरितम्- इस महाकाव्य[35] का प्रणयन पण्डिता क्षमाराव ने किया है, यह इनका दूसरा महाकाव्य है। इस महाकाव्य में 13 सर्ग हैं, जिनमें महाराष्ट्र के सन्त श्री रामदास का जीवन चरित वर्णित है। इसमें सन्त रामदास का जन्म, उनकी बाल-लीलाएँ, विवाह मण्डप से उनका उठकर भागना आदि जीवन वृत्त के साथ-साथ, वाराणसी, अयोध्या, मथुरा, वृन्दावन आदि स्थानों पर भ्रमण का चित्रण प्रस्तुत किया गया है। छत्रपति शिवाजी के साथ मिलकर किए गए देश की मान मर्यादा के कार्यों का वर्णन करने से इस महाकाव्य में देशभक्ति तथा राजनीतिक के सन्दर्भ भी प्राप्त होते हैं।

91. श्रीशैलजगद्गुरुचरितम्- इस महाकाव्य की रचना श्रीनारायण शास्त्री ने की है। यह 19 सर्गों का महाकाव्य है। इसमें श्रीशैल के जगद्गुरुओं का जीवन-वृत्त वर्णित है। इसमें पण्डिताराध्य से लेकर चन्न बसवदेशिक तक के गुरुओं का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1953 ई0 में बंगलौर से हुआ।

92. श्रीज्ञानेश्वरचरितम्- पण्डिता क्षमाराव द्वारा रचित यह तृतीय महाकाव्य[36] है। यह उनकी अन्तिम रचना है, इस महाकाव्य की समाप्ति के एक सप्ताह पश्चात् ही उनकी मृत्यु हो गयी थी।[37] इसका प्रकाशन इनकी पुत्री श्रीमती लीलाराव दयाल ने अंग्रेजी अनुवाद के साथ किया। यह आठ सर्गों और 400 पद्यों का महाकाव्य है, जिसमें महाराष्ट्र के सन्त श्री ज्ञानेश्वर का चरित्र-चित्रित किया गया है।[38] श्री ज्ञानेश्वर के पिता का नाम विठ्ठलदेव था, उन्होंने विवाह के कुछ समय पश्चात् ही सन्यास ले लिया था। बाद में रामानन्द के आग्रह पर पुनः गृहस्थ जीवन में प्रवेश किया, जिससे उन्हें तथा उनके परिवार को समाज ने अपमानित किया। संत ज्ञानेश्वर ने कुछ ही समय में लोगों के हृदय में स्थान प्राप्त कर लिया और ऐसे कार्य सम्पन्न किए जिसके कारण लोग उन्हें विष्णु का अवतार मानने लगे।

93. पारिजातहरणम्- इस महाकाव्य[39] के प्रणेता पं0 उमापति शर्मा 'कविपति' है। इसमें 21 सर्ग हैं तथा यह महाकाव्य पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध दो भागों में विभाजित है। इस महाकाव्य की कथा श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के 59वें अध्याय की कथा पर आधारित है। इस महाकाव्य में रैवतक पर्वत पर रुक्मिणी द्वारा किये गये याग के प्रसंग में नारद मुनि का रुक्मिणि को पारिजात पुष्प अर्पित करना तथा इसके कारण सत्यभामा का रुष्ट होना पुनः भगवान् कृष्ण का स्वर्ग से पारिजात को लेकर सत्यभामा के भवन में लगाना आदि कथा का वर्णन है।

94. कंससंहारमहाकाव्य- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना पी. उमामहेश्वर शास्त्री ने की है। ये आन्ध्रप्रदेश के रहने वाले थे। 18 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में श्रीकृष्ण की बाल लीलाओं सहित कंस वध का वर्णन है। यह ग्रन्थ सन् 1968 ई0 में प्रकाशित है।

95. कुरुक्षेत्र- प्रकृत महाकाव्य[40] की रचना पाण्डुरंग शास्त्री डेग्वेकर ने की है। ये पूना महाराष्ट्र के निवासी थे। इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं। इस महाकाव्य का आरम्भ ऋक्ष राजा के वर्णन से होता है। इसमें कुरुक्षेत्र की भूमि पर हो रहे युद्ध से विमुख हुए अर्जुन को श्रीकृष्ण के द्वारा दिए गए गीतोपदेश का वर्णन है। महाकाव्य में प्राचीन कालीन राज्य पद्धति के भी दर्शन होते हैं।

96. श्रीबोधिसत्वचरितम्- इस महाकाव्य[41] की रचना डॉ0 सत्यव्रत शास्त्री ने की है। इनका जन्म पाकिस्तान के लाहौर में 1930 ई0 को हुआ।[42] देश के विभाजन के पश्चात् इन्होंने अम्बाला और जालन्धर में रहकर अध्ययन किया। शास्त्री द्वारा चार महाकाव्यों का प्रणयन किया

गया जिनमें से प्रथम श्रीबोधिसत्वचरित है। इस महाकाव्य में चौदह सर्ग हैं। इस महाकाव्य का प्रणयन पालि तथा संस्कृत में प्राप्त होने वाली जातक कथाओं को आधार बनाकर किया गया है। इसमें बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व, बुद्ध के पूर्वजन्मों की कथाएँ हैं। इस महाकाव्य में वर्णित है कि- बोधिसत्व अनेक जन्म लेकर उदात्त कर्म करते हुए अन्त में बुद्धत्व को प्राप्त करता है।

97. श्रीसुभाषचरितम्- इस महाकाव्य की रचना विश्वनाथ केशव छत्रे ने की है। इसका प्रकाशन कवि द्वारा स्वयं कराया गया।[43] इसमें दस सर्ग है तथा अन्त में तीन छोटे-छोटे परिशिष्ट हैं। वीर रस प्रधान इस महाकाव्य के नायक सुभाष चन्द्र बोस है। इस महाकाव्य में इनके जीवन वृत्त का वर्णन करते हुए कवि उनकी तेजस्विता, बुद्धिमता तथा अनन्य राष्ट्रभक्ति का वर्णन किया है।

98. विशालभारतम्- सन् 1964 ई0 में रचित इस महाकाव्य की रचना श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरखपुर के प्रधानाचार्य पं0 श्यामवर्ण द्विवेदी ने की है।[44] यह महाकाव्य 10 सर्ग तथा 814 पद्यों में निबद्ध है।[45] इस महाकाव्य के प्रमुख नायक जवाहर लाल नेहरू है। इसमें उनके द्वारा किये गये भारत के स्वतन्त्रता आन्दोलन के विभिन्न घटनाक्रमों का वर्णन किया गया है। नेहरू जी के अतिरिक्त इस महाकाव्य में लोकमान्य तिलक, गोपालकृष्ण गोखले, महात्मा गाँधी, सुभाषचन्द्र बोस, गोविन्दबल्लभ पन्त, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद आदि राष्ट्र नायकों का भी वर्णन किया गया है।

99. सुरथचरितम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना श्री क्षेमधारि सिंह शर्मा ने की है। इनका जन्म सन् 1893 ई0 में मिथिला के राजपरिवार में हुआ था।[46] इन्होंने 18 सर्गो में निबद्ध अपने महाकाव्य का आधार मार्कण्डेय पुराण के 81वें अध्याय से लेकर 93वें अध्याय तक की कथा को बनाया है।[47] इसमें कोल्हापुर के राजा सुरथ के चरित्र को वर्णित किया गया है। जो अपनी रानी मनोरमा के साथ सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं। बलि नामक शत्रु से पराजित होकर राजा सुरथ का राज्यलक्ष्मी और गृहलक्ष्मी से वंचित होकर वन जाना, जगदम्बा की उपासना से राज्य प्राप्त करना आदि कथा का वर्णन किया गया है।

100. कर्णार्जुनीयम्- इस महाकाव्य की रचना बिहार के सरारा ग्राम, निवासी कविवर विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र ने की है।[48] 22 सर्गों तथा 1720 पद्यों में निबद्ध इस काव्य का आधार महाभारत और पद्मपुराण है। इसमें कर्ण और अर्जुन का जन्म, शिक्षा प्राप्ति, कर्ण की दानवीरता तथा उनके युद्धादि का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य को कवि ने स्वयं प्रकाशित करवाया।[49]

101. गणपतिसम्भवम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना प्रभुदत्त शास्त्री ने की है। इनका जन्म सन् 1892 ई0 में अलवर जिले के ततारपुर गाँव, राजस्थान में हुआ था।[50] यह महाकाव्य कालिदास

कृत कुमारसम्भवम् के आधार को लक्ष्य करके लिखा गया है।[51] 10 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में सर्वप्रथम हिमालय और कश्मीर का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् शिव-पार्वती का विवाह, पार्वती द्वारा मिट्टी से पुत्र गणेश का निर्माण, शिव के प्रहार से गणेश का शिरोच्छेदन, हाथी का शिर-आरोपण, परशुराम द्वारा गणेश के दाँत के टूटने की कथा आदि का वर्णन है।

102. महर्षिज्ञानानन्दचरितम्- प्रकृत महाकाव्य की रचना चम्पारण जिले के सरारा ग्राम के निवासी कविवर विन्ध्येश्वरीप्रसाद मिश्र ने की है। 23 सर्गो में निबद्ध इस महाकाव्य में श्रीभारतधर्म महामण्डल के संस्थापक महर्षिज्ञानान्द के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है। शान्तरस प्रधान इस रचना में कवि ने अपने चरित-नायक के माध्यम से संसार को उपदेश प्रदान किया है। इस रचना का प्रकाशन श्रीभारतधर्म महामण्डल, जगतगंज, वाराणसी, उत्तर-प्रदेश से 1968 ई0 में हुआ।

103. श्रीनेहरूचरितम्- इस महाकाव्य की रचना श्री ब्रह्मानन्द शुक्ल ने की है। ये मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेश के निवासी थे। प्रकृत महाकाव्य 18 सर्गों में निबद्ध है, जिसमें पं0 जवाहर लाल नेहरू के जीवन-चरित्र का वर्णन किया गया है साथ ही नेहरू जी की समकालीन ऐतिहासिक घटनाओं का भी वर्णन है। जैसे- बॉकीपुर, लखनऊ इत्यादि स्थानों पर हुए कांग्रेस अधिवेशन, देश-विभाजन, राज्यों का एकीकरण, जेनेवा समझौता, कनाडा समझौता, चीन युद्ध इत्यादि। भारत राष्ट्र के विरोधी राष्ट्र चीन और पाकिस्तान द्वारा किये नृशंस दुर्व्यवहारों का भी इसमें वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1969 ई0 में शारदासदन, 38 राधाकृष्ण, खुरजा, उत्तर-प्रदेश से हुआ है।

104. श्रीतिलकयशोऽर्णव- प्रस्तुत महाकाव्य के रचनाकार श्रीहरि अणे हैं। इनका जन्म सन् 1880 ई0 में पुणे, महाराष्ट्र में हुआ।[52] श्री अणे स्वतन्त्रता संग्राम के एक ओजस्वी सेनानी रह चुके हैं।[53] इन्होंने इस महाकाव्य का आधर अपने गुरु लोकमान्य बालगंगाधर तिलक की जीवन घटनाओं को बनाया है। यह महाकाव्य तीन खण्डों में विभक्त है। इसके प्रथम खण्ड में 25 तरंगे, द्वितीय खण्ड में 16 और तृतीय खण्ड में 44 तरंगे हैं। इस प्रकार इसमें 85 तरंगें तथा 10712 पद्य हैं, जिनमें बालगंगाधर तिलक के जीवन चरित के साथ-साथ उनके द्वारा किये गये स्वतन्त्रता संग्राम के प्रयत्नों और अन्य देशभक्तों के कार्यों का भी वर्णन है।[54]

105. श्रीलोकमान्यचरितम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना कविशिरोभूषण वासा सूर्यनारायणशास्त्री ने की है। इस महाकाव्य में 29 सर्ग हैं, जिनमें श्रीलोकमान्यतिलक जी का अध्ययन, कारावास, स्वतन्त्रता के लिए उद्घोष, लण्डन यात्रा, स्वतन्त्रता के लिए समर्थन, कालीघट्टनगर प्रसंग आदि सम्पूर्ण जीवन-चरित को वर्णित किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1970 ई0 में वासा कृष्णमूर्त्ति, कमला निवास, श्री-काकुलम् आन्ध्रप्रदेश से हुआ।

106. स्वराज्यविजय- इस महाकाव्य[55] की रचना उत्तर-प्रदेश के रहने वाले कवि द्विजेन्द्रनाथ शास्त्री ने की है।[56] इसमें 20 सर्ग हैं। इस महाकाव्य में भारत देश का प्राचीन गौरव, देश की अधोगति, विदेशियों का आक्रमण तथा अत्याचार सहित स्वराज्य प्राप्ति के लिए, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई, महात्मा गाँधी, लालाराजपत राय, जवाहर लाल नेहरू, सुभाष चन्द्र बोस आदि राष्ट्र-नायकों के संघर्ष पूर्ण राष्ट्रीय कार्यों का वर्णन किया गया है।

107. श्रीनारायणविजय- इसकी रचना के. बालरामप्पणिक्कर ने की है। 21 सर्गों के इस महाकाव्य में केरल के समाज सुधारक सन्त श्री नारायण गुरु के जीवन-दर्शन का वर्णन किया गया है। इसमें इनके माता-पिता का पुत्र प्राप्ति की इच्छा से तप करना, देवी कृपा से इनका जन्म होना, शिक्षा-प्राप्ति, विवाह, सन्यास, तीर्थयात्रा, नारायण का ब्राह्मणों, ईसाईयों तथा महात्मा गाँधी से वार्तालाप शिवगिरि मठ की स्थापना, शारदा प्रतिष्ठा, अद्वैत आश्रम और संस्कृत पाठशाला की स्थापना, सहोदर संघ की स्थापना, रवीन्द्रनाथ के दर्शन तथा श्रीनारायण धर्म की स्थापना आदि का वर्णन किया गया है। यह काव्य सन् 1971 ई0 में त्रिवेन्द्रम् से प्रकाशित है।

108. विद्यार्थी-आत्मचरितम्- कवि त्र्यम्बक आत्माराम भण्डारकर द्वारा रचित यह दूसरा महाकाव्य है।[57] इसमें कवि ने आत्मचरित का वर्णन किया है, जिसमें कवि का स्वदेशी आन्दोलन में भाग लेना, भिक्षावृत्ति द्वारा जीवन निर्वाह करते हुए अध्ययन करना और वसन्त कॉलेज राजघाट, वाराणसी में संस्कृत अध्यापन करते हुए सेवानिवृत्त होना वर्णित है।

109. पूर्वभारतम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना मेरठ, उत्तरप्रदेश के निवासी कवि प्रभुदत्त स्वामी ने सन् 1972 ई0 में की।[58] 21 सर्गों तथा 1445 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में मनु से लेकर यवनराज सिकन्दर के भारत पर आक्रमण करने तथा पराजित होने तक की कथा का वर्णन है।[59] इसमें भारत के प्रमुख स्थानों हिमालय, कश्मीर, नदियों आदि का वर्णन करते हुए भारत देश की महिमा का भी वर्णन किया गया है।[60]

110. शिवकथामृतम्- इस महाकाव्य[61] की रचना श्री छज्जूराम शास्त्री ने की है। 18 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य का आधार शिवपुराण में वर्णित कथाऐं हैं। इसमें शिव-पार्वती का विवाह, शिव पुत्र स्कन्द तथा गणेश वर्णन, शिव द्वारा त्रिपुरदाह, अन्धकारसुर-वध, जलन्धर-वध, शंखचूड-वध तथा गजासुर वध इत्यादि कथा वर्णित है।

111. श्रीकृष्णानन्दमहाकाव्यम्- प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता हिसार के ब्राह्मण परिवार में जन्में महाकवि वनमालिदास शास्त्री हैं। 16 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के नायक कवि वनमालिदास के गुरु श्रीकृष्णानन्द जी हैं। इसमें कवि ने गुरु के जन्म से लेकर, उनकी मृत्यु तक का वर्णन किया है। इसका प्रकाशन कवि द्वारा स्वयं कराया गया।[62]

112. उत्तरसीताचरितम्- आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित इस महाकाव्य का पूर्वनाम सीताचरित था[63], परन्तु षष्ठ संस्करण में इस महाकाव्य की कथानुसार इसका नाम उत्तरसीताचरितम् रखा गया।[64] प्रकृत महाकाव्य 10 सर्गों तथा 694 पद्यों से युक्त है, जिसमें लंका-विजय के पश्चात् राम के राज्याभिषेक से लेकर सीता के भू-समाधि तक का वृत्तान्त उपनिबद्ध है।[65]

113. लवलीपरिणय- इस महाकाव्य की रचना कर्नाटक निवासी के. एस. नागराजन् ने की है।[66] 10 सर्गों में निबद्ध इस काव्य का आधार स्कन्दमहापुराण की शंकर संहिता का देवकाण्ड है।[67] इसमें लवली के जन्म तथा लवली और सुब्रह्मण्य (कार्तिकेय) के विवाह की कथा को वर्णित किया गया है।[68]

114. नेहरूयशः सौरभम्- प्रकृत महाकाव्य के रचनाकार गोस्वामी बलभद्र प्रसाद शास्त्री हैं।[69] 12 सर्गो में निबद्ध इस महाकाव्य में श्री जवाहरलाल नेहरू के चरित्र-चित्रण के साथ-साथ देशभक्तों को बन्दी बनाने, उन पर गोलियाँ चलाने, लाठियाँ बरसाने तथा फाँसी देने आदि घटनाओं का वर्णन किया गया है। कवि का मत है कि जनता में राष्ट्रिय भावना का उदय करने के लिए राष्ट्रनायकों के चरित का वर्णन करना चाहिए।[70]

115. नाचिकेतसम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना श्रीकृष्णप्रसाद शर्मा घिमिरे ने की है। इनके द्वारा रचित श्रीकृष्णचरितामृतम् महाकाव्य का वर्णन पहले ही किया जा चुका है। नाचिकेतसम् 28 सर्गों का महाकाव्य है, जिसमें कठोपनिषद् के यम-नचिकेता संवाद को आधार बनाया गया है। कवि ने यमदेवता के माध्यम से जीव-आत्मा का वर्णन इसमें किया है इस कारण इस रचना को आध्यात्मिक कहा जा सकता है। इसका प्रकाशन श्रीकृष्णप्रसाद शर्मा घिमिरे 17/356 टंगाल गहिरीधारा, काठमाण्डू, नेपाल से सन् 1975 ई0 में हुआ।

116. रामायणसोपान- इस महाकाव्य की रचना बीकानेर, के हनुमानगढ़ निवासी श्रीरामचन्द्र शास्त्री ने की है। आठ सर्गों में विभक्त इस काव्य का आधार ब्रह्मपुराण का 123 वाँ अध्याय है। इसमें केकैयी द्वारा राजा दशरथ से माँगे गये दो वरदानों की कथा मुख्यरूप से वर्णित की गयी है। जिनमें प्रथम वरदान में केकैयी का राम के लिए 14 वर्ष का वनवास माँगना तथा दूसरे में भरत के लिए राज्याभिषेक माँगने का वर्णन है।[71]

117. यशोधरा- इस महाकाव्य की रचना आन्ध्र प्रदेश निवासी पण्डित आगेटि परीक्षित शर्मा ने की है।[72] इसमें 20 सर्ग है, जिनमें गौतम बुद्ध के गृहत्याग की प्रसिद्ध कथा को आधार बनाकर उनकी पत्नी यशोधरा का चरित्र चित्रित किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन पण्डित वसन्त अनन्त गाडगिल ने करवाया था।[73]

118. इन्दिरागाँधीचरितम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना दिल्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत-विभाग के आचार्य एवं पूर्व अध्यक्ष प्रो0 सत्यव्रत शास्त्री ने की है।[74] इस महाकाव्य[75] में 25 सर्ग हैं, जिनमें इन्दिरा गाँधी का चरित्र वर्णित किया गया है। इसमें इन्दिरा का जन्म, उनकी शिक्षा, विवाह, परिजनों का स्वतंत्रता के लिए किए गए प्रयास, इन्दिरा गाँधी का प्रधानमंत्री बनना तथा राजनीतिक घटनाओं का वर्णन किया है।[76] इस महाकाव्य का अनुवाद कवि के मित्र डॉ0 जियालाल कम्बोज द्वारा किया गया है। ये हिन्दू महाविद्यालय, दिल्ली के प्राध्यापक रहे हैं।[77]

119. भवनाटकमहाकाव्य- प्रकृत महाकाव्य के रचयिता परमपूज्य ब्रह्मचारी पूर्ण चैतन्य जी हैं। इस महाकाव्य में कवि ने सांसारिक रङ्गमञ्च पर व्यवहार करने वाले जीवों का वर्णन काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया है। इसमें चार अंक है- पहला ब्रह्मचर्याश्रम, दूसरा गृहस्थाश्रम, तीसरा वानप्रस्थाश्रम और चौथा सन्यासाश्रम इन अंकों के अन्तर्गत रंगों की योजना की गई है। ब्रह्मचर्य में आठ रंग, गृहस्थाश्रम में ग्यारह रंग, वानप्रस्थाश्रम में पांच रंग तथा सन्यासाश्रम में आठ रंग हैं। इन आश्रमों में हमारे जो कर्त्तव्य है, उनका वर्णन कवि द्वारा इस महाकाव्य में किया गया है। इस महाकाव्य का प्रकाशन 1976 ई0 में श्रीमुरलीधर गोपाल निखाड़े, घर नं0 418, गंगाकाठ सत्यनारायण मन्दिर के निकट, त्र्यम्बकेश्वर, नासिक से हुआ।

120. श्रीहरिप्रेष्ठमहाकाव्य- यह महाकाव्य श्री वनमालिदास शास्त्री द्वारा रचित है।[78] इसका प्रकाशन भी कवि ने स्वयं कराया है।[79] इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं, जिनमें कवि ने अपने सह-अध्यायी एवं मित्र श्रीहरिप्रेष्ठ के चरित्र को आधार बनाया है। श्रीहरिप्रेष्ठ ने पञ्चीस वर्ष की अवस्था में ही अपने शिक्षक पद, नवविवाहिता पत्नी, वृद्ध माता और भाई को त्याग दिया तथा श्रीकृष्ण की भक्ति और तपस्या में लग गये।[80]

121. प्रेमपत्रम्- प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता पण्डित कृष्णचन्द्र चतुर्वेदी हैं। यह महाकाव्य 9 प्रतानों में विभक्त है, जिनमें मधुपुरी में राज्य संचालन करते हुए स्वप्न में श्रीकृष्ण का ब्रज बिहार, राधिका-रमण आदि दृश्यों को देखकर उद्विग्न होना, ब्रज से आए हुए तोते से राधा की विरहावस्था सुनकर अपने प्रतिनिधि के रूप में प्रेमपत्र देकर उद्धव को ब्रज भेजना, गोपिकाओं के भक्तिमय वार्तालाप से उद्धव के ज्ञानमद का परित्याग एवं श्रीकृष्ण का प्रादुर्भूत होना वर्णित है। इस महाकाव्य का प्रकाशन श्रीमाथुर चतुर्वेद संस्कृत महाविद्यालय डेम्पियर नगर, मथुरा से 2 मई 1976 ई0 में हुआ।

122. हरनामामृतम्- इस महाकाव्य की रचना राजस्थान निवासी श्री विद्याधर शास्त्री ने की है। 16 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में कवि ने अपने पितामह पण्डित हरनाम दत्त के जीवन-चरित्र को उद्घाटित किया है।[81] इस महाकाव्य में कवि ने स्थान-स्थान पर अपने प्रदेश राजस्थान के

सौन्दर्य का भी वर्णन किया है।[82]

123. श्रीजवाहरज्योतिर्महाकाव्य- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना पण्डित रघुनाथ प्रसाद चतुर्वेदी ने की है।[83] 21 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में पण्डित जवाहर लाल नेहरू के जीवन-चरित को आधार बनाया गया है।[84] इसके साथ इसमें महात्मा गाँधी, सरदार वल्लभ भाई पटेल आदि महापुरुषों का भी वर्णन किया गया है। कवि द्वारा इस काव्य में अंग्रेजी भाषा के स्थान पर स्वदेशी भाषा हिन्दी के प्रयोग का सन्देश दिया गया है।[85]

124. संस्कारसङ्गरम्- इस महाकाव्य की रचना महाराष्ट्र निवासी गणेश गंगाराम पेंगरकर ने की है।[86] 9 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य में पाश्चात्य संस्कार के प्रभाव वाले एक तरुण और सनातन पवित्र संस्कार से संस्कारित एक तरुणी के परस्पर विरोधी संस्कारों के कारण, श्रान्त-कलान्त हुए करुण तथा विपन्न संसार का चित्रण किया गया है।[87] इस काव्य की कथावस्तु कल्पित-पात्रों पर आधारित है।[88]

125. क्रिस्तुभागवतम्- प्रस्तुत महाकाव्य के रचनाकार केरल निवासी पी. सी. देवस्य हैं।[89] 33 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में ईसामसीह के जीवन-चरित्र का वर्णन किया गया है।[90] साथ ही साथ ईसामसीह के अमृतमय उपदेश भी काव्य में यथास्थान प्राप्त होते हैं।[91] कवि की यह रचना साहित्य अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत है।[92]

126. केरलोदय- प्रकृत महाकाव्य की रचना मद्रास विश्वविद्यालय में मलयालम विभाग के प्राध्यापक के. एन. एझुत्तच्छन् ने की है।[93] 21 सर्गों और 2484 श्लोकों में निबद्ध यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है, जिसमें केरल राज्य के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास के वर्णन के साथ-साथ राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द सरस्वती, रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, नेहरू, गांधी आदि राष्ट्रभक्तों के राष्ट्र-कल्याणकारी कार्यों का भी वर्णन किया गया है।[94] इस महाकाव्य में कवि ने अनेक स्थानों पर राष्ट्र की स्वतन्त्रता पर विशेष बल दिया है।[95]

127. सुगमरामायण- इस महाकाव्य के रचनाकार राजस्थान निवासी आचार्य रमेशचन्द्र शुक्ल हैं।[96] 14 सर्गों और 1016 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में राम की सम्पूर्ण जीवन कथा को सरलता के साथ प्रस्तुत किया गया है।[97] इसमें कवि ने रामायण के सभी आदर्श पात्रों को प्राचीन परम्परा का अनुसरण करते हुए प्रस्तुत किया है।[98] इस महाकाव्य पर कवि को उत्तर-प्रदेश संस्कृत आकदमी द्वारा पुरस्कृत किया गया है।[99]

128. जनविजय- इस महाकाव्य की रचना उत्तर-प्रदेश के अनवरपुर गांव निवासी परमानन्द शास्त्री ने की है।[100] इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1978 ई0 में कवि ने स्वयं कराया।[101] 15 सर्गों तथा 1195 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का वर्णन है, जिसमें

जवाहरलाल नेहरू की नीति, चीन युद्ध, पाक युद्ध, नेहरू एवं शास्त्री का निधन, इन्दिरा गांधी की सत्ता प्राप्ति, संजय का उत्कर्ष, जनतादल का उद्भव, इन्दिरा गाँधी की पराजय, जनतादल की विजय तथा भारत की दुर्दशा का वर्णन किया गया है।[102]

129. नवभारतम्- इस महाकाव्य के रचयिता श्री मुत्तुकलम् श्रीधर हैं। 18 सर्गों और 1282 पद्यों में विभक्त यह एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। कवि ने पण्डित जवाहरलाल नेहरू को महाकाव्य का नायक चयनित किया है। इसमें मोतीलाल नेहरू का जन्म, विद्याध्ययन, स्वरूपरानी के साथ विवाह, इन्दिरा-जन्म, देश की आजादी के लिए इनका संघर्ष, कमला नेहरू की मृत्यु द्वितीय विश्व युद्ध, भारत-विभाजन, स्वतन्त्रता-प्राप्ति तथा पण्डित नेहरू का प्रथम प्रधानमंत्री बनना आदि का वर्णन है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1987 ई0 में श्रीमुतुकुलम् श्रीधर चेन्नीथला पी. ओ. से हुआ।

130. श्रीभक्तसिंहचरितम्- इस महाकाव्य की रचना होशियारपुर, पंजाब निवासी श्री स्वयंप्रकाश शर्मा ने की है।[103] सात सर्गों और 411 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में भगत सिंह के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है।[104] साथ ही साथ इसमें भगत सिंह के बाबा अर्जुन सिंह, पिता श्रीकृष्ण सिंह तथा चाचा स्वर्ण सिंह और अजीत सिंह के देश भक्ति एवं त्याग पूर्ण कार्यों का भी वर्णन प्राप्त होता है। महाकाव्य का अन्त भगत सिंह की फांसी के साथ किया गया है। भगत सिंह ने जिस गीत को गुनगुनाते हुए शहादत का मार्ग अपनाया था, उसी का काव्यानुवाद कवि ने किया है।[105] कवि ने एक पद्य में भगत सिंह के स्वमातृ भूमि प्रेम को बहुत सुन्दर शब्दों में व्यक्त किया है।[106]

131. सुरेन्द्रचरितमहाकाव्य- प्रकृत महाकाव्य के प्रणेता उत्कल निवासी महाकवि दिगम्बर महापात्र हैं। इस काव्य की रचना इन्होंने सन् 1968 से 1975 ई0 के मध्य में की थी। इसका प्रकाशन स्वयं कवि ने 1978 ई0 में ग्राम पुरूणापणि, कलापथर, कटक, उड़ीसा से किया। प्रस्तुत महाकाव्य 11 सर्गों में निबद्ध है, जिसमें उत्कल प्रान्तीय सम्बलपुर के चौहान राजवंश में उत्पन्न हुए सुरेन्द्रसाय के विदेशी शासकों से मातृभूमि को मुक्त कराने के लिए किये गए वीरता पूर्ण कार्यों का वर्णन है।

132. मोहभङ्गम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना जोधपुर एवं दील्ली विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर प्रतिष्ठित रह चुके कविवर रसिक विहारी जोशी ने की है।[107] 8 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य का आधार श्रीमद्भागवत् एवं विष्णु पुराण में वर्णित सौभरि आख्यान है। इसमें महान् विचारक, वेदों के ज्ञाता एवं तपोनिष्ठ मुनि सौभरि के संसार के प्रति मोह-भङ्ग का वर्णन बड़ी दार्शनिकता के साथ प्रस्तुत किया गया है।[108]

133. विश्वभानुः– प्रकृत महाकाव्य की रचना केरल के निवासी पी. के. नारायण पिल्लेई ने की है।[109] 21 सर्गों के इस महाकाव्य में कुल 557 पद्य हैं, जिनमें स्वामी विवेकानन्द का सम्पूर्ण जीवन–चरित्र तथा उनके द्वारा किये गये समाज–सुधार के कार्यों का वर्णन किया गया है। कवि ने उन्हें दिव्य आत्मा का अवतार मानकर उनके जीवन दर्शन को वर्णित किया है।[110] इसका प्रकाशन अंग्रेजी अनुवाद के साथ हुआ है।[111]

134. श्रीकृष्णचरितम्– इस महाकाव्य की रचना आचार्य रमेश चन्द्र शुक्ल ने की है।[112] इस महाकाव्य में ग्यारह सर्ग हैं, जिनमें श्रीकृष्ण का मथुरा गमन, अक्रूर का हस्तिनापुर गमन, जरासन्ध वध, कृष्ण रुक्मिणी विवाह, नरकासुर वध, कृष्ण का दूत बनना तथा महाभारत का युद्ध आदि का वर्णन किया गया है।[113] यह महाकाव्य उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा सम्मानित है।[114]

135. नेपालसाम्राज्योदय– इस महाकाव्य के रचयिता नेपाल के सादा ग्राम निवासी पण्डित पशुपति झा हैं।[115] 15 सर्गों के इस महाकाव्य[116] में कवि ने नेपाल की भूमि की महिमा का वर्णन किया है। साथ ही नेपाल देश के साम्राज्योदय का भी वर्णन है। इसमें नेपाल के इतिहास का वर्णन आरम्भ से लेकर वीरेन्द्रविक्रम शाहदेव के काल तक किया गया है।[117] इस काव्य में अनेक पद्य ऐसे भी हैं, जिनमें भारत देश का भी वर्णन प्राप्त होता है।[118]

136. श्रीद्वारकाधीशमहाकाव्यम्– प्रकृत महाकाव्य की रचना वृन्दावन स्थित प्राच्य दर्शन महाविद्यालय के संस्कृत विभाग के अध्यक्ष श्री वासुदेव कृष्ण चतुर्वेदी ने की है।[119] 21 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य में उत्तर प्रदेश के मथुरा नगर में स्थित भगवान् श्री द्वारकाधीश जी के मन्दिर का वर्णन किया गया है।[120] इस मन्दिर की स्थापना श्री गोकुलदास पारिख ने की थी।

137. श्रीमुत्तुस्वामीदीक्षितचरितम्– प्रस्तुत महाकाव्य के रचनाकार डॉ0 वी. राघवन् हैं।[121] इस महाकाव्य में 18 सर्ग हैं, जिनमें मुत्तुस्वामी का जन्म, उनके पिता श्री रामस्वामीदीक्षित की मृत्यु, चिन्नस्वामी और बालुस्वामी की प्रसिद्धि, मुत्तुस्वामी की दीक्षा और उनकी तीर्थयात्रा, अनेक स्थानों पर उनका भ्रमण, एक्कय्य कुमार का विवाह, नवरात्रि का वर्णन तथा दीपावली के दिन मुत्तुस्वामी की मुक्ति आदि का वर्णन किया गया है। इस काव्य का प्रकाशन वी. राघवन् की मृत्यु के पश्चात् इनके पुत्र आर. कालिदास ने कराया था।[122]

138. गाङ्गेयमहाकाव्यम्– इस महाकाव्य के रचयिता चन्द्रभानु शास्त्री हैं, इनका जन्म जिला सोनीपत के छिछड़ाना ग्राम में हुआ था।[123] इनके द्वारा रचित गाङ्गेयमहाकाव्य (पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्ध) दो भागों में विभक्त है। इस महाकाव्य के पूर्वार्द्ध भाग में पाँच सर्ग हैं, जिनमें गंगापुत्र भीष्म का चरित्र–चित्रित किया गया है।[124]

139. विन्ध्यवासिनीचरित- प्रस्तुत महाकाव्य के प्रणेता महाराष्ट्र सतारा के निवासी कवि वसन्त त्र्यम्बक शेवडे है।[125] 16 सर्गों और 103 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में नन्द और यशोदा की पुत्री विन्ध्यवासिनी, अगस्त्यमुनि, वसुदेव, श्रीकृष्ण आदि का चरित्र चित्रित किया गया है।[126]

140. चीरहरणम्- प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में संस्कृत विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्यरत रह चुके, डॉ0 परमानन्द शास्त्री हैं।[127] यह महाकाव्य 12 सर्गों और 617 पद्यों में विभक्त हैं। इसका आधार महाभारत की प्रसिद्ध कथा चीरहरण है।[128] इसमें दुर्योधन के निमन्त्रण पर युधिष्ठिर का हस्तिनापुर जाना और द्यूतक्रीड़ा में अपना सर्वस्व हारना, दर्योधन और दु:शासन की धृष्टता आदि का वर्णन किया गया है। इसका प्रकाशन स्वयं परमानन्द शास्त्री ने सन् 1983 ई0 में करावाया तथा सन् 1985 ई0 में मध्यप्रदेश साहित्य परिषद् से कवि को इस काव्य पर कालिदास पुरस्कार प्राप्त हुआ।[129]

141. श्रीदेवीचरितम्- प्रकृत महाकाव्य की रचना बिहार के बेनीपुर ग्राम निवासी पं0 रामावतार मिश्र ने की है।[130] पं0 रामावतार मिश्र द्वारा रचित देवीचरितम् और श्री शेवडे विरचित विन्ध्यवासिनीचरित इन दोनों महाकाव्यों में विषयगत समानता है। दोनों काव्यों के नायक और प्रतिनायक भी समान हैं। किन्तु दोनों की वर्णनशैली में भिन्नता है।[131] 19 सर्गों और 1939 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में मधु-कैटभ, निशुम्भ-शुम्भ का उत्पात और आदि शक्ति जगज्जननी द्वारा उनका विनाश वर्णित है।[132] इतनी बड़ी विजय के पश्चात् चारों ओर हुई सुख-शान्ति का वर्णन कवि ने बड़ी कुशलता के साथ किया है।[133] कवि को इस रचना पर सन् 1983 ई0 में उत्तर-प्रदेश संस्कृत अकादमी द्वारा कालिदास पुरस्कार से पुरस्कृत किया गया।[134]

142. महीमहम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना जयपुर, राजस्थान के रहने वाले श्री द्विजेन्द्रलाल शर्मा पुरकायस्थ ने की है।[135] 12 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य का आधार पुराणों में वर्णित देवयानी और कच की कथा है। जिसमें गुरु अंगिरस द्वारा शुक्र का स्वर्ग में शिक्षा ग्रहण करना, गुरु अंगिरस के असूया भाव को जानकर शुक्र का तप करना, शुक्राचार्य और जयन्ती का गन्धर्व विवाह, शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी का जन्म, देवता और राक्षसों का युद्ध, देवी की मंत्रणा, कच समागम आदि कथा वर्णित है। इसे कवि द्वारा स्वयं प्रकाशित करवाया गया।[136]

143. विद्योत्तमाकालिदासीयम्- इस महाकाव्य के रचयिता आचार्य रामकिशोर मिश्र का जन्म उत्तर प्रदेश के एटा जनपद के सोरों नगर में विक्रम सम्वत् 1995 में हुआ।[137] मिश्र जी महामना मालवीय महाविद्यालय, मेरठ के संस्कृत विभागाध्यक्ष हैं। इनके द्वारा रचित विद्योत्तमाकालिदासीयम् महाकाव्य में 21 सर्ग हैं, जिनमें विद्योत्तमा का जन्म, उसकी प्रतिज्ञा, कालिदास से विवाह, कालिदास का कवित्व, कालिदास विद्योत्तमा की शास्त्र-विषयक चर्चा, पुत्र प्राप्ति आदि वर्णित है। इस महाकाव्य का प्रकाशन स्वयं कवि द्वारा कराया गया है।[138]

144. श्रीराधाचरितम्- प्रकृत महाकाव्य की रचना सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी में व्याकरण विभाग के अध्यक्ष पद पर रह चुके आचार्य कालिका प्रसाद शुक्ल ने की है।[139] 13 सर्गों और 947 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में राधा-कृष्ण की बाललीलाओं और रासलीलाओं का चित्रण किया गया है।[140] कवि को इस रचना के निर्माण के लिए साहित्य-अकादमी, दिल्ली से पुरस्कृत भी किया गया है।[141]

145. श्रीवैदेहीचरितम्- इस महाकाव्य की रचना सीतामढ़ी, बिहार के रहने वाले रामचन्द्र मिश्र ने की है।[142] यह महाकाव्य 10 सर्गों में विभक्त है, जिसमें सीता जी के चरित्र का वर्णन किया गया है।[143] सीता के पृथ्वी के गर्भ से प्रकट होने से लेकर अन्त में पृथ्वी में ही समाने तक का चित्रण किया गया है।[144] इस महाकाव्य में कवि ने रामायण की कथा को ही लिया है, इसमें कोई विशेष परिवर्तन नहीं किया गया है।

146. श्रीमज्जवाहरयशोविजय- प्रस्तुत महाकाव्य के रचयिता बीकानेर, राजस्थान के रहने वाले कवि काशीनाथ पाण्डेय चंद्रमौलि हैं।[145] 21 सर्गों में विभक्त इस काव्य का आधार पण्डित जवाहर लाल नेहरू का जीवन-चरित्र है। इस महाकाव्य में कवि ने पण्डित जवाहर लाल के व्यक्तित्व और कृतित्व को वर्णित किया गया है।[146] यहाँ कृतित्व से अभिप्राय पण्डित नेहरू के धार्मिक उपदेशों से है।

147. मौर्यचन्द्रोदयम्- प्रकृत महाकाव्य के रचयिता मेरठ निवासी पण्डित प्रभुदत्त स्वामी हैं।[147] 20 सर्गों में विभक्त, इस महाकाव्य में मगध सम्राट श्री चन्द्रगुप्त मौर्य के चरित्र का वर्णन है। इसके साथ ही राजनीति के ज्ञाता आचार्य चाणक्य के विलक्षता पूर्ण व्यक्तित्व का भी चित्रण किया गया है।[148] कवि ने इस काव्य में राजा के आचरण तथा पृथ्वी पर दीर्घकाल तक शासन करने के सुन्दर उपाय और राष्ट्र का अर्थ अभिव्यक्त किया है।[149]

148. उमोद्वाह- इस महाकाव्य की रचना उत्तर प्रदेश के कुकुढ़ीपुर ग्राम के निवासी कवि हरिहर पाण्डेय ने की है।[150] 16 सर्गों और 1444 पद्यों में निबद्ध इस महाकाव्य में शिव-पार्वती के विवाह का वर्णन किया गया है। इसमें हिमालय पर्वत को राजा के रूप में चित्रित करते हुए, इनके यहाँ पार्वती का जन्म, शिव प्राप्ति के लिए उमा का तप करना इत्यादि कथा का वर्णन किया गया है।[151]

149. जानकीजीवनम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना प्रो0 राजेन्द्र मिश्र ने की है।[152] इनका जन्म 26 दिसम्बर 1942 ई0 को उत्तर-प्रदेश के जौनपुर, जिले के द्रोणीपुर गाँव में हुआ था।[153] प्रो0 मिश्र सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति रह चुके हैं। इनके द्वारा रचित जानकी जीवनम् महाकाव्य 21 सर्गों में विभक्त है, जिसमें सीता के आविर्भाव से लेकर लव-कुश

द्वारा रामायण गान तक की कथा वर्णित है।[154] इस महाकाव्य में राम द्वारा सीता का लोकनिन्दा के कारण निर्वासन नहीं किया गया है, अपितु राम जब लव-कुश को शिक्षा के लिए वाल्मीकि आश्रम भेजते हैं, तब वह स्वयं ही अपनी इच्छा से लव-कुश के साथ वाल्मीकि ऋषि के आश्रम में जाती है। 20वें सर्ग में अवश्मेध यज्ञ में सीता स्वयं अर्धांगिनी बनकर राम के साथ बैठती हैं, कोई स्वर्णनिर्मित प्रतिमा नहीं है। इस प्रकार कवि ने अपनी मौलिक कल्पना के आधार पर इस महाकाव्य को प्रतिष्ठित किया है।

150. श्रीशंकराचार्यचरितम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना हरियाणा के भिवानी जिले के लुहारी जाटू ग्राम में जन्मे श्री निगमबोध तीर्थ ने की है।[155] 13 सर्गों में विभक्त इस महाकाव्य में आदि गुरु शंकराचार्य के जीवन चरित्र का वर्णन है।[156] इसमें शंकराचार्य का जन्म, विद्या प्राप्ति, विश्वनाथ दर्शन, भाष्य-निर्माण, जननीदेह त्याग, मठस्थापना, स्वाधामगमन आदि का वर्णन किया गया है।

151. श्रीमत्प्रतापराणायन- इस महाकाव्य के प्रणेता ओगेटि परीक्षित शर्मा हैं।[157] यह महाकाव्य 6 खण्ड, 80 सर्गों और 4233 श्लोकों में निबद्ध है, जिसमें राजस्थान के महान् देशभक्त महाराणा प्रताप का जीवन चरित्र वर्णित है।[158] यह सम्पूर्ण महाकाव्य राष्ट्रिय भक्ति-भावना से ओत-प्रोत है। इस महाकाव्य पर कवि को सन् 1990 ई0 का साहित्य अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है।[159]

152. स्वातन्त्र्यसम्भवम्- प्रस्तुत महाकाव्य आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी जी द्वारा रचित द्वितीय महाकाव्य है।[160] 33 सर्गों और 2609 पद्यों से युक्त इस महाकाव्य का आधार भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम है। इसमें सन् 1857 ई0 (झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई) से लेकर सन् 1947 ई0 तक के स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किये गये आन्दोलनों का तथा आजादी के बाद भारत की राजनीतिक स्थिति का वर्णन माननीय पूर्व प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी जी के कार्यकाल तक किया गया है।[161] इस महाकाव्य पर कवि को अनेक पुरस्कार प्राप्त हुये हैं।[162]

153. भीष्मचरितम्- इस महाकाव्य की रचना डॉ० हरिनारायण दीक्षित ने की है।[163] 20 सर्गों और 1918 पद्यों में निबद्ध इस काव्य का आधार महाभारत है। इसमें भीष्म के जन्म से लेकर उनके महाप्रयाण तक की जीवन कथा को महाभारत की पृष्ठभूमि के समान ही प्रस्तुत किया गया है।[164] साथ ही इसमें वर्तमान युग की रूढ़ीवादी और भ्रष्टाचारपूर्ण राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक व्यवस्थाओं का भी वर्णन प्राप्त होता है।[165]

154. सुदामाचरित- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना बिहार के भोजपुर निवासी इन्द्रदेव द्विवेदी 'इन्द्र' ने की है।[166] ये केन्द्रीय संस्कृत विद्यापीठ, लखनऊ के प्रवाचक थे।[167] 21 सर्गों में निबद्ध

इस महाकाव्य में सुदामा के द्वारा श्रीकृष्ण के हृदय का परिवर्तन महात्मा गांधी के सिद्धान्त सत्य और अहिंसा के आधार पर किया गया है।[168] सुदामाचरित पर आधारित इस महाकाव्य की कथावस्तु कवि कल्पित है।

155. वामनावतरणम्- प्रस्तुत महाकाव्य प्रो0 राजेन्द्र मिश्र द्वारा रचित द्वितीय महाकाव्य है। इसकी मूलकथा श्रीमद्भागवद् पुराण के बालि-वामन प्रसंग पर आधारित है। इसमें 17 सर्ग ओर 875 पद्य हैं। इस महाकाव्य का मूल उद्देश्य देवराज इन्द्र द्वारा स्थापित आदर्श देवसाम्राज्य के माध्यम से आदर्श भारतीय लोकतन्त्र की स्थापना करना है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 1994 ई0 में अक्षयवट प्रकाशन, इलाहाबाद से हुआ है।

156. पार्थचरितामृतम्[169]- प्रकृत महाकाव्य की रचना हरियाणा राज्य के धामड़ौज में जन्मे पं0 ब्रह्मदत्तवाग्मी ने की है। 18 रत्न और 914 श्लोकों में निबद्ध इस महाकाव्य का आधार महाभारत है। इसमें कृष्ण, अर्जुन के जन्म से लेकर महाभारत के युद्ध तक का वर्णन किया गया है। तत्पश्चात् जीत के बाद पाण्डवों द्वारा श्रीकृष्ण की स्तुति, शर प्रहार से कृष्ण का अपने धाम जाना तथा अर्जुन का उनके पार्षद का पद प्राप्त करना आदि कथा वर्णित है।

157. शुम्भवध- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना महाराष्ट्र के निवासी वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े ने की है।[170] शुम्भवध कवि का दूसरा महाकाव्य है। जिसमें 14 सर्ग और 819 पद्य हैं। यह महाकाव्य देवी भागवत् और मार्कण्डेय पुराण की कथा पर आधारित है, जिसमें शुम्भ-निशुम्भ, चण्ड-मुण्ड, रक्तबीज और धूम्रलोचन जैसे असुरों के विनाश का वर्णन किया गया है।[171]

158. श्रीदेवदेवेश्वर- प्रस्तुत महाकाव्य वसन्त त्र्यम्बक शेवड़े द्वारा रचित तृतीय महाकाव्य है।[172] इस महाकाव्य में 16 सर्ग और 1578 पद्य हैं, जिनमें 1650-1750 ई0 तक का मराठों का इतिहास वर्णित है।[173] इसके अन्तर्गत क्षत्रपति शिवाजी, उनके ज्येष्ठ पुत्र सम्भाजी, दूसरे पुत्र राजाराम और सम्भाजी के पुत्र शाहूजी महाराज का चरित्र-चित्रण किया गया है। साथ ही बाजीराव पेशवा को सम्भाजी के पुत्र शाहूजी महाराज द्वारा दी गयी श्रीदेवदेवेश्वर की मूर्ति की स्थापना आदि कथा का भी वर्णन है।[174]

159. शारदामणिलीलाचरितम्- इस महाकाव्य की रचना पं0 बालकृष्ण ने की है। इनका जनम कुरुक्षेत्र (केथल) हरियाणा में सन् 1921 ई0 में हुआ था। इनके महाकाव्य में 11 सर्ग हैं, जिनमें सन्तश्रीरामकृष्णपरमहंस की धर्मपत्नी शरदामणि के जीवन-चरित का वर्णन किया गया है। स्वामीपरमहंस जी की मृत्यु के पश्चात् शारदामणि ने जिस त्यागमय जीवन का आदर्श प्रस्तुत किया, उसी का इस महाकाव्य में कवि ने वर्णन किया है।[175]

160. दूताञ्जनेय– प्रकृत महाकाव्य की रचना बलभद्र शास्त्री ने की है। 14 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य में श्रीहनुमान द्वारा राम जी के दौत्यकर्म का वर्णन है। यह काव्य सन् 1993 ई0 में वाग्देवता प्रकाशन, बरेली, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित है।

161. आत्मविज्ञानम्– प्रस्तुत महाकाव्य की रचना डॉ0 कपिलदेव शास्त्री ने की है। इस महाकाव्य में 20 सर्ग हैं, जिनमें आत्मविज्ञान का विस्तृत विवेचन किया गया है। कवि ने इसमें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय कोशों का स्वरूप तथा उनके कार्यों का विस्तृत विवेचन किया है।[176]

162. श्रीवीरकुमारसिंहचरितम्[177]– इस महाकाव्य की रचना भभुआ, बिहार, निवासी शिवकुमार शास्त्री ने की है।[178] इस महाकाव्य में 16 सर्ग हैं, जिनमें भोजपुर के बाबू 'कुंअर सिंह' का जीवन–चरित वर्णित है। कुंअर सिंह भोजपुर के स्वातन्त्र्य वीर थे, जिन्होंने सन् 1957 ई0 में अंग्रेजों के शासन के विरुद्ध तलवार उठायी थी। इन्हीं का वर्णन कवि ने इस महाकाव्य में किया है।

163. भार्गवविक्रमम्[179]– प्रस्तुत महाकाव्य की रचना कविवर श्री मतिनाथ मिश्र 'मतंग' ने की है।[180] 16 सर्गों में निबद्ध इस महाकाव्य के नायक परशुराम है। इन्हीं के वीरता पूर्ण जीवन एवं कर्तव्यों का इसमें वर्णन किया गया है। परशुराम इस महाकाव्य के प्रतिनायक कार्तवीर्यार्जुन सहित सभी राजाओं का संहार करके राजशासन और दलितों का उद्धार करते हैं।

164. श्रीसुभाषचरितम्[181]– प्रस्तुत महाकाव्य की रचना बिहार निवासी पण्डित त्रिगुणानन्द शुक्ल ने की है। इस महाकाव्य में 15 सर्ग तथा 749 पद्य हैं, जिनमें श्री सुभाष चन्द्रबोस का जीवन चरित तथा उनके वीरोचित क्रियाकलापों का वर्णन है। इसके साथ महात्मा गाँधी, पण्डित जवाहरलाल नेहरू, डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, स्वामी विवेकानन्द, देशबन्धु चितरञ्जनदास, सरदार विठ्ठलभाई पटेल आदि महापुरुषों के भी महनीय कार्यों का वर्णन किया गया है।

165. भरतचरितम्[182]– इस महाकाव्य की रचना डॉ0 रामकुमार वर्मा ने की है।[183] 9 सर्गों में निबद्ध यह शान्त रस प्रधान काव्य है। जिसमें श्रीमद्भागवत् महापुराण के पञ्चम स्कन्ध में वर्णित जड़भरत के चरित्र का वर्णन किया गया है। इस महाकाव्य की कथावस्तु में कवि ने कुछ परिवर्तन किये हैं, जैसे–सन्यास ग्रहण करने के पूर्व भरत का ज्ञान और वैराग्य से सन्यास के लिए प्रेरित होना आदि।

166. कुमारविजयम्– प्रकृत महाकाव्य आचार्य रेवाप्रसाद द्विवेदी द्वारा रचित तृतीय महाकाव्य है। यह महाकाव्य 11 सर्गों और 832 पद्यों में निबद्ध है, जिसमें भगवान् कार्त्तिकेय द्वारा तारकासुर नामक दैत्य के विनाश का वर्णन किया गया है। इस ग्रन्थ का प्रथम प्रकाशन सन् 2002 ई0 में

हिन्दी अनुवाद सहित कालिदास संस्थानम्, वाराणसी से हुआ तथा इसका पुनः परिष्कृत प्रकाशन कालिदास संस्थानम्, वाराणसी से ही सन् 2007 ई0 में हुआ।

167. भारतमाता ब्रूते- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना डॉ0 हरिनारायण दीक्षित ने सन् 2002 ई0 में की और इसका प्रकाशन सन् 2003 ई0 में ईस्टर्न बुक लिंकर्स, जवाहर नगर, दिल्ली से हुआ। इस महाकाव्य में 22 सर्ग हैं, जिनमें प्रायः प्रत्येक प्रकार के व्यक्ति की व्यथा को सुनाकर उस परिस्थिति को मानवता के विपरीत सिद्ध किया गया है और उसे पनपने देने का सन्देश दिया गया है। इस महाकाव्य में भारतीय संस्कृति, भारतीय सभ्यता, देशप्रेम, सर्वधर्म-समभाव, सर्वजाति-समभाव, सदाचार, समाज की दुर्दशा, नारी-दुर्दशा, दूरदर्शन (टेलिविजन) के दोष, शिक्षा दशा, राजनिति दशा आदि का वर्णन किया गया है।

168. जानकीजीवनम्- इस महाकाव्य के प्रणेता डॉ0 दशरथ द्विवेदी हैं। यह सन् 2004 ई0 में राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली से प्रकाशित है। इसके 18 सर्गों में सीता जी के जीवन वृत्त का साङ्गोपाङ्ग वर्णन किया गया है। साथ ही इसमें नारी की व्यथा, भारत की मनोरम प्रकृति का चित्रण, भारत की महिमा, भारतीय संस्कृति का वैशिष्ट्य, मिथिला प्रदेश का रम्यत्व, सिंहल प्रान्त से लेकर अयोध्या तक के भूभाग का मनोरम वर्णन, वन, पर्वत, नदी आदि का वर्णन करते हुए कवि ने सीता के बाल्यावस्था से लेकर उनके सम्पूर्ण जीवन चरित्र को चित्रित किया है।

169. श्रीरामभिरामीयम्- प्रस्तुत महाकाव्य की रचना केप्टन रामभगत शर्मा ने की। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 2007 ई0 में गाँव-खुड़ाना, जि. महेन्द्रगढ़, हरियाणा से हुआ है। इस महाकाव्य में 27 सर्ग हैं, जिनमें रामायण की कथा, राम के अवतार से लेकर उनके राज्याभिषेक तक वर्णित है।

170. श्रीकरणीचरितामृतम्- प्रो0 महावीर प्रसाद सारस्वत द्वारा रचित प्रस्तुत महाकाव्य का प्रकाशन श्री जगन्नाथ प्रकाशन, चौधरी कॉलोनी, गंगाशहर, जिला बीकानेर, राजस्थान से 2007 ई0 में हुआ। इस महाकाव्य में भगवती दुर्गा देवी जी का करणी देवी के रूप में अवतार लेकर निरंकुश राजाओं, डाकुओं एवं दुष्टों का संहार करना वर्णित है। इनका संहार कर करणी देवी ने जोधपुर एवं बीकानेर की प्रजा को उनके भय से मुक्त करवाया था। इसी कथा का वर्णन महाकाव्य में काव्यात्मक शैली में प्रस्तुत किया गया है।

171. नाचिकेतकाव्य- प्रस्तुत महाकाव्य जयपुर, राजस्थान निवासी डॉ0 हरिराम आचार्य द्वारा रचित है। सात सर्गों और 367 पद्यों में निबद्ध इस रचना की कथावस्तु का आधार कठोपनिषद् में वर्णित वाजश्रवा महर्षि के पुत्र नचिकेता और यमराज का संवाद है। इस काव्य का मूल तत्व

अग्निचयन विद्या और मरणोपरान्त आत्मा के अस्तित्व का प्रतिपादन स्वयं यमराज के मुख से करवाना है। इस महाकाव्य का प्रकाशन सन् 2008 ई0 में लिट्रेरी सर्किल, जयपुर से हुआ है।

इस प्रकार आधुनिक महाकाव्य की परम्परा के अन्तर्गत उपर्युक्त महाकाव्यों को दर्शाया गया है। इन महाकाव्यों के अतिरिक्त आधुनिक संस्कृत महाकाव्य की परम्परा में अनेक महाकाव्य ऐसे भी मिलते हैं, जिनकी प्रकाशन तिथि एवं लेखकों का परिचय उल्लिखित नहीं है, केवल महाकाव्य के रूप में इनका उल्लेख किया गया है। ये महाकाव्य श्रीकेशवराव मुसलगाँवकर प्रणीत ग्रन्थ आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा तथा संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास सप्तम खण्ड (आधुनिक संस्कृत साहित्य का इतिहास) नामक ग्रन्थों में उल्लिखित है।

आधुनिक संस्कृत साहित्य का समग्रता के साथ अवलोकन करने पर यह ज्ञात होता है कि संस्कृत साहित्य की प्राचीन परम्परा की अपेक्षा आधुनिक संस्कृत साहित्य की परम्परा व्यापक और विशाल है। इनमें भी आधुनिक युग (20 वीं शताब्दी) की महाकाव्य की परम्परा समृद्ध, विकासशील तथा प्रोन्नति के शिखर पर आरुढ़ हुई परिलक्षित होती है। इस प्रकार आधुनिक कवियों ने इस युग की परम्परा में विभिन्न पक्षों को लेकर महाकाव्यों की रचना की है। यथा- भारतीय सभ्यता और संस्कृति, पर्यावरण, नारी-जागरण, नारीचरित्र-प्रधान, पुरुष-चरित्र प्रधान, देशभक्ति, राष्ट्रीयता, मानवीयता ऐतिहासिकता समाजिकता आदि।

प्रस्तुत प्रबन्ध के इस अध्याय में केवल आधुनिक संस्कृत महाकाव्य की परम्परा को संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत किया गया है, क्योंकि विविध-विद्वानों द्वारा प्राचीन परम्परा को लेकर विभिन्न ग्रन्थ रचे जा चुके हैं।[184] इतना ही नहीं विभिन्न विश्वविद्यालयों में इस विषय को अभिलक्ष्य करके पर्याप्त-शोध कार्य भी किये जा चुके हैं।[185] इसी कारण यहाँ केवल अधुनातन कवियों के महाकाव्यों को प्रस्तुत किया गया है। इस सन्दर्भ में यह कहना भी उचित नहीं है कि जो परम्परा यहाँ पर दिखलाई गई है, वह परिपूर्ण है, बहुत से ऐसे महाकाव्य और उनके रचनाकार पूरे भारत में होंगे, जिनका कि परिचय न होने के कारण वे साहित्य लेखन की प्रक्रिया से अछूते रह गये होंगे। परन्तु आधुनिक संस्कृत साहित्य के विद्वानों द्वारा प्रतिपादित प्रमाणिक पुस्तकों तथा पुस्तकालयों का अवलोकन करने के पश्चात् जो महाकाव्य मुझे मिले मैंने उन्हीं का यहाँ पर परम्परा प्रदर्शन के निमित्त संक्षिप्त परिचय दिया है।

आधुनिक-संस्कृत-महाकाव्योंकेस्वरूपमेंपरिवर्तन

आधुनिक महाकाव्यों में विशेषत: सामाजिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों को उजागर करने के उद्देश्य से रचनाकारों ने पात्रों और घटनाओं का आश्रय लिया है। जिसके फलस्वरूप कवियों को अपने समसामयिक प्रसंग के अनुरूप महाकाव्य के स्वरूप में यत्र-तत्र परिवर्तन करने पड़े हैं।

(क) कथावस्तु- प्रथमतः आधुनिक महाकाव्यों की कथावस्तु में परिवर्तन देखने को मिलता है। जहाँ ''इतिहासोद्भवं वृत्तमन्यद्वा सज्ज्नाश्रम्''[186] महाकाव्य के स्वरूप के अनुसार प्राचीन महाकाव्यों में किसी देवता अथवा राजा को उद्देश्य करके, ऐतिहासिक एवं आश्रयभूत महाकाव्यों की रचना हुई। वहीं आधुनिक महाकाव्यों की कथावस्तु और नायक दोनों में परिवर्तन देखने को मिलता है। आधुनिक कवियों ने कथावस्तु का आधार स्वतन्त्रता आन्दोलनों तथा राजनीतिक घटना क्रमों को बनाया है। इसी आधार पर उन्होंने अपने-अपने महाकाव्यों की रचना की है। यद्यपि कुछ महाकाव्य प्राचीन कथावस्तु को लेकर भी लिखे गये हैं तथापि आधुनिक युग की कथा के अनुरूप ज्यादा महाकाव्य हैं। यथा- स्वातन्त्र्यसम्भवम्, नेहरूचरितम्, क्षत्रपतिचरितम्, लेनिनामृतम्, गान्धिचरितम्, सुभाषचरितम् आदि।

संदर्भ सूची

1. मम्मट – काव्य प्रकाश 1/2

2. रूक्मिणी हरणम् 12/116

3. रूक्मिणी हरणम् 1/3

4. रूक्मिणी हरणम् 1/24

5. श्रीराम कीर्ति महाकाव्यम् 25/22

6. श्रीराम कीर्ति महाकाव्यम् 25/23

7. श्रीराम कीर्ति महाकाव्यम् 25, 25.26

8. श्री मल्ललित रामचरित् 4/12

9. परशुराम दिग्विजय 1/16

10. परशुराम दिग्विजय 4/4

11. परशुराम दिग्विजय 4/7

12. भारत दिग्दर्शनम् 11/23

13. भृत्या भरणम् 1/22

14. अपराजिता वधू 3/41

15. झांसीश्वरी चरित 9/30

16. गान्धिचरितम् 1/6

17. स्वामी विवेकानन्द चरितम् 1/14

18. शिवराज्योदयम् 20/14

19. उर्मिलीयं 6/5

20. शिवलीलार्णव– वाणी विलास प्रेस, श्रीरङ्गम् तमिलनाडु, सन् 1909

21. गंगावतरण– काव्यमाला सीरीज नं0 76, बाम्बे, सन् 1916 ई0

22. M. Krishnamachariar - History of Classical Sanskrit Literature, Motilal Banarsidas Publishers, Delhi.

23. M. Krishnamach - History of Classical Sanskrit Literature, Motilal Banarsidas Publishers, Delhi.

24. श्री केश्वराव मुसलगाँवकर– आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा, पृ0 92

25. श्री केशवराव मुसलगाँवकर- आधुनिक संस्कृत काव्य परम्परा, पृ0 97

26. ईश्वरविलास (सम्पादक डॉ0 रामचन्द्र पाण्डेय) आयुर्वेद संस्कृत हिन्दी पुस्तक भण्डार, झालानियों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर, राजस्थान सन् 2008 ई0।

27. आचार्य बलदेव उपाध्याय- संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास (चतुर्थ खण्ड), पृ0 585

28. प्रकाशन सतारा, सन् 1927 ई0

29. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 25

30. हिन्दी किताब लिमिटेड, 261-263 होर्नवै रोड, बम्बई, सन् 1950 ई0

31. भारतपारिजातम्, 25/61

32. कला प्रेस, इलाहाबाद, सन्, 1951 ई0

33. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 44

34. वही

35. पट्टीभरदार, ग्राम-जखोली, पो. आ. जारवाल, भरदार, जिला-टिहरी, गढ़वाल, उत्तर प्रदेश, 1952, 1954, 1961, 1969 ई0

36. एन. एम. त्रिपाठी लिमिटेड, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई, सन् 1953 ई0

37. एन. एम. त्रिपाठी लिमिटेड, प्रिन्सेस स्ट्रीट, बम्बई, सन् 1955 ई0

38. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 49

39. Post Independence Sanskrit Literture: A Critical Survey, PP. 140-141

40. गोस्वामी तुलसीदास महाविद्यालय, पड़रौना (देवरिया), सन् 1957 ई0

41. कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, हरियाणा, सन् 1959 ई0

42. मेहरचन्द लछमनदास, दरियागंज, दिल्ली, सन् 1960 ई0

43. संस्कृत वाङ्मय का वृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 44

44. जोगलेकर सदन, सिद्धेश्वर समीप, कल्याणनगर, ठाणे-मण्डल, महाराष्ट्र, सन् 1963 ई0

45. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 51

46. श्री गोरक्षनाथ संस्कृत विद्यापीठ, गोरखपुर, उत्तरप्रदेश, सन् 1967 ई0

47. संस्कृत-वाङ्मय का वृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 51

48. क्षेमधारी स्मृति प्रकाशन, मधुबनी, बिहार, सन् 1967 ई0

49. संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 41
50. स्वयंभाति पुस्तकालय 43/17, सदानन्द बाजार, वाराणसी, सन् 1967 ई0
51. संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 92
52. 2/1786, स्टेट बैंक कॉलोनी, चाँदनी चौक, दिल्ली, सन् 1968 ई0
53. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, सप्तम पिरच्छेद, पृ0 275
54. संस्कृत-वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 74
55. तिलक महाराष्ट्र विद्यापीठ, पूना, सन् 1969 ई0, 1970 ई0, 1971 ई0
56. भारती प्रतिष्ठान, 24 आनन्दपुरी, मेरठ (उत्तर-प्रदेश) सन् 1971 ई0
57. संस्कृत-वाङ्मय का वृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड
58. तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी, सन् 1973 ई0
59. पूर्वभारतम्, पृ0 294-299
60. मानसरोवर, मेरठ, उत्तरप्रदेश, सन् 1974 ई0
61. पूर्वभारतम् 1/31
62. बगीची माधवदास, लालकिला, दिल्ली, सन् 1974 ई0
63. कृष्णानन्द स्वर्गाश्रम, वृन्दावन, सन् 1974 ई0
64. सागरिका, पत्रिका, सागर वि. वि., सागर, अंक सात, संख्या एक, सन् 1968 ई0
65. कालिदास संस्थानम्, वाराणसी, सन् 1990 ई0
66. उत्तरसीताचरितम्, 1/66, 10/68
67. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड पृ0 113
68. वही
69. स्वयं कवि द्वारा-बंगलौर, सन् 1975 ई0
70. गोस्वामी प्रकाशन, सकाहा, हरदोई, सन् 1975 ई0
71. नेहरूयशः सौरभम्, 2/15
72. स्वयं कवि द्वारा, वाराणसी, सन् 1976 ई0 (वि. स. 2023)
73. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 113
74. शारदा गौरव ग्रन्थमाला, 425 सदाशिव पेठ, पूना-30, सन् 1976 ई0

75. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 62

76. भारतीय विद्या प्रकाशन, बैग्लों रोड, जवाहर नगर, दिल्ली, सन् 1976 ई0

77. इन्दिरागाँधीचरितम्, 24/45-47

78. स्वातन्त्र्यातेत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 62

79. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 114

80. कृष्णानन्द स्वर्गाश्रम, वृन्दावन, मथुरा, सन् 1976 ई0

81. संस्कृत वाङ्मय का बृहद्-इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 114

82. राजस्थान संस्कृत अकादमी, श्रीवीरेश्वर भवन, गणगौरी बाजार, जयपुर, राजस्थान, सन् 1977 ई0

83. हरनामामृतम्, 7/27

84. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 109, स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 63

85. 2 दशभुजी गणेश, मथुरा, उत्तर-प्रदेश, सन् 1977 ई0

86. श्रीजवाहरज्योति, 17/4

87. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 282

88. प्राज्ञ पाठशाला, मण्डल बाई, जिला सतारा, सन् 1977 ई0

89. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 282 तथा संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 77

90. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 87

91. जयभारतम्, त्रिवेन्द्रम् केरल, सन् 1977 ई0

92. क्रिस्तुभागवतम्, 18/2, 3, 6, 7, 8, 9

93. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 87

94. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना पृ0 63

95. दुर्गा मन्दिर पन्थक्कल, पट्टाम्बी, केरल, सन् 1977 ई0

96. केरलोदय, 12/51, 55

97. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 78

98. देववाणी परिषद्, दिल्ली, सन् 1978 ई0

99. संस्कृत वाङ्मय का बृहद इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 78

100. सुगमरामायण समीक्षा, पृ0 89

101. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 66

102. वही, पृ0 66 तथा स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 65

103. जनविजय, 15/5-10

104. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 108

105. स्वयंप्रकाश शर्मा, टी/26/5 रूड़की रोड़, केम्प, मेरठ, केण्ट, उत्तर प्रदेश, सन् 1978 ई0

106. विक्रीय शीर्ष स्वकरै, सहर्षमाक्रेतुकामा निजदेशमानम्।

स्पर्धाद्यपुष्टास्त्यसिशीर्षमध्ये पश्याद्य कं संवृणुते जयश्रीः।। - श्रीभक्तसिंहचरितम्, 5/25

107. श्रीभक्तसिंहचरितम्, 7/47

108. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 290 तथा संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 83

109. जोधपुर विश्वविद्यालय, सन् 1978 ई0

110. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 66

111. विश्वभानु, 8/18

112. जयविहार, जगध्य, त्रिवेन्द्रम्, सन् 1979 ई0

113. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 78

114. देववाणी परिषद्, नयी दिल्ली, सन् 1979 ई0

115. अर्वाचीनसंस्कृतमहाकाव्यविमर्श (तृतीय खण्ड), श्रीकृष्णचरितसमीक्षा, पृ0 49

116. वही, पृ0 118

117. विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान, पंजाब विश्वविद्यालय, होशियारपुर, सन् 1980 ई0

118. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 118

119. नेपाल साम्राज्योदय, 2/1

120. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 68

121. श्रीकृष्ण सत्संग प्रकाशन, गतश्रम टीला, मथुरा, सन् 1980 ई0

122. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 68

123. Punarvasu, 1, Sri Krishnapuram Street, Madras, 1980
124. Post Independence Sanskrit Literature, Part 2, p. 22
125. तुलसी निकेतन, छिछड़ाना, जिला सोनीपत, सन् 1980 ई0
126. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम–खण्ड, पृ0 78
127. चौखम्भा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, सन् 1982 ई0
128. वही, पृ0 66
129. वही
130. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक–चेतना, पृ0 69
131. आधुनिक संस्कृत काव्य–परम्परा, पृ0 253
132. आधुनिक संस्कृत काव्य–परम्परा, पृ0 254
133. रुक्मिणी प्रकाशन, इन्द्रपुरी रांची, सन् 1983 ई0
134. श्रीदेवीचरितम्, 18–19 सर्ग
135. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 81
136. वही, पृ0 81
137. डी. 117, बापूनगर, जयपुर, सन् 1984 ई0
138. स्वातन्त्र्योत्तर संस्कृत महाकाव्यों में राजनीतिक चेतना, पृ0 70
139. महामना मालवीय महाविद्यालय, खेकड़ा, मेरठ, सन् 1984 ई0
140. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 88
141. सुधी प्रकाशनम्, वाराणसी, सन् 1985 ई0
142. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 88
143. वही, पृ0 94
144. कामेश्वर सिंह, दरभंगा, विश्वविद्यालय, बिहार, सन् 1985 ई0
145. श्रीवैदेहीचरितम्, 10/44
146. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 107
147. अखिलभारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ समताभवन, रामपुरियामार्ग, बीकानेर, सन् 1985 ई0
148. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 60

149. कमल प्रकाशन, मानसरोवर, मेरठ, सन् 1985 ई0

150. मौर्यचन्द्रोदयम्, 15/41, 51

151. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 97

152. निर्मल प्रकाशन, दुर्गाकुण्ड, वाराणसी, सन् 1985 ई0

153. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 282

154. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 71

155. वैजयन्त प्रकाशन, 8 वाघम्भरी मार्ग, इलाहाबाद, सन् 1988 ई0

156. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम खण्ड, पृ0 96

157. परिमल पब्लिकेशन, दिल्ली, सन् 1988 ई0

158. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 112

159. 10/11 सकलनगर, बेनगर रोड, पूना, प्र. स. 1989 ई0

160. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 113

161. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 307

162. काशीहिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, सन् 2001 ई0य

163. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 307 तथा स्वातन्त्र्यसंभवम्-प्राक्कथन

164. आधुनकि संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 294

165. ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, सन् 1991 ई0

166. भीष्मचरितम्, 17-19 सर्ग

167. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 119

168. वही

169. भारतीय साहित्य परिष्द्, लखनऊ, सन् 1992 ई0

170. ईस्टर्न बुक लिंकर्स, शक्ति नगर, दिल्ली, सन् 1993 ई0

171. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 78

172. श्रीदेवदेवेश्वर संस्थान, पार्वती व कोयरूड पुणे, महाराष्ट्र, सन् 1993 ई0

173. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 80

174. श्रीदेवदेवेश्वर संस्थान, पार्वती व कोयरूप पुणे, महाराष्ट्र, सन् 1993 ई0

175. Post Independence Sanskrit Literature, p. 125

176. उत्कल आश्रम, तपोवन, हरिद्वार, सन् 1993 ई0

177. विश्वभारती अनुसन्धान परिषद्, वाराणसी, सन् 1995 ई0

178. गायत्री-प्रकाशन, बुद्धकालोनी, पटना, बिहार, सन् 1995 ई0

179. संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास, सप्तम-खण्ड, पृ0 120

180. नाग प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1995 ई0

181. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 311

182. ईस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, सन् 1996

183. नाग प्रकाशन, दिल्ली, सन् 1997 ई0

184. आधुनिक संस्कृत काव्य-परम्परा, पृ0 312

185. संस्कृत साहित्य का इतिहास- वाचस्पति गैरोला, संस्कृत वाङ्मय का बृहद् इतिहास- बलदेव, उपाध्याय, History of Sanskrit Literature - Macdonell, A, A, महाकाव्य की परम्परा- केशवराव मुसलगाँवकर, History of Sanskrit Literature - A, B, Keith, संस्कृत साहित्य का इतिहास- प्रीतिप्रभा गोयल आदि।

186. महाकवि मंखक व्यक्तित्व एवं अभिव्यक्ति- डॉ0 वचनो गुप्ता, भट्टि और उनका रावणवध महाकाव्य डॉ0 कैलाश नाथ पाठक, नैषध का काव्यशास्त्री अध्ययन- डॉ0 मथुरा दत्त जोशी, नैषधीयचरित की शास्त्रीय मीमांसा- डॉ0 राम बहादुर शुक्ल, नैषध समीक्षा-देवनारायण झा आदि।

187. साहित्यदर्पण, 6/318

द्वितीय अध्याय

महाकवि का जीवन परिचय तथा कार्य

प्रकृति प्रदत्त रूप रंग कद के अतिरिक्त महापुरुष का चिन्तन, विचार, कल्पना, भाव सौन्दर्य बोध, चतुर्दिक विस्तृत वातावरण को अनुभव करने की क्षमता एवं इस एहसास को सौन्दर्य पूर्ण अभिव्यक्ति देने की क्षमता ही व्यक्तित्व का निर्धारण करती है।

डॉ. अभिराज राजेन्द्र मिश्र ऐसे ही मोहक व्यक्तित्व के स्वामी हैं, जिनका अन्तर्मन जितना निर्मल है उतना ही वाह्य स्वरूप आर्वजक और आकर्षक है। गौर वर्ण, उन्नत ललाट, शान्त मुख मुद्रा, मधुर मुस्कान, सागर सी गम्भीर वाणी, मृदुल सौम्य व्यवहार, सरल मन, भावुक हृदय, नयनों से छलकता वात्सलय जो भी उनसे प्रथम बार मिलता है। आकर्षित हुए बिना नहीं रह सकता। भावों से पूर्ण वैदुष्य की गरिमा से युक्त राजेन्द्र मिश्र का व्यवहार हठात ही हृदय को स्पर्श कर जाता है, तथा अल्प पलों में ही नितान्त अपरिचित व्यक्ति उनसे आत्मीय हो जाता है।

नैसर्गिक प्रतिभा सम्पन्न राजेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व बहु आयामी है, जिसमें भाव, संगीतकार, गीतकार, नाटककार, कथाकार का अद्‌भुत समन्वय हुआ है। विलक्षण काव्य प्रणयन चातुरी, गहन शास्त्रीय ज्ञान, संवेदन शील हृदय चिन्तन की मोहकता एवं उसी अनुरूप सुन्दर बाहरी व्यक्तित्व सभी मिलकर एक ऐसे विलक्षण व्यक्तित्व का निर्माण करते हैं, जो साहित्य जगत में श्लाघनीय है।

हिन्दी, संस्कृत, भोजपुरी, अंग्रेजी तथा जावी भाषा में काव्य, नाट्य कथा एवं समीक्षा के प्रतिभा सर्जक सहृदय कवि एवं प्रवर चिन्तक, प्रो0 राजेन्द्रमिश्र अन्तराष्ट्रीय ख्याति के विद्वान हैं। उनका ज्ञान जितना गम्भीर है, अभिव्यक्ति उतनी प्रभावशाली भौतिक एवं बोधगम्य उनकी वाणी का सम्मोहन लोगों पर अमिट प्रभाव डालता है।

कवि का कवित्व जहाँ समाज का दर्पण है, वहीं कवि के व्यक्तित्व से अप्रभावित रहता है। यह नहीं कहा जा सकता अतएव इस परिपेक्ष्य में कवि ने व्यक्तित्व एवं कृतित्व का विवेचन प्रस्तुत है।

(1) जन्म स्थान तथा कार्य

अभिराज राजेन्द्र मिश्र का जन्म उत्तर प्रदेश के पूर्वाञ्चलीय जौनपुर में सई नदी (वालमीकि रामायण में स्यन्दिका) के बाँये तट पर बसे द्रोणीपुर गाँव में 2 जनवरी 1943 ई0 को महोयसी अभिराजी देवी एवं पं0 दुर्गाप्रसाद मिश्र के मध्यम पुत्र के रूप में हुआ।

सदाचार से युक्त, सुप्रतिष्ठित, वेदपाठी, गौतम गोत्रीय शखार्थ ब्राह्मण कुल में राजेन्द्र जी का जन्म समधिक सौभाग्य की बात थी। इनके पितामह पं0 रामानन्द मिश्र परम धार्मिक, भागवत्

परम्परा को मानने वाले एवं भगवती दुर्गा के भक्त थे। इन्हीं के सुसंस्कार राजेन्द्र जी को परम्परा से प्राप्त हुये। श्रीमद् भागवत् पुराण के पारायण के समय बलि-वामन प्रसंग छन्द भाव-विह्वल कर जाता एवं रामायण के उदस्त संस्कार ने इनके व्यक्तित्व को एक अपूर्व आभा प्रदान की।

बाल्यावस्था में ही पिता की छत्र-छाया से वंचित हो जाने की पीड़ा इनके सृजन में छलकता है तथा माँ का वात्सल्य ही इनकी कविताओं का आधार बना राजेन्द्र जी पितृव्य डॉ. आद्या प्रसाद जी मिश्र उच्चकोटि के साहित्यकार थे। जिन्होंने बाल मन में हिलोरे लेती वेदना को एक सही दिशा दी।

(2) शिक्षा शैक्षणिक उपलब्धियाँ, राजकीय सेवाएं

श्रीयुत राजेन्द्र जी ने प्रारम्भिक शिक्षा गाँव के विद्यालय एवं पार्श्वस्थ जय हिन्द इण्टर कॉलेज में सम्पन्न करने के बाद इलाहाबाद विश्व विद्यालय से बी0 ए0 (1962) एम0 ए0 (1964) तथा डी फिल (1966) उपाधियाँ प्राप्त कीं। 1964 की संस्कृत परीक्षा में न केवल सर्वोच्च अंक प्राप्त किये, प्रत्युत समूची आर्टस फैक्लटी में टॉप किया। जो उनकी दृढ़ संकल्प शक्ति, मेधाशक्ति, बुद्धिमत्ता, परिश्रम एवं कठोर अध्यवसाय का परिचायक है। राजेन्द्र जी डी फिल इलाहाबाद विद्या सागर (मानद डा. लिट्), डा. लिट् (शिक्षा) जैसी उच्च शैक्षणिक उपाधियाँ प्राप्त की।

राजकीय सेवाऐं

त्रिवेणी कवि राजेन्द्र जी उत्कृष्ट शैक्षणिक उपलब्धियाँ अर्जित करते हुए अनेक प्रतिष्ठित पदों पर सुशोभित हुए।

प्रवक्ता: शोध समाप्ति की अवधि में ही 10 दिसम्बर 1966 ई0 को संस्कृत विभाग में प्रवक्ता पद पर नियुक्ति हो गई। आप सितम्बर 1983 तक प्रवक्ता पद पर कार्यरत रहे।

रीडर: 1983 से राजेन्द्र जी 1991 तक रीडर पद को सुशोभित किया।

विजिटिंग प्रोफेसर: इसी मध्य भारत सरकार की नियुक्ति पर अप्रैल 1987 से मार्च 1989 तक उदयन विश्व विद्यालय डेनपसार, बाली द्वीप, (इण्डोनेशिया) में विजिटिंग प्रोफेसर भी रहे तथा उच्चस्तरीय अन्तराष्ट्रीय शोध कार्य भी किया।

प्रोफेसर: भारत वापसी के साथ ही श्रीयुत मिश्र जी 22 जनवरी 1991 से 30 जून 1903 तक शिमला विश्व विद्यालय में प्रोफेसर नियुक्त हो गये। वहाँ लगभग बारह वर्षों तक सेवा दी। शिमला में संस्कृत विभागध्यक्ष एवं कला संकाम के डोन एवं कार्य कारिणी सदस्य रहे।

कुलपतिः 24 अप्रैल 2002 को सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय वाराणसी में कुलपति अधिष्ठित हुए।

वर्तमान श्रीयुत राजेन्द्रजी शिमला में अनवरत साहित्य साधनारत हैं।

(3) व्यक्तित्व एवं कृतित्व, साहित्यिक अवदान स्थापनाऐं :

श्रीयुत राजेन्द्रजी का व्यक्तित्वः कवित्व, अभिनय, स्वर तथा संगीत का चतुस्र कौशल डॉ. राजेन्द्र में विद्यमान है, जो कि बहुत कम देखने में आता है। डॉ. मिश्र की वक्तव्य कला असाधारण है। उनके वक्तव्य की ओजस्विता व वर्चस्विता अद्‌भुत है। वे पाण्डित्य से अंलकृत विचक्षण विद्वान हैं। किन्तु स्वाभाविक वार्तालाप शैली से वे भीड़ में भी अलग ही दीखते हैं, काव्यत्रि व भावयित्री प्रतिभा का अच्छा समन्वय है। श्री राजेन्द्र मिश्र के व्यक्तित्व में उनके व्यक्तित्व की एक विशिष्टता ही है कि उनमें रंचमात्र अभिमान नहीं है। दूसरों पर अपने विचार मनवाने का आग्रह नहीं है। उनकी यह विनम्रता, सहजता ही तो हठात चित्त का हरण कर ले जाती है। उनके ह्रदय की विकलता एवं सादगी मानस को तृप्त करने वाली है तथा सद्‌गुणों एवं ज्ञान से मण्डित राजेन्द्र मिश्र का व्यक्तित्व सह्रदयों को आह्‌लादित करता है। यह उनके व्यक्तित्व की आनूठी विशिष्टता है।

श्रीयुत राजेन्द्र जी का कृतित्वः डॉ0 मिश्र ने साहित्य की लगभग सभी विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई है। एवं उत्कृष्ठ कृतियों के प्रणयन द्वारा माँ वाग्देवी के साहित्यिक भण्डार की भी वृद्धि की उन्होंने सृजनात्मक एवं आलोचनात्मक दोनों ही क्षेत्रों में उच्च कोटि का कार्य किया है तथा अनवरत साहित्य साधना में लीन हैं।

त्रिवेणी कवि के नाम से प्रसिद्ध, रससिद्ध, सुप्रसिद्ध, कविश्वर श्री राजेन्द्र मिश्र द्वारा प्रणीत साहित्य कृतियों का क्रमवार विवेचना कर रहे हैं-

अवदान :

महाकाव्यम् :

1. जानकी जीवनम् (21 सर्गाः) 1988 ई0

2. वामनावतरणम् (17 सर्गाः) 1994 ई0

खण्ड काव्यम् :

1. आर्यान्योक्तिशतकम् (17 सर्गाः) 1975 ई0

2. नवाष्टक मालिका 1976 ई0

3. पराम्बा शतकम् 1981

4. शताब्दी काव्यम् 1987 ई0

5. अभिराज सप्तशती 1987 ई0

6. धर्मानन्द चरितम् 1992 ई0

7. पञ्चकुल्या 1993 ई0

8. करशूलनाथ महात्म्य 1996 ई0

9. कस्यैदेवाय हविषाविधेम 1996 ई0

10. अरण्यानी 1999 ई0

11. संस्कृत शतकम् 1999 ई0

12. अभिराजसहस्रकम् 2000 ई0

13. स्तव मधु 2002 ई0

14. मृगाङ्क दूतम् 2004 ई0

15. चर्चरी 2004 ई0

नवगीत संग्रह :

1. वाग्बधूटी (55 गीतानि) 1978 ई0

2. मृद्वीका (53 गीतानि) 1985 ई0

3. श्रुतिम्भरा (38 गीतानि) 1989 ई0

4. मधुपर्णी (68 गीतानि) 2000 ई0

5. कौमारम् (51 शिशुगीतानि) 2000 ई0

6. मत्तवारणी (गजल संग्रह:) 2003 ई0

(ख) अर्वाचीन–संस्कृत रूपक (नाटक, एकांकी)

1. नाट्य पञ्च गव्यय (5 नाटयानी) 1971 ई0

2. अकिञ्चन काञ्चनम् (1 नाट्यम्) 1974 ई0

3. नाट्य पञ्चामृतम् (5 नाटयानि) 1977 ई0

4. चतुष्पथीयम् (4 नाटयानि) 1983 ई0

5. रूप रुद्रीयम् (11 नाट्यानि) 1986 ई0

6. नाट्य सप्तपदम् (7 नाट्यानि) 1986 ई0

7. नाट्य नवग्रहम् (9 नाट्यानि) 1999 ई0

8. रूप विंशतिका (20 नाटयानि) 1999 ई0

सम्पूर्ण नाटिका :

1. प्रभद्रा (चतुरङ्किका) 1984 ई0

2. विद्योत्तमा (चतुरङ्किका) 1992 ई0

3. लीला भोजराजम् (सप्तङ्क नाटकम्)........

4. प्रशान्त राघवम् (सप्ताङ्क नाटकम्)..........

(ग) अर्वाचीन-संस्कृत-कथा साहित्य

कथा संग्रह :

1. इक्षुगन्धा (8 कथा) 1986 ई0

2. रंङ्कडा (9 कथा) 1992 ई0

3. चित्रपर्णी (60 लघुकथा) 1999 ई0

4. पुनर्नवा (कथा) 2004 ई0

5. अभिनवपञ्चतन्त्रम् मुद्राणालये

6. कान्तारकथा (Jungle Story Book)........

(घ) समीक्षा-साहित्य एवं पाठ्य ग्रन्थ

शोध ग्रन्थ :

1. संस्कृत साहित्य में अन्योक्ति 1985 ई0

(डी. फिल शोध प्रबन्ध)

2. मणिकाञ्चन 1985 ई0

(18 हिन्दी शोध निबन्ध)

3. शास्त्रा लोचनम्

(18 संस्कृत शोध निबन्ध)

4. समीक्षा सौरभम् 2003 ई0

(25 शोध निबन्ध)

5. Poetry and Poetics 2004

(अंग्रेजी शोध निबन्ध)

पाठ्य ग्रन्थ :

1. किरातार्जुनीयम् (प्रथम सर्गः) (प्रथम संस्करण) 2004 ई0
2. कादम्बरी कथा मुखम् (B. A . Class) 1973 ई0
3. छन्दोऽलङ्कार सौरभम् (B. A . Class) 1980 ई0
4. रस निरुपणम् (B. A . Class) 1986 ई0
5. संस्कृत गद्यामृतम (B. A . Class) 1996 ई0
6. साहित्य दर्पणः (उपरिच्छेद) (B. A . Class) 1999 ई0

(ङ) कुछ विशिष्ट कृतियाँ :

1. Sejarah kesusastraan sanskerta
(History of sanskrit in bahasa Indonesia)
First ed. 1088. denpasar bali (Indonesia)

2. Number of Rasas (रसों की संख्या)

(डॉ. राघवन प्रणीत ग्रंथ का हिन्दी रूपान्तरण)

हरियाणा साहित्य अकादमी चण्डीगढ़ द्वारा प्रकाश्य।

3. रामायणकविन् (यवद्वीपीय रामायण)

(देवनागरी लिप्यन्तरण, हिन्दी अनुवाद विस्तृत भूमिका सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्व विद्यालय द्वारा प्रकाशित 1995 ई0

4. सुवर्ण द्वीतीय राम कथा–राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान द्वारा प्रकाशित 1999 ई0

5. बाली द्वीपे भारतीय संस्कृति : ईस्टर्ण बुक लिंकर्स, दिल्ली द्वारा प्रकाशित 1999 ई0

6. कस्यै देवाय हविषा विधेम (प्रकाशितम् 1997 ई0)

देव स्तुति, महात्म स्तुति, विद्वस्तुति, राजस्तुति, सत्पुरुष स्तुति, एवं प्रकाल स्तुति शीर्षकों में विभक्त प्रायः 100 अष्टक।

7. भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीक- बालीद्वीप

राष्ट्रीय संस्कृत संस्थान, नई दिल्ली द्वारा प्रकाशित 1999 ई0

8. ओङ्कार विज्ञानम् (सांई दास बाबा प्रणीतम्) हिन्दीरूपान्तर एवं भूमिका (यन्त्रस्थ)

9. स्वर्ण जयन्ती संस्कृत काव्यम (पञ्चाशन्मितानां यूर्द्वन्य कवीनां काव्यानि) सम्पादन, संकलन एवं भूमिका गुजरात राज्य संस्कृत अकादमी द्वारा प्रकाशय (यन्त्रस्थ)

10. विंशशताब्दी संस्कृत काव्यामृतम् (शताधिक संस्कृत काव्य काराणा कवित्व वैयवम्)

सम्पादन, संकलन एवं भूमिका। दिल्ली संस्कृत अकादमी द्वारा प्रकाशित

हिन्दी एवं अंग्रेजी

काव्य संग्रह :

1. दो पात नीबू-तीन पात अमोल (68 कविताएँ) 1968 ई0

2. मुक्तधारा (20 गीत) 1972 ई0

3. सपनों में डूब गया मन (55 गीत) 1972 ई0

4. पलकों के बन्द द्वार (53 गीत) 1990 ई0

खण्ड काव्य :

1. वेदना (भूमिका : पं. सुमित्रा नन्दन पन्त) 1966 ई0

2. पनघट (भूमिका : डॉ. राम कुमार वर्मा) 1967 ई0

3. मुक्ति दूत (हाई स्कुल के पाठ्यक्रम में निर्धारित) 1975 ई0

4. पूर्ण काय (भारत पर आश्रित) 1975 ई0

5. गृहत्याग (तथागत पर आश्रित) 1975 ई0

बाल साहित्य :

1. बच्चों के पाहुन (पञ्चतंत्र की पद्य कथाएँ) 1975 ई0

2. पढ़ो और बनो (सचित्र बाल कथाएँ) 1975 ई0

3. वन के गीत- मन के मीत (पद्य कथाएँ) 1976 ई0

4. नया विहान (तीन एकाङ्की) 1976 ई0

5. महाभारत की किशोर कथाएँ 1981 ई0

6. तितली के पंख (30 शिशु कविताएँ) 1982 ई0

7. रक्ताभिषेक (तीन एकाङ्की) 1985 ई0

भोजपुरी काव्य संग्रह :

1. फगुनी बयार (120 गीत) 1992 ई0

गद्यवाङ्मय :

1. विधवा (आञ्चलिक उपन्यास) 1973 ई0

2. देवरा हजारी (कथा संग्रह) 1994 ई0

3. रक्त वैतरणी (कथा संग्रह) 2004 ई0

सम्पादित ग्रन्थ :

1. देववाणी सुवासः (दो भाग) 1993 ई0

(डॉ. रमाकान्त शुक्ल अभिनन्दन ग्रंथ)

2. प्रतानिनी (काव्य संग्रहः) 1996 ई0

(आचार्य बच्चूलाल अवस्थी प्रणीत)

3. ब्रह्म विद्यारसायणम्

(आचार्य आद्या प्रसाद मिश्र–अभिनन्दन ग्रन्थ)

4. शिव शेखर समज्ञा 2004 ई0

(प्रो0 शिव शेखर मिश्र–अभिनन्दन ग्रन्थ)

अप्रकाशितवाङ्मय :

1. बदरा माइल मोरादूत (मेघदूत का भोजपुरी रूपान्तरण)
2. बिरहा के रैन (खण्ड काव्य)
3. सकुन्तला (भोजपुरी महाकाव्य)
4. गन्धमादन (राष्ट्रीय काव्य संग्रह)
5. सुपर्ण (खण्ड काव्य)
6. पाषाणी (खण्ड काव्य)
7. त्रिणाचिकेत (काव्य रूपक)
8. अदृश्यन्ती (पौराणिक नाटक)
9. दुर्योधन वध (मंचीय नाटक पाँच अंक)
10. रोदसी (महाकाव्य 15 सर्ग अपूर्ण)
11. रिटनेस वार्ड की पाँच रातें (डायरी)
12. हिमाचल के आंगन में (यात्रावृत)
13. मेरी प्रथम दक्षिण भारत यात्रा (यात्रा वृत)
14. सुवर्ण द्वीप में भारतीय वर्चस्व
15. महाकाल की नगरी में (यात्रावृत)
16. अस्थि कलश (खण्ड काव्य)
17. नाच्यौ बहुत गुपाल (आत्म कथा)
18. अभिराज दण्डकम् (पाँच दण्डम्)
19. बाली विलासम् (खण्ड काव्य)
20. गीत भारतम् (भारत प्रशस्तिपरम)
21. अभिराज चम्पू (चम्पू संग्रह)
22. काव्य तरङ्गिणी (संस्कृत साहित्येतिहासः)

23. छन्दोभिराजीयम् (अभिनव छन्दराजीयम्)

24. अभिराजयशो भूषणम् (अभिनव काव्य शास्त्रम्)

अन्य भाषाओं में अनुदित अभिराज साहित्य :

1. डॉ. वी. कामेश्वरी द्वारा 'अनामिका तथा महानगरी' (संस्कृत) का अंग्रेजी में अनुवाद। दक्षिण पत्रिका, खण्ड एक, 1995 ई0 तथा खण्ड दो, 1997 ई0 साहित्य अकादमी बंगलौर।

2. डॉ. गंगाधर पण्डा द्वारा पोत विहगौ (संस्कृत कथा) का अंग्रेजी अनुवाद

काण्टेम्परेरी इण्डिया शार्ट स्टोरीज, वाल्यूम-4, साहित्य अकादमी नई दिल्ली

3. डॉ. रविशंकर नागर द्वारा ईक्षुगन्धा (संस्कृत कथा) का अंग्रेजी अनुवाद

इन्साइम्लोपीड़िया ऑफ इण्डियन लिटरेचर वाल्यूम-6 साहित्य अकादमी नई दिल्ली

4. डॉ. हर्ष माधव द्वारा वैशाली (संस्कृत काव्य) का अंग्रजी रूपान्तर

इण्डियन लिटरेचर जुलाई-अगस्त 1999 ई0 साहित्य अकादमी नई दिल्ली

5. डॉ. वेणुगोपालकृष्ण द्वारा जिजीविषा (संस्कृत) तथा कई हिन्दी कथाओं का मलयालम रूपान्तरण भारतीय कहानियाँ, मुत्तर, तिरुवलल (केरल)

6. श्रीमती ए. राज्य श्री द्वारा संस्कृत कथाओं का तेलुगु में अनुवाद एवं विपुल पत्रिका में प्रकाशन हैदराबाद

7. डॉ. निवास दीक्षितलु (काजीपेट, आन्ध्र प्रदेश) द्वारा इन्द्रजालम् एकांकी (संस्कृत) का तेलगु में रूपान्तरण मार्च 1995 में अभिनीत

8. डॉ. अहमद नसीय सिद्दकी द्वार 'मग्न पञ्जर' (संस्कृत) कहानी का उर्दू रूपान्तरण तथा 'नया दौर' लखनऊ अक्टूबर 1999 ई0 अंक में प्रकाशन

9. श्री मधुर शास्त्री द्वारा महाकवी (संस्कृत) का हिन्दी रूपान्तरण भारतीय कहानियाँ 1990-1991 भारतीय ज्ञानपीठ नई दिल्ली में संकलित।

10. डॉ. प्रमोद भारतीय द्वारा इक्षु गन्धा (संस्कृत कथा) का हिन्दी रूपान्तरण भाषा (जुलाई-अगस्त, 1997 ई0 में प्रकाशित केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नई दिल्ली

11. डॉ. शैल वर्मा द्वारा इक्षु गन्धा का हिन्दी रूपान्तरण, समकालीन साहित्य, साहित्य अकादमी, नई दिल्ली में प्रकाशित

12. डॉ. रेखा व्यास द्वारा कुल दीपक (संस्कृत कथा) का हिन्दी रूपान्तरण लघु कथा संग्रह (प्रथम भाग–साहित्य अकादमी) 2001 ई0 सम्पादन : डॉ. जयमन्त मिश्र में प्रकाशित

13. डॉ. इन्दु प्रकाश मिश्र द्वारा न्यायालय वृतम् कविता का हिन्दी रूपान्तरण, समकालीन साहित्य, साहित्य अकादमी में प्रकाशित

14. श्री बाल स्वरूप राही द्वारा स्वतंत्रता (कविता) का हिन्दी रूपान्तरण एवं संकलन : भारतीय कवितायें : 1986 ई0 भारतीय ज्ञान पीठ, नई दिल्ली, 1990 ई0

15. श्री राजाराम शुक्ल द्वारा इक्षुगन्धा (कथा संग्रह) का हिन्दी रूपान्तरण अप्रकाशित

16. महानगरी (संस्कृत कथा) का हिन्दी रूपान्तरण, प्रकाशित अनुवाद (मासिक) नई दिल्ली, 1984 ई0

विशिष्ट उपलब्धियाँ :

1. शोध कार्य : डॉ. देवेन्द्र गुरु (सागर), डॉ. लक्षमणाचार्य (उस्मानिया), डॉ. योगेशचन्द्र दुबे (वाराणसी), डॉ. निवेदिता पौराणिक (नागपुर), डॉ. निरञ्जन मिड़े (सौराष्ट्र), डॉ. मनीषा नटवर लाल क्षत्री (पाटन), डॉ. कमल जोशी (नैनीताल), डॉ. रजनी रमण झा (अजमेर), डॉ. सनत कुमार उपाध्याय (सौराष्ट्र), डॉ. अञ्जु जोशी (नैनीताल), डॉ. सतपाल सिंह बग्गा (कुरुक्षेत्र), द्वारा अभिराज साहित्य पर पी–एच. डी. डिग्री प्राप्त।

2. साहित्य–समीक्षा : डॉ. श्रीधर भास्कर वर्णेकर (संस्कृत साहित्य कोश), डॉ. राम जी उपाध्याय (बीसवीं शदी के संस्कृत नाटक), डॉ. एस. वी. वेलंकर विंशति शतक संस्कृत काव्य संकलनम्, प्रो. राधावल्लभ त्रिपाठी (आयतिः षोडशीः साहित्य अकादमी), संस्कृत साहित्य बीसवीं शताब्दी चतुष्टमी, श्री बाल स्वरूप राही (भारतीय कवितायें 1986 ई0), डॉ. म. ना. चौधरी (इण्डियान लिटरेचर 132), डॉ. रहस बिहारी द्विवेदी (बीसवीं शदी के संस्कृत महाकाव्य), डॉ. एक रंगनाथ (पोस्ट इण्डिपिंण्डेंस चम्पू, अवार्ड विनिंग संस्कृत वर्गा), डॉ. कमल आनन्द (संस्कृत–संस्कृति–साधना), डॉ. गया चरण त्रिपाठी वाणी विलसितम्), प्रो. बलदेव उपाध्याय (संस्कृत साहित्य का वृहत इतिहास, लखनऊ), श्री के. सी. दत्त (अूज हू ऑफ इण्डियन राइटर्स), श्री गिरिराज शरण अग्रवाल (हिन्दी साहित्याकार सन्दर्भ), डॉ. शेषगिरी राव (इन्साइम्लापीड़िया ऑफ हिन्दुइज्म), डॉ. रीता चट्टोपाध्याय (माडर्न संस्कृत व्लेज), डॉ. रविशंकर नागर (इन्साम्लो पीड़िया ऑफ इण्डियन लिटरेचर, खण्ड–6), डॉ. चन्द्र किशोर गोस्वामी संस्कृत नाट्य नवीनतम्), भी र. श. केलकर (भारतीय कहानियाँ 1990–19), डॉ. हरिनारायण दीक्षित (भारतीय काव्य शास्त्र मीमांसा) के अतितिरक्त दि होराइजन (साहित्य अकादमी),

दक्षिण (बँगलौर) रिफरैंस इण्डिया (खण्ड-3 एवं खण्ड-6) लनेंड एशिया (खण्ड-1) आदि में व्यक्तित्व एवं कृतित्व समीक्षा।

सम्माननीय मिश्र जी ने अनेक प्रतिष्ठित संस्थाओं को अपनी गरिमा मई उपस्थिति से सम्मान दिलाया है। संस्थाओं का क्रम निम्न प्रकार से है-

1. सदस्य संपादक मण्डल : योग इण्टरनेशनल पेंसिलवानियाँ, अमरीका।

2. लैंग्वेज कंसल्टेण्ट : साहित्य अकादमी नई दिल्ली, (एंश्मेण्ट इण्डियन लिटरेचर प्रोजेक्ट, संपादक : प्रो. मलल देवन मैसूर विश्व विद्यालय)।

3. सेम्सनल प्रेसीडैण्ट : 35, 37, 40, 41 वाँ अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन।

4. वाइस प्रेसीडैण्ट : 42 वाँ अखिल भारतीय प्राच्य विद्या सम्मेलन, वाराणसी 2004 ई0।

5. संरक्षक : (पैट्रन) प्रैसन्यूज ऑव इण्डिया (पूर्वी उ0 प्र0) इलाहाबाद (उ0 प्र0)।

6. अध्यक्ष : साहित्यकार- संसद (महीयसी महादेवी वर्मा द्वारा संस्थापित रसूलाबाद इलाहाबाद (उ0 प्र0)।

7. अध्यक्ष : देववाणी परिषद आर-6 वाणी विहार, नई दिल्ली-56

8. अध्यक्ष : सहयोगी मुद्रण एवं प्रकाशन सहकारी समिति, इलाहाबाद।

9. संस्थापक अध्यक्ष : स्वरवर्धिनी (साहित्य संस्था) 8 बाघम्बरी मार्ग, इलाहाबाद।

10. सदस्य : प्रबन्ध समिति, कालिदास समारोह समिति, विक्रय, विश्व विद्यालय, उज्जैन (म0 प्र0)।

11. निदेशक : लोक भाषा प्रचार समिति हि. प्र. शाखा शिमला (मुख्यालय बड़ औड़िया मठ जगन्नाथ पुरी)।

12. सदस्य : स्थाई समिति एवं विद्वत समिति, हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग।

13. संस्थापक प्रबन्धक : देवेन्द्र शिक्षा संस्थान, द्रौणीपुर, जौनपुर (उ0 प्र0)।

14. सदस्य : विषय समिति माध्यमिक शिक्षा परिषद इलाहाबाद (उ0 प्र0)।

15. सदस्य : हायर एजूकेशन ग्राण्टस कमीशन मध्य प्रदेश भोपाल।

(4) पुरस्कार एवं सम्मान :

1. उत्तर प्रदेश साहित्यिक सम्मान (ग्यारहबार)

नाट्य पञ्चगव्यम् : 1972, अकिञ्चनकाञ्चनम् : 1974, आर्यान्योक्ति शतकम् : 1975, नवाष्टक मालिका : 1976, वाग्वधूटी : 1978, चतुष्पथीयम् : 1983, प्रमद्वरा नाटिका : 1984, अभिराज सप्तशती : 1987, श्रुतिम्भरा : 1989, राङ्गडा : 1994, कस्मैदेवाहविषा विधेम : 1997।

2. दिल्ली संस्कृत अकादमी पुरस्कार (तीन बार)

विद्योत्तमा नाटिका : 1994, राङ्गडा : 1994, नाट्य सप्तपदम् : 1998 (आदित्यनाथ झा नाट्य रचना- पुरस्कार)।

3. राजस्थान संस्कृत अकादमी सर्वोच्च पुरस्कार वामनावतरणम् महाकाव्य पर : 1999।

4. कालिदास सम्मान : म. प्र. संस्कृत अकादमी, भोपाल (दो बार)

5. साहित्य अकादमी एवार्ड : इक्षुगन्धा (कथा संग्रह) 1988।

6. वाचस्पति सम्मान (के. के. बिरला फाउन्डेशन) जानकी जीवनम् : 1993।

7. कलपवल्ली- पुरस्कार : (भारतीय भाषा-परिषद, कलकत्ता) विद्योत्तमा नाटिका : 1996।

8. महामहिम राष्ट्रपति सम्मान : 1999।

9. राष्ट्रीय आत्मा पुरस्कार : कानपुर, सपनों में डूब गया मन : 1983।

10. वाल्मीकि- पुरस्कार : चित्रकूट (कर्वी) संस्कृत सेवा हेतु : 1987।

11. डॉ. राम कुमार वर्मा : एकांकी पुरस्कार- (शकुन्तला सिरोदिया पुरस्कार समिति, इलाहाबाद) रक्ताभिषेक : 1988।

12. स्वामी धर्मानन्द सरस्वती साहित्य सम्मान : परमार्थ आश्रम, हरिद्वार संस्कृत सेवा हेतु : 1994।

13. डॉ. विद्यानिवास मिश्र संस्कृत सम्मान : धोरावल, सोनभद्र 2000 ई0।

14. सहस्राब्दी रत्न सम्मान : जैमिनी अकादमी, पानीपत 2001 ई0।

15. डॉ. ओगेटि अच्युत राम शर्मा संस्कृत पुरस्कार : वेद भारती, हैदराबार, संस्कृत सेवा हेतु : 2002 ई0।

तृतीय अध्याय

महाकाव्य के इतिवृक्कका विवेचन

कवि की अमृतोपम वाणी में सृष्टि-सौन्दर्य का चरमोत्कर्ष एवं काव्य कमनीयता का विलक्षण दर्शन होता है। उपरचेता कवि उन्हीं कथानकों का चयन करता है जो सहज मधुरता से जीवन को ओजस्वी एवं उदात्त बनाने में सहायक हो। राजेन्द्रमिश्र विरचित जानकी जीवनम् का कथानक सुग्राह्य होने के साथ-साथ, उच्च नैतिक भावना एवं स्पृहनीय औदार्य की प्रेरणा देने में पूर्णत: सक्षम हैं।

कथानक का मूल स्रोत-

कवि हृदय उस चन्द्रकान्त मणि सदृश होता है जिसमें चन्द्र किरणें प्रतिविम्बित होती हैं, वैसे ही कवि मन पर जो घटनाएँ पात्र प्रभूत प्रभाव डालते हैं। वही रचनाओं में अधिक चारुता से, अधिक मञ्जुलता से अंकित हो जाते हैं। 'जानकी जीवनम्' महाकाव्य का मूल उत्स भारतीय संस्कृति को अमृत निष्यन्दिनी सम सिंञ्चित करने वाली 'वाल्मीकि रामायण है। भावुक मन पर वाल्मीकि रामायण की रमणीयता ने अपनी ऐसी अमिट छवि अंकित की कि वह उसीमें निमग्न हो गये। यद्यपि रामायण करुण रस से हृदय को आप्लावित करता है, तथापि सहृदय को आनन्द से सराबोर करती है। राजेन्द्र मिश्र को भगवती सीता का गरिमामय चरित्र इतना भा गया कि उन्होंने जानकी जी के जीवन को ही केन्द्र में रखते हुए 'जानकी जीवनम्' महाकाव्य की रचना कर दी।

निष्पाप वैदेही का भास्वर चरित्र कवि मन को इस तरह छू गया कि उन्होंने रामायण में से जानकी जी को लेकर अपनी नूतन एवं प्रसादमयी कल्पना से सीता जी की बालोचित क्रीड़ाओं का प्राञ्जल वर्णन किया है।

सीता जी का जन्म, विवाह, राघवानुराग, वनवास, रावणापहार, अशोक वनाभय, हनुमत्प्राप्ति, राम की जय, अग्नि परीक्षा, राज्याभिषेक, जनापबाद को वाल्मीकि रामायण के अनुसार ही चित्रित किया गया है। जानकी जी का राम के प्रति अनन्य अनुराग पूर्ण सरसता एवं मधुरिमा के साथ पूर्व राग नामक षष्ठ सर्ग में चित्रित हुआ है। वह कवि की उच्चकोटि प्रतिभा का परिणाम तो है ही साथ ही तुलसीदास द्वारा प्रणीत राम चरित मानस अनुप्राणित है। राघवानुराग, स्वयंवर नामक सर्ग 'रामचरित मानस' में उल्लेखित पुष्पवाटिका एवं सीता स्वयंवर प्रसंग से प्रेरित है। करुणा से ओत-प्रोत जनक नन्दिनी का चरित्र हृत्तन्त्री को इस प्रकार झंकृत कर देता है कि कृतिकार ने अपनी काव्य सृष्टि में नवीन कल्पना करते हुए जानकी जी के निर्वासन को दर्शाया ही नहीं है। अपितु वहीं अयोध्या के राजमहल में लव-कुश का जन्म, पालन, अश्वमेध यज्ञ और रामायण गान होता है। महाकाव्य में रचनाकार ने अष्टादश सर्ग से एकविश सर्ग तक मौलिक उद्भावनाओं का समावेश किया है तथा कथानक को पूर्णत: नवीन रूप प्रदान किया है।

श्री राजेन्द्र जी मिश्र ने स्वयं यह बात स्वीकार की है कि कवि कालिदास का उनके महाकाव्य पर प्रभाव है। यथा जानकी जी की विदाई का दृश्य अभिज्ञान शाकुन्तलम के चतुर्थ अंक की याद दिलाता है।

कन्या की विदाई पर माता-पिता, कुटुम्बीजन, सखियाँ, वृक्षों-लताओं, मृग-शावकों, पुष्पों-पल्लवों सहित सम्पूर्ण प्रकृति के अश्रुपूरित होने का जैसा भाव विह्वल दृश्य कालिदस ने अभिज्ञान शाकुन्तलम् में अंकित किया है। वैसा ही जानकी जीवनम् महाकाव्य में चित्रोपम वर्णन किया गया है। कन्या पिता के पास धरोहर के रूप में रहती है, इस तथ्य का प्रतिपादन 'जानकी जीवनम्' महाकाव्य में अभिज्ञान शाकुन्तलम् के समान ही हुआ है।

अर्थो हि कन्या परकीय एव तामद्य संप्रेष्य परिग्रहीतुः।
जातो ममायं विशदः प्रकामं प्रत्यर्पितन्यास इवान्तरात्मा।।१।।

जानकी जीवनम् में दृष्टव्य है-

धनं भवत्येव सुताऽन्यदीयं पिताऽवितामात्रमसौ नु तस्याः।
समर्प्य जातेऽधिकृतेऽग्र त्वां क्यिाति निर्मक्षिक मेव मच्छम्।।२।।

कथानक का परिणत स्वरूप

जानकी जीवनम महाकाव्य का कथानक सरस, सुसम्बद्ध, सहज प्रवाह से युक्त है। कथानक की दृष्टि से जानकी जीवनम् सफल कृति कही जा सकती है। यद्यपि कथा का मूल स्त्रोत रामायण ही है तथापि कथानक को समधिक रोचक एवं हृदयावर्जक बनाने के लिए महाकाव्य में मनोरम प्रसंगों की सृष्टि की गई है जो कथा का प्रवाह अनवरत बनाए रखते हैं।

जानकी जीवनम् के गौरवमय चरित्र को 21 सर्गों में प्राञ्जलता के साथ प्रस्तुत किया गया है। महाकाव्य में जानकी कथा का प्रस्तुतिकरण इस प्रकार का है कि इसमें एक बालिका, नवयौवना, पत्नी, कुलवधू मां के मनोभावों का मनोहारी चित्रण है। नारी के विविध रूपों के अनुसार आचरण एवं कर्तव्यों का महाकाव्य के कथानक में तादात्म्यीकरण किया गया है।

लोकप्रसिद्ध कथानक की रमणीयता, नवीन वस्तु कल्पना से संवलित करने के कारण महाकाव्य को मिश्र कोटि का माना जा सकता है, जानकी का जन्म, घनुर्भङ्ग रूपी वीर्यशुल्क, स्वयंवर, राम के साथ परिणय, प्रणय, आनन्द, राज्याभिषेक के स्थान पर वनवास, रावण के द्वारा विलाप करती वैदेही का छद्म पूर्ण अपहरण, पराक्रमी राम के द्वारा रावण पर विजय, प्रज्वलित अग्नि परीक्षा में सफल जानकी को राम के द्वारा पट्टमहिषी के पद पर विराजमान करवाने का समस्त वृत्त मूलस्त्रोत वाल्मीकि रामायण के समान होने के कारण प्रख्यात है किन्तु महर्षि वशिष्ठ के युक्तियुक्त कथनों के द्वारा सीता-विषयक जनपादवाद का निराकरण दर्शाना एवं रजक के

पश्चाताप के आंसुओं से प्रक्षालित वैदेही का लाँछन कवि प्रतिभाजन्य कल्पना ही है। निष्पाप जानकी राम के मन मन्दिर में स्थापित नीराजन के समान राजमहल में ही रहकर रघुवंश के मनिदीप समान दीप्त, सुकुमार लव–कुश को जन्म देती है तथा राम सीता सहित अश्वमेघ यज्ञ करते हैं, ये सभी वृतान्त कवि कल्पना जनित होने के कारण महाकाव्य के कथानक को मिश्र की श्रेणी में ले आते हैं।

नायिका प्रधान इस महाकाव्य में रुचिर प्रसंगों की उपस्थिति से कथानक सहृदयों को अन्त तक बाँधे रखने में पूर्ण सक्षम रहा है। निरन्तर मधुरता से आप्यायित होने वाला सहृदय–चित्त हठात् ही महाकाव्य की ओर आकर्षित हो जाता है। इस महाकाव्य में बैदेही शिशु केलि नामक द्वितीय सर्ग कवि–कल्पना की मौलिक प्रस्तुति है। इसमें सीता के शैशव काल की क्रीड़ाओं का अतिशय मनोहर एवं स्वाभाविक चित्रण है। यह वर्णन महाकाव्य में ताजगी का संचार करता है। सीता एक नन्हीं भोली चपल बालिका के रूप में चित्रित की गई है। जो अपनी सखियों के साथ अल्हड़ता से क्रीड़ाऐं करती है। झूला झूलती झूठ–मूठ की चक्की पीसती, गुड्डे–गुड्डियों का विवाह कराती, जल सन्तरण करती, मछली की भांति जल क्रीड़ा करती हुई सीता का जितना शोभन वर्णन हुआ है उतना तो वाल्मीकि तथा कालिदास भी सीता की वयानुसार क्रीड़ाओं को वर्णन नहीं कर पाये।

महाकाव्य में शैशव और यौवन की वय सन्धि पर खड़ी सीता के मनोभावों का स्वाभाविक चित्रण हुआ है। सम्पूर्ण महाकाव्य में लोक परम्पराओं का जीवन्त चित्रण किया गया है। अभिजात में लोक का समन्वय महाकाव्य की महती विशिष्टता है। प्राजापत्य विधि से विवाह में सप्तपदी संस्कार, कन्या की विदाई, फागोत्सव, पुत्र जन्मोत्सव, जैसे सामाजिक संदर्भ बड़ी सहृदयता के साथ निरूपित किये गये हैं, इनमें लोक गीतों की गीत्यात्मक मात्रिक छन्दों में प्रस्तुति कथानक में एक सुमधुर झन्कार प्रस्तुत करते हैं।

राम कथा के अंक मर्मस्पर्शी प्रसंग, जैसे राम लक्ष्मण की मिथिला यात्रा एवं वाटिका भ्रमण राम एवं सीता का प्रथम मिलन अयोध्या में नव वधुओं का स्वागत एवं वध्वाचार, दाम्पत्य प्रेम, श्वसुरालय में सीता के श्रेष्ठ आचरण, देवर भाभी का हास, वन चर्चा, अग्नि परीक्षा, लोकापवाद शोधन, एवं लवकुश का अध्ययनार्थ वाल्मीकि आश्रम में गमन आदि वृत्त महाकाव्य में सर्वथा मौलिक एवं नवीन रूप में प्रस्तुत किये गये है जो कथानक में रमणीयता का संवर्धन करते हैं।

जानकी जीवनम् में प्रजा रंजन के लिए सर्वस्वहोम करने वाले राम को वशिष्ठ के माध्यम से, किसी भी मन माने निर्णय करने की निषेधाज्ञा दिलवाई गई है, जिससे पुनीता सीता का अनिष्ट नहीं हो सके। सीता के विरूद्ध उठे लोकापवाद का निर्णय प्रजा के समक्ष किया जाता है; जो कि

लोकतांत्रिक परंपरा के सर्वथा अनुकूल है। यह पूरा सन्दर्भ प्रकरण वक्रता का सर्वोत्तम उदाहरण है तथा महाकाव्य की भूयसी विशिष्टता है।

कथानक को आह्लादकारी बनाने के लिये उसमें सभी रसों का प्रयोग अपेक्षित है, इस दृष्टि से जानकी जीवनम् महाकाव्य का कथानक सफल है। सहृदयों को सुमधुर रसों से सराबोर करते हुए कथानक अबाध गति से प्रवाहमान है। सर्ग बद्ध कथानक कहीं भी विश्रृंखल नहीं हो पाता। नाट्य सन्धियों का यथोचित निर्वाह किया गया है।

महाकाव्य के कथानक में रोचकता के संवर्धन के लिये मिथिला, अयोध्यानगरी का भव्य चित्रण, सलिल क्रीड़ा राज प्रासाद, उपवन, स्वयंवर, वन, पर्वत, समुद्र, युद्ध, नदी, मृगया, मुनि, वाटिका, अम्युदय, यज्ञ आदि का वर्णन किया गया हैं

महाकाव्य का सर्वप्रमुख उद्देश्य है कि सहृदयों को आनन्दित करते हुए उदात्त सन्देश का सम्प्रेषण करे। इस दृष्टि से जानकी जीवनम् महाकाव्य का कथानक उदात्त संदेश संवलित सर्वथा जनोपयोगी है।

निष्कर्षत: कथानक प्राचीन होते हुये भी आधुनिक तार्किक दृष्टि तथा यत्र-तत्र सामान्य जन जीवन से समन्वित होने के कारण रोचक एवं जीवन्त बन पड़ा है। यह नारी की अस्मिता की पहचान करवाने की दृष्टि से श्लाघनीय है। जानकी जीवनम् की कथा वस्तु रस पेश पेशव्य एवं पाठकों को भाव विभोर कर देने में सर्वथा सक्षम है।

सर्गानुसार कथा सार :

कथानक के चयन एवं उसके संघटन-कौशल पर ही कृति की सफलता अवलम्बित होती है। माला में पिरोये मोती जैसे शोभायमान होते हैं, वैसे ही अन्विति युक्त कथानक में पात्र मनोहर दृष्टिगत होते हैं। मन भावन गन्ध के लिये जैसे पुष्प अपरिहार्य हैं, वैसे ही किसी महनीय सन्देश संप्रेषण के लिये उदात्त चरित समन्वित कथानक की महती आवश्यकता है। नाट्य शास्त्रियों ने रूपकों के भेदोपभेदों में प्रमुख घटकों में कथानक को प्रथम प्राथमिकता में परिवर्णित किया है-

सरसता के साथ अन्विति पूर्ण कथानक ही महाकाव्य की सफलता का प्रमाण है। काव्य शास्त्रियों के अनुसार महाकाव्य का कथानक प्रख्यात अथवा सज्जनाश्रित होना चाहिये। क्योंकि विख्यात चरित्र के प्रति जन भावना समादर शील होती है, उनका चरित्र प्रेरणास्पद तथा सहज ही मानस को आकर्षित करने वाला होता है। महाकाव्य का कथानक प्रख्यात, उत्पाद्य, मिश्र इन तीन कोटि में से किसी भी प्रकार का हो सकता है। आधुनिक युग में समसामयिक विषय भी महाकाव्य के कथानक के आधार बने हैं।

महाकाव्य में जीवन का सर्वांङ्गीण चित्रण होता है एवं कथानक की धुरी जिसके चारों ओर घूमती है, वह महाकाव्य का नायक होता है। नायक– देव, क्षत्रिय, धीरोदात्त, गुणान्वित, सत्कुलोत्पन्न, एक ही कुल में उत्पन्न अनेक राजा हो सकते हैं।

महाकाव्य की कथावस्तु एवं विशेषता यह होती है कि उसमें संबद्धता होनी चाहिये। इसके अभाव में कथानक में शिथिलता आ जाती है। अतएव कथानक को धारा प्रवाह बनाये रखने के लिये व उसमें रोचकता संवर्धन के लिये कथानक सुसम्बद्ध होना चाहिये। यही कारण है कि महाकाव्य की कथा वस्तु के लिये आचार्यों द्वारा सर्ग विधान किया गया है। एवं सगन्ति में भावी सर्ग के कथानक का संकेत देने की व्यवस्था की गई है। जिससे कथानक विश्रृंखल न होने पाये तथा रोचक व धारा प्रवाह बना रहे।

महाकाव्य रचना–विधान में भामह ने पञ्च सन्धियों मुख, प्रतिमुख, गर्भ विमर्श तथा निर्वहन के समन्वय का उल्लेख किया है। पंच सन्धियों की कल्पना यद्यपि प्रारम्भ में रुपकों को ध्यान में रखकर हुई किन्तु बाद में वे महाकाव्य की योजना के लिए उपयोगी समझी गयी। नाट्य सन्धियों के प्रयोग से कथावस्तु विन्यास में क्रम बद्धता आती है। अतएव इनकी आवश्यकता का प्रतिपादन हुआ। प्राय: सभी आचार्यों ने नाट्य सन्धियों के समन्वय की चर्चा की है। आनन्द वर्धन इस बात पर बल देते हैं कि सन्धि एवं सन्ध्यंगों की योजना केवल शास्त्र स्थिति के सम्पादन की इच्छा से न करके रसाभिव्यंजन की दृष्टि से की जानी चाहिये।

कथानक को आह्लादकारी चित्ताकर्षक बनाने के लिए उसमें सभी रसों का शोभन प्रयोग अपेक्षित है। मात्र दूतिवृत्त का कथन सहृदय को महाकाव्य पठन के लिए प्रेरित नहीं कर सकता। कथानक की सरसता ही उसकी सफलता का प्रमाण है।

कथावस्तु को एक रसता से बचाने के लिए उसमें विधि वर्णन होना चाहिए। वर्णनीय विषयों में भामह ने मन्त्रणा, दूत–संप्रेषण की चर्चा की तथा ऋद्धिमत् के द्वारा उन समस्त वैभवों नागरिक एवं प्राकृतिकता का अभिव्यंजन कर दिया जो काव्य में वर्णन की दृष्टि से उपयोगी है। प्रकृति वर्णन भाव के रूप में रसोत्पत्ति के लिये अत्यन्त उपयोगी होने के कारण वर्णनीय माने गये हैं।

कथानक में उक्त विशेषताओं के अतिरिक्त एक प्रमुख विशेषता यह भी होती है कि वह अनुपम रूप यौवन सम्पन्न कमनीय कलेवराकमणी की कोमलकान्त पदावली की भांति श्रोताओं के मानस में रस–माधुरी का सृजन करती हुई उन्हें अपने कर्तव्य के प्रति जागरुकता प्रदान करता रहे। इसीलिये काव्य को मम्मट ने ''कान्तासम्मिततयो उपदेश युजे'' कहा है।

जानकी जीवनम् महाकाव्य प्राचीन कथानक पर आधृत होते हुये भी नूतन कल्पनाओं के इन्द्रधनुषी रंगों से सुसज्जित हृदय वर्जक है। जानकी जीवनम् महाकाव्य का सर्गानुसार संक्षिप्त कथानक प्रस्तुत है–

प्रथम सर्ग– 'अवतार' :

जानकी जीवनम् महाकाव्य का प्रथम सर्ग भगवती सीता की जन्म कथा को बताने वाला है। यहाँ कवि ने सीता के आयोजिनजा स्वरूप को प्रकट करते हुए जगजननी के अवतरण को स्पष्ट किया है। महाकाव्य का प्रारम्भ अत्यन्त ही विषाद पूर्ण घटना के वर्णन से हुआ है। जब वर्षों तक विदेह जनपद में वर्षा के अभाव से प्रजा कष्ट पाने लगी तो एक दिन राजा सीरध्वज अत्यन्त चिन्तित होकर प्रातः काल ही नगर से बाहर निकलते हैं। जहाँ तपोवन में ऋषि शतानन्द से अपनी व्यथा कहते हैं मुनि इन्द्र देव को प्रसन्न करने के लिए यज्ञायोजन की प्रेरणा देते हैं, उपयुक्त अवसर आने पर सम्पूर्ण विधिवत् यज्ञायोजन स्वरूप राजा जनक ने अपने हाथों से पृथ्वी पर हल चलाना प्रारम्भ कर दिया। प्रजा हित के लिये ही अपना जीवन मानने वाले राजा जनक महर्षि शतानन्द के निर्देशन में हल लेकर आगे बढ़ ही रहे थे कि अचानक भूमि के भीतर किसी मजबूत वस्तु से हल की नोक ऐसी अटक गई कि राजा द्वारा सम्पूर्ण शक्ति लगाने पर भी हल आगे ना बढ़ सका, अन्ततः राजा ने हल को जैसे ही बाहर की ओर खींचा वहाँ एक प्रकाश पुञ्ज प्रकट हो गया तथा प्रजा सहित राजा जनक ने आश्चर्य चकित होकर देखा कि वहाँ एक कोमल कन्या कुम्भ रूपी शैय्या पर विराजमान है, उसी समय आकाशवाणी द्वारा राजा जनक को कन्या ग्रहण की अनुमति दी गई। साथ ही उस कन्या के विविध नाम भी बताए गए। क्योंकि राजा जनक के हल की फाल (सीता) के अग्र भाग पर वह कन्या हुई अतएव उनका नाम सीता, जानकी, मैथिली और वैदेही रखा गया। तत्क्षण ही आकाश में अकाल के बैरी विस्तृत घन समूह का प्रसार हो गया और राजा जनक गुरु आज्ञा से कन्या को राजमहल में लेकर चले। इस प्रकार महाकाव्य का प्रथम अवतार संज्ञक सर्ग अयोनिजा सीता के जन्म के साथ सम्पूर्ण हुआ।

द्वितीय सर्ग–'शिशुकेलि' :

इस सर्ग के अन्तर्गत परिपूर्ण आकांक्षा बाले राजा जनक के शुभांगी कन्या सीता के सहित राज प्रासाद में पधारने पर सर्वत्र व्याप्त हर्षोल्लास का चित्रण, अवगुण्ठवती नव वधू के समान मिथिला नारी का नयनाभिराम वर्णन, विदेह नन्दिनी सीता के सौन्दर्य का सरस वर्णन हुआ है। वैदेही मन-मोहक बाल क्रीड़ाओं से माता-पिता, गुरुजन एवं प्रजाजन को आनन्दित करती हुई अतर्कित रूप से वयःक्रम को पार करने लगी। चञ्चल हिरणी सी सीता पाँवों में नुपूर पहन जब चलती तब नुपूर की सुमधुर ध्वनि सभी के चित्त को चुरा लेती। इसी प्रकार सीता का माँ से चाँद माँगने का

हठ, कहानी सुनने की जिद्द, मिट्टी की चक्की पीसने की मनोहर क्रीड़ा, कदम्ब वृक्ष पर हिंडोला झूलने का वर्णन, कपोत शावकों को चावल देने का स्वाँग, घास फूस का घरोंदा बनाकर बंकिम चित्वन विभूषित गुड़िया से खेलना, मैना की मधुर बोली की नकल, मछली के समान जल में तैरने की प्रति स्पर्धा का वर्णन, माता-पिता के वात्सल्य की छांव में बढ़ती हुई मैथिली द्वारा सखियों के बताने पर पति प्राप्ति रूपी फल वाला हर तालिका व्रत करने का विवेचन, सीता के मन में भावी वर की एक प्रभामयी काल्पनिक प्रतिभा का उत्पन्न होना, पिता श्री के मन भावन पकवानों का बनाना, शिव के धनुष का पूजन, विहङ्ग समुदाय को चारा देना। इस प्रकार मन भावनी सीता के असंख्य क्रीड़ाओं से कुटुम्बियों, पुर वासियों, बटोहियों एवं दर्शकों को आह्लादित करने एवं यौवन के समीप पहुँचने का द्वितीय सर्ग में समधिक शोभन चित्रण हुआ है।

तृतीय सर्ग-'स्मराङ्कुर' :

अपनी बालोचित क्रीड़ओं द्वारा सबको आनन्दित करती हुई, किशोरवय में पहुँचने वाली सीता का अचानक ही अपने शारिरिक परिवर्तनों को जानकर आश्चर्य से अभिभूत होकर अवाचाल एवं गम्भीर हो गई। शैशव का उन्मुक्त हास्य यौवन की प्रथम रेख की मुस्कान में परिवर्तित होकर विभिन्न परिवर्तनों से लज्जा जनक बन गया। सखियों द्वारा बार-बार प्रेरित किये जाने पर एवं बुलाने पर भी अब उसका मन बाल क्रीड़ासक्त नहीं होता था तथा प्रणय सम्बन्धी विविध चर्चाओं के कारण, प्रणय भावना से आविष्ट विदेह तनया रात्रिवेला में शैय्या के ऊपर प्रियतम की चिन्ता में जागरण-व्रत का पालन करती हुई काम देवता की शरण में जा पहुँचती। तभी तन्वगीं सीता स्वयं वरण किये गये, किसी कमलनयन प्रियतम की कल्पना किया करती। स्वप्न के क्षणों में भी जिसका रूप लावण्य तथा मञ्जुल कोमलताा हृदय में नहीं बसा सकी, वहीं कोई श्रेष्ठ पुरुष सीता के हृदय में वेग पूर्वक रस-बस गया। ऐसी ही मधुर कल्पनाओं में खोई नव यौवना सीता को चित्रित करता स्मराङ्कुर अभिधान वाला तृतीय सर्ग पूर्ण होता है।

चतुर्थ सर्ग-'राघवानुराग' :

जिस प्रकार भगवती सीता का बचपन बीत रहा था उसी प्रकार अयोध्या में राजा दशरथ नन्दन श्री राम भी अपने भाइयों सहित युवावस्था की ओर बढ़ रहे थे। ऐसे समय एक दिन अकस्मात् ऋषि विश्वामित्र राजा दशरथ से यज्ञ की रक्षार्थ दोनों पुत्रों श्री राम और लक्ष्मण को लिवाने हेतु पहुँचे। पहले तो दशरथ पुत्र मोह में घिर गये किन्तु शीघ्र ही गुरु वशिष्ठ द्वारा प्रबोचित किये जाने के कारण दोनों पुत्रों को विश्वामित्र के गुरुत्व निर्देशन में जाने की आज्ञा दे दी। शीघ्र ही राम और लक्ष्मण ने गुरु आज्ञानुसार सुबाहू आदि राक्षसों का संहार किया तथा दिव्यास्त्रों सहित वेद, इतिहास, षडशास्त्रों, पुराण, काव्य शास्त्र, काम शास्त्र तथा चौंसठ कलाओं को गुरु अनुग्रह से

प्राप्त किया। ऐसे ही समय में एक दिन प्रातः काल ही राजा जनक द्वारा सीता के स्वयंवर हेतु भेजी गई पत्रिका ऋषि विश्वामित्र को प्राप्त हई तो उन्होंने राम और लक्ष्मण को भी सीता एवं जनक के बारे में बताते हुए मिथिला जाने की बात कही। राम के हृदय में सीता की चर्चा से उत्पन्न अनुराग बढ़ता गया और वे रात्रि-शयन में भी समर्थ न हो सके। इस प्रकार विदेह नन्दिनी के पावन चरित्र युक्त महाकाव्य का यह चतुर्थ सर्ग सीता के लोक विश्रुता स्वरूप को अभिव्यक्त करते हुए राघवानुराग से संयुक्त होता हुआ सम्पूर्ण हुआ।

पञ्चम सर्ग–'रघुराजसङ्गम' :

गुरु विश्वामित्र के साथ राम और लक्ष्मण विदेह नगरी में पहुँचे। नगरी के बाहर से ही उन्हें विविध स्वागत सत्कार प्राप्त होने प्रारम्भ हो गये। राम और लक्ष्मण ने कुतुहल वश चन्दनार्चित जल से सुवासित उस रम्य मिथिला में राजा जनक द्वारा पूजित गुरु विश्वामित्र को देखा, तदनन्तर मिथिलेश द्वारा उन दोनों बालकों के बारे में पूछा गया। विश्वामित्र ने सूर्य वंशी राम और लक्ष्मण से परिचित करवाते हुए उनके अतुलित पराक्रम का बखान किया। प्रसन्न एवं आश्चर्य चकित राजा जनक ने उन विशिष्ट अतिथियों के निवास आदि की समुचित व्यवस्था करके स्वयंवर योग्य अन्य कार्यों को जांचने हेतु प्रस्थान किया। विश्रामोपरान्त गुरु की आज्ञा से अग्नि होत्र हेतु पुष्प चयन के लिए भी राम एवं लक्ष्मण ने राजा जनक के विलास वन में प्रवेश किया बसन्त की शोभा से युक्त वह उपवन राम की काम-क्रीड़ा को अत्यधिक उदीप्त कर गया। इसी समय किसी मधुर गीत की ध्वनि सुनने के बहाने से लक्ष्मण को एकान्त इच्छुक राम ने पता लगाने के लिए भेजा। इस प्रकार सीता के सौभाग्यवती स्वरूप को दर्शाने वाला रघुराजसंगम नामक पञ्चम सर्ग सम्पूर्ण होता है।

षष्ठ सर्ग–'पूर्वराग' :

राम की इच्छानुरूप लक्ष्मण ने आगे बढ़कर जब देखा तो उपवन में युवतियों का समूह संचरण करते पाया। सब सखियाँ सीता को घेर कर चुहल बाजी करती हुईं गिरिजा मन्दिर की ओर जा रही थीं। रास्ते में सबका इधर-उधर पुष्पावचयन हेतु भ्रमण, भ्रमरों को ताड़न, उपालम्भ, बसन्त श्री का सम्मान आदि देखकर लक्ष्मण ने राम से निवेदित किया कि सीता इसी उपवन में विद्यमान हैं चाहें तो आप मेरे साथ चलकर उन्हें देख सकते हैं। ऐसा कह-सुन दोनों भाई उस स्थान पर पहुँचे जहाँ से स्वर्ण चम्पा की कुञ्ज से छिपकर उस रूप माधुरी का पान किया जा सकता था। स्पष्ट रूप से सीता की छवि का अवलोकन करते हुए राम की दाहिनी भुजा फकड़ने लगी तथा मन में काम भाव का विस्तार हो गया। राम ने लक्ष्मण से अपनी विचित्र स्थिति का संक्षिप्त कथन किया ही था कि किसी पुष्प चयन करती सखी ने सीता से यह बात कही कि चम्पा कुञ्ज में जरूर कोई छिपा है। जब सखियों सहित सीता वहाँ पहुँची तो दोनों को एकत्र पाकर सब धीरे-धीरे खिसक

गईं और एकान्त पाकर राम ने अपनी हृदय कथा सीता से कही। सीता लज्जा और विनय से प्रार्थना करती हई वहाँ से चली गई। प्रसन्न होकर दो प्रेम युगलों ने अब अपने-अपने करणीय कार्यों की ओर ध्यान दिया। सीता मन्दिर की ओर चल पड़ी और राम गुरु आज्ञानुसार पुष्पावचयन हेतु तत्पर हुए। इस प्रकार जनक-नन्दिनी के अनुरागिणी स्वरूप को व्यक्त करता हुआ पूर्वानुरागाभिधान वाला महाकाव्य का षष्ठ सर्ग सम्पूर्ण हआ।

सप्तम सर्ग-'स्वयंवर' :

पुष्प वाटिका में राम और सीता वह संक्षिप्त मिलन राम को अत्यन्त आनन्दित कर गया और स्वप्न में भी वे उसी का स्मरण करते रहे। अगले दिन प्रातःकाल ही मुनि विश्वामित्र ने राम और लक्ष्मण को शीघ्रता से तैयार होकर स्वयंवर मण्डप तक पहुँचने के लिये आदेशित किया। राजा जनक ने शास्त्रोपदिष्ट विधि से उनका स्वागत किया। विभिन्न राजर्षि, ब्रह्मर्षि, श्रेष्ठ लोगों से घिरे देश-देशान्तर से आए भूपतियों और राजकुमारों से स्वयंवर मण्डप सुशोभित था विभिन्न प्रकार से सुसज्जित उसी मण्डप में महर्षि विश्वामित्र राम लक्ष्मण सहित विराजमान हुए। तत्पश्चात् राजा जनक ने सबको सम्बोधित करते हए कहा कि मेरी पतिंवरा सीता किसी मनोभिलषित वर का पाणिग्रहण करेगी जो कोई वीर अक्षत 'पिनाक' धनुष को वेग पूर्वक उठाकर प्रत्यञ्चा चढ़ा देगा वही सीता का पति होगा। इसके बाद भगवान् शिव द्वारा 'सती' के अग्नि दाहोपरान्त उत्पन्न वैराग्य से जो धनुष राजा जनक के पूर्वजों को दिया था, वही पिनाक इस समय आठ पहियों पर चलने वाली लौह निर्मित मञ्जूषा सहित पाँच हजार व्यक्तियों द्वारा खींचकर स्वयंवर मंच के मध्य लाया गया। उस सभा में विराजमान कोई भी उस धनुष को रत्ती भर हिलाने में भी समर्थ न हो सके। अन्ततः निराश होकर राजा जनक ने कहा कि लगता है कि धरती पर कोई वीर रह ही नहीं गया है। जिस धनुष को मैं, कुमार कुशध्वज और सीता इच्छानुसार उठाकर इधर से उधर करते ही रहते हैं। उसे तथा कथित पराक्रमी हिला भी नहीं पाये। वस्तुतः विधाता ने वैदेही के लिए वर का विधान ही नहीं किया अथवा मैंने ही दुष्कर प्रतिज्ञा कर डाली किन्तु इसी समय मुनि विश्वामित्र ने राजा जनक की व्यथा दूर करते हुए कहा कि राजन् चिन्तित न हों सूर्य द्वारा दूर करने योग्य अन्धकार के समक्ष जुगनू कुछ नहीं कर सकते। इसी के साथ उन्होंने राम को धनुष उठाने की आज्ञा दी। राम ने गुरु आज्ञा सुनकर भगवान् शिव धनुष पिनाक तथा गुरु विश्वामित्र को मन ही मन प्रणाम कर अनायास ही धनुष उठा लिया, जब तक प्रत्यञ्चा चढ़ाई जाती अत्यन्त पुरातन् वह धनुष गम्भीर गर्जना से टूट गया। जिसकी घनघोर घोषणा से दिशाएँ काँप गईं। सम्पूर्ण भूमण्डल कम्पायमान हो गया और सीता के हितैषी समस्त प्राणी वर्ग प्रसन्नता को प्राप्त हुए। विधिवत् मंगलाचार एवं वर माला का कार्यक्रम सम्पूर्ण कर गुरु विश्वामित्र द्वारा निर्देशित जनक ने लोकाचार पूर्ति हेतु राजा दशरथ को बुलाने के लिए सन्देश वाहक भेज दिया। इस प्रकार जगत कल्याणी सीता के परिणीता स्वरूप वाला यह स्वयंवर अभिधान युक्त सप्तम सर्ग सम्पूर्ण हुआ।

अष्टम सर्ग–'श्वसुरालय' :

राजा जनक का पत्रवाहक अयोध्या पहुँचकर जब राजा दशरथ को यह मनोहर संदेश देता है कि उन्हें सादर बारात सहित मिथिला आमन्त्रित किया गया है तो राजा दशरथ के हर्ष का पारावार नहीं रहता। सम्पूर्ण नगरी दुल्हन की भाँति अलंकृत की जाती है। एवं प्रजाजन भी प्रसन्नता पूर्वक बारात में जाने की तैयारीयों में जुट जाते हैं। विधिवत् सब प्रकार से सुसज्जित होकर विस्तृत बारात के साथ राजा दशरथ मिथिला नगरी में पहुँचते हैं। प्रसन्नता से सब कार्य सम्पन्न होते हैं। विविध वैदिक एवं लौकिक मंगल क्रियाओं द्वारा विवाह विधि सम्पूर्ण होने के बाद सीता को ससुराल भेजने की तैयारी की जाती है। विवाह के मंगल गान एवं विदाई की बेला में जहाँ एक ओर वधू आगमन की प्रसन्नता है वहीं राजा जनक को पुत्री वियोग का कष्ट विह्वल बना रहा है। समधिक भावुकताा से माता–पिता अपनी चारों बेटियों को राजा दशरथ के चारों पुत्रों के साथ व्याह कर विदा करते हैं और कन्या रूपी धरोहर को सुपात्र को सौंपकर अपने को उऋण मानकर संतुष्ट होते हैं। पिता की आज्ञा और माता की सिखावन ले बेटियाँ अपने भावी कर्तव्य पथ पर अग्रसर हो जाती हैं, यहाँ अंत में कवि ने कन्या के विविध रूप और विस्तृत जगत में उसी पर आश्रित संसार को बताते हुये सीता के प्रियानुमता स्वरूप को श्वसुराल के सर्ग से पूर्णत: निबद्ध कर दिया है।

नवम सर्ग–'वह्वाचार' :

राजा जनक की चारों पुत्रियों को पुत्र वधु के रूप में विधिवत् विवाहित कर जब राजा दशरथ अयोध्या पहुँचे तो अयोध्या वासियों के लिये मानो उत्सव के ही दिन उमड़ने लगे। सब प्रकार से प्रसन्न कौशल्या आदि माताओं ने सुहागिनों के साथ वधुओं को मंगलाचार सहित घर में प्रवेश कराया। बहुत दिनों तक राजा दशरथ के घर में विवाह का उत्सव चलता रहा। सीता ने सब प्रकार से अपने व्यवहार द्वारा सास–ससुर देवरों को प्रसन्न कर दिया। राम तो सीता से मिलने के बहाने ही ढूँढ़ते रहते थे। एक पति–पत्नी के नवीन दायित्व की कुशलता पूर्वक निर्वहन किया करते थे। इसी प्रकार अन्य तीन बहनें उर्मिला आदि भी अपने कार्यों में निपुण थीं। बहुत से वर्ष, त्यौहार आदि प्रसन्नता, उत्साह हंसी खुशी में बीत गये जिनका ज्ञान भी नहीं हुआ। इस प्रकार राम प्रिया सीता के वहवाचार अभिधान वाला नवम सर्ग भी पूरा हआ।

दशम् सर्ग–'वनवास' :

आनन्दोल्लास के इस वातावरण में कब बारह वर्ष बीत गए कोई भी नहीं जान पाया। तब अचानक ही एक दिन प्रात:काल जब राजा दशरथ ने अपने कर्ण कुहरों के समीप हिम धवल श्वेत केशों को देखा तो अपने कर्त्तव्यों के प्रति अनायास ही शीघ्रता से जागरूक हो गए। उन्होंने अपनी वय एवं प्रजाहित हेतु पुत्रों के सम्बनध में विचार करते हुए राम का राज्याभिषेक करने की इच्छा

से गुरु वशिष्ठ के आश्रम की ओर प्रस्थान किया। राजा दशरथ के अवस्थानुरूप उचित निर्णय का गुरु वशिष्ठ ने अनुमोदन किया तथा राज्याभिषेक सम्बन्धी निर्देश एवं मन्त्रणा भी दी। कुल दो ही तीन दिन में सम्पूर्ण तैयारियाँ हो गईं पूरी अयोध्या फिर से दुल्हन की भाँति सज गई, किन्तु विधाता का विधान कुछ और ही था। इसी निमित्त वामेश्वरी से नियन्त्रित बुद्धि वाली कैकेयी की दासी मन्थरा कुपित होकर कैकेयी के समीप पहुँची। राजा दशरथ द्वारा राम का राज्याभिषेक ऐसे समय में करवाना जब भरत यहाँ नहीं है, निश्चय ही कौशल्या का कौतुक है। यदि ऐसा हो गया तो कैकेयी की कुशलता पूछने वाला भी कोई नहीं रहेगा। इस प्रकार कैकेयी के मन में ज्वाला पैदाकर मंथरा शांत हुई तो कैकेयी कोप भवन में पहुँच गई। राजाा दशरथ ने एक साथ समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु कैकेयी ने राम को चौदह वर्ष का वनवास और भरत को राज्य प्रदान करने का हठ किसी प्रकार नहीं छोड़ा तब राजा दशरथ को वरदानों में बंधा पा अविचलित भाव से तत्क्षण ही राम सीता और लक्ष्मण के साथ राजमहल से रथ में बैठ प्रस्थित हुए। सम्पूर्ण अयोध्या नगरी को करुण क्रंदन करता हुआ ही छोड़कर राम सहचरी सीता के साथ वनवास के लिये चले गये।

एकादश सर्ग–'रावणापहार' :

राजमहल से चलकर राम जानकी और लक्ष्मण को साथ लिये तमसा, गंगा को पार कर महर्षि भरद्वाज को प्रणाम कर यमुना पार करते हुए चित्रकूट में पहुँकर कामद पर्वत शिखर पर कोल–किरात और भीलों द्वारा सर्वात्मना सेवित निवास करने लगे। वनवास व्रत का पालन करते हुए वनेचरों द्वारा कैकेयी की निन्दा का प्रतिवाद करते हुए प्रीति पूर्वक वहाँ रहने लगे तभी उन्हें भरत गुरुजनों और मान्य प्रजाजनों सहित अयोध्या लौटा ले चलने हेतु पहँचे। सब प्रकार भरत को समझा बुझाकर अपनी चरण पादुका दे उसे विदा करने के बाद राम दक्षिण की ओर चल दिये ताकि बन्धुजनों का मोह घटाया जा सके। पंचवटी में गोदावरी किनारे पर्णकुटी बनाकर निवास करने लगे। वहीं एक दिन शूपर्णखा रति–याचना करने लगी। जब दोनों ही भाइयों से उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई तो वह सीता को मारने के लिये बढ़ी किन्तु लक्ष्मण से नाक–कान कटवा कर अपने भाइयों के पास दौड़ी। खर–दूषण को भी मार देने पर वह रावण के पास पहुँची, रावण ने ताटका पुत्र मारीच से सहायता माँगी, नहीं देने पर मारने का निश्चय किया तो मारीच ने स्वर्ण–मृग का रूप धर सीता को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया। सीता के आग्रह से राम उसके पीछे–पीछे गहन वन में पहुँच गये जहाँ अचानक राम के स्वर में करुण क्रन्दन सुन सीता भयभीत होकर लक्ष्मण को बलात् राम के सहायातार्थ भेज दिया। इसी समय अवश पाकर रावण छद्म वेष में सन्यासी बन सीता के पास भिक्षा चरण हेतु पहुँचा। शीघ्र ही अपने असली रूप में आकर सीता को लुभाना, डराना चाहा किन्तु न मानने पर बल पूर्वक खींचकर ले जाने लगा, राह में पक्षीराज जटायु ने यह देखा तो वह रावण पर टूट पड़े अपने चोंच और नखों से उसे घायल कर दिया किन्तु सीता का

विपरीत समय आचुका था शीघ्र ही होस में आकर उस दुष्ट ने जटायु को मार दिया और सीता को तीव्र गति से आकाश गामी रथ पर लेकर उड़ गया। ऋष्मूक पर्वत पर बानरों को बैठे देख सीता ने अपने वस्त्रा भूषणों को कुछ गिराना प्रारम्भ कर दिया ताकि उसके रावणापहार को समझ उपाय कर सकें।

द्वादश सर्ग–'अशोक वनाश्रय' :

अशोक वाटिका में सीता को हजारों लाखों निशाचरों से बाहर–भीतर से आरक्षित करके वह दुष्ट रावण नित्य ही उससे प्रणय याचना करने आता। उसकी सेवा नियुक्त एकमात्र सात्विक वृत्ति वाली त्रिजटा सीता को सब प्रकार सांत्वना देती हुई राम पर विश्वास रखने की बात कहती थी। इसी भीषण कष्ट दायक दशा में एक दिन रावण उसके पास पहुँच कर वही दुर्भावना पूर्ण प्रणय याचना करने लगा तो सब प्रकार से सीता ने उसे प्रताड़ित और लांछित किया। क्रोधित होकर सीता को चेतावनी देता हुआ रावण वहाँ से चला गया। सीता त्रिजटा के गले लग के विलाप करने लगी कि मेरे भाग्य में ये कैसी विडम्वना है। अब और अधिक नहीं सहा जाता मेरे लिये लकड़ी और अग्नि की व्यवस्था कर दें। ताकि अपने इस रावण स्पर्श जन्य दूषित शरीर को अग्नि स्पर्श से शुद्ध कर पुन: नवीन जीवन श्री राम के लिये धारण कर सकूँ, त्रिजटा ने सीता को अनेक प्रकार से सात्वना दी और तपस्विनी सीता का अशोक वनाश्रय वाला सर्ग पूर्णता को प्राप्त हुआ।

त्रयोदश सर्ग–'हनुमत प्राप्ति' :

जिस संध्या–समय रावण सीता के पास अपना कुत्सित विचार प्रगट करने आया उसके अनन्तर प्रात: वेला से पूर्व विगत निद्रा सीता ने पावन श्री राम गुणानुवाद को आश्चर्य चकित होकर सुना। वह वखैरी वाणी श्री राम और सीता के वनवास से प्रारम्भ होकर खर–दूषण नाश, स्वर्ण–मृग, सीतापहरण, जटायु द्वारा किए गए उपाय, राम द्वारा पर्ण कुटी खाली पाकर सीता को खोजते–खोजते जटायु तक पहुँचना, जटायु के द्वारा किसी प्रकार रावण की दुष्टता का वर्णन एवं मृत्यु, राम द्वारा ऋष्यमूक पर सुग्रीव से हनुमान की सहायता द्वारा मित्रता, बालिवध, सीता की खोज में वानरों का जाना, हनुमान द्वारा समुद्र लाँघकर लंका में सूक्ष्म रूप धारण कर प्रवेश, लंकिनी विनाश, रावण की दुष्टता का दृश्य देखने तक सम्पूर्ण कथा कही गई। तब सीता को आश्वस्त करते हुए हनुमान ने अपने आपको उनके सामने व्यक्त किया। पुत्र रूप से सीता को प्रणाम कर श्री राम की मुद्रिका भेंट की तथा सीता का श्री राम के लिए सन्देश और चूड़ामणि लेकर अशोक वाटिका को उजाड़कर रखवालों को मार दिया। तब इन्द्रजीत ने नागपाश में बाँधकर हनुमान को रावण के समक्ष उपस्थित किया। हनुमान की बातों से क्रोधित रावण ने उसकी पूँछ में आग लगाने की आज्ञा दे दी। हनुमान ने उसी पूँछ की आग से सम्पूर्ण लंका नगरी को राख के

ढेर में बदल दिया और शीघ्रता से सीता को प्रणाम कर राम की सेवा में लौट गए। इस प्रकार 'प्रत्युज्जीविता' सीता ने 'हनुमत्प्राप्ति' से जीवन की आशा पुनः प्राप्त की।

चतुर्दश सर्ग–'लङ्काविजय' :

सीता की खोज करके प्रसन्न वदन लौटे हनुमान को देख समस्त वानर सेना भी प्रमुदित हो जाम्बवान आदि के नेतृत्व में यह शभ समाचार श्री राम को सुनाने के लिए प्रस्रवण पर्वत पर पहुँचे। श्री राम के चरणों में सीता की व्यथा–कथा का निवेदन करते विकल हनुमान ने शीघ्र ही उनके उद्धार का अनुनय किया। रावण के दुष्ट व्यापारों से क्रोधित हो तत्काल ही राघव ने सुग्रीव से सेना की तैयारी करने का आदेश दिया और देखते ही देखते सुभग वीरों ने समुद्र पर पुल बाँधकर लंका को घेर लिया। इसी समय विभीषण श्री राम की शरण पहुँचा जिसे लंकापति कहकर समुद्र के जल से ही उसका अभिषेक किया। रावण ने अपनी सेना को सब ओर फैला दिया और शुक तथा सारण को शत्रु सेना में बलाबल का पता लगाने के लिए भेजा। विभीषण द्वारा पहचाने जाने पर वानरों ने उन दोनों की दुर्गति कर दी और श्री राम के शरणागत होने पर ही छोड़ दिया। लौटकर उन्होंने भी रावण को समझाने का प्रयत्न किया किन्तु रावण का भाग्य ही विपरीत था माता–पिता आदि किसी के भी समझाने का प्रभाव नहीं पड़ा और मायावी युद्ध करता हुआ वह श्री राम और लक्ष्मण के माया निर्मित सिर काटकर सीता को दिखाने लाया। मेघनाद द्वारा शक्ति वाण से प्रभावित हो जाने पर नाग पाश में बँधे श्री राम और लक्ष्मण को भी मृत घोषित करना चाहा किन्तु वैदेही का दैव अनुकूल था। अन्ततः एक–एक कर रावण सम्पूर्ण पूर्वकृत पापा चरणों का दण्ड भोगता हुआ श्री राम द्वारा मार डाला गया। रावण के मरते ही सम्पूर्ण सृष्टि अभय होने से प्रसन्न एवं निष्कण्टक आनन्द से आपूरित हो गई और लंका विजय होने पर वैदेही भी समुद्धता हो धैर्य को प्राप्त हुई।

पञ्चदश सर्ग–'अग्नि परीक्षा' :

रावण की मृत्यु होते ही पवन पुत्र ने वैदेही को सम्पूर्ण वृतान्त सुनाया तथा शीघ्र ही राघव मिलन की आशा से उत्कंठित सीता को विभीषण की प्रेरणा से राक्षसी महिलाओं ने सर्वथा सौम्य रूप में सुसज्जित किया। पालकी पर बैठकर जैसे ही सीता राम के समक्ष आने को थी, राम ने विभीषण से कहा कि सीता को मेरे पास तक पैदल ही आने को कहो ताकि सम्पूर्ण बानर सेना व लंका वासी सीता का दर्शन कर सकें। स्वयंवर, युद्ध, विवाह, विपत्ति के समय महिलाओं का सार्वजनिक होना नीति सम्मत है। जैसे ही सीता सकुचाती हुई विविध शंका करती हुई। श्री राम के समीप पहुँची तभी राम ने कुछ ही दूरी से कठोर शब्दों में कहा कि ठहरो सीता! तुम्हारा सब प्रकार से मैं उद्धार कर चुका हूँ, किन्तु पर पुरुष द्वारा संस्पर्शित एवं पर पुरुष ग्रह में निवास के कारण अब मैं तुम्हें स्वीकार नहीं कर सकता अतः तुम्हारी जहाँ इच्छा हो तुम जा सकती हो। श्री

राम के इन कुलिशवत् कठोर वचनों को सुनकर सब लोग स्तम्भित हो गये। कुछ चेतना प्राप्त कर सीता ने कहा कि यदि ऐसा ही था तो मुझे बचाने के लिये आपने व्यर्थ ही यह पराक्रम दिखाया। चाहे जिससे मेरे बारे में पूछ सकते हो। इस प्रकार कुछ देर कहने के बाद लक्ष्मण से उन्होंने प्रार्थना की कि मेरे लिये चिता बना दो अब जीवन ही व्यर्थ है। क्रोधित एवं पीड़ित हुए लक्ष्मण ने तत्काल लकड़ियों कि चिता बनाकर आग जला दी, जैसे ही सीता ने अग्नि में प्रवेश किया। भगवान् शिव, ब्रह्मा व समस्त देवताओं ने श्री राम को नमन व वन्दन किया। तत्काल ही अग्नि देव मानवी रूप धारण कर दिव्य वस्त्रा भूषणों से अलंकृत वैदेही को गोद में लिये प्रकट हुए तथा सब प्रकार से जगत्पावनी सीता से स्वयं को पवित्र हुआ बताकर समस्त समाज को सुखी कर दिया। तब प्रसन्न हो श्री राम ने जनक नन्दिनी को प्राप्त कर लोकापवाद के सम्भावित उपद्रव को उठने से पूर्व ही शान्त कर दिया। इस प्रकार 'भर्तृमती' भगवती सीता की वह अग्नि परीक्षा सम्पन्न हुई।

षोडश सर्ग–'राज्याभिषेक' :

देव संसद द्वारा घोषित पवित्रता वाली सीता को पाकर श्री राम प्रसन्न होकर अयोध्या लौटने के लिए उत्कंठित हो गए और उन्होंने राक्षस राज लंकापति विभीषण से लौटने की व्यवस्था करने को कहा। श्री राम की आज्ञा से लक्ष्मण सहित शीघ्र ही विभीषण ने पुष्पक विमान को उपस्थित किया। सीता की इच्छा से प्रमुदित श्री राम वानर यूथ पतियों को भी अपने साथ ले मनसा गति वाले पुष्पक से अयोध्या के लिये प्रस्थान किया। रास्ते में श्री राम ने सीता को वे समस्त स्थान दिखाये जहाँ युद्ध हुआ। रावण मेघनाद आदि राक्षसों का नाश, राम लक्ष्मण का नागपाश में बँधना, सीता छद्म शिरोच्छेदन, हनुमान द्वारा लंका में प्रस्थान, प्रस्रवण पर्वत और ऋष्यमूक, भृङ्ग, पम्पा सरोवर, दण्डक वन, विदर्भ जनपद, नर्मदा नदी, चित्रकूट, प्रयाग आदि स्थानों को दिखाते हुये महर्षि भारद्वाज से मिलने की इच्छा से विमान को उतार दिया। एक रात महर्षि के आश्रम में तपो बल से सेवित यह विशिष्ट अतिथि अष्ट सिद्धियों और नव निधियों से पूजित हुए। अगले दिन हनुमान को पहले ही भरत के पास समाचार देने के लिए भेज दिया, जहाँ तप निरत, कृश काय भरत श्री राम के आगमन का समाचार पा प्रसन्न हो उठे। श्री राम के आगमन को जानकर अयोध्या में सम्पूर्ण माताएँ, मन्त्री गण, सैन्य वीर, प्रजा सहित विविध प्रकार से सुसज्जित होकर पहुँचे। नन्दिग्राम में भरत से पूजित सब भाइयों और प्रजाजनों से अनुगत श्री राम सीता सहित अयोध्या पहुँचे। समस्त वानर यूथ पतियों का मन्त्रियों व अयोध्या वासियों से परिचय कराया तथा रणवीरों के पराक्रम की प्रशंसा की। सर्वात्मा संपूजित एवं प्रसन्न श्री राम का राज्याभिषेक किया गया तथा सीता पट्टमहिषी बनीं। इस प्रकार अयोध्या का सोया भाग फिर से जाग उठा तथा बहुत दिनों तक अयोध्या में प्रसन्नता की धूम मची रही। 'राजमहिषी' स्वरूपिणी सीता के साथ राम के 'राज्याभिषेक' का उत्सव सबके लिये आनन्द दायक हो गया।

सप्तदश सर्ग–'जनापवाद' :

राम को राजा बनाये जाने से मानो पृथ्वी भी प्रसन्नता को प्राप्त हो, प्रथम प्रसूता गौ माता की भाँति अपने वत्स के प्रति वात्सल्य भाव से पूरित हो उठी। इति भीति से मुक्त अयोध्या में राजा राम से सुशोभित सम्पूर्ण धरित्री पर चराचर शान्ति का अखण्ड साम्राज्य हो गया। मोद पूर्ण वातावरण में पृथ्वी पालन की परम्परा को पोषण हेतु भगवती ने भगवान् श्री राम के तेज पुञ्ज को अपने गर्भ में धारण किया। सब सखियों बहनों तथा देवरों और जननियों से लालित जानकी के सम्बन्ध में ऐसे ही समय में दुर्मुख नामक गुप्तचर द्वारा राजा राम को सीता विषयक जनापवाद की सूचना सुनाई जाती है। जिससे पीड़ित होकर उन्होंने अपने आपको राजमहल के एक प्रकोष्ट में स्वयं को बन्दी बना लिया। अचानक घटित इस घटना का जब कुमार लक्ष्मण को पता लगता है तो समस्या के मूल में दुर्मुख की सूचना सुनकर वे अत्यन्त क्रोधित हो जाते हैं और गुरु वशिष्ठ से सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदित कर न्याय पूर्ण की प्रार्थना करते हैं, गुरु वशिष्ठ कुमार लक्ष्मण के साथ राम के लिए बिना गुरु अनुमति कोई भी निर्णय न लेने की आज्ञा भिजवाते हैं तथा अगले दिन राजसभा का अधिवेशन बुलाते हैं, लक्ष्मण लौटकर तदनुरूप व्यवस्था करते हैं, तथा भरत और शत्रुघ्न के साथ विचार करते हैं, कि यह घटना किसी प्रकार माता जानकी की जानकारी से दूर ही रखी जाये। इस प्रकार 'संशयिता' सीता के सम्बन्ध में 'जनापवाद' स्वरूप सप्तदश सर्ग सम्पन्न होता है।

अष्टादश सर्ग–'अपवाद निर्णय' :

गुरु वशिष्ठ की आज्ञा से अगले दिन समस्त प्रजाजन राजसभा में उपस्थित होते हैं, अपवाद फैलाने वाले रजक को विशेष रूप से पत्नी सहित बुलाकर सब लोग यथोचित आसनों पर विराज मान होते हैं। चारों वर्णों और आश्रम के सम्मान्य लोगों से सुसज्जित सभा को ब्रह्मर्षि वशिष्ठ सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि कौशल साम्राज्य के सुखों का विनाशक एक प्रसंग उपस्थित हो गया है और यदि मेरे उपस्थित रहते भी प्रजानुरञ्जन के नाम पर अन्याय पूर्ण निर्णय लिया जायेगा तो एक गलत परम्परा समाज में प्रारम्भ हो जायेगी तथा मेरे होने पर भी प्रश्न चिन्ह लग जायेगा। राम वस्तुत: सामान्य देहधारी दिखाई देते हैं, किन्तु वे विष्णु के अवतार हैं, शक्ति सम्पन्न राजा राम, राक्षसों का संहार करके, साक्षात् लक्ष्मी स्वरूपिणी सीता को जनापवाद के सम्भावित भय से अग्नि परीक्षा लेने वाले इस समय जिस पीड़ा का अनुभव कर रहे हैं, वह अवश्य ही हृदयदाही है। इस संसद में लोकवत की गवेषणा द्वारा ही यह निर्णय किया जायेगा कि इस रजक द्वारा सीता के प्रति उच्चरित कथन कितना उपयुक्त है अत: बिना किसी भय के वह अपना मत प्रगट करे। ऐसा कहकर उन्होंने सीता के दिव्य स्वरूप का व्याख्यान तथा वनवास एवं रावण-गृह निवास का वृत्तान्त निवेदित करते हुए राम से भी सम्पूर्ण जनमत का आदर करने की बात कही। इसीके बाद

रजक ने अपने आपको महर्षि वशिष्ठ के चरणों में डालकर राजा राम से भी चरण छूकर क्षमा माँगते हुए समस्त प्रजाजनों से विविध प्रकार कातर वाणी से अपने ही वध की बात कही। अपने अज्ञान को स्वीकार कर वह सम्पूर्ण संसद से क्षमा प्रार्थना करने लगा और संज्ञा हीन होकर भूतल पर गिर पड़ा। उसके पश्चाताप से द्रवित श्री राम ने उसे गले लगाकर सात्वना दी तथा सबके लिये कल्याणकारी श्री राम के वचनों से सुख का अनुभव करते हुए समस्त प्रजाजन अपने-अपने घर पधारे। इस प्रकार पुण्य शील भगवती सीता के पावन चरित्र का वर्णन करने में 'अपवाद निर्णय' होने से प्रसन्नता का वातावरण पुनः व्याप्त हो गया।

एकोनविंश सर्ग-'लवकुशोदय' :

यथोचित समय पर रमणीय शरद ऋतु की सौम्य निशि में भगवती सीता ने रघुपति के समान ही रूप सौन्दर्य सम्पन्न युगल वंश धरों को जन्म दिया। समस्त प्रजा में हर्ष आनन्द संचार हो गया तथा विविध प्रकार से वाद्य बजाकर, मधुर गीत गाकर, पुष्पों, पल्लवों से तोरण द्वार को सुरक्षित कर, रंगोली बनाकर तथा बधाई बाँटकर सब लोग अपने-अपने आनन्द को अभिव्यक्त करने लगे। सूतिका गृह से लौटने पर श्री राम ने माता कैकेयी की सहायता से उन्हें गोद में लेकर प्रसन्नता प्राप्त की। धीरे-धीरे यथाक्रम संस्कारित युगल बाल अपनी बाल क्रीड़ाओं से सबको आनन्दित करते हुए पाँच वर्ष के कब हो गये पता ही नहीं चला। ऐसे ही एक दिन महर्षि बाल्मीकि ने वहाँ पहुँचकर दोनों बालकों का कुश और लव नामकरण किया तथा श्री राम द्वारा अनुमति पाकर अपने आश्रम में विद्याध्यापन हेतु ले जाने को तत्पर हुए। वैदेही अपने बालकों के बिना क्षणभर भी जी नहीं सकती थी। अतः वह भी उन्हीं के साथ आश्रम जाने के लिये तैयार हो गईं। श्री राम को अत्यन्त पीड़ा थी कि दोनों बालकों के साथ-साथ वैदेही का वियोग कैसे सहन किया जायेगा, किन्तु सीता का बालकों के प्रति अथाह निर्मल स्नेह के समक्ष श्री राम ने ही वियोगी बनना स्वीकार कर लिया। सब प्रकार से गुरुजनों का पूजन कर वैदेही दोनों पुत्रों को लेकर भरत लक्ष्मण एवं शत्रुघ्न द्वारा रथ से नगर सीमा तक भेजी गई तथा वीर प्रसविनी सीता के चले जाने पर श्री राम वियोग व्यथा में दिन व्यतीत करने लगे। इस प्रकार लव कुशोदय सर्ग पूर्ण होता है।

विंश सर्ग-'अश्वमेघ' :

सीता को पुत्रों के साथ भेजकर पृथ्वी पर सुशासन का स्वरूप व्याख्या करने के लिये श्री राम का आदर्श राज्य प्रतिष्ठित हो गया। समस्त वर्णों द्वारा श्री राम के प्रभाव से सेवित धर्म अपने श्रेष्ठतम स्वरूप में संसार में प्रतिष्ठित हो गया। ऐसे में एकदिन श्री राम के मन में अश्वमेघ की इच्छा उत्पन्न हुई, जिसकी व्यवस्था के लिये उन्होंने भरत से कहा- शीघ्र ही श्री राम की इच्छा और आज्ञा से प्रेरित भरत और लक्ष्मण ने समस्त सामन्तों, वीरों, कपियूथ पतियों और लंकापति विभीषण को आमंत्रित किया। सबने मिलकर थोड़े ही समय में सम्पूर्ण व्यवस्था कर दी तथा

नैमिशारण्य में एक वर्ष पर्यन्त यज्ञ का समारोह चलता रहा। सीता के साथ श्री राम अश्वमेघ एवं दान क्रियाओं में निरन्तर संलग्न रहते तथा समस्त प्रजाजन अपने मनोवांछित वस्तुएँ पाने से प्रसन्न थे। उसी आयोजन में गुरु वशिष्ठ ने महर्षि वाल्मीकि की विलक्षणता बताते हुए कहा कि चतुर्मुख ब्रह्मा द्वारा आदेशित महर्षि वाल्मीकि ने आपके जिस पावन चरित्र को देवर्षि नारद तथा अपनी अनुपम प्रतिभा द्वारा प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष का हस्तामलकवत् अनुभव कर काव्य निबद्ध कर दिया वह रामायणी कथा अत्यन्त मोहक रूप में आपके ही पुत्रों (कुशीलवों) द्वारा गायी जायेगी, जिसे सुनकर अवश्य ही आपको और आपकी प्रजा को संतोष होगा। महर्षि वाल्मीकि द्वारा करुणा जनित यह आदि काव्य राजभवन अथवा दण्डकारण्य की समस्त चेष्टाओं से युक्त है। जिसे छः काण्डों, पाँच सौ सर्गों तथा चौबीस हजार श्लोकों के प्रमाण में बाँधा गया है। नवरस युक्त यह रामायणी कथा अवश्य ही वेद त्रयी के मर्योद्घाटन में समर्थ होगी। इस प्रकार 'अर्द्धांगिनी' स्वरूपिणी सीता ने अश्वमेघ की पूर्णता पर प्रसन्नता की अनुभूति की।

एकविंश सर्ग-'रामायणगानम्' :

वाल्मीकि की आधी रचना को सुनाने के लिये अगले ही दिन प्रातः वाल कुश तथा लव अपने गुरु (वाल्मीकि) की आज्ञा से परम पावन रघुनाथ-कथा-गायन में प्रवृत्त हुए। श्री राम के समान ही आकृति वाले मनोहर बाल युगल द्वारा नवरस रुचिरा, सर्वात्मना अभिनेय, वीणा के सप्त स्वरों में बंधी उस राम कथा को प्रारम्भ करते हुए कुशीलवों ने राजा दशरथ के सुशासन में समृद्ध पृथ्वी, पुत्र प्राप्ति हेतु पुत्रेष्टि यज्ञ, राम, भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न की प्राप्ति महर्षि विश्वामित्र द्वारा पुत्रों को यज्ञ रक्षार्थ ले जाना, सीता, उर्मिला, माण्डवी, श्रुत कीर्ति के साथ राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न का विवाह, राम के राज्याभिषेक की व्यवस्था में मंथरा द्वारा व्यवधान, कैकेयी द्वारा राम के लिए वनवास तथा भरत के लिये राज्य मांगना, दशरथ की मृत्यु, भरत का चित्रकूट गमन, राम द्वारा सांत्वना देकर लौटाना, शूर्पणख, खरदूषण प्रसंग, रावण द्वारा कुटिलता पूर्वक सीता हरण, सुग्रीव मित्रता, हनुमान द्वारा सीता की खोज, रावण विजयोपरान्त सीता की अग्नि परीक्षा, देवताओं द्वारा निर्णय, प्रसन्नता पूर्वक अयोध्या गमन, राज्याभिषेक, राम राज्य, पुत्र प्राप्ति तथा अश्वमेघ यज्ञ का संक्षिप्त एवं सरस व्याख्यान किया। जिससे सीता की 'अनुकीर्तिता' स्वरूप संसार के सामने स्पष्टतः पुनः प्रकट किया गया। इस प्रकार रामायण गान युक्त इक्कीसवाँ सर्ग सम्पन्न हुआ।

सन्दर्भ सूची :

1. अभिज्ञान शाकुन्तलम 4/21
2. जानकी जीवनम् 8/68

चतुर्थ अध्याय

जानकी जीवनम् महाकाव्य का महाकाव्यत्व

महाकाव्य का लक्षण

महाकाव्य 'महत' और काव्य इन दो शब्दों के समास से बना है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में हुआ है।

किम्प्रमाणनिदं काव्यं का प्रतिष्ठा महात्मनः।
कर्त्ता काव्यस्य महतः क्वचासौ मुनिपुंगवः।।[1]

अर्थात यह काव्य कितना बड़ा है और महात्मा की क्या प्रतिष्ठा है। महत् काव्य के रचयिता को श्रेष्ठ मुनि कहा गया है, प्रस्तुत श्लोक में 'कर्त्ता काव्यस्य महतः' इसी महत्त और काव्य के योग से बने हुए महाकाव्य शब्द की ओर संकेत करते हैं। महाभारत में भी इस प्रकार के विशेषण प्रयुक्त हैं जिनसे महाकाव्य की कल्पना आ जाती है, सर्वप्रथम व्यासजी ने ब्रह्मदेव से निवेदन किया कि 'मैने श्रेष्ठकाव्य की रचना की है।[2] जिसमें वेदों शास्त्रों इतिहासों और पुराणों का रहस्य भरा है। जिसका पुरुषार्थ-चतुष्टय, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में से मोक्ष रूप पुरुषार्थ एवं शान्त रस को मुख्य रूप से सूचित किया है। इसके उत्तर में ब्रह्म देव ने व्यासजी से कहा कि ऐसे श्रेष्ठकाव्य को पृथ्वी पर लिखवाने के लिये गणेश जी जैसे श्रेष्ठ लेखक आवश्यक हैं, इस प्रकार श्रेष्ठकर्ता, विषय, वाह्यांग वर्णन[3] एवं लक्ष्य की ओर संकेत करते हुए, इन शब्दों का प्रयोग किया गया है।

महत्वाद् भारतत्वाच्च महाभारत मुच्यते अर्थात् महत्ता, गंभीरता अथवा चार की विशेषता से ही इस काव्य को महाभारत कहते हैं। उपलब्ध लक्षण ग्रंन्थों में प्रथम लक्षण ग्रंथ भामह का है जिसमें भामय ने महाकाव्य की परिभाषा देते हुए काव्य के पाँच भेद बतलाये हैं।

(1) सर्ग बन्ध

(2) अभिनेयार्थ

(3) आख्यायिका

(4) कथा

(5) अनिबद्ध

उक्त पाँच भेदों में भामह ने सर्गबद्ध, काव्य को ही महाकाव्य की संज्ञा दी है। महाकाव्य में सर्ग कल्पना भी आदि काव्य रामायण से ही मिली है। इस सर्ग बद्ध महाकाव्य के लक्षण को सभी आचार्यों ने आगे स्वीकार किया है। भामह ने कहा है कि इस सर्गबद्ध महाकाव्य में उदात्त या महान चरित्रों का वर्णन होता है और वह स्वयं भी बड़ा होता है। इस प्रकार मामह ने सर्गबद्ध कहकर

महाकाव्य के वाह्य तत्व की ओर और महतांच महच्चयत् कहकर उसकी आन्तरिक महत्ता की ओर संकेत किया है।

आचार्य भामह ने महाकाव्य का स्वरूप निर्देश करते हुए लिखा है कि महाकाव्य सर्ग बद्ध होता है, उसका विषय गंभीर होता है, उसका नायक महान या धीरोदानतादि गुणान्वित होता है। उसकी भाषा में वैदग्ध्य होता है, उसकी कथा में निरर्थक तत्वों या बातों का परिहार किया जाता है और वह सालंकार होने पर भी सदाश्रित होता है। मंत्र, दूत, प्रयाण, युद्ध और अन्त नायक के अभ्युदयान्वित तत्वों से युक्त होने पर भी उसमें समृद्धि अर्थात् ऋतु, चन्द्रोदय, उद्यान पर्वत आदि का रम्य वर्णन भी होता है।[4] इनसे युक्त होने पर भी महाकाव्य व्याख्यागम्य या दुर्बोध नहीं होता। उसमें चतुर्वर्णों का प्रतिपादन होता है। उसका उपदेश सदा अर्थोपदेश होता है। उसमें नाटक की पाँचों सन्धियाँ और कार्यावस्थायें होती हैं। ऐसे काव्य से लोक स्वभाव और सभी रस स्फुटित होते हैं, नायक का उत्कर्ष बताकर अन्य किसी पात्र के उत्कर्ष निमित्त, उसका वध वर्णन नहीं होता। उपर्युक्त रीति से महाकाव्य में नायक व्यापक रीति से वर्णित नहीं होता। उपर्युक्त रीति से महाकाव्य में नायक व्यापक रीति से वर्णित नहीं तो प्रारम्भ में की हुई उसकी प्रंशसा या स्तुति व्यर्थ होती है।[5]

आचार्य भामह के मत में महाकाव्य के आवश्यक तत्व निम्न हैं-

1. सर्गबद्धता, 2. महान् और गम्भीर विषय, 3. उदात्त नायक, 4. चतुर्वर्ग का प्रतिपादन, 5. नायक का अभ्युदय, 6. सदाश्रितत्व, 7. पंच संधि-नाटकीय गुण, 8. लोक स्वभाव और विविध ा रसों की प्रीति, 9. समृद्धिचन्द्रोदय, ऋतु वर्णन आदि।

भामह ने अपनी महाकाव्य की परिभाषा में महत्वपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया है जो उन्हें रस विरोधियों से पृथक सिद्ध करते हैं। संक्षेप में भामह ने वस्तु, नेता, रस तीनों का निर्देश स्पष्ट रूप से किया है, ध्यान में रखने की बात यह है कि भामह ने 'रसों' का उल्लेख महाकाव्य सर्गबन्ध के लक्षणों में ही किया है, नाटक के वर्णन में नहीं।[6]

आचार्य भामह के पश्चात् दंडी ने पूर्व शास्त्रों की सहायता से तथा प्रयोगों को देखकर अपने काव्यादर्श में महाकाव्य की निर्माण शैली में एक नया मोड़ उपस्थित किया।[7] दंडी के मत में, महाकाव्य एक सर्गबन्ध रचना होती है, उसके प्रारम्भ में आर्शीवचन, स्तुति या नमस्कार एवं कथावस्तु का निर्देश होता है। उसकी कथावस्तु ऐतिहासिक या सज्जन व्यक्ति के सत्य जीवन पर आधारित होती है।[8]

उदात्तादि गुणान्वित चतुर नायक की चतुर्वर्ग धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन उसमें होता है। इसके अतिरिक्त नमक, समुद्र पर्वत, ऋतु, चन्द्रोदय, सूर्योदय, उद्यान, सलिल रहते हैं,

उसमें क्रीड़ा मद्युपान, रतोत्सव आदि वर्णन विप्रलम्भ शृंगार, विवाह और कुमार जन्म का समावेश होता है। मन्त्र, दूत, प्रयाण, नायकाम्युदय वर्णनों से यह युक्त होता है। महाकाव्य अलंकृत विस्तृत और रस भावादि से सम्पन्न होता है। उसके सर्ग अति विस्तरित न हों, उसकी कथा श्रव्य वृत्तों एवं संध्यादि अंगों से गठित होनी चाहिये, सर्गान्त में छन्द परिवर्तन होना चाहिये। उपर्युक्त गुणों से युक्त महाकाव्य लोकरंजक और कल्पान्त स्थायी होता है।[9]

महाकाव्य में प्रतिनायक के भी उच्चवंश, शौर्य, विद्या आदि की प्रशंसा करनी चाहिये क्योंकि इससे उनके ऊपर विजय प्राप्त करने वाले नायक का उत्कर्ष बढ़ता है।[10]

दंडी ने काव्यादर्श में महाकाव्यों के सर्गों की संख्या के बारे में कोई विचार व्यक्त नहीं किया है; किन्तु ईशान संहिता में कहा गया है कि महाकाव्य आठ सर्ग से कम न हो और तीस सर्गों से अधिक न हो और उनमें किसी महापुरुष की कीर्ति का वर्णन होना चाहिये।[11]

अग्निपुराण के मत में महाकाव्य सर्गबद्ध रचना है, इसमें विभिन्न वृत्तों की योजना होती है, इसमें इतिहास प्रसिद्ध अथवा किसी सज्जन व्यक्ति के जीवन पर आश्रित कथानक वर्णित होता है। इसमें विभिन्न छन्दों शक्वरी, अतिशक्वरी, जगती, अतिजगती, त्रिष्टुप पुष्पिताग्रादि का प्रयोग होता है। उसमें नगर, वन, पर्वत, चन्द्र, सूर्य आश्रम, उपवन जल क्रीड़ा आदि उत्सवों का समस्त रीतियों, वृत्तियों और रसों का समावेश होता है। उक्ति वैचित्र्य की प्रधानता होने पर भी जीवित प्राण रूप में रस की नियोजना होती है। विश्व विख्यात नायक के नाम से धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति दिखाई जाती है।[12]

आचार्य रूद्रट के अनुसार महाकाव्य में उत्पाद्य एवं अनुत्पाद्य कोई पद्यबद्ध रचना रहती है। इसमें प्रसंगानुसार अवान्तर कथायें भी होती है; जिनका उद्देश्य मूल कथा को गति देना होता है। महाकाव्य में सर्गबद्ध एवं नाटकीय तत्वों से युक्त कथा होती है। उसमें सम्पूर्ण जीवन का चित्र अंकित होता है। और इस चित्र में कोई साहसिक कथा अथवा किसी प्रधान घटना का चित्रण किया जाता है। कवि इस प्रधान घटना से सम्बन्धित अलंकृत वर्णनों, प्रकृति चित्रणों तथा विभिन्न लौकिक और अलौकिक वर्णनों से इस काव्य का निर्माण करता है। लौकिक वर्णनों में प्रकृति-वर्णन, वाटिका-वर्णन, नागरि-वर्णन आदि अलौकिक वर्णनों में देवता और स्वार्गादि के चित्र अंकित होते हैं। महाकाव्य का नायक द्विजकुलोत्पन्न, सर्वगुणसम्पन्न और विजिगीषु-समस्त विश्व को जीतने की इच्छा रखने वाला कोई महान वीर होता है, वह शक्ति सम्पन्न नितिज्ञ, व्यवहार कुशल राजा होता है। महाकाव्य में प्रतिनायक व उसके वंशकुल का भी वर्णन होता है इसमें नायक की विजय और प्रतिनायक की पराजय दिखाई जाती है।

उद्देश्य रूप में चतुर्वर्गफल धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की प्राप्ति दिखाई जाती है। महाकाव्य में सभी रसों का नियोजना होती है। आचार्य रुद्रट की रसात्मकता ही प्रधान विशेषताहै। उत्पाद्य महाकाव्य में नायक के वंश की प्रशंसा के साथ–साथ उसकी नगरी के भी सुन्दर वर्णन होते हैं। महाकाव्य में अलौकिक अति प्राकृतिक तत्व भी होते हैं किन्तु उसमें मानवकृत अस्वाभाविक घटनाओं का वर्णन नहीं होता।[13] इस प्रकार निष्कर्षतः आचार्य रुद्रट की महाकाव्य की परिभाषा समन्वयात्मक एवं विश्लेषणात्मक होने पर भी स्वतंत्र विचारों की अभिव्यक्ति करने एवं महाकाव्यों को अवलंकृत रूप देने वाली होने के कारण अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

डॉ. अभिराज राजेन्द्र जी मिश्र बहुचर्चित महाकाव्य जानकी जीवनम् के प्रणेता हैं। श्री युत मिश्र जी ने आलोच्य महाकाव्य को इक्कीस सर्गो में सृजित किया है, एक हजार सात सौ चौदह छन्दों से समलंकृत है। वाचस्पति एवं कालिदास सम्मान से गौरवान्वित जानकी जीवनम् एक उत्कृष्ट कृति है। जानकी जीवनम् में एक अति महत्वूपर्ण आकर्षण का अनूठापन यह है कि इसके अनतर्गत महाकाव्य के परम्परानुसार लक्षणों के अनुसार पुरुष पात्र को नायक न बनाकर नारी पात्र जानकी जी को नायकत्व प्रदान किया गया है। शील, सौन्दर्य, सदाचार का संवलित स्वरूप सीता जी का कारूणिक जीवन ही कवि हृदय का प्रेरणा स्रोत बना। भावना की यही अजस्र धारा जानकी जीवनम् के रूप में परिणत होकर प्रवाहित हो गई। प्रस्तुत महाकाव्य में आचार्यों द्वारा प्रतिपादित सभी लक्षण समीचीन भाव भूमि यथोचित रूप से विद्यमान हैं।

मनोहारी कल्पनाओं ने जानकी जीवनम् महाकाव्य के कथानक को मिश्र कोटि से सुसज्जित किया है। साथ ही पंच सन्धियों के यथानुरूप समावेश से सुगठित कथानक रूप उपस्थित हुआ है। उदात्त्त जीवन मूल्यों के संप्रेषण से जानकी जीवनम् महाकाव्य साहित्य जगत में उत्कृष्ट स्थान रखता है।

संदर्भ सूची –

1. वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 94/23

2. कृतं मयेदं भगवन् काव्यं परम पूजितम्, 61

ब्रह्न वेदरहस्यं च यच्चान्यत् स्थापितं मया 62

इतिहास पुराणामुन्मेषं निर्मितं च यत 63

काव्यस्य लेखनार्थाय गणेशः स्मर्यता मुने 73

महाभारत आदि पर्व अनुक्रमणिका प्रथम अध्याय

3. अलंकृतं शुभैः शब्दैः समयैर्दिव्य मानुषेः।

छन्दो वृतैश्च विविधै रन्वितं विदुषां प्रियम्।।

आदि पर्व अनुक्रमणिका प्रथम अध्याय, 128

4. संस्कृत महाकाव्य की परम्परा, डॉ. केशवराव मुसलगॉव कर पृ. 128

5. सर्गबन्धो महाकाव्यं महतां च महच्चयत्।

अग्राम्यशब्दमर्थ च सालकारं सदाश्रयम्।।

मन्त्रदूत प्रयाणणि नायकाम्युदचं च यत्।

पंचभिः संधिभियुक्तं नातिव्याख्येयमृद्धिमत्।। भामह काव्यालंकार 1-23

6. भामह काव्यालंकार 1/21

7. पूर्वशास्त्राणि संहत्य प्रयोगानुपलक्ष्य च, 1/2 काव्यादर्श

8. सदाश्रय मित्यनेन कल्पित वृन्तातस्य महाकाव्ये वर्णनं प्रतिषिद्धम्।

काव्यादर्श तर्क वागीश भट्टीचार्य श्री प्रेम चन्द्र की टीका पृ. 27

9. सर्गबन्धो महाकाव्यमुच्यते तस्यलक्षणम्।

आशीर्नमस्क्रिया वस्तुनिर्देशो वापि तन्मुखम्।। काव्यादर्श 14

10. काव्यादर्श 1/21, 22

11. अष्टसर्गान्न तु न्यूनं त्रिशत्यर्गाच्च नाधिकम्

महाकाव्यं प्रयोक्तन्यं महापुरुष कीर्तियुक्।। तदुक्तमीशान संहितायाम् काव्यादर्श प्रथम परिच्छेद

12. अग्नि पुराण, अध्याय – 337/24 से 34

13. रुद्रट काव्यालंकार षोडशोध्याय 2 से 19

वस्तुः कथावस्तु के भेद

माँ जानकी जी की करूण गाथा ह्दय के तंत्रों को हिला देती है, सर्वतो भावेन पतिदेव के श्रीचरणों में समर्पित अग्नि ज्वालाओं से शुद्ध स्वर्ण ज्यों, प्रभामयी माँ वैदेही को मात्र लोक अपवाद के भय के कारण निकाल दिया जाये, इसको महाकाव्य प्रणेता डॉ. अभिराज जी का अन्तर अस्वीकृत घोषित करता है, अतएव वे एक नूतन सृष्टि का सृजन करते हुये माता जानकी के जीवन में सरसता से मुम्फिल मधुर रस की भावना के पोषक पलों को सृजित कर देता है। करूण रस से आवृत जीवन में माधुर्य का समावेश एक अद्‌भुत छटा विखेर देता है, यही कवि की नितान्त नवीन सोच है, कहना न होगा कि कवि मानस विषय गत होकर समाधिस्थ हो जाता है तभी वह उस परिदृश्य में अपने आपको उपस्थित पाता है। उस धरातल पर समाधि की भाषा ही प्रारम्भ हो जाती है। यही वह विन्दु है जो महाकाव्य की कथावस्तु मूल कथावस्तु से भेद प्रकट करती है।

भगवान राम का जीवन सभी कवि ह्दयों के लिये चिन्तनीय है और काव्य रचना हेतु प्रेरक है किन्तु यह जानकी जीवनम् महाकाव्य में डॉ. राजेन्द्र जी मिश्र ने माँ सीता जी की जीवन–यात्रा को अपना लक्ष्य बनाया है। अनुपम धरणि के समान सहन करने की अपार क्षमता के साथ सौशील्य, विनीत वैदेही किस सरल चित्त को आकर्षित नहीं कर लेती। कविवर मिश्र जी ने जानकी जी के अवतरण से प्रारम्भ कर भगवान राम के चक्रवर्ती राजा बनने तक धरणिजा के जीवन के विविध पहलुओं को नवीन रंग से सजाते हुये चित्रित करने का सद् प्रयास किया है। जानकी जीवन को विवेचित करते हुए मूल कथा वस्तु से महाकाव्य की कथावस्तु में उपलब्ध भेद निम्नवत् है।

रचनाकार जानकी जी के अवतरण को लोक कल्याणार्थ प्रस्तुत करते हुये–

गृहाण सीरध्वज! देवदत्तां सुतामियां भर्त्सित लोकशोकाम्।।[1]

सीता जी की नैसर्गिक बाल क्रीड़ाओं का सुन्दर चित्रण किया है, जो कि वाल्मीकि रामायण में सर्वथा अनुलब्ध है। यथा–

विलोक्य चन्द्र वियति प्रभोज्ज्वल विलोभनीयं ननु पर्वसंस्थितम्।
भृशं ययाचे जननीं विलक्षितां नवीन खेलाश्रित बाल तर्कनैः।।[2]
कदम्ब हिंदोलबिहार लीला या कलं स्वनन्ती मृदुगीति मूर्च्छनाम्।
क्वचित्कुमारी कतिदर्पमर्दनी पितुर्विनोदं कलयाम्बभूत सा।।[3]

(अ) कवि कल्पना का प्रसार पाकर जनक नन्दिनी की बाल क्रीड़ाओं का कैसा मनोहार चारू चित्रण है। इसी प्रकार स्मराङ्कुर संज्ञक तृतीय सर्ग में सीता के मनोभावों का चित्रण करते हुए प्रियतम की शोभन छवि की कल्पना करते हुए लजीली सीता का कैसा भव्य वर्णन हुआ है।

समुत्थिते कान्ता किशोर कल्पने पयोदनीलाङ्ग कलेवरं प्रियम।
प्रभोज्जवलं पार्वण चन्दिराननं गुणाश्रयं चण्डधनुषतां वरमे्।।

न रूप लावण्य मनोज्ञ मार्दवं हृदि श्रितं स्वप्न विधौ मदीयकम्।
स एव कोऽपि प्रसभं पदं दधे विदेहजाया हृदये नरोत्तम:।।[4]

गुरू विश्वामित्र के साथ राम-लक्ष्मण का मिथिला में जनकजी के पास जाना और कमलनयन श्री राम की शोभा से अभिभूत जनक का विश्वामित्र के कहने पर पिनाक धनुष श्री राम के दर्शनार्थ प्रस्तुत करना तत्क्षण राम जी का धनुर्भङ्ग कर देना वाल्मीकि रामायण में यह प्रसंग इस रूप में वर्णित है। जानकी जीवनवम् में यही प्रसंग इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया है- जानकी जी का गिरिजा मंदिर जाना एवं राम लक्ष्मण का पूजन के लिये पुष्प चयन करने आना और फिर राम-सीता का प्रथम दर्शन, पूर्वराग का मधुर सरस चित्रण डॉ. अभिराज जी की सूझ-बूझ से हुआ है। जानकी जी के स्वयंवर का भी बहुत ही मोहक चित्र उपस्थित किया गया है। बाल्मीकि रामायण में अनसूया जी के पूछने पर सीता जी के द्वारा स्वयंवर वार्ता अयोध्या काण्ड के सर्ग 118/27-54 श्लोकों में वर्णित है। राम जी का वैदेही से प्रथम दर्शन एवं स्वयंवर के सरस दृश्य मूल स्त्रोत वाल्मीकि रामायण से भिन्न हैं। यथा वाल्मीकि रामायण में-

सुदीर्घस्य तु कालस्य राघवोऽयं महाद्युति:।
विश्वामित्रेण सहितो यज्ञं द्रष्टुं समागत:।।
प्रोवाच पितरं तत्र राघवौ राम लक्ष्मणौ।
सुतौ दशरथ स्येमौ धनुर्दर्शन कांक्षिणौ।
धनुर्दर्शय रामाय राजपुत्राय दैविकम्।।
इत्युक्तेस्तेन विप्रेण तद्धनु: समुपानयत्।
तद्धनुर्दर्शयामास राज पुत्राय दैविकम्।।
निमेषान्तरण मात्रेण तदानम्य महाबल:।
ज्यां समारोप्य झटिति पूरयामासा वीर्यवान्।।
ततोऽहं तत्र रामायपित्रा सत्यामिसंधिनो।
उद्यता दातुमुद्यम्य जल भजनयुन्त मम्।।[5]

जानकी जीवनम् में इसी प्रसंग को 'पूर्वराग' संज्ञक के षष्ठ सर्ग में मनोहर रूप में वर्णित किया गया है, और यह वाल्मीकि रामायण से भेद रखता है। यथा -

अथ रतीशक कोट्यति शायिनं पुरुष: सिंह मुदीक्ष्य नु सम्मुखम्।
व्यपगता शनकैस्सुहृदावली नृपसुतामयहाय विलक्षिताम्।।

प्रथम दर्शन के अवसर पर राम सीता का सम्भाषण सर्वथा नवीन संयोजन है, गोस्वामी तुलसीदास द्वारा रचित श्री राम चरित मानस में पुष्प वाटिका एवं सीता स्वयंवर का चारू चित्रण हुआ है। तथापि राजेन्द्र मिश्र के द्वारा राम-जानकी जी की प्रीति को शब्द देने का नवीन वर्णन है। यथा -

किमिव मामवलोक्य विलज्जसे सुतनु मैथिलि! मञ्जुल दर्शने।
प्रचलितासि यदीयदि दृक्षया ननु तमेव जनं किमुपेक्षसे?
अयि विलोक्य दाशरथिं शुभे! सकृदपि त्वयि जात मनोरथम्।
न खलु जातु जहाति विद्युम्मुदी न च शिखा शिखिनो विमुखायते।।
पतिवचः कर भीरूः! न दीयते यदि मनागपि सङ्गतया त्वचा।
रघुवरोऽनुभविष्यति निश्चितं वितथमेव भवान्तर सौहृदयम्।।[6]

(3) धीर गम्भीर वैदेही वाल्मीकि रामायण से सर्वथाभिन्न जानकी जीवनम् महाकाव्य में अपनी विदाई पर कैसे भाव विह्वल होकर चित्रित हुई है।-

कथंन दैवेन हताऽस्मि बाल्ये भणाम्ब! कस्मादिह जीविता ऽस्मि।
पृथङ् न कार्या तव नन्दनीयं गृहान्तरे जीवति नैव सीता।।
चिनोति का सम्प्रति देव पुष्पं रुणद्धि का वा भवतीं प्रयत्नैः।
विलिम्पति द्वारभुवञ्च का वा कदाम्ब! का ते कुरूते सपर्याम्।।[7]

(4) ग्राहस्थ सुखों के रसामृत से आनन्दित जानकी के अपने देवर लक्ष्मण से होली खेलने की कवि कल्पना वाल्मीकि रामायण से पूर्णतः भेद युक्त है। यथा -

यदा च वामनीभूय पृष्ठतो नीरवैः पदैः।
समाक्रम्य स सौमित्रिर्भ्रातृ जायां प्रगृह्य च।।
कपोल मण्डले गौरे कज्जलं कर्दम मसीम्।
लिम्पति स्म भृशं भृत्यन् चर्चरीं कामिनी प्रियाम्।।[8]

वाल्मीकि रामायण में लक्ष्मण जी का ऐसा उदात्त वर्णन है कि वह अपनी भाभी के केवल चरणों के ही दर्शन करते हैं। दृष्टव्य है-

दृष्ट पूर्वं न ते रूपं पादौ दृष्टौ तवा नघे।।
कथ मंत्र हि पश्यति रामेण रहितां वने।।[9]

इसी स्थल को डॉ. अभिराज जी ने देवर-भाभी के रिश्ते का लौकिकीकरण करते हुए उनमें हास-परिहास पूर्वक होली खेलन का मनोरम दृश्य प्रस्तुत किया है एवं गर्भावस्था में देवर द्वारा भाभी की परिवर्तित स्थिति को देखकर विनोद करने की कल्पना की गई है, यथा-

गर्भ गौरव मन्थरा सा नोऽधिकम् आजगाम बहिः स्वसौधाद् व्रीड़िता।
देवरैरधरोन्तर सम्भावित साध्वसाद् विजहे तदीयं सौहृदयम्।
भक्षितं विपुलं किमार्ये? येन ते स्थूल मद्य हि लक्ष्यते नम्नोदरम्।।
तुन्दिदला भव माऽन्यथा सन्द्रक्ष्यसे सत्वरं स्थविरा ततोऽहं वेदये।।

(5) अन्त: साक्ष्य व वाह्य साक्ष्य के आधार पर राजेन्द्र मिश्र ने यह माना कि उदात्त गुणों से मण्डित जानकी जी का निर्वासन हुआ ही नहीं।

उनके अनुसार वाल्मीकि रामायण का दूसरा नाम – 'पौलस्त्यवध' था। अतएव रावण वध तक का ही कथानक समीचीन है। उत्तरकाण्ड प्रक्षिप्त है तथा इसका कथानक परस्पर विरोधाभास पूर्ण है, इसके अतिरिक्त उन्होंने भवभूति, दिङ्नाग द्वारा रचित कथानक के परिवर्तित स्वरूप को इसी कारण मान्य माना है। राजेन्द्र मिश्र तुलसीदास के विषय में कहते हैं कि जिन्हें प्रभु साक्षात् दर्शन देते हैं तो उन्हें क्या राम कथा विस्तार ज्ञान न होगा; तब फिर गोस्वामी जी ने सीता निर्वासन क्यों नहीं लिखा? स्पष्ट है कि जानकी वल्लभ इतने निष्ठुर हो ही नहीं सकते कि समस्त प्रजा पर तो करूणा करें, न्याय करें और अपनी प्रिया पर अन्याय करें। इसी विचार संकुल ने डॉ. मिश्र द्वारा विरचित जानकी जीवनम् महाकाव्य का उत्तरार्द्ध अपने मूल स्रोत वाल्मीकि रामायण से सर्वथा अलग हैं। यथा–

वाल्मीकि रामायण में राम तपोपूत वैदेही की निर्मलता को अन्तस से स्वीकार करते हैं फिर भी कीर्तिकाय की रक्षार्थ व्यथित होते हुए भी प्रिया को गंगा तट पर ऋषियों के आश्रय देखने की भावना से वन में छोड़ आने का आदेश देते हैं, और किसी को भी इस विषय पर कुछ भी कहने का अधिकार नहीं देते।

श्वस्त्वं प्रभाते सौमित्रे सुमन्त्राधिष्ठितं रथम्।।
आरुह्य सीतामारोप्य विषयान्ते समुत्सृज।
शीघ्रमागच्छ सौमित्रे कुरूष्व वचनं मम।
न चास्मि प्रति वक्तव्य: सीतां प्रति कथंचन।।[10]

वाल्मीकि आश्रम में ही सीता दो पुत्रों को जन्म देती है–

भगवन राम पत्नी सा प्रसूता दारक द्वयम्।[11]

तत्पश्चात् वाल्मीकि रामायण के अनुसार श्री राम अश्वमेघ यज्ञ का आयोजन करते हैं और सीता की सुवर्णमयी प्रतिभा बनवाकर अपने वाम भाग में विराजित करते हैं, वाल्मीकि जी का यज्ञ में आना और लव–कुश का रामायण गाना। लव–कुश को अपने ही पुत्र जानकर श्रीराम का जानकी जी को सभा में आकर अपनी शुद्धता प्रमाणित करने का सन्देश भेजना। वाल्मीकि के साथ जानकी जी का सभा में उपस्थित होना

राम का जानकी जी को कहना –

जानामि चेमौ पुत्रौ मे यमजातौ कुशीलवौ।
शुद्धायां जगतोमध्ये मैथिलयां प्रीतिरस्तु मे।।[12]

अद्भुत है जानकी जी की सहनशीलता! पति की आज्ञा शिरोधार्य कर उन्होंने पतिव्रत धर्म का अनुपम उदाहरण प्रस्तुत किया है–

मनसा कर्मणा वाचा यथा रामं समर्चये।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातु मर्हति।।
तस्मिंस्तु धरणी देवी बाहुभ्यां गृह्य मैथिलीम्।
स्वागतेनाभिनन्द्यैनामासने चोपवेशयत्।।[13]

धरणिजा धरणि में प्रवेश कर गई–

इससे विरत जानकी जीवनम् महाकाव्य में इन सभी घटनाओं का प्रस्तुतीकरण पूर्णतः नवीन रूप में डॉ. मिश्र जी किया है। यथा–

दुर्मुख से जानकी के लोकापवाद को सुनकर व्यथित हृदय राम स्वयं को कक्ष में बन्द कर लेते हैं। तत्पश्चात् लक्ष्मण के द्वारा सम्पूर्ण वृतान्त जान लेने पर गुरु वशिष्ठ से इस विषय पर विचार किया जाता है। वशिष्ठ जी कहते हैं–

माऽतिमात्रमुपेहि दैन्यं लक्ष्मण! जीवितेभविता न मय्युत्सादनम्।
कैकयी मुपशिक्षितुं कामपुरा नाऽशकं ननु सान्त्वयिष्ये राघवम्।।[14]
अथ प्रभाते भगवान् वशिष्ठः सम्प्रेष्य दूतान् परितो नगर्याम्।
आमंत्रयामास समग्र पौरान् विशेषतस्तं रजकं समार्थम्।।[15]

जानकी जी की पावनता को प्रमाणित करने के लिये वशिष्ठ जी के द्वारा धर्म सभा का आयोजन किया गया। इसी कारण सीता जी का निर्वासन रूक जाता है। वशिष्ठ जी का मर्म स्पर्शी उद्बोधन ही इसमें सहायक है। यथा–

प्रदीप्तवैश्वानरवेदिकायां स्थिताऽपि या काञ्चनतामवाप।
तां देववन्द्यामपि मैथिलीं त्वं जानासि सत्यं चरितावलीढ़ाम।।
अग्निर्भवेदन्य पदार्थतापमात्रा प्रमाणं ज्वलन प्रभावात्।
परन्तु तापोच्चशक्ति भाजो भवेत्प्रमाणं किमहो कृशानोः।।
एकोऽहंमस्या हित तत्वबोधः सीतां विजानामि जगत्प्रवन्द्याम्।
यश्शङ्कते तच्चरितं प्रपूतं स चापरस्त्व रजक! प्रमादिन्।।
अरुन्धि नाहं यदि राम भद्रं निश्चप्रन्व सः प्रकृतेमृ दर्थम्।
द्वेषाग्नि कुण्डे जुहुयात्सगर्भा मृगीमिवाऽराधितपट्टराज्ञीम्।।[16]

अपवाद निर्णय संज्ञक अष्टादश सर्ग पूर्णतः कवि की कल्पना से ओत-प्रोत है, जिसमें वशिष्ठ जी ने तर्क संगत युक्तियों से रजक के कथन मात्र को आधार मानकर वैदेही के निर्वासन को औचित्य पूर्ण नहीं माना। स्वयं रजक की आत्म ग्लानि, पश्चाताप को दर्शाते हुए निष्पाप

वैदेही की पावनता को सभासदों के समक्ष प्रमाणित किया एवं दु:खी रजक पर राम महानुभाव द्वारा कृपा की गई।

विलोक्य पश्चातापनं तदीय निशम्य वार्तानि वचांसि सद्य:।
हैयङ्गवीनं रघुनाथ चित्तम् उदीर्ण दैन्यं द्रवित बभूव:।।[17]

तदनन्तर राजमहल में रहते हुए ही भूमि सूता ने रघुपति के ही समान रूप सौन्दर्य सम्पन्न यशस्वी पुत्रों को जन्म दिया। आनन्दित राम को माता कैकयी ने पंकज लोचन सुकुमारों को राम की गोद में दिया। यथा-

इतिनिराध सुतावति कोमलौ कलरवं दघतौ विहगप्रभौ।
कुतुकिनावददइत्क्रमशश्च तौ रघुवराय मुदा जननी स्वयम्।।[18]

डॉ. अभिराज जी ने राजकुमारों के प्रति वात्सल्य का अपूर्व वर्णन किया है-

क्वचिदलाल यताशु पितामही क्वचिदथो जननीभगिवीचय:।
क्वचिदसौ जननी गृह सेविका ननु बभूवतुरीक्षरणसन्निभौ।।[19]

मधुर वाणी बोलते मधूर क्रीड़ा करते हुए दोनों सुकुमार पाँच वर्ष के हो गये। तब विद्यार्जन हेतु गुरूकुल भेजते हुए प्रिया सीता ने राम से पुत्रों के साथ जाने की आज्ञा मांगी तब राम ने सीता की इच्छा को आदर देते हुए कहा-

भवतु गच्छमतं तब रोचते कुशलयौ वृणुतां स्थिरतां त्वया।
स्वयमहं भवतीमवलोकये गुरुकुले प्रथिते सहसोदरै:।।[20]

सुतरक्षिणी जानकी वाल्मीकि आश्रम में चली जाती हैं। तत्पश्चात् राम अश्वमेघ यज्ञ आरम्भ करते हैं। उसमें साक्षात् सीता के साथ राम यज्ञाहुतियाँ डालते हैं। यथा-

दिव्येऽश्वमेघयजनेन प्रथितेनु तस्मिन् साज्यैस्तिलाक्षतमघूच्चय पायसाद्यै:।
पाटीरगन्धघनसारविमिश्रितैश्च हव्यै रराघ विबुघान् रघुजस्सीत:।।[21]

उपर्युक्त तथ्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जानकी जीवनम् महाकाव्य की सीता का जीवन पति के मधुरिम सान्निध्य और पुत्रों का स्नेहमयी क्रीड़ाओं से आप्लावित हैं। जहाँ जीवन में कतिपय क्षणों के लिये दु:ख की बदली छाई भी है। वहीं सुख की सुनहली धूप ने उसे अलग कर दिया है। वाल्मीकि रामायण में चित्रित जानकी जीवनम् जहाँ पति चरणों की अनुगामिनी वन वन के कष्टों को सहन करती हैं, वही लोकापवाद जनित निष्कासन को धैर्य से सहन करती हुई, नारी मर्यादा, पावनता को प्रमणित करने के लिये धरा की गोद में समा जाती है, जबकि जानकी जीवनम् की वैदेही पति की नित्य सहचरी वन दाम्पत्य जीवन के मधुरिम पलों को जीती हुई पुत्रों पर वात्सल्य बरसाती पट्टमहिषी के पद पर सुशोभित हैं।

संदर्भ –

1. जानकी जीवनम् 1/45

2. जानकी जीवनम् 2/13

3. वही 2/16

4. वही 13/34-36

5. वाल्मीकि रामायण 118/44, 46, 47, 48, 50

6. जानकी जीवनम् 6/47

7. जानकी जीवनम् 8/57, 58

8. वही 9/90, 91

9. वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 48/21

10. वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 45/16, 19

11. वही 66/3

12. वाल्मीकि रामायण 97/5

13. वाल्मीकि रामायण उत्तरकाण्ड 97/15, 19

14. वही 17/53

15. जानकी जीवनम् 18/1

16. वही 18/53, 57, 61, 64

17. जानकी जीवनम् 18/107

18. वही 19/20

19. वही 19/22

20. वही 19/59

21. वही 20/17

पात्र–पात्रों का चरित्र चित्रण

जानकीजीवनम् में सर्वाङ्गसुन्दर सीता–राम कथा का पल्लवन किया गया है। पात्रों के चरित्र–विकास में भारतीय संस्कृति का स्वरूप अभिव्यंजित हुआ है। नायिका प्रधान इस महाकाव्य में नायिका सीता का चरित्र बहुरङ्गी रेखाओं से चित्रित किया गया है जिसमें माता–पिता का बरसता वात्सल्य, पति का सुमधुर प्रेम, प्रतिनायक प्रदत्त पीड़ा, करुणा, सखियों का अपनत्व, प्रजाजनों का आदर, दुष्ट रजक द्वारा लांछित शल्य पुत्रों के प्रति स्नेह सभी सम्मिलित रूप में जानकी जी के चरित्र को विविध आयामी बनाता है।

महाकाव्य के नायक धीरोदात्त गुणों से युक्त राम अनुकूल नायक हैं। प्रतिनायक रावण है। पात्र चित्रण में कवि पहले पात्रों के शारीरिक सौष्ठवादि का वर्णन करता है, तदनन्तर उनके स्वभाव का रेखांकन करके उनमें रंग भरता है। जानकीजीवनम् के प्रधान एवं सहायक पात्रों का विवेचन प्रस्तुत है:–

सीता

सीता धीरोदात्त गुणों से सम्पन्न 'स्वकीया', 'मुग्धा' नायिका हैं। सीता अनुपमेय गुणों से सम्पन्न, पतिव्रता, कुलीन सन्नारी हैं। विनीत, सरल, शील, सदाचार सम्पन्न, समधिक लज्जाशील, मृदुभाषिणी, गृहकार्यों में कुशल, पति अनुगामिनी, दया, दाक्षिण्य गुणों से युक्त नारी रत्न हैं। रूपशीलगुणविनयविभूतिं स्वयंवृतां कनकाङ्गीम्। जानकी के समुज्ज्वल चरित्र की कतिपय विशिष्टताओं का आंकलन यहाँ प्रस्तुत है:–

1. देवोपम सौन्दर्य सम्पन्न :– सीता अद्‌भुत सौन्दर्य से युक्त हैं। बाल्यावस्था में ही उनकी शोभा का कैसा उत्कृष्ट स्वरूप है–

प्रफुल्लपद्मस्थमधुव्रताक्षी मनोज्ञचारूस्मितशोभिवक्त्रा।
सुरालयस्था बलिदीपिकेव प्रभोर्ध्वचक्रं प्रभोर्ध्वचक्रं परितः किरन्ती।।
कलेव चान्द्रीस्फुटचारुशोभा ज्वलद्धुताशप्रतियातनेव।
लतेव मालेव धरासुतेव प्रमोहविद्धं विदधे जनं सा।।[1]

अत्यन्त सुन्दर जानकी को जो भी देखता है वह अपलक निहारता ही रहता है। सीता के रूपलावण्य का तृतीय सर्ग में समधिक शोभन वर्णन हुआ है:–

कुवेलमास्ये कस्योश्च पल्लवं जपासुमञ्चापि कपोलमण्डले।
रदच्छदे बिम्बफलं दधद्भिधिश्चकार सीतां किमरण्यदेवताम्।।[2]

लावण्य–सिन्धु के मंथन से उद्‌भुत लक्ष्मी–स्वरूपा सीता की शोभा से तो मुनि विश्वामित्र भी चमत्कृत है–

सीतेति नाम रुचिरं रुचिराननना सा
दीप्यत्क पोलकलकान्तिजितप्रवाला।
बाला सितेन्दु सुमुखी ननु पूर्वदृष्टा
सद्यः स्मृता स्मृतिपथं क्वचिदभ्युपैति।।
चाम्पेयपुष्पपरिपाण्डुरकोमलाङ्गी
साक्षादसौ मधुजितोऽनुगतैव लक्ष्मीः
तां सुन्दरीं परिणयेच्छृणु समभद्र!
नारायणः स्वयमथो यदि वा तदंशः।।[3]

राम की प्रियतमा सीता मनोहर है एवं स्वयं राम द्वारा प्रशंसित है:-

कुशिकनन्दनशंसित कल्पना त्रिदशरूपवतीप्रतियातना।
इयमसौ प्रतिभाति विदेहजा नयनमोर्मम कम्रकनीनिका।।[4]

देवोपम सौन्दर्य सम्पन्न जानकी बरबस चित्त को आकृष्ट कर लेती है। गुण सम्पन्न नायिका है-

मनोजजयध्वजसन्निभा त्रिदशलोकसमृद्धिविधायिनी।
शुचिसतीत्वशिखा कमलोपमा परिगतालिभिरीषदियाय सा।।[5]

2. श्रेष्ठ पतिव्रता :- सीता राम के द्वितीय प्राण के समान, पवित्र आचरण वाली और प्रिय पर सर्वात्मना अर्पित पतिव्रता है। पति अनुगामिनी सदाचारिणी वह प्रियतम के साहचर्य को ही परम सौभाग्य मानती है। पति के सुख-वैभव से ही जिसे सुख मिलता है, पति के दु:ख से ही वह शुभाङ्गी दुखी हो जाती है एवं राम के नि:श्वास से ही जो जीवित है-

विभवेन बभूव यत्सुखं ननु पीडा तव पीडया ध्रुवम्।
श्वसितैश्च तवैव जीविता तव सीता...!![6]

सीता के लिए वनवास के शूल भी फूलों के समान सुखकारी हैं:-

अम्ब! माऽतितरां गमस्त्वमखर्वखेदं वैभवं दयिताङ्घ्रि पद्मयुगेऽस्ति पत्न्याः।
राघवे सति कानने विजनं न चैतत् आत्मनैव शपामि सौधसुखातिशायि।।[7]

हृदय की धड़कन के समान, शरीर की परछाई के समान वह पति के साथ अनव्य भाव से जुड़ी पर-पुरुषनिरभिलाषणी सीता पूर्णतः पतिव्रता नारी हैं। पर-पुरुष के प्रति स्वप्न में भी अनुराग नहीं हो सकता। अपने स्वामी के जीवन से ही जीवित हैं एवं सर्वात्मना उन्हीं पर अर्पित हैं:-

वल्लभा रघुवंश भानुनिभस्य चाहं राघवस्य विदेहजा च कुलप्रसूता।
स्वप्नजाऽपि न मे रतिः पुरुषान्तरेषु स्वामिजीवितजीविताास्मि तदर्पिताऽहम्।।[8]

धरा सी धरणिजा वनवास के कंटकों को सहती है और सुमन सी प्रफुल्लित रहती है। दशानन का अपार ऐश्वर्य व राक्षसी विकरालता भी सतीत्व के शुभ पथ से सीता को नहीं डिगा पाये-

इयदेव न ते विभासितं नलिनी भास्कररागरञ्जिता।
अमृतांशुमपि प्रभोज्ज्वलं निशि दृष्ट्वा न विकासमश्नुते।।[9]

जिस प्रकार कमलिनी केवल भास्कर के अनुराग से रञ्जित होती है, उसी प्रकार सीता हृदय राम-दर्शन से ही आल्हादित होता है। अन्य किसी प्रकार से नहीं। रघुनाथ मुखचन्द्र की चन्द्रिका सीता की अज्य व्यक्तियों के प्रति स्पृहां हो ही नहीं सकती। यथा द्रष्टव्य है :-

अहमस्मि रघूत्तमप्रिया रघुनाथाननचन्द्रचन्द्रिका।
इतरेषु जनेषु का स्पृहा पुरुहूँतोऽस्त्वथवाऽस्तु रावण:।।[10]

सीता को पति के अतिरिक्त किसी की स्पृहा, दर्शन प्रणय-याचना, कदापि स्वीकार नहीं। सीता अपनी अङ्गतालिका को रावण की कुदृष्टि से निहारने पर इतनी व्यथित है कि वह इसे भस्मसात् ही कर देना चाहती है। यथा-

नेदं वपु: श्रयति मे शुचितां पुराणीं स्पर्शेण दूषितमहोऽधमरावणस्य।
अद्यैव नाथ! विदहामि चिताग्नितल्पे स्याद्येन जन्मनि नवे पुनरेव पूतम्।।
मद्दु: खञ्जिन! सखि त्रिजटे! दयस्व आनीय काष्ठदहनादि चितां विधेहि।
सह्यो न सम्प्रति मायाऽयमवद्यभारस्तज्जीवितं सपदि भस्मचयं करिष्ये।।[11]

3. दिव्यता :- सीता अलौकिक गुणों से मण्डित धरा की गोद से अवतरित हुई है। देवोपम सौन्दर्य, शील सदाचार की उत्कृष्टता, प्रकृष्ट सहनशक्ति, अनुपम पातिव्रत, चरित्र का गौरव उनके चरित्र की दव्यिता को दर्शाते हैं। उनका जन्म ही दिव्य है। धरा से प्रगट हुई धरणिजा के लिए आकाशवाणी हुई -

गृहाण सीरध्वज! देवदत्तां सुतामिमां भर्त्सितलोकशोकाम्।।[12]

विदेहनन्दिनी हल से खेत जोतने पर प्राप्त होने के कारण 'सीता' नाम से प्रख्यात हुई। देवदुर्लभ वह कन्या किसी सौभाग्य से कम नहीं थी-

अवेहि राजन्ननपाय दीप्तिं क्षियन्नु साक्षाद्गृहमागतान्ते।
स्वकर्मजं स्यात्फलमात्मरूपं ह्यचिन्तितं किन्तु विभातिभाग्यम्।।[13]

चरित्र की पवित्रता दर्शाने के लिए प्रज्ज्वलित अग्निशिखाओं में शान्तभाव से प्रवेश कर जाना नि:सन्देह अलौकिक हैं। सतीत्व की शक्ति एवं पावनता इतनी आश्चर्यजनक है कि दहकती अग्नि भी चन्दनसम शीतल बन गई:-

विशुद्ध चारित्र्यवती यदि ध्रुवं भवेन्मनोवाक्करणैश्च जानकी।
तदद्य तां पातु हिमार्द्रपावक स्त्रिलोकसाक्षी ननु भूत भावनः।।[14]

आश्चर्य! सीता की प्रार्थना पर अग्नि देव स्वयं पावनता की साक्षी देने आये। यथा द्रष्टव्य है:-

स्ववल्लभां स्वीकुरु भद्र! राघव! कृशानुशक्तिः क्व तदीयदाहने?
स्वय प्रपूताङ्गचयाभिमर्शतो न पावयित्री प्रपुनाति पावकः।।

अनिंद्य सौन्दर्य-सम्पन्न, गुणान्विता, प्रियतम में अनुरक्त, निष्पाप सीता के अग्नि परीक्षा में खरे उतरने पर ब्रह्मा शिव एवं समस्त देवों के द्वारा अभिनन्दन के लिये आना जानकी जी के चरित्र की महिमा एवं पावनता की दिव्यता को दर्शाते हैं। उनके चरित्र की भास्वरता के समक्ष अग्नि भी शीतल बन गई। देवों से अभ्यर्चित जानकी निःसंदेह श्लाघनीय है :-

विदेहजां भूमिसुतामयोनिजामवेहि लक्ष्मीं कमलालयां ध्रुवम्।
न मानवी सा न च मानवो भवान् उभावपि स्वर्गविहारिणौ जनौ।।[15]

4. मुग्धा :- सीता 'स्वकीया' मुग्धा नायिका है,[16] जिसमें पहले पहल यौवन का उद्‌भव हुआ है। वाल्यावस्था के अल्हड़पन का स्थान यौवन ने ले लिया है। यौवन के पदार्पण के साथ ही सीता में अपूर्व कान्ति का संचार हो गया है एवं शारीरिक परिवर्तनों को जान सीता धीर गम्भीर मंथर गति वाली बन गई।[17] यथा द्रष्टव्य है-

गृहे परास्कन्दिमिव प्रवेशितं प्रसह्य बाला न शशाक भर्त्सितुम्।
विभाण्य मात्रेऽपि निजे प्रतिष्ठितं शिशुत्वचौरं नवयौवनाधमम्।।
रतिप्रवीजाङ्कुरयुग्मसन्निभौ पयोधरौ वक्षसि वीक्ष्य वर्धितौ।
विदूरकन्दर्पकथा व्यथालसा दुरन्तवैलक्ष्यमवाप जानकी।
नितम्बगुर्वी विनतांससौष्ठवा सुमध्यमा चारुचकोरलोचना।
वशागतिश्चन्द्रमुखी मिताक्षरा चकर्ष सीरध्वजकन्यका न कम।[18]

इसी प्रकार ग्रीवा एवं कटि अत्यन्त कृश होकर सुशोभित हुई। अनङ्ग लक्ष्मी के लिए कोमल शैय्या के समान, कमनीय रोमावलि रूप हरिन्मणि की प्रभावाली उत्तमोत्तम त्रिवली को सीता ने कामप्रिया रति की समर्चनास्थली के ही रूप में धारण कर लिया। नवयौवन के कारण विकसित शरीरवाली होने पर भी सीता का बचपना अभी गया नहीं था। वह कामिनी यौवन तथा शैशव के आमोद-प्रमोद की क्रीड़ास्थली-सी सुशोभित हो रही थी। अब सीता के शैशवाभ्यस्त उन्मुक्त हास को यौवनजन्य मन्द मुस्कान ने जीत लिया। धृष्टतापूर्ण व्यवहारों को लज्जा ने समाप्त कर दिया तथा वन विहार की आकाँक्षा को, स्वयं उत्पन्न होने वाले अन्तःपुरोचित अवगुण्ठन ने अवरूद्ध कर दिया।

यौवन के पहले उद्‌गम के साथ ही जानकी में मदन विकार के प्रथम अवतरण की स्पष्टतः झलक प्राप्त होती है। सीता स्वयं ही मर्यादित हो गई। पृथ्वी पर मन्थर गति से चरण रखती, उन्मुक्त हास के स्थान पर धीरे से मुस्करा देती, पिता की गोद को लज्जावश छोड़ दिया, चंचलता का स्थान गम्भीरता ने ले लिया, मितभाषिणी वह गोपनीय बातों के लिए माँ को, न सखियों को खोजती थी। सीता बिना एक शब्द बोले भोजन कर लेती थी, वाक् छल के बिना बात कह देती थी। देवालय में स्थापित पूजा-प्रतिमा के समान वह बाला मंदिर में अपने आप शान्त हो गई। यथा-

अवैखरीकैव बुभोज भोजनं ह्याचातुरीकैव जगाद वाचिकम्।
उपासनासद्मसमर्च्यविग्रहा शशाम बाला स्वयमेव मन्दिरे।।[19]

प्रियतम विषयक बातें करने पर वह मुग्धा बाला किञ्चित् रोष करती थी। यथा-

इयं लता हन्त न चूतसंश्रिताऽस्त्यतो विधास्ये, परिरब्धभर्तृकाम्।
सखीजने चेति विजल्प्य निस्सृते सदृष्टिरोष न चचाल मामिनी।।[20]
अलं रूषा भामिनी! का नु कन्यका भवत्यनूढा जनकैकलम्बिनी।
तदेहि ते कान्तकथां निशामये कयाचिदेव हसिता स्मितं दधे।।[21]
अये क्षणं पश्य विहङ्गयुग्मकं सखीति सान्द्रं लपिताऽपि मैथिली।
प्रदत्तसङ्केतविलक्षभावनां विभावयन्ती न ददर्श तन्मुखम्।।[22]

रात-दिन कामविषयक चर्चाओं के कारण, प्रणयभावना से आविष्ट, रात्रिवेला में शैय्या के ऊपर प्रियतम की चिन्ता में जागरण -व्रत करते हुए, वह मुग्धा नायिका कामदेवता की शरण में जा पहुँचती:-

गतार्धसुप्तिं विनिमीलितेक्षणा घनान्धकारेष्वपि भूरिदर्शना।
व्यतर्कयद् वारिरूहेक्षणं प्रियं कदापि लन्वी कमपि स्वयंवृतम्।[23]

मुग्धा नायिका की यह विशिष्टता है कि वह प्रियतम के समक्ष कुछ भी कह नहीं पाती, समधिक लज्जाशील वह नवयौवना बस हृदय में प्रणय भावना को अनुभूत करती है, व्यक्त नहीं कर पाती। सीता इसी तरह राम के सामने पहुँच अन्यमनस्क हो जाती है। राम चाहते हैं कि प्रियदर्शिनी सीता कुछ बोले पर वे कुछ कह ही नहीं पाती। यथा द्रष्टव्य है:-

किमिव मामवलोक्य विलज्जसे सुतनु मैथिलि! मज्जुलदर्शने!!
प्रचलितासि यदीयदिदृक्षया ननु तमेव जनं किमुपेक्षसे?[24]

राम को साक्षात् पाकर प्रिय समागम-जनित भय के कारण पियराम सीता के मुखकाल पर तत्क्षण प्रसारित लज्जा रूपी अमृतझरी के सैकड़ों बिन्दु एक साथ प्रकट हो जाते[25] तथा वे न तो आगे बढ़ पाती न ही पीछे जा पाती, किसी सुन्दर मूर्ति के समान निश्चल हो जाती। यथा द्रष्टव्य है:-

न च ससार पुरो न च पृष्टो न खलु दक्षिणतो न च वामतः।
उपरि नैव ददर्श न वाप्यधो ह्यचलमूर्तिरिवाजनि जानकी।।[26]

राम के मधुर वचनों का वैदेही प्रत्युत्तर नहीं दे पाई–

पदनखाग्रसमुद्धृतरेणुभिर्निजमनोजरुजामपलापिनी।
लघुमुहूर्तमितं समयं तदा युगमिवानुबभूव विदेहजा।[27]

इसी प्रकार सप्तम सर्ग में मुग्धानायिका के अनुकूल सीता का आचरण है :–

अग्रेसरीकृत्य पदद्वयं सा बाला क्वचित्साध्वसमन्दवेगा।
पश्चात्पदंन्वेकमुपाययौ यज्जिगाय तेनैव तु शम्बरारिः।।[28]

मनोहर भावों से युक्त, वह शोभन आचरण वाली सीता प्राणेश्वर के सम्मुख किसी प्रकार रह आ पाई–

सा मल्लिकाक्षप्रमदाङ्घ्रिचर्या नीराजना विग्रहसम्मुखीना।
शशाङ्कलेखेव पुरस्सरन्ती सीता कथञ्चित्प्रियमाजगाम।।[29]

राघवेन्द्र में प्रीति रखने वाली विदेहनन्दिनी काम व्यापारों के रहस्यों से सर्वथा अपरिचित है। यथा–

सा बाला कामवृत्तानां रहस्यानुभवाद्दबहिः।
अप्रगल्भाऽपि जीवेशं सपर्ययाऽऽराध तम्।।[30]

लज्जाभार–वश ठिठकती हुई कुछ न करती हुई भी राम की अतिप्रिय है। यथा–

शनैस्तदङ्कमासाद्य न किञ्चिदपि कुर्वती।
अमन्दानन्दसन्दोहं लेभे प्रियतमोद्यमैः।।[31]

(5) तेजस्विनी :– सीता विषम परिस्थितियों में धैर्य रखने वाली, नार्योचित गरिमा ओतप्रोत तेजस्विनी नारी है। जिसके तेज के सम्मुख त्रिलोक विजयी रावण भी निस्तेज हो जाता है। मृगया के लिए गये पराक्रमी राम तथा लक्ष्मण से रहित कुटिया में एकाकिनी मैथिली के साथ अतिशय बलशाली, प्रचण्ड योद्ध, विकराल राक्षसराज रावण आ खड़ा होता है तथा अपनी भव्य समृद्धि का बखान कर मैथिली को अपनी ओर आकृष्ट करना चाहता है किन्तु पति में अनन्य से अनुरक्त निर्भय सीता उस प्रपञ्ची के छल को समझते हुए उसकी भर्त्सना करती है। राक्षस निवास से भयंकर बनी अरण्यभूमि में रक्षक पति एवं देवर से रहित पर्णकुटिया, सामने विकास राक्षसराज रावण की उपस्थिति फिर भी ओजपूर्ण वक्तव्य सीता के तेजस्वी व्यक्तित्व का परिचायक है। यथा–

साम्प्रतं खलु ते छलं निखिलं प्रवेद्मि राघवो मम देवरश्च यथोपनीतौ।
आगतोऽसि निरन्तरायमवेत्य सर्व पाप! पापमयीमिमां विनतिं प्रयोक्तम्??[32]

रावण! खरदूषण के विनाशक राघव अपने भाई के साथ जब तक यहाँ लौट नहीं आते, उसके पूर्व ही यहाँ से भाग जाओ अन्यथा क्षत-विक्षत अङ्ग वाले तुम चिल्ला भी नहीं पाओगे-

गच्छ यावदुपैति नो ह्यनुजद्वितीयो राघवः खरदूषणादिपिशाचहन्ता।
कार्मुके दयितस्यमे सशरे ह्यधिज्ये क्रन्दितुं क्षमसे न रावण! विक्षताङ्ग॥[33]

बलपूर्वक अपहृत सीता को दशानन ने अशोक वाटिका में रखा तथा बारम्बार कामयाचना करके सीता के पास पहुँच जाया करता। उस समय धरासुता का तेजस्वी स्वरूप पूर्ण भास्वरता के रूप में प्रकट हुआ जिसकी दीप्ति के सामने दशानन भी भयभीत हो जाया करता। यथा-

स विलोक्य विदेहजां ज्वलन्मणिभूषामिव हृद्य भीषणाम्।
भुजगस्य भिया शशाक नो सहसा स्वीयवचांसि जल्पितुम्॥[34]

विषधर सर्प की ज्वलन्त मणिभूषा के समान रमणीय एवं भीषण वैदेही को देखकर अकस्मात् रावण अपने उद्‌गारों को प्रकट करने में भय के मारे समर्थ नहीं हो सका। कैसा आश्चर्य है! जिसके भय से तीनों लोक थर्राते हैं, देवराज, देवगण एवं दिक्‌पाल जिसकी सेवा में उपस्थित रहते हैं, त्रिलोक विजयी रावण सीता से भयभीत हैं।[35] तेजस्विनी सीता के रोषपूर्ण उद्‌गार द्रष्टव्य है, जो सीता की नार्योचित गरिमा के अनुकूल ही है। यथा-

रघुनाथपदाब्जमाधुरीं मनसाऽप्यन्यजनं न चिन्वतीम्।
इह पज्जरबन्धनाश्रितामबलां मा वदितुं न लज्जसे!!
शिवभक्तिरियं नु कीदृशी प्रणयश्च व्यभिचारसङ्गतः।
गरिमाणमहो न रक्षति प्रमदाया धिगिदं विलोचनम्॥[36]

रघुनाथ के चरणकमलों की माधुरीभूता, मन से भी परपुरुष का चिन्तन न करने वाली और इस लङ्कापुरी में बलपूर्वक नियन्त्रित कर दी, मुझसे वार्ता करते तुम्हें लज्जा नहीं आ रही? यह तेरी कैसी शिवभक्ति है? और कैसा है, तेरा यह प्रेम जो व्यभिचार से सङ्गत है? जो एक नारी की गरिमा की रक्षा भी नहीं कर सकता। तेरे इन नेत्रों को धिक्कार है!

दनुजाधम ! मां न तु रति प्रणयों याऽथ समाहरत् किल।
नियंत शृणु जानकी त्वयाऽन्वयनाशाय बलादिदाहृता॥[37]

हे राक्षसाधम! निश्चय ही तेरी आसक्ति अथवा तेरा प्रेम मुझे लङ्का में नहीं ले आया है। इस बात को कान खोलकर सुन ले कि अपने वंश का समूल नाश कराने के लिए तूने सीता का बलपूर्वक हरण किया है।

सीता की निर्भयता की झलक द्रष्टव्य है, जिसे मृत्यु से भी भय नहीं है-

न भयं मम चन्द्रहासतः शृणु कामान्ध ! मुमूर्षुरस्म्यहम्।
रघुनाथदिदृक्षया परं वपुरद्यावधि रक्ष्यते मया।।[38]

हे रावण! अब तेरे अपने जीवन के दिन गिनने आरम्भ कर दो। मेरे स्वामी निष्क्रिय नहीं बैठे होंगे। समरभूमि में अतिशीघ्र ही तुझे अपने आचरण का फल प्राप्त होगा।[39]

सम्मुख उपस्थित भीषण निशाचर को देखकर भी ऐसे उद्‌गारों को व्यक्त करने का साहस सीता जैसी तेजस्विनी वीराङ्गना ही कर सकती है।

(6) स्वाभिमानिनी :- जानकीजीवनम् महाकाव्य का वह सर्वाधिक करुणाजनक प्रसंग है, जहाँ सीता दीर्घ वियोग के ताप को सहकर, अतिशय उमंग से, आह्लाद से, विस्मय से, भय से, लज्जा से सकुचाती हुई, ठिठकती हुई, ललक कर राघव की ओर बढ़ती है[40] किन्तु राघव के कठोर वचनों से आहत होकर स्तम्भित हो जाती है-

अवेहि सीते! प्रसभं समुद्धृतां मया त्वमात्मानमचिन्त्यङ्गरे।
निहत्य लङ्काधिपतिं जगत्‌त्रप्रकम्पकं राक्षसराज रावणम्।।
रणान्तमासीत्तव में समन्वितिर्न मेऽधुना किञ्चिदपि प्रयोजनम्।
प्रयाहि तत्सम्प्रति यत्रकुत्रचित् इहैव वा तिष्ठ मया न रोत्स्यसे।।[41]

सीते! इस तथ्य को समझ लो कि त्रैलोक्य को कम्पित करने वाले, रावण को विस्मयावह संग्राम में मारकर, मैंने यथाशीघ्र तुम्हारा उद्धार किया। हमारी-तुम्हारी समन्विति संग्राम की समाप्ति का परिणाम मात्र थी। अब तुमसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। इसलिये, अब तुम जहाँ कहीं भी जाना चाहो जाओ!

मनोरमां दिव्यतनं गृहे स्थितामभीष्टगात्रां समवाप्य रावणः।
न मर्षयत्येव चिरं जना इति द्रुतं प्रवक्ष्यन्ति तदस्ति दुस्सहम्।।[42]

दिव्य व्यक्तित्व वाली अपने ही घर में स्थित, मनोवांछित रूप लावण्य वाली मनोरमा सीता को पाकर रावण भला शान्त रह सका होगा? लोग इस बात को चिरकाल तक कहते रहेंगे, जो कि मेरे लिए दुस्सह है।

राम के पुरुष एवं पुरुषोचित अहंकार पूर्ण कथन कि मैंने सीता का उद्धार किया, अब मेरा तुमसे कोई प्रयोजन नहीं, दशानन के संस्पर्श से दूषित, निरन्तर कामुक दृष्टि से देखी गई सीता को स्वीकारने का उत्साह मुझमें नहीं तथा लोकापवाद सहने में असमर्थ हूँ। सुनते ही धरासुता का स्वाभिमान जागृत हो गया और उन्होंने राघव की निष्ठुरता का पूर्ण आत्मविश्वास तथा आत्मसम्मान के साथ उत्तर दिया। स्वाभिमानिनी सीता के लिए राम की ये बातें असहनीय थी। अपने समुज्जवल शील, सदाचार, पावनता पर राम का यह आक्षेप उन्हें क्रोधित कर गया। यथा-

तृणाय मत्वा विभवान् सह त्वया वनं मया स्वीकृतमार्तिसङ्कुलम्।
मनोऽरतिर्मे परिलक्षितातदा शरीरशुद्धि पुनरद्य लक्ष्यते??[43]

राजमहलों के ऐश्वर्य-वैभव को तिनका समझकर मैंने आपके साथ विपत्तियों से ओतप्रोत वन में रहना स्वीकार किया। तब तो आपने मेरे प्रेम को महनीय समझा और आज आप मेरे शरीर की पवित्रता पर विचार कर रहे हैं?

कुले रघूणामुदितः पतिर्मम त्वमार्यसंस्काररतो गुणाग्रणीः।
परन्तु लोकस्य पुरः कदर्थयन् विपन्न भार्या ननु भासि दारुणः।।[44]

आर्यसंस्कारों के पालक, गुणों में अग्रणी, मेरे पति होते हुए भी अपनी ही भार्या को, सम्पूर्ण समाज के समक्ष कलंकित करते हुए, निस्संदेह आप रावण से भी अधिक भयावह प्रतीत हो रहे हैं।

स्वलोककीर्तेरियती प्ररोचना ममार्यशीलस्य च घोर लाञ्छना?
कुतोन्विदं राघव! तत्त्वपारग! ध्रुवं पतित्वेन जुहोषि गेहिनीम्।।[45]

अपने सामाजिक-यश के लिये इतनी आसक्ति? और मेरे उदात्त चरित्र की ऐसी अमर्यादित लांछना! हे राघव! किस कारण से आप ऐसा कर रहे हैं? आप तो तत्त्वज्ञ है! निश्चय ही पति होने के अभिमान से आप पत्नी का साधिकार हवन कर रहे हैं।

परन्तु आपकी अप्रिय बनकर, आपके धवल यश की कलंकिनी बनकर मैं स्वयं एक भी क्षण जीना नहीं चाहती। इसलिए आज ही, आपकी आँखों के समक्ष, इसी सीता को आपकी द्वेषाग्नि में भस्म किये देती हूँ-

त्वदप्रिया त्वद्यशसां कलङ्किनी जिजीविषामि स्वयमेव मो क्षणम्।
तदद्य प्रत्यक्षमिमां विदेहजां जुहोमि ते द्वेष कृशानुसञ्चये।।[46]

यह सीता के स्वाभिमान की पराकाष्ठा है जो अपने प्राणप्रिय राघव के द्वारा नार्योचित गरिमा के विरूद्ध कहे गये कथन को सहन नहीं किया एवं प्रत्युत्तर ही नहीं दिया, अग्नि कसौटी पर अपनी पावनता, आत्मबल, सत्य को प्रमाणित भी कर दिखाया। आँसुओं से भीगे मुखमण्डल वाले स्वयं राम ने अतिशय ललक के साथ प्रिया सीता को ग्रहण किया। यथा -

सोत्कण्ठं नयनाम्बुसिक्तवदनो जग्राह रामः प्रियाम्।
सोऽवादीन्ननु देव! साधु भक्त्या रामोऽद्य संरक्षितः।।[47]

(7) धर्म परायण :- सदाचारिणी सीता धर्म के पथ पर अटल है। उनकी धर्मपरायणता न तो अरण्य के कंटकाकीर्ण पथ पर डगमगाई न ही रावण के ऐश्वर्य एवं विकरालता के समक्ष नतमस्तक हुई। नारी मर्यादा को अक्षुण्ण रखते हुए उन्होंने नारी धर्म को उस उच्चतम सोपान पर

पहुँचाया। जहाँ वह सभी के लिए आदरार्ह है। धर्म की रक्षार्थ धरणिजा प्राण त्याग करने को उद्यत हो जाती है। यथा:-

नेदं वपुः श्रयति में शुचितां पुराणीं स्पर्शेण दूषितमहोऽधमरावणस्य।
अद्यैव नाथ! विदहामि चिताग्नि तल्पे स्याद्येन जन्मनि नवे पुनरेव पूतम्।।[48]

उनका सत्यधर्म अग्नि कसौटी पर स्वर्ण की भाँति दीप्तिमान हुआ। यथा-

मनो न मे राघवपादपङ्कजं गतं यदि क्वापि विमुच्य जीवने।
तदद्य मां रक्षतु सर्वतोमुखं ह्युशीरशीतो भगवान् स पावकः।।
तरुणतरणिदीप्तां नीलवक्रालकान्तां निशितकनकभूषां रक्तकौशेयवेषाय्।
त्रिदशयुवतिसौम्यांदिव्यरूपां ददौ तां सपदिजनकजातां राघवायाऽग्निदेवः।।[49]

तरुण रवि के समान उद्दीप्त, काले एवं घुँघराले केशकुन्तलों वाली, देदीप्यमान सुवर्णाभूषणों से अलंकृत, रक्तवर्ण कौशेय परिधान धारण किये हुई, देवाङ्गनओं के समान सौम्य एवं दिव्य रूप वाली जगत् पावनी जनकनन्दिनी को अग्निदेवता ने राघव को समर्पित करते हुए उनकी धर्म परायणता के समक्ष स्वयं को नगण्य माना।

सीता राम की सदैव सहधर्माचारिणी रही। राजमहल हो या वनवास उनकी धर्माराधना अनवरत ही रही। धर्म के रहस्य जानने में वैदेही सदैव ही लालायित रहा करती। यथा -

गूढशास्त्ररहस्यभेदपरे हि कान्ते तापसैस्सह सुपदेशसुधां श्रुतिभ्याम्।
शृण्वती वनवास सत्फलमालुलोके ज्ञानरश्मिविभासितान्तर वृत्ति का सा।।[50]

इसी प्रकार अश्वमेघ आयोजन में उनकी धर्म के प्रति दृढ़ आस्था, दया-दाक्षिण्य श्लाघनीय है।

(8) मनमोह पुत्री :- प्रभामयी सीता मनोहर बाल-क्रीड़ाओं से माता-पिता को आह्लादित किया करती। अनुपम शील, सौन्दर्य, औदार्य से सम्पन्न वह बाला सभी की मनभावन बनी हुई थी। अपने उदात्त गुणों एवं शोभन आचरण के द्वारा ही जनकनन्दिनी माता-पिता की प्यारी बनी रही। यथा-

अहो सुता मे कियती गुणान्यिता मितम्पचाऽसंकसुका स्तन्धया।
अहो शुभंयुः कियतीति लालयन् चकार सीतां नृपतिर्भुजान्तरे।।[51]

बाल्यावस्था से ही जानकी अपने उदात्त गुणों के कारण प्रशंसित रही। पिता का कथन है कि जानकी शुभनक्षत्रों वाली धीर गम्भीर, चारित्रिक गरिमा से पूर्ण है। सुकुमारी राजकन्या पिता के लिए सुकोमल हाथों से प्रीतिपूर्वक भोजन बनाया करती। यथा-

उपेक्ष्य सूदान्स्वमेत्य मैथिली महानसं तातरूचिप्रणोदिता।
अथ प्रयस्तोख्यपीतिसङ्कुलं पपाच सौहित्यकरं नु भोजनम्।।[52]

महाराज जनक की लाड़ली सीता अपनी सौम्यता, विनम्रता एवं सरलता के कारण सभी का चित्त बरबस ही जीत लेती थी। यथा–

प्रभूतवत्सेऽपि नृपालमन्दिरे गुणौरुदारैस्तनुकान्तिसम्पदा।
जिगाय हृन्दि प्रसभं समीयुषां प्रजाजनानां क्षितिजैव नन्दिनी।।[53]

शुभाङ्गी सीता को अनुरूप वर की प्राप्ति हो जाये–जनक की यह आकाँक्षा सीता के प्रति उनका अपार स्नेह का ही परिचायक है–

स्वयंवरेऽस्मिन्मम वीर्यशुल्का लावण्यशीलप्रथिता सुकन्या।
पतिंवराऽत्रैव कमप्युदारं ग्रहीष्यति प्रीतवरं कराभ्याम्।।[54]

पिता के इस अपार स्नेह को जनकनन्दिनी ने अपने सदाचरण से सदैव गौरवान्वित ही किया। तत्क्षण जनकदुलारी के शोभन हृदय की भावुकता अनुभूति का विषय है, जब धर्नुभङ्ग की प्रति पूर्ण न होने की स्थिति में पिता जनक व्यथित है एवं सीता स्वयं को ही दोषी मान रही है:–

वृथैव कस्माज्जनिता पितुर्मे निकारहेतुस्तदहं क्षमे नो।
निरन्तरालाङ्घ्रिनखोपघातैस्सञ्चूर्णयन्तीमिव जन्मदात्रीम्।।[55]

पिता के यश एवं गौरव की रक्षा के लिए विदेहजा धरा के समान सभी विषय परिस्थितियों में सहिष्णु बनी रही। सीता की इसी चारित्रिक गरिमा, स्त्रियोचित मर्यादा के कारण पिता जनक का मस्तक सदैव ऊँचा ही रहा और अपने इसी गुण के कारण जनकनन्दिनी माता-पिता की मनभावन पुत्री रही।

(9) सुलक्षणा कुलवधू :– श्रेष्ठ संस्कारों से पूर्ण विदेहजा रघुकुल की मर्यादा के अनुरूप ढलने वाली सुलक्षण कुलवधू है। जनकराज से प्राप्त शिक्षा को पूर्ण रूपेण जीवन में अङ्गीकार कर उन्होंने रघुकुल की कीर्ति काय की सदैव रक्षा की। दशरथ को ही पिता एवं कौशल्या, कैकयी, सुमित्रा को उन्होंने माता माना तथा उनकी प्रत्येक आज्ञा को शिरोधार्य किया। पति को ही सर्वस्व, तीनों देवरों को सहोदर समझा। अन्त:पुर में विद्यमान सखियों के समूह को भगिनीवत् माना, वृद्ध तथा गुरुजनों के प्रति आदरभाव रखा। सीता ने अपने प्रीतिपूर्ण, मधुर व्यवहार से सभी को प्रसन्न रखा तथा निर्दोष सेवा से सभी के हृदय में रच बस गई।

अपने शोभन आचरण से सीता ने आदर्श कुलवधू के गौरवमय पद की प्रतिष्ठा को प्राप्त किया। सीता प्रात: ही उठकर पतिदेव, सासों तथा ससुर जी की चरण वन्दना करके, समस्त कुटुम्बी जनों के लिए सुरुचिपूर्ण बनाया करती तथा अतिशय प्रेम से खिलाया करती। यथा द्रष्टव्य :–

प्रातरेव समुत्थाय कृतपादाभिवन्दना।
प्राणेश्वरस्य श्वश्रूणां श्वसुरस्यापि धीमत:।।

कल्यवर्त विनिर्माय भोजयामास साग्रहम्।
सर्वान् कुटुम्बिनी बाला सर्वकल्याणशंसिनी।।[56]

तदनन्तर स्नान करके तथा कुल देवताओं की अर्चना करके, मनोहर वेशभूषा वाली चन्द्रमुखी सीता, राघवेन्द्र की सेवा में प्रस्तुत हुआ करती। यथा द्रष्टव्य :-

स्नात्वा ततोऽञ्जलिं दत्वा कुलदेवेभ्य इत्वरी।
राघवेन्द्रं प्रियं भेजे सुवेष चन्द्रिराननना।।[57]

कभी-कभी बहनों की प्रसन्नता के लिए, उनके निवास-भवनों में पहुँचकर उन्हें आह्लादित किया करती-

भगिनीनां विनोदाय सात्कदाचिदुपेयुषी।
तासां निवाससद्मानि कुरुते स्मानुरञ्जनम्।।[58]

विविध प्रकार के गार्हस्थ्य धर्मों का कुशलतापूर्वक निर्वाह करते हुए निःसंदेह जनकनन्दिनी सीता ने अपने सदाचरण से ससुराल में सबका मन जीत लिया। यथा -

विविधसौख्यरसामृतमेदुरं प्रतिदिनं समजायत सङ्गतम्।
पतिगृहे मिथिलाधिपनन्दिनी ननु जिगाय गुणैर्जनमानसम्।।[59]

जानकी ने राजमहल में ही अपने गुणों का प्रकाश नहीं बिखेरा प्रत्युत् वनवास में भी सद्गृहिणी का धर्म निभाकर कुल के गौरव को बढ़ाया। यथा - कामदगिरि पर राघव के दर्शनार्थ - जो ऋषि मुनि प्रतिदिन आया करते, पाककला में निपुण जानकी अमृतातिशायी अतिथि-सत्कार द्वारा उन्हें सन्तुष्ट कर, राघव की गृहिणी होने का गौरव निभाया करती। यथा :-

राघवं मुनयो निभालयितुं य एताः कामदेऽनुदिनं स्फुट प्रघुणोपचारम्।
सिद्ध पाककलाऽमृतातिशयने तेभ्यः सा समर्प्य ररक्ष राघवगेहिनीत्वम्।।[60]

सुकुमारी सीता को वन की विपत्तियाँ अत्यन्त धैर्य एवं समता से सहन करते देख जब कोल-किरात की पत्नियाँ रानी कैकयी, अयोध्यापुरी एवं परिजनों को धिक्कारा करती :-

कैकयीं धिगहो ययाकृतमेतदेनो धिग्विधिं धिगदः पुरधिगमूंश्च पौरान्।
हन्तः ! कोऽपि बभूव नो विपदां निरोद्धा द्वेषपापभुवां प्रजासु मृतान्वयोध्या!![61]

तब धरणिजा उन्हें सुकोमल, मधुर वचनों से परितुष्ट कर दिया करती कि राजमहलों का वैभव वन सुषमा के समक्ष नगण्य हैं और पति का सामीप्य उस अपार ऐश्वर्य से भी बढ़कर है।

वैभवं नगरस्य नैव यथा वनान्ते सर्वथा वनवैभवं न तथैव सौधे।
मन्दिरे सुखिनी यथाऽऽसमहं रघूणां वल्लभेन सहाहमूनसुखा वने नो।।
शीतलोऽत्र पयस्विनीसलिलाभिषिक्तो याति गन्धवहः फलन्ति मृदूनि वृक्षाः।
सर्वभोगमयो निरत्ययकामदोऽयं राजते हि ममाश्रमे विविधोपभोगः।।[62]

इस प्रकार सीता अपने वाक् कौशल एवं सहिष्णुता से रघुकूल की कीर्ति की रक्षा किया करती।

(10) प्रेममयी पत्नी :- सीता राम से अनन्य भाव से प्रेम करने वाली प्रेममयी पत्नी है जो सुख-दु:ख में छाया की भाँति साथ रहने वाली अर्द्धाङ्गिनी है। सीता का राम के प्रति प्रेम आदर्श है। स्वयंवर विधि के माध्यम से दीप्तिमती सीता राम की पत्नी बनी -

अर्धाङ्गिनी दाशरथेर्बभूव प्रभामयी भूमिसुता प्रियेण।
खञ्जीकृते शम्भुशरासनेऽस्मिन् स्वयंवरेणैव जगत्समक्षम्।।[63]

अभिराम राम की पत्नी बनते ही शुभाङ्गी सीता ने सदैव प्रेम की मर्यादा को निभाया। पति के गौरव, यश को उन्होंने सदैव ही बढ़ाया। राघव की प्रसन्नता के लिए विवाह मण्डप में ही प्रेम की मर्यादा के अनुकूल मृदुभाषिणी सीता अपनी प्रकृष्ट प्रीति का प्रकाशन कर रही है-

ईषत्स्मितस्थूलकटाक्षवाचा प्रसादयन्ती दयितं छविल्लम्।
मध्येसभं बाढमये दयस्व प्राणेश्वरेति प्रतिमाथिता सा।।[64]

अतिशय रतनारी आभा वाली शोभन जानकी पतिदेव के सदा ही अनुकूल रहा करती -

अहमेव मृगीभूय त्वया हन्येऽनिशं शुभे!
सम्भाव्ये न कथं वाले! त्वदास्येन्दुचकोरक:।।
शनैस्तदङ्कमासाद्य न किञ्चिदपि कुर्वती।
अमन्दानन्दसन्दोहं लेभे प्रियतमोद्यमै:।।[65]

चन्द्रमा की नियत-सहचरी चन्द्रिका के समान राम चरणारविन्द में अनुरक्त तथा मर्यादासिन्धु रघुनाथ सरीखे श्रेष्ठ पुरुष की भार्या की गरिमा के अनुरूप ही सीता का आचरण रहा-

चन्द्रिका विधुसङ्गतेवदधत्प्रकाशा मेघवारितवैभवा कुमुदाभिनन्द्या।
मैथिली प्रययौ वनं रघुनाथनाथा सौधसौख्यमपास्य कान्तपदानुरागा।।[66]

राघव के लिए यह सीता का प्रगाढ़ प्रेम ही है जो उन्हें वन में भी आह्लादित रखता है। राम के पूर्व ही उठ जाने वाली कोमालाङ्गी सीता प्रफुल्लित कमल सरीखे मुख को देख-देख आनन्दित होती रहती -

राघवात्प्रथमं विहास धराङ्कशय्यां जानकी दयितं प्रबोधितवत्युदारा।
आननेन्दुमथावलोक्य कुवेलकल्पं राघवस्य पराम्मुदं विभराम्बभूव।।[67]

सुकुमारी सीता को वन की कठोरता में रहते देख जब राघव दयार्द्र हो उठते थे तब धरणिजा ही उन्हें धैर्य धारण करवाया करती-

मानसं मम कान्त! पादसरोजमाध्वीभृङ्गभूतमिदं क्वचिन्न गतं क्षणाय।
वेद्मि तत्कथमेष्यति प्रविहाय रात्रौ मामिह प्रियरक्षितां क्वचिदन्यवासम्॥[68]

प्रिय! आपके चरणकमलों की मदिरा का पान करने वाला भ्रमर सरीखा मेरा यह मन तो एक क्षण के लिए भी कहीं और नहीं गया। यह मैं स्वयं जानती हूँ। तब फिर रात्रिवेला में इस पर्णकुटीर में, अपने प्रियतम की बाँहों में आरक्षित मुझे छोड़कर वह राजमहल, बहिनों, कुटुम्बीजनों के पास कैसे गया होगा? सीता को राम के साहचर्य में वन भी अमरावती के समान सुखद प्रतीत हुआ–

मत्कृते विजनादपि ग्रहिलाऽभविष्यद्राघवेण विना समेधितराजधानी।
काननं ह्यमरावतीसुभगं तथैव प्राणवल्लीसाहचर्यमुपेत्य जातम्॥[69]

विरहिणी सीता अनन्य शरण होकर जैसे राम को स्मरण करती रही, वह उनके प्रगाढ़ प्रेम का ही परिचायक है। यथा –

अयि नाथ! कथं विलोचनाच्छुभदृष्टिर्विरहं समश्नुते।
हृदयात्कथमेव विच्युतं ननु सुस्पन्दनमद्य दृश्यते??[70]

हे नाथ! नेत्रों से (राम से) उसकी शुभदृष्टि (आपकी सीता) कैसे वियुक्त बन गई? अथवा हृदय से ही उसका मनोहर स्पन्दन आज कैसे अलग दिखाई पड़ रहा है?

राम हृदय तो सीता का प्रेम धड़कन के समान है। प्रेममयी पत्नी सीता वियोग में मधुर प्रणय स्मृतियों में लीन है और पुनः मिलन की उत्कट अभिलाषा है। यथा–

त्वदपाङ्गविभङ्गलोकनश्रितसख्यं मम लोचनद्वयम्।
दयितोत्तम! काङ्क्षति ध्रुवं समवाप्तुं करकज्जलार्पणम्॥[71]

हे दयितोत्तम! आपके नेत्रकोणों की भङ्गिमाभरी दृष्टि से जिसकी मित्रता हो चुकी है ऐसी मेरी दोनों आँखें, अभी भी आपके हाथों कज्जललेखा का प्रयोग करवाने को लालायित है। हे नाथ! मेरी दोनों कलाइयाँ आपके द्वारा पहनाये गये वर्तुलाकार कङ्कणों की कामना करती हैं जो कि मृणाल-युक्त सरोवरों के पङ्कजों से विरचित किये गये हों। यथा :-

मणिबन्धयुगं समीहते घटितं वर्तुलकङ्कणं त्वया।
अयिनाथ! निपानपङ्कजैः ननु भूयोऽपि मृणालमण्डितैः॥[72]

वनवास में राम द्वारा सम्पादित की गई केशकुन्तल में पत्ररचना को स्मरण कर वैदेही उस मधुर पल को फिर से जीना चाहती है। यथा :-

अयमस्ति विलोलकुन्तलो हतभाग्यो विजनाश्रयावधौ।
कतिधाऽनुबभूव नो त्वया विहितां पत्रविधानचातुरीम्॥[73]

विदेहजा के ये उद्‌गार राम के प्रति अनन्य प्रेम के ही परिचायक है-

सकृदेव पुनस्त्यदुत्सवं प्रणयाचारविभावितात्मनाम्।
ननु जीवति जानकी चिंर वपुषा दर्पकंदर्पनाशिनाम्।।[74]

हे स्वामी ! प्रणय व्यवहारों से ओतप्रोत तथा कामदेव के दर्प का भी विनाश करने वाले आपके अङ्गों का साहचर्य-सुख, आपकी प्रिया जानकी एक बार पुनः जीना चाहती है।

सीता ने अग्नि परीक्षा देकर राम के धवल यश की रक्षा ही की। उनका यह पावन आचरण मर्यादासिन्धु राम की पत्नी होने के अनुरूप ही था-

जानाम्यात्मनिलीनसौम्यहृदयां चारित्र्यशुद्धां प्रियां
पूतां राममयीमनन्यशरणां स्वप्नेऽपि नोऽन्याश्रयाम्।
आशंकित ममापि चारुचरितं लावण्यलालाटिकं
लोकोऽयं कृपणस्ततो व्यवसितं कृत्यम्मया निष्ठुरम्।।[75]

राम ने प्रजारञ्जन के लिए सीता के प्रेम तथा पावनता की अग्नि परीक्षा ली जिसमें उनका पति प्रेम खरा उतरा। देव-श्लाघनीय सीता के अनन्य प्रेम के लिए स्वयं राघव ने कहा, मैं जानता हूँ कि सीता का सौम्य हृदय मुझमें ही केन्द्रित है। यह भी जानता हूँ कि मेरी प्रिया पवित्र चरित्र वाली, राममयी, अनन्यशरण तथा स्वप्न में भी किसी और का आश्रय नहीं लेने वाली है। फिर भी यह कृपण समाज मेरे चरित्र पर शंका करता और मुझे रूप-सौन्दर्य का दास समझता। इसी से यह निष्ठुर व्यवहार किया। राम की मर्यादा, सीता के शील के प्रेम को उस ऊँचाई पर पहुँचाया, जहाँ प्रेम पूजनीय बन जाता है।

प्रीतिपूर्ण जानकी की आह्लादकारी अनुभूति राम को अधीर किये जा रही है। यथा-

सुमुखि! ते हृदयं सुतकेन्द्रिंत मम पुनस्त्वयि लीनमनोरथम्।
त्वमसि नो सुखिनी तनुजौ विना न च सुखी विरहे तव राघवः।।[76]

(11) वात्यल्यमयी माँ- सुकुमार लव-कुश की मनोहर छवि को देख-देखकर सीता का वात्सल्य छलका जाता रहा-

प्रतिपलं जयनौ मृगशावकावयि गृहाङ्गण एधितधावनौ।
जनकजाहृदयं किल जहृरतुः कमलकोमलकान्तकलेवरौ।।[77]

विद्याध्ययन के लिए पुत्रों का गुरुकुल जाना निश्चित हो जाने पर जानकी का यही वात्सल्य मुखर होकर राघव से हठ कर रहा है। यथा-

कुशलवौ रघुनाथ! सुकोमलौ पुरुषकाननदारुणजीवनम्।
न किल सोढुमिमौ सहजं क्षमौ विरहितौ नु कदापि कुटुम्बतः।।

निमिषमात्रमपि क्षमते न या जानकजाऽतनुजा किल जीवितुम्।
तदपि नाथ विचारय दारुणं विशसनं मम यंत्रितमङ्गलम्।।[78]

जो धरणिजा राघव के साथ घोर वन के कठोर जीवन में प्रसन्नतापूर्वक सहचरी होकर रही वही पुत्रों के वाल्मीकि गुरुकुल के लिए प्रस्थान को सुनकर भावविह्वल हुई जा रही है; यह माँ की अपने पुत्रों के लिए असीम ममता का ही परिचायक है।

सीता का लव-कुश के प्रति असीम प्रेम है। वात्सल्यमयी माँ अपने पुत्रों के बिना एक क्षण भी जीने में समर्थ नहीं है-

कुशलवौ तव कीर्तिकुशीलवो रघुपतेऽत्र ममापि यशः परम्।
ध्रुवमहं तनयस्मृतिकातरा मरणमेव गतास्मि न संशयः।।[79]

प्रेमपूरित हृदय वाली विदेहजा ने राघव से निवेदन किया कि उन्हें भी पुत्रों के साथ गुरुकुल जाने की अनुमति दी जाये-

गुरुकुलं तनुजद्वयसङ्गता जिगमिषामि महर्षितपोवने।
अनुमतं यदि ते भवतादिदं कुशलवौ सुखिनौ मम नो व्यथा।।[80]

और विदेहजा पुत्रों के साथ गुरुकुल चली जाती है, यह उनका पुत्रों के प्रति निश्छल, अपार स्नेही ही था। अपने पुत्रों के प्रति सीता का स्नेह नैसर्गिक है किन्तु उनके उदार हृदय में हनुमान के लिए जो पुत्रभाव है, वह उनके शोभन हृदय में छलकते अपार वात्सल्य भाव का चारु प्रस्फुटन है। यथा -

आशीरियम्मे ननु तात! यावत् ससागरा तिष्ठति मेदिनीयम्।
तवामरस्याक्षतकीर्तिरास्तां स्याद्राघवान्नो क्षणविप्रयोगः।।[81]

हे पुत्र! मेरा यही आशीष है कि ससागरा यह पृथ्वी जब तक स्थिर रहे तब तक तुम्हारी कालजयी कीर्ति अक्षत बनी रही तथा राघव से तुम्हारा क्षण भर का भी विछोह न हो!

सीता माँ के निर्मल स्नेह की छाँव को अनुभव कर मारुतिनन्दन कहते हैं-

विलोक्याम्ब! स्वसुतस्वरूपं प्रमार्जयाश्रूणि मयासि शप्ता।
यथैव सोढः प्रनिदाघदाहस्तथा प्रतीक्षस्व पयोदवेलाम्।।[82]

माँ अपने इस पुत्र की सौगन्ध है तुम्हें! पोंछ दो अपने आँसुओं को! अपने पुत्र का स्वरूप तो देखो! जैसे अब तक तुमने ग्रीष्म की प्रचण्ड ऊष्मा सही, वैसे ही वर्षा की अगवानी भी कर लो!

राघव की रावण पर विजय हुई। हर्षित पवन तनय अपनी माता सीता को यह मङ्गल संदेश सुनाने के लिए पहुँच जाते हैं तब माँ सीता की हनुमान पर जो असीम अनुकम्पा होती है, वह उनके वात्सल्य को ही अभिव्यञ्जित करता है-

मया धृतं वत्स! रघूत्तमामाहितं भवेद्युलोकाश्रयि देवकीर्तितम्।
सगर्भसीतङ्कुरितं महाद्रुमप्रथाङ्गतं बीजनिभं यशस्वत।।[83]

सीता की गरिमामय चरित्र विविध स्पृहणीय गुणों के समन्वय से विलसित है। सीता में अनन्य पति भक्ति, भरत, लक्ष्मण, शत्रुध्न के साथ निर्दोष वात्सल्य प्रेम, सासुओं के प्रति सेवाभाव, सेवकों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार, नैहर एवं ससुराल में सबके साथ आदर्श प्रीति एवं सबको सम्मान देने की चेष्टा सहृदयता दया[84] करुणा से पूर्ण सीता दानशील, अतिथि-सत्कार में तत्पर,[85] ऋषि एवं देव-पूजन,[86] में सदैव ही संलग्न रहने वाली है।

सीता में लव-कुश जैसे वीर पुत्रों का मातृत्व, साहस, धैर्य, तप, वीरत्व एवं आदर्श धर्मपरायणता आदि सभी गुण पूर्ण विकसित एवं सर्वथा अनुकरणीय है।

जानकीजीवननम् की सीता मनभावन पुत्री, प्रेममयी पत्नी, सुलक्षणा पुत्रवधू, प्रिय भगिनी, सुतवत्सला माँ, सहृदया राजरानी की महनीय भूमिका में प्रस्तुत हुई है।

सीता का प्रभाव अमित है। उनके पावन व्यक्तित्व के सामने सभी श्रद्धानत है। सीता के पिता, पति, गुरु, सास एवं अयोध्या की जनता सभी उनके चारित्रिक गौरव को देखकर सुखद आश्चर्य एवं परम परितोष का अनुभव करते रहे।

राम

जानकीजीवनम् महाकाव्य के नायक राम धीरोदात्त गुणों से सम्पन्न 'अनुकूल' नायक है, जो एकपत्नीव्रती है। धीर-धीर गम्भीर, ज्ञान एवं करुणा के आगार राम सत्कुलोत्पन्न, लक्ष्मीवान, मनोहर, मृदुभाषी, प्रजारञ्जक हैं। उदार हृदय, क्षमावान्, तेजस्वी, पराक्रमी, सत्यप्रतिज्ञ, महासत्त्व, विनीत राम शोभन चरित्रवान है। जिनमें रूप, गुण, शील अपनी श्रेष्ठता के साथ समाहित है।

जानकीजीवनम् के अन्तर्गत राम की जो छवि अंकित की गई है, वह उन्हें लोकाभिराम लोकनायक के पद पर सुप्रतिष्ठित करती है। वे एक तरफ लोकाभिराम हैं तो दूसरी ओर रणरङ्गधीर भी हैं। राम प्रिया सीता में अनन्य भाव से अनुरक्त चित्रित किए गए है किन्तु उन्हें लोकरञ्जन के लिए निष्पाप सीता की परीक्षा लेने में भी कोई हिचकिचाहट नहीं है। राम की चारित्रिक विशिष्टताओं का प्रस्तुतीकरण इस प्रकार है:-

(1) नयनाभिराम :- राम अद्‌भुत शोभा सम्पन्न हैं जो भी उन्हें देखता है, अपलक देखता ही रह जाता है। सुकुमार, कमलनयन, कंजमुख, करकंज, पदकंजारुण राम नीलाभ अङ्गों वाले, प्रभा से देदीप्यमान, अगणित कंदर्पो की अतुलित शोभा सम्पन्न मनोहारी है। राम की नयमाभिराम शोभा की छटा देखिये, जहाँ राम विदेहराज के नयनों के पाहुने बने हुए हैं:-

नवनीलबलाहकप्रभं शरदभ्रद्युति दारकद्वयम्।
हृताचित्तमनङ्गमन्दिरं स दृशोः प्राघुणिकीचकार तत्॥[87]

नवल जलधर के समान श्यामल वर्ण तथा शरत्कालीन मेघ के समान तत्कालीन मेघ के समान गौरवर्ण लक्ष्मण की जोड़ी को जनकराज ने नेत्रों का पाहुना बनाया। यह जोड़ी मन को चुरा लेने वाली, अनङ्गमन्दिर स्वरूपा थी।

तदलभ्यललाममार्दवं पृथिवीलोकनियत्यभावितम्।
हृतचेतन आत्मवञ्चितो जनको वीक्ष्य बभाण कौशिकम्॥[88]

विदेह है जो जनक वहीं अलौकिक उस अलभ्य, सुमनोहर कोमलता को निहारकर, अपहृत चेतना वाले तथा अपनी ही इन्द्रियों द्वारा ठगे गये राजा विश्वामित्र से उसे सुदर्शन सुकुमार के लिए पूछ ही बैठे–

बटुकौ गुरुवर्य! काविमौ स्मरशोभौ सरसीरुहेक्षणौ।
कृतिनो ननु कस्य भूपतेर्हृदयानन्दकरौ यशोधरौ॥[89]

मिथिलाजनपद में राम की नयनाभिराम शोभा की चर्चा है, जो एक बार उस कन्दर्पोपम व्यक्तित्व को देख लेता है हतवागिव हो जाता है। सीता की सखि राम की भुवनमोहिनी छवि का दर्शन कर आह्लादित है। यथा–

इयमहं सखि! वच्मि निभालय त्वमपि मा मयि भूरविवेकिनी।
जलदनीलकलेवरसुन्दरं स्मरवपुर्न मयेदृशमीक्षितम्॥
श्रुतिमिति श्रवणैर्यदसौ युवा भुवनमोहन रूपमनोभवः।
दशरथस्य महाबलशालिनः प्रथमसूनुरनन्तगुणाश्रयः॥[90]

हे सखि! मेघ के समान नील–कलेवर ऐसा शोभन व्यक्तित्व में पहले कभी नहीं आया। भुवनमोहन आकृति वाला वह शुभाङ्ग नवयुवक, दशरथ का असंख्य सद्‌गुणों का आगारभूत ज्येष्ठ पुत्र है। हे मैथिलि! मेघपरिगत चन्द्रमा के समान शोभाधाम–चञ्चल केशकुन्तलों से श्रीमण्डित उस आनन को यदि तुमने एक बार नेत्रों का लक्ष्य नहीं बनाया तो फिर तुम्हारे जीवन को ही धिक्कार है। नयनाह्लादकारी, चित्ताकर्षक उस चारु वदन का एक बार दर्शन ही जीवन की सार्थकता है। यथा:–

मुदिरमेदुरचन्दिरवन्दितं चटुलकुन्तललालिततन्मुखम्।
यदि कृतं न दृशोस्सकृदास्पदं धिगयि मैथिलि! जीवतिमेव से॥
किमधिकं सखि! धिक्कृततदर्पकं झटिति पश्य विपश्य सकृत्सवयम्।
अलमलं परिकुप्य विकुप्य या त्वरय नन्दिनी! नन्दय लोचन॥[91]

जनकनन्दिनी ने जैसे ही उस शोभाधाम को देखा–

अथरतीशककोट्यतिशायिनं पुरुषसिंहमुदीक्ष्य नु सम्मुखम्।।[92]

तत्क्षण ही अपना हृदय हार बैठी। उस मञ्जुल मूर्ति को अनायास ही अपने हृदय मन्दिर में विराजमान कर जानकी आगे बढ़ पाई। यथा–

नवलनीरदनीलवपुः श्रियं रघुवरं दयितं स्मरपेशलम्।
कुशलवाचमथामृतवर्षिणं विदधती हृदि भूमिसुताऽप्यगात्।।[93]

(2) रणरङ्गधीर :– राम फूल से सुकोमल एवं वज्र से भी कठोर है। उनका रणकौशल चमत्कृत कर देने वाला है। महासत्त्व राम प्रचण्ड साहसी है। उनके पराक्रम के समक्ष भयंकर राक्षस भी धराधायी हो जाते हैं। वीरवर राम को स्वयं विश्वामित्र, ताड़का, सुबाहु एवं मारीच के विनाशार्थ लेने आये। यथा–

रामं सलक्ष्मणमुदारधियं प्रदाय
प्रीतिं विधेही मयि राघव! रक्ष लोकम्।
एतौ कृतान्तजयिनौ रणदुर्मदोर्ध्वौ
ऐक्ष्वाकवीमृतसृतिं प्रवरां विधन्तः।।[94]

हे राघव! लक्ष्मण सहित, उदार मति वाले राम को प्रदान कर, मुझे कृपान्वित करें तथा लोक को संरक्षण दें। कृतान्तविजयी तथा श्रेष्ठ रणबाँकुरे ये दोनों भाई इक्ष्वाकु वंश के अनुरूप, श्लाघनीय ऋतमार्ग का अनुसरण करने वाले हैं।

खर–दूषण, त्रिशिरा के नेतृत्व में लाखों राक्षस योद्धाओं ने सम्पूर्ण दण्डकवन को घेर लिया तब राम सीता की रक्षा के लिए लक्ष्मण को नियुक्त करके, वैष्णव धनुष को हाथ में लेकर समराङ्गण में अकेले ही द्रुतगति से आगे बढ़े। धनुष को मण्डलाकार खींचकर तथा प्रत्यञ्चा को छोड़कर राम ने चौदह भुवनों को कालमेघों की गर्जना के समान, जिस टंकार से सभी राक्षस बहरे हो गये।[95] निर्भय राम ने राक्षसी सेना के भीरत उसी प्रकार प्रवेश किया जैसे कराल दाढ़ों वाला सिंह गजराजों के यूथ में प्रवेश करता है। तीक्ष्ण बाणों की वर्षा से दिशाओं को आच्छादित करते हुए राम ने काई के समान राक्षसों को क्षण भर में ही दग्ध कर डाला। यथा द्रष्टव्य :–

निर्भयं प्रविवेश राक्षससैन्यगर्भे केसरीव करालदंष्ट्र इभेन्द्रयूथे।
तीक्ष्णसायकवर्षणैः ककुभोविरुन्धन् राक्षसान् स दाह तूलनिभान् क्षणेन्।।[96]

राघव ने अर्ध–विकसित पलाश–पुष्पवृन्त के समान खर के कपिशवर्ण मस्तक को काट डाला और सेनापति दूषण, त्रिशिरा को खेल ही खेल में उसी प्रकार मार डाला जैसे मदमत्त गजराज कमलवन को छिन्न भिन्न कर देता है–

मस्तकं कपिशप्रभं स चकर्त तूर्णम् अर्धभिन्नपलाशवृन्तनिभं खरस्य।
दूषणञ्च जघान सैन्यपतिं त्रिशीर्ष लीलयेव मदान्धसिन्धुर उत्पलानि।।[97]

राम ने धरामण्डल को राक्षसों एवं दुष्ट शक्तियों से मुक्त करवाने का ही व्रत धारण किया हुआ था। इस प्रयोजन को पूर्ण करने हेतु उन्हें अनेक भयावह युद्ध करने पड़े, योद्धा राम का साहस प्रत्येक युद्ध में अपार ही रहा। रणभूमि में उनका धैर्य हिमालय सा अचल ही रहा। रणरङ्गधीर राम की स्थिरता राम-रावण युद्ध में द्रष्टव्य है-

विलोक्य चिरकांक्षितं भुवनरावणं रावणं
सुरासुरविमाथिनं जनकजाहरं वैरिणम्।
जगाद निजयूथपान् ज्वलदलोलनेत्रद्वयः
प्रबोध्य रघुनन्दनो निभृतमद्य पश्यन्तु माम्।।[98]

लोकसन्तापक रावण को देखकर स्थिर एवं आग्नेय नेत्र वाले रघुनन्दन ने वानर-सेनापतियों को सावधान करते हुए कहा - 'बस, आप शान्त रहकर मुझे देखते रहें!' आज इस युद्ध में धरा रावणविहीन हो ही जायेगी। तदनन्तर मनोगति संचालित देवरथ पर समासीन होकर रघुवीर आगे बढ़े और आरम्भ हुआ भयावह संग्राम जो सूर्योदय-वेला से उत्तरोत्तर बढ़ता ही चला गया। कोई भी व्यक्ति दिन एवं रात का आना-जाना तक नहीं जान सका। देव, दानव, ऋषि, मुनि, पशु, पक्षी सृष्टि के सभी प्राणी इस युद्ध को साँस रोके देखते रहे। रघूत्तम के शर-प्रहारों से रावण रक्तरञ्जित हो गया। उन्होंने बार-बार रावण का शीर्षच्छेद किया परन्तु वरदानी रावण का सिर तत्क्षण ही उद्गत होता रहा। रणरङ्गधीर राम प्रयास करते रहे, अन्ततः पैतामह संज्ञक आग्नेय शर का संधान किया तत्काल ही रावण के दसों सिर कट गए। यथा-

चकर्त शिरसां चयं स किल रुक्मपुंखश्शरः
पपात भुवि रावणः पृथुकबन्धभूतोऽचिरम्।।[99]

(3) आज्ञाकारी पुत्र :- राम के चरित्र की यह सर्वप्रमुख विशिष्टता है कि वे आज्ञाकारी पुत्र हैं। जिन्होंने पिता के नयनों के इंगित मात्र पर अपना सर्वस्व अर्पित कर दिया। प्रतिज्ञाबद्ध पिता के वचनों की मर्यादा रखने के लिए वे स्वयं ही मुदित मन चौदह वर्ष का कठोर वनवास स्वीकार करते हैं। यथा -

दधद्वल्कलो बद्धकेशश्च रामः प्रियासोदराभ्यां तृतीयो मनस्वी।
पितुः सत्यरक्षाव्रते दत्तचित्तो बनाय प्रतस्थे रथस्थोऽभिरामः।।[100]

वल्कल वस्त्र पहने, जटाजूट बाँधे, प्रियतमा सीता तथा सहोदर लक्ष्मण को साथ लिए, पिता की सत्यरक्षा के व्रत में केन्द्रित मनोवृत्ति वाले, धैर्यशाली, सर्वजनप्रिय राम रथारूढ़ होकर वन की ओर चल पड़े।

भरत के द्वारा सविनय राम के चरणों में सम्पूर्ण राज्य अर्पित किया गया तथा अयोध्या वापिस चलने का आग्रह किया गया। यथा–

आगतो भरतस्ततो विनतोऽश्रुसिक्तः सङ्गतः गुरुपौरजानपदैश्च सर्वैः।
प्रार्थयां स चकार वंशपरम्परायाय रक्षणाय निवेद्य तात महाप्रयाणम्।।[101]

पिताश्री की महिमा द्वारा, उनके वचन की परिरक्षा द्वारा रघुकूल की परम्परा द्वारा अनुज भरत को आग्रहपूर्वक अतिशय कोमलता से समझा कर और भरत द्वारा माँगी गयी चरणपादुकाओं को उन्हें सौंपकर राम ने कुमार भरत को तत्काल अयोध्यापुरी लौटने के लिए विदा किया। यथा द्रष्टव्यः–

साग्रहं सदयं प्रबोध्य पितुर्महिम्ना तद्वचः परिरक्षणेन कुलव्रतेन।
पादुके च समीहिते भरताय दत्वा राघवो विससर्ज तं नगराय सद्यः।।[102]

पिता के वचनों का पूर्ण सत्यनिष्ठा से पालन करना, उनकी आज्ञा को ही परमधर्म मानना, राघव के चरित्र को आज्ञापालन करने के उदात्त गुण से आपूरित कर जाता है।

(4) अनन्य अनुरागी पति :– शोभन चरित राम एक पत्नीव्रती है जो विदेहजा के शील सौन्दर्यादि गुणों के श्रवण मात्र से अनुरक्त हो जाते हैं। राघव की यह प्रीति उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है। महाकाव्य के नायक राम जानकी में अनन्य भाव से अनुरक्त चित्रित हुए हैं। वे प्रेमी, सहचर, वियोगी, रक्षक, सहृदय पति है।

सीता स्वयंवर के समय अगणित योद्धाओं के द्वारा धनुभंङ्ग प्रतिज्ञा पूर्ण न कर पाने की स्थिति में व्यथित जनक तथा भावविह्वल जनकनन्दिनी[103] की वेदना, ग्लानि को शोभन हृदय राम ने अनुभव किया। विदेहनन्दिनी सीता से आप्यायित चित्तवृत्ति वाले, विपत्तिहर्ता रघुनन्दन को वह एक क्षण भी, अनन्त कल्पों की अवधि के बराबर परिणाम वाला काल–प्रतीत हुआ। यथा –

विदेहजाभावितचित्तवृत्तेरसौ निमेषोऽपि रघूद्वहस्य।
अनन्तकल्पक्षयजातमानः कालो बभूवार्तिविनाशनस्य।।[104]

'अब विलम्ब नहीं करना चाहिए' हृदय में ऐसा निश्चय करके राम कुछ आगे बढ़े तथा प्रियतमा सीता का रमणीयतम प्रिय कार्य सम्पन्न करने की आकांक्षावश देवाधिदेव शङ्कर के धनुष के पास जा पहुँचे। यह राम की सीता के प्रति प्रगाढ़ प्रीति ही है जो सीता की वेदना को स्वयं के हृदय में अनुभव कर रहे हैं:–

अलं विलम्बेन हृदीति मत्वा ससार रामः कतिचित्पादानि।
प्रियाप्रियं हृद्यतमं चिकीर्षुश्शिवायुधस्यान्तिकमाजगाम।।[105]

राम का सीता के प्रति प्रणय समय के साथ सतत् वर्द्धमान रहा। सीता राम की मनोमुग्धकारी बातों से अतिशय आह्लादित हैं तथा राघव की प्रीति को अनुभव कर अपलक उन्हें देखे जा रहे है। यथा :-

नेदं मुग्धे! प्रयाचेऽहं किञ्चिदन्यदभीप्सितम्।
अन्य एव नु ते बाणा अन्यदेव शरासनम्।।
वचोवागुरया बद्धा प्रियेणैवं निरुत्तरा।
यावत्स्तिमितनेत्राभ्यां द्रष्टुकामाऽभवत्प्रियम्।।[106]

प्रियतम की रसीली बातों से आननिदत सीता को हठात् ही राम आलिङ्गनबद्ध कर लेते तथा अपने प्रेम से जनकजा को सराबोर कर देते। यथा द्रष्टव्यः-

तावद्विदेहजादृष्टिं लक्ष्मीकृत्याथ राघवः।
साकूतवचनैः प्रीतैर्दर्पकाङ्कुरवर्धनैः।।
दोर्भ्यां निपीड्य तामूचे सीते! शृणु वदामि यत्।
शरास्ते दृष्टिसम्पाता नेत्रयुग्मञ्च कार्मुकम्।।[107]

तुम्हारी बंकिम चितवन ही तीर है और तुम्हारे मृगनयन ही धनुष है। हे शुभे सीते! मैं ही हिरण बनकर रात-दिन तुम्हारे द्वारा बंधा जा रहा हूँ। प्रिये! तुम्हारे मुखचन्द्र का चकोरभूत मैं क्यों नहीं कृपान्वित किया जाता? निर्व्याज, निसर्गतः, मधुरतापूर्ण, कामभाव को जगा देने वाले अमृतवर्षा के समान राम के रमणीय वक्तव्य विदेहजा के अन्तर्मन को पुलकित कर जाते। यथा-

अहमेव मृगीभूय त्वया हन्येऽनिशं शुभे!
सम्भाव्ये न कथं बाले! त्वदास्येन्दुचकोरकः।।
कर्णामृतझरीकल्पं श्रुत्वा प्रियतमोदितम्।
निर्व्याजमधुरं रम्यं स्मरभावविवर्धनम्।।[108]

वनवास काल में भी राम ने प्रिया सीता के सुख-दुख का पूर्णरूपेण ध्यान रखा। यथा द्रष्टव्यः-

तत्र वै प्रिययाऽनुजेन सहाभिरामो राघवस्ससुखं व्रत दृढ़यन्नुवास।
रम्यपञ्चवटी छविश्रयिणीनिकामं मैथिलीमपि रञ्जयां द्रुतमास कामम्।।[109]

लता-वितान से पूर्ण, पृथ्वी पर ही सुखपूर्वक शयंन करने वाली, प्रियतम राघव के प्रगाढ़ आलिङ्गन से पूर्णतः आश्लिष्ट शरीर वाली, देवर लक्ष्मण की दुलारी तथा किरात-वधूटियों से सम्मानित सीता राघव के सामीप्य में, उनके प्रेम की छाँव में सीता को वह वन ही अयोध्या के राजमहलों से भी अधिक सुखदायक प्रतीत होता था। यथा-

निर्भरं दयितोपगूढ़निबद्धदेहा स्थण्डिलेऽपि सुखं व्रततिनिचये शयाना।
देवराभिमता किरात वधूभिरिष्टा सा वनं सुखदं गृहाऽभ्यधिकं नु मेने।।[110]

राम ने आदर्श पति की मर्यादा को निभाया। वे सदैव एक पत्नीव्रती ही रहे। अद्भुत रूप लावण्यं वाली कामिनी की कामयाचना को ठुकराकर उन्होंने यही कहा कि साध्वी सीता का परित्याग करके मैं किसी और को स्वीकार नहीं कर सकता, यही मेरा परमधर्म है–

पश्य में दयितां न तां विनतां विहाय स्वीकारोमि परामयं खलु मेऽस्ति धर्मः।[111]

खर–दूषण के साथ युद्ध करने के लिए जाने से पूर्व भी राघव को पत्नी सीता की सुरक्षा का ध्यान है, इसलिए वे लक्ष्मण को जानकी की सुरक्षा में नियुक्त करके जाते हैं।[112] सौवर्ण शरीर वाले विलक्षण मृग को देखकर जानकी बरबस ही आकृष्ट हो जाती है। प्रियतमा की इच्छा को पूर्ण करने हेतु तत्काल ही राघव चल पड़ते हैं, यह उनका सीता के प्रति प्रेम का ही प्रकाशन है। यथा –

राघवो दयितानुरोधमपेक्ष्य सद्यः प्रस्थितोऽनु मृगं प्रगृह्य धनुर्ह्यधिज्यम्।।[113]

सीता वियोग में राम के नयनों से छलकते अविरल अश्रु ही उनकी हृदयस्थ प्रगाढ़ प्रीति का स्फुट प्रकाशन है। राजीव नयन राम पर्णशला में प्रिया को न पाकर अतिशय अधीर हो उठे। सम्पूर्ण प्रकृति ही उन्हें वैदेहीमय दृष्टिगोचर होने लगी। लता, वृक्ष, पशु, पक्षी, पर्वत, नदी, झरनों से उन्होंने प्रिया के विषय में पूछा –

लतावितानानि खगान् पशूंश्च गोदावरीं पञ्चवटीं विशालाम्।
गिरिं प्रपातं वनदेवदेवीः प्रियां नु पप्रच्छ चिराय रामः।।[114]

धैर्य के सागर राम की पत्नी के वियोग में अधीर होकर अश्रु बहाये, आश्चर्यजनक लगता है किन्तु प्रेम की मर्यादा ही यह है कि प्रेमी सुधबुध भुलाकर प्रियतमा को स्मरण करे। राम की व्यथा, राम की तड़फ उनकी यह स्थिति उन्हें अनन्य अनुरागी पति की श्रेणी में ले आती है। यथा –

विदेहजाशून्यवनं विलापैर्व्यलीलपद्राघव आधिविद्धः।
स लक्ष्मणेनानुजरत्नभूतेनाकारि शान्तः शपथैः स्वकीयैः।।[115]

प्रिय पत्नी के सम्मान को आहत करने वाले दुस्साहसी रावण को उन्होंने अपने प्रचण्ड साहस से धराशायी कर दिया। बलपूर्वक अपहरण करने वाले उस नराधम रावण के चंगुल से वैदेही का उद्धार करके उन्होंने पति के रक्षक धर्म को निभाकर प्रेम को गौरवान्वित किया।

निष्पाप प्रेम की अग्निपरीक्षा लेकर उन्होंने पत्नी की पतिनिष्ठा, पावनता, चारित्रिक गरिमा को उस सोपान पर पहुँचा दिया, जहाँ वह जगत के समक्ष देव श्लाघनीय दृष्टान्त बन गई। राम अपनी प्रिया के अनन्य प्रेम की पवित्रता को जानते थे किन्तु कोई भी प्राणी उनके प्रेम को लाँछित करे, यह उन्हें असहनीय था इसीलिए राम ने अपने ही पवित्र प्रेम की अग्निपरीक्षा दी। यथा द्रष्टव्य :–

एवंवादिनि धातरि प्रणिहिते देवे च वैश्वानरे
सोत्कण्ठं नयनाम्बुसिक्तवदनो जग्राह रामः प्रियाम्।
सोऽवादीन्नु देव! साधु भवता रामोऽद्य संरक्षितः
उत्तीर्णोऽस्मि समं विदेहसुतया कौलीनकुल्यामहम्।।[116]

प्रजापति ब्रह्मा के द्वारा प्रशंसित शील वाली तथा वैश्वानर के द्वारा स्वयं उपस्थित होकर पुनीता का साक्ष्य देने पर, आँसुओं से भीगे मुखमण्डल वाले राम ने भावविह्वल होकर प्रजापति से कहा- देव! आज आपने निश्चय ही, सम्यक् रूप से राम की रक्षा कर ली। विदेहनन्दिनी के साथ ही साथ मैं भी लोकापवाद नदी को पार गया हूँ। राम के ये उद्‌गार सहृदय पति के अपनी पत्नी के निश्छल प्रेम एवं निष्पाप चरित्र की प्रामाणिकता को समाज के समक्ष प्रस्तुत करने की भावना को अभिव्यक्त करते हैं। राम स्वयं जानते हैं कि उनकी पत्नी पावन है, उन्हें उनके चरित्र पर अटल विश्वास है किन्तु पत्नी के गौरव रक्षण हेतु सीता के साथ ऐसा निष्ठुर व्यवहार किया। उदार हृदय पति राम के प्रेम की अनुपमता द्रष्टव्य है:-

जानाम्यात्मनिलीनसौम्यहृदयां चारित्र्यशुद्धां प्रियां
पूतां राममयीमनन्यशरणां स्वप्नेऽपि नोऽन्याश्रयाम्।
आशंकेत ममापि चारुचरितं लावण्यलालाटिकं
लोकोऽयंकृपणस्ततो व्यवसितं कृत्यम्मया निष्ठुरम्।।[117]

राम के प्रेम की यह विलक्षणता ही है कि उनके कठोर व्यवहार में भी प्रिया सीता का ही हित करने की शुभभावना निहित है। राम का कथन है, 'इस अग्निपरीक्षा एवं देवसाक्ष्य के पश्चात् न तो राघव लोकापवाद का पात्र बनेगा और न ही विदेहनन्दिनी सीता! हे प्रभो! हम दोनों ही आपके आशीष से सौभाग्यशाली एवं पवित्र बन चुके हैं।' ऐसा कहकर अतिशय प्रेम, आह्लाद, समर्पण एवं विनय से देवी सीता का हाथ शोभन हृदय राम ने अपने हाथ में ले लिया। यथा-

कौलीनं भजतेऽधना रघुपतिर्नो या विदेहात्मजा
आवां द्वावपि पावितौ सुकृतिनौ देव! त्वदीयाशिषा।
एवं प्रोच्य रघूत्तमे सविनयं सीताकरं गृहणति
माङ्गल्योत्सवसागरः कपिबले लोके द्रुतं प्रोद्‌गतः।।[118]

राम का सीता के लिए यह प्रेम सदैव बना रहा। लव-कुश के जन्मोपरान्त सीता के हृदय में उन सुकुमारों के प्रति वात्सल्य भाव छलकने लगा किन्तु रघुवीर का हृदय तो सीता में ही अनन्य भाव से अनुरक्त रहा। अनन्य अनुरागी पति राम की झलक द्रष्टव्य है:-

सुमुखि! ते हृदयं सुतकेन्द्रितं मम पुनस्त्वयि लीनमनोरथम्।
त्वमसि नो सुखिनी तनुजौ विना न च सुखी विरहे तव राघवः।।[119]

हे सुमुखि! तुम्हारा हृदय तो बच्चों में केन्द्रित हो गया है! परन्तु मेरा हृदय तो अभी भी अपना सम्पूर्ण मनोरथ तुम्हीं में केन्द्रित किये बैठा है! तुम बच्चों के बिना सुखी नहीं रह सकती और तुम्हारे विछोह में राघव सुखी नहीं रह सकता।

कुशलवौ रुचितौ मम नेति नो तदपि मैथिली! राघवजीवितम्।
त्वदनुगं प्रणये तव गूहितं कथमिति स्वयमेव न वेदये।।[120]

कुश और लव मुझे प्रिय नहीं है। ऐसी बात नहीं है। फिर भी प्रिये मैथिले! राम का जीवन तो तुम्हीं पर आश्रित है, तुम्हारे ही प्रेम में लीन है। ऐसा क्यों है? यह मैं स्वयं नहीं समझ पाता।

यहाँ राम का प्रकृष्ट पति प्रेम स्वतः ही प्रस्फुटित हो रहा है।

(5) उद्धारक :- उदात्त गुणों से मण्डित राम दलित उन्नायक हैं। उन्होंने दीन हीन जनों को गले से लगाया, अपने प्रेम से सराबोर किया तथा कृपालु बनकर उन्हें उत्तम गति प्रदान की। राम ने अहिल्या,[121] निषादराज,[122] केवट, कोल किरात का कल्याण किया। गिद्धराज जटायु को तो उन्होंने पिता का मित्र जानकर पिता के ही समान सम्मान किया। राघव ने काष्ठ एकत्रित कर तथा अरणियों से अग्नि उत्पन्न कर, सीता के रक्षार्थ प्राण उत्सर्ग करने वाले उस श्रेष्ठ पक्षी का दाह-संस्कार सम्पन्न करके उत्तम गति प्रदान की। यथा :-

जटायुषं तातसखं वनान्ते सीतार्थमुत्सृष्टशरीरजीवम्।
ददाह तं योऽधिचितं सुतीयन् गृद्ध्रं स रामः किमहो मनुष्यः??[123]

इसी प्रकार शबरी के प्रेम के वशीभूत होकर राम ने प्रेमपूर्वक बेर के फल खाये, जिन्हें कि शबरी ने, स्वाद जानने की इच्छा से खिलाने से पूर्व ही चख लिया। भक्त वत्सल राम ने शबरी पर अनुकम्पा कर उन्हें उत्तम गति देकर शबरी का उद्धार किया। यथा -

प्रेम्णा शबर्या वशगो जघास यो दण्डकायां बदरीफलानि।
स्वादावबोधाय तयैव पूर्वं भुक्तानि रामः किमसौ मनुष्यः??[124]

(6) त्यागी :- शोभन कर्मों से श्लाघनीय राम त्यागी प्रवृत्ति के है। अपार ऐश्वर्य, राज्य का भी उन्हें मोह नहीं। माता कैकयी की इच्छा एवं विवश पिता की आज्ञा पर आयोध्या का राज्य तृणवत् त्याग दिया। यथा-

राज्यं चारू विहाय सौम्यमनसा यान्तं वनं वल्लभं
वैदेही वनजीवने सहचरीभूताऽन्वगात्तम्मुदा।।[125]

वन की ओर प्रस्थान करते राम के पीछे-पीछे उनकी सहचरीभूता वैदेही भी प्रसन्नतापूर्वक चल पड़ी। शुभाङ्गी, हृदय की स्पन्दन के समान, प्रिया सीता को भी प्रजारञ्जन के लिए शोभन राम त्याग सकते हैं। यथा द्रष्टव्यः-

जानन्नति प्रीततमां स्वभार्यां चरित्रशुद्धां महितामनन्याम्।
ज्योत्स्नानिभां राघवपूर्णचन्द्रस्तत्याज तां लोकसमक्षमेव।।[126]

अर्थात् अतिशय वल्लभा, महीयसी, पतिव्रतपरायण अपनी अर्द्धाङ्गिनी सीता को, चरित्र शुद्ध जानते हुए भी राघव रूपी पूर्णचन्द्र ने चन्द्रिका के समान उसे सम्पूर्ण समाज के समक्ष ही त्याग दिया। यह राम के त्याग की प्रकृटता नहीं तो क्या है?

(7) शरणागत वत्सल :- उदार हृदय राम की शरण में जो भी आया, उसे उन्होंने अतुलित ऐश्वर्य का स्वामी बना दिया। महाकाव्य में राम के चरित्र की यह विशिष्टता सम्यक् रूपेण प्रतिभासित हुई है। सुग्रीव के शरण में आने पर राम ने वानरराज बालि को मारकर किंष्किन्धानगरी का राजा बना दिया। यथा –

हृतवनितासाम्राज्यसङ्गतः कपिपतिरतनुकृतज्ञः।[127]

राम की शरण में यदि शत्रुपदा के व्यक्ति भी उपस्थित हो जाये तो उन्हें भी राम के द्वारा अभयदान ही नहीं मिलता अपितु ऐश्वर्य, साम्राज्य, सम्मान भी प्राप्त हो जाता। यथा द्रष्टव्य :-

प्रहृत्य शिरसि द्रुतं ह्यवमतोऽत्र दुर्बन्धुना
दशाननसहोदरश्शरणमाययौ राघवम्।।[128]

दुराचारी रावण द्वारा शीर्ष पर चरण प्रहार से घोर अपमानित हुआ, दशानन का सहोदर विभीषण रघुनाथ की शरण में आया तब राम ने विभीषण को 'लंकापति' कहकर आदरपूर्वक अभिनन्दित किया तथा विभीषण के भालपट्ट को सागर जल से अभिषिक्त कर, उन्हें अपना सचिव नियुक्त किया यथा–

हनुमदभिमन्त्रितो रघुपतिस्ततस्सादरं
ननन्द स विभीषणं समभिधाय लङ्केश्वरम्।
पयोधिजलसेचितप्रवरभालपट्टायतं
स्वयं विनियुयोज तं सचिवकर्मणि प्राञ्जलम्।।[129]

इसी प्रकार शत्रुपक्ष के गुप्तचर शुक एवं सारण राम की सेना के बलाबल की जानकारी लेने आते हैं तथा भेद खुल जाने पर वानरसेना के द्वारा भयङ्कर पिटाई होने के पश्चात् वे दोनों ही राम के शरणागत हो जाते हैं। शरणागत गुप्तचरों की रक्षा करते हुए राम ने उन्हें मुक्त कर दिया। यथा–

विभीषणगवेषितौ कपितनूधरो तावुभौ
निबद्धमणिबन्धकौ सपदि ताडितौ वानरैः।
उपान्तशरणौ ततोऽक्षतदयेन सम्मोचितौ
प्रदाय रिपुदेशनां रघुसुतेन शान्त्यर्थिना।।[130]

प्रिया वैदेही के विशुद्ध चरित्र को चुनौती देने वाले, राजरानी के सम्मान को लाँछित करने का अक्षम्य अपराध करने वाले रजक को भी शरणागत हो जाने पर उदारहृदय राम ने क्षमा किया। यथा–

स्वपाणिपाथोजसुधावलेपस्पर्शैर्हरन् दैन्यचयं प्रशोकम्।
द्रुतं समुत्थाप्य निधाय चाङ्के रघूत्तमस्तं रजकं रराध।।
स सान्त्वयंस्तं स्वजनं जगाद मा याहि दैन्यं रजक! प्रशाम्य।
तुष्टोऽस्म्यहं ते हृदयं विलोक्य शपे प्रजाभिर्विशदोऽस्मि तात!![131]

धन्य है! रघुनन्दन की उदारता, जिन्होंने मर्मान्तक पीड़ा देने वाले रजक को क्षमा कर दिया। अद्‌भुत है! उनकी शरणागत वत्सलता जिन्होंने रजक को अभयदान दिलवाया। यथा–

प्रयाहि गेहं ननु भद्र! शान्तश्चित्तं समाधाय कुरुष्वकार्यम्।
भयं न रामादिहं सज्जनानामसज्जनानामपि नैव रक्षा।।[132]

(8) मर्यादासिन्धु :– राम मर्यादित जीवन जीने वाले श्लाघनीय चरित्र हैं। पुत्र, भाई, शिष्य, प्रेमी, पति, सखा, राजा, पिता सभी मानवीय सम्बन्धों की मर्यादा को उन्होंने निभाया ही नहीं, गौरवान्वित किया है। मर्यादासिन्धु राम के प्रेम की मर्यादा की शोभन छवि को देखिये, जहाँ स्वयं प्रजापति राम की प्रशंसा कर रहे हैं। यथा द्रष्टव्य :–

उवाच देवप्रमुखः प्रजापतिः कृति भवान् राघव! लोकनायक!
अपेक्ष्य लोकं यदियं तपस्विनी पवित्रमूर्तिर्दयिता परीक्षिता।।
अनिन्द्यसौन्दर्यवतीं गुणान्वितां धवानुरक्तां मृगलोचनां प्रियाम्।
परस्त्वदन्यः क इव त्यजेज्जनोऽन्यथा धरित्र्यां परिभोगकातरः।।[133]

देवप्रमुख प्रजापति बोले– हे लोकनायक राघव! आप धन्य हैं जो कि जनमत के आदर करते हुए पवित्रता की मूर्ति, अपनी तपस्विनी पत्नी की परीक्षा ली! अन्यथा, आपके अतिरिक्त, इस संसार में भोगविलास के लिए लालायित दूसरा कौन व्यक्ति है जो सीता समान अनिन्द्य सौन्दर्य–सम्पन्न, गुणान्विता, प्रियतम में अनुरक्त, मृगलोचनी प्रिया को इस प्रकार त्याग देता?

(9) धर्मरक्षक :– वेदवेत्ता, धर्मपरायण राम धर्म की रक्षा में सदैव ही तत्पर रहा करते। मुनि विश्वामित्र राम लक्ष्मण को यज्ञरक्षार्थ ही लेने आये तथा वहाँ रघुवीर ने अपने पराक्रम से तपोवन को निर्विघ्न कर दिया। इसी प्रकार वनवास में ऋषि, मुनियों, तपस्वियों की सेवा करते हुए उनके आश्रमों, तपोस्थलों को भयमुक्त किया। मनोरम दण्डकवन को भयाक्रान्त देखकर राम ने संकल्प लिया कि इस तपोवन का मैं शीघ्र ही उद्धार करूँगा! अब मनोवाँछित राक्षस–विनाश–रूपी महायज्ञ की दीक्षा लेने वाले मुझ राघव के लिए यह दण्डकवन ही यज्ञस्थल बने!! यथा द्रष्टव्य :–

निश्चिकाय रघूत्तमः प्रसमीक्ष्य सर्व मानसे यदिदं वनं द्रुतमुद्धरिष्ये।
दण्डकं समभीष्टराक्षसनाशसत्रदीक्षितस्य भवेत्स्थलं मम राघवस्य।।[134]

राम ने अपने प्रचण्ड पराक्रम से सम्पूर्ण धरा को राक्षस विहीन बनाकर धर्म की रक्षा की। सर्वत्र राम के प्रताप से ऋत एवं सत्य की स्थापना हुई तथा हवाओं में वेद की ऋचाएँ फिर से गुञ्जायमान हुई।

(10) विनोदी :- उदात्त गुणों से विभूषित राम के चरित्र में किञ्चित् हास का प्रस्फुटन उनके चरित्र को समरसता प्रदान करता है। जानकीजीवनम् महाकाव्य की यह नवीनता ही है कि उन्हें राम की गम्भीर प्रकृति में विनोदी प्रकृति की सृजना की है।

वरमाला के अवसर पर राम द्वारा कहे गये परिहास वाक्य को सुनकर तन्वङ्गी सीता लज्जित हो उठी। यथा द्रष्टव्यः-

विदेहजे ! ब्रूहि पुनस्तदुक्तं श्रुतं मया यत्किल वाटिकायाम्।
अये दयस्वेति निशम्य नर्म प्रियोदितं सा ह्रियमाप तन्वी।।[135]

विचित्र प्रकार की आवाजों द्वारा विनोदी प्रकृति वाले स्वामी द्वारा कच्ची नींद में ही विदेहजा को जगा दिया जाता था। यथा-

कदाचिदर्धसुप्ता सा स्वामिना नर्मरागिणा।
वानरादिस्वनैर्मन्द्रैः क्रन्दमानैव बोधिता।।[136]

शुभे! रघुनायकनायिके! अवनिजे! मेरे विपदुत्सवों की संगिनी! लव तथा कुश अब तुम्हें अधिक प्रिय लगने लगे हैं, तुम्हारा प्राणवल्लभ यह राघव नहीं? मुझ जैसे स्थविर की उपेक्षा क्यों कर रहे हो? राम की प्रिया सीता को यह उपालम्भ देना उनकी विनोदी प्रकृति का ही परिचायक है।

(11) भ्रातृ अनुरागी :- राम को अपने भ्राताओं से प्रगाढ़ अनुराग है। भरत के राज्याभिषेक की बात को सुनकर राम अतिशय आह्लादित हो उठते हैं तथा अनुज लक्ष्मण का तो उनकी प्रीति पर पूर्ण अधिकार है। अपने अन्तरङ्ग मनोभावों का सर्वप्रथम प्रकाशन वे लक्ष्मण के सम्मुख ही करते हैं तथा जब मेघनाद के शक्तिबाण से लक्ष्मण मूर्च्छित हो जाते हैं तब रघुवीर की भाव विह्वल अवस्था दर्शनीय है, जो राम का अपने अनुजों के प्रति स्नेह की स्पष्ट अभिव्यक्ति है। भरत की प्रतिज्ञा का स्मरण रखते हुए राम पवनवेग से हनुमान को नन्दिग्राम भेजतें हैं। यथा -

अथ विकसित भानौ भानुवंशावतंसः पवनसुतमवोचद्राघवो भद्र! तूर्णम्।
धृतवरनरवेषः सर्वमावेद्य वृत्तं सुखाय भरतमाशु प्रोत्सुकं तं मदर्थम्।।[137]

(12) स्नेहीपिता :- राम अपने पुत्रों पर अतीव स्नेहपूर्ण हैं। उन्हें संस्कारित करने तथा शस्त्र-शास्त्र निष्णात बनाने हेतु रघुवीर वाल्मीकि जैसे अक्षत यशस्वी प्रख्यात विद्यागुरु को उन्हें सौंप देते हैं। यथा -

गुरुकुलाश्रयणस्य वयोन्विदं जनकजे! स्वयमेव विचारय।
क्व खलु लभ्य दह प्रथतो गुरुश्चिरयशा वलमीकजसन्निभः??[138]

गुरुकुल गये दोनों पुत्रों के लिए व्यथित हृदय राम रात्रिवेला में शयन नहीं कर पाते। राम की यह अवस्था उनके पुत्रों के प्रति असीम स्नेह को अभिव्यक्त करती है। यथा–

पल्यङ्कतल्पशयितो रघुवंशभानुः पुर्वप्रतीतिवशगस्तनुजौ स्वपार्श्वे।
सन्मार्गयन् निशि न तो समवाप्य विद्धः उन्निद्र एव रजनीं क्षपयाञ्चकार।।[139]

(13) प्रजानुरञ्जक :– राम का अवतरण ही जन जन के मन को रञ्जित करने के लिए हुआ था। उनके चरित्र की यह सर्व प्रमुख विशिष्टता है कि उन्होंने लोक के सभी प्राणियों को अपने शोभन कर्मों से आह्लादित किया। प्रजा की आर्तियों, वेदना, पीड़ा को उन्होंने अपने समरस व्यवहार से हर लिया। पिता दशरथ यह मानते थे कि राम, प्रजाओं के अनुरञ्जन में अच्छी तरह समर्थ है। स्वभाव एवं सामर्थ्य–दोनों ही दृष्टियों से वह अपने भाइयों में अनुरक्त है। निस्संदेह राम के शासन में रघुवंशियों की कीर्ति अक्षुण्ण बनी रहेगी। यथा–

प्रजारञ्जने साधु रामः क्षमोऽस्ति स्वभावेन शौर्यण सोदर्यसक्तः।
प्रशासत्यहो रामभद्रे रघूणां भवेदक्षया कीर्तिरित्येव मन्ये।।[140]

राम ने अपने आचरण से इस बात को प्रमाणित भी किया कि उनके जीवन का एकमेव लक्ष्य प्रजारञ्जन करना ही है। वे प्रजारञ्जन के लिए अपने स्र्वस्व को भी होम कर सकते हैं। यथा द्रष्टव्यः–

प्रजामनोवृत्तिसमर्थनम्मे श्रद्धेयकृत्यं प्रथमं वरिष्ठम्।
प्रजाहितं प्रीतमं महिष्ठं प्रजैव सर्व किल रामराज्ये।।[141]

अर्थात् प्रजाजनों की मनोवृत्ति का अनुमोदन ही मेरा सर्वप्रथम सर्वश्रेष्ठ कर्तव्य है। प्रजा का हित ही मेरे लिए सर्वाधिक प्रिय कार्य है, सर्वाधिक महान् कार्य है। वस्तुतः रामराज्य में प्रजा ही सब कुछ है।

(14) श्रेष्ठ नृपति :– राम के चारित्रिक गौरव ने उन्हें अपने युग का ऐसा आदर्श राजा बनाया कि वे प्रत्येक युग के स्पृहणीय नृपति हैं। जानकीजीवनम् महाकाव्य में नायक राम की छवि श्रेष्ठ नृपति के रूप में उभर कर सम्मुख आती है। राजा दशरथ को राम ही रघुवंशियों के योग्य उत्तराधिकारी दृष्टिगत हुए। यथा–

अयं राज्यभारोऽधुनाऽऽरोपणीयो दृढस्कन्धयो रामचन्द्रस्य शीघ्रम।
स एवास्ति धर्मेण पुत्रक्रमेण प्रजाऽऽकाङ्क्षितेनापि योग्यो माहिम्नः।।[142]

राम के राज्य किये जाने पर, चतुर्दिक तीव्रता के साथ एक नवीन सौराज्य की स्थापना हुई, ईति, भीति से मुक्त की गई अयोध्या स्वाधीनपतिका रूपगर्विता नायिका के समान इठलाने लगी। यथा–

राघवे वसुधां प्रशासत्यञ्जसा स्थापितं परितोऽपि सौराज्यं नवम्।
ईतिभीतिविमोचिताऽऽयोध्या बभौ नायिका श्रितवल्लभेव प्रोन्मदा।।[143]

राम के शासन में धर्म, संस्कृति, शील, सौजन्य, सद्भाव, संस्कार वर्धमान हुए। वर्णाश्रम-धर्म में प्रतिष्ठित समाज, आह्लादकारी सुख पाने लगे।

राघव अपने प्रयासों से वसुन्धरा को स्वर्गीय समृद्धिवान् बनाना चाहते थे इसीलिए उन्होंने प्रजाजनों पर शासन करने की अपेक्षा, उन्हें अपना सहयोगी माना। यथा -

पृथ्वीमिमां स्वर्गसमृद्धितुल्यां विधातुमिच्छामि निजैः प्रयासैः।
प्रजाजनानां सहयोग भावस्त्वपेक्ष्यते तत्र सदैव भद्र!![144]

पृथ्वी पर राम के शासन में धन (व्यापार), धान्य (कृषि) तथा धर्म (सदाचार) तीनों ही आराधित होकर पूर्ण प्रतिष्ठा को प्राप्त हुए। सौराज्य से अनुरंजित मन वाली कोसल की प्रजा ने, मन के द्वारा भी अचिन्त्य बहुमूल्य वैभव को प्राप्त कर लिया। यथा-

रामे प्रशासति महीं धनधान्यधर्मा आराधिता उपययुः परमां प्रतिष्ठाम्।
सौराज्यरञ्जितमनाः प्रकृतिर्नितान्तं लेभे महार्घविभवं मनसाऽप्यचिन्त्यम्।।[145]

राम जैसे श्रेष्ठ नृपति का ही यह प्रभाव था कि चारों ही वर्ण सावधान होकर पारस्परिक सद्भाव एवं मंगलकामना से युक्त होकर अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करते थे। फलतः सत्यों, तपश्चर्याओं, अतुलनीय श्रेष्ठ यज्ञों तथा दानों से श्रीमण्डित चारों ही चरणों से युक्त धर्म पराकाष्ठा पर पहुँचा। अतिशय आह्लाद में निमग्न समाज पारलौकिक अभ्युदय प्रदान करने वाले सहज उपायों का निरन्तर सेवन किया करते। यथा द्रष्टव्यः-

स्वं स्वं नियोगमनुजग्मुरथाप्रमत्ताः सद्भावमङ्गलयुताश्च तुरीयवर्णाः।
सत्यैस्तपोभिरतुलैस्सुमखैश्चदानैः धर्मश्चतुष्पदयुतस्समवाप काष्ठाम्।।[146]

ब्रह्मर्षि वशिष्ठ ने यज्ञवाट में उपस्थित सभी महानुभावों के समक्ष रामराज्य को प्रशंसित करते हुए कहा-

संस्थापितं नु भवता भुवि रामराज्यं लोकानुरञ्जनकरं खलु लोकतन्त्रम्।
भूपोऽप्यनेहसि भवादृशपूतचर्यो जातो न राघव! वयं प्रचुरं स्मरामः।।[147]

आपने पृथ्वी पर लोकानुरंजनकारी तथा लोकतन्त्राश्रित रामराज्य संस्थापित किया है। हे राघव! हमें भलीभाँति स्मरण है, आप जैसा पवित्र आचरण वाला भूपति भी इससे पूर्व इस संसार में कोई नहीं हुआ।

(15) दानी :- महाकाव्य में राम की दानशीलता की झलक अश्वमेध संज्ञक बीसवें सर्ग में प्राप्त होती है। जहाँ अश्वमेध यज्ञ के अवसर पर याचकों ने जो माँगा, उसको विपुलमात्रा में वही

मिला। गाय, अश्व, गज, भूमिखण्ड तथा अन्न-वस्त्र के दान से परितुष्ट हुए, वेदों के मर्मज्ञ ब्राह्मणों ने कहा- 'श्रीराघवेन्द्र के यज्ञ के समान निर्विघ्न एवं समृद्ध श्रेष्ठ यज्ञ हमने इस पृथ्वी पर पहले कभी नहीं देखा।'[148] राम ने वर्ष भर चलने वाले इस यज्ञ में अनवरत मुक्त हाथों से दान दिया जो उनकी दानशीलता का ही परिचायक है। यथा द्रष्टव्य:-

संवत्सरं प्रववृते निमिषेऽश्वमेधो वासोधनान्नमणिकाञ्चनरत्नदानैः।
दत्तेऽपि भूसुरगणाय समृद्धहस्तैर्भूयोऽप्यवर्धत धनं तदहो विचित्रम्।।[149]

(16) यशस्वी:- उदात्त गुण, शोभन हृदय, मनोहर कर्म राम को यशस्वी व्यक्तित्व प्रदान करते हैं। रघुवंश की कीर्तिकाय की रक्षा के लिये सुकुमार रघुवीर वन के पथरीले पथ पर नंगे पाँव चले तथा राजमहल में भी तपस्वी की भाँति रहे। सूर्यवंश के धवल यश को राम ने दिग्दिगन्त में प्रसारित कर दिया। यशस्वी राघव को अभिनन्दित करते हुए वशिष्ठ जी कह रहे हैं-

यावद्धरां दधति सप्तकुलाचलेन्द्राः पाथोधयश्च रघुनाथ! भुवि प्रथन्ते।
तावच्च ते धवलकीर्तिरिहास्ति लोके शोकापहा मनुजसत्पथभावयित्री।।[150]

हे रघुनाथ! जब तक सातो श्रेष्ठ कुलपर्वत पृथ्वी को धारण किये रहेंगे, चारों समुद्र पृथ्वी पर विद्यमान रहेंगे, तब तक इस लोक में शोक को विनष्ट करने वाली तथा मानवमात्र के सन्मार्ग की भावयित्री आपकी धवल कीर्ति भी अक्षुण्ण रहेगी।

आदि कवि वाल्मीकि ने अपने आदिकाव्य के नायक के विषय में देवर्षि नारद जी से पूछा[151] तत्क्षण नारद ने राम के चरित्र को ही बताया, जो इस बात को उजागर करता है कि राम का व्यक्तित्व यशस्वी है।

राम प्रियदर्शन, पवित्र एवं रमणीय आचरण वाले, विद्वान, कृतज्ञ, आत्मबल सम्पन्न, समस्त प्राणियों के कल्याण में अनुरक्त, सामर्थ्य, शक्ति, दृढ़ता, तेज, युद्ध शौर्य तथा धर्म से अन्वित, विनम्र एवं सचमुच सत्यपरायण है। निस्संदेह राम का चरित्र तेजस्वी एवं अनुपमेय है जो उन्हें लोकनायक के पद पर अंलकृत करवाने में पूर्ण सक्षम है।

लक्ष्मण

लक्ष्मण वीर, धीर, सेवाभावी दशरथनन्दन हैं। जो अग्रज राम में सदैव अनुरक्त, द्वितीय प्राण के समान हैं। राम की आज्ञा पालन ही जिनका व्रत है। शील, सदाचार सम्पन्न निष्पाप लक्ष्मण उत्तम प्रकृति का भाई है।

(1) समर्पित अनुज:- लक्ष्मण का राम के प्रति अनन्य प्रेम है। वे राम के साथ सुख-दु:ख में छाया की भाँति हैं। उनके पथ के काँटे अपने सुकोमल हाथ से चुनते हुए चलते हैं। राजमहल में,

वनवास में, युद्ध में लक्ष्मण राम के सहचर हैं। जनकनन्दिनी विषयक अनुराग का प्रकाशन राम ने सर्वप्रथम लक्ष्मण के सम्मुख ही किया और वे भातृ प्रेम वश राम के सहायक बने। यथा :-

तमनङ्गशरासनध्वनिं जयनिञ्चापि निशम्य विक्लवः।
स्मरभावविसारणाभ्याद्रघुनाथोऽनुजमाह पेशलम्।।[152]

राम के व्याकुल हो जाने पर उनके अनुयायी लक्ष्मण अत्यधिक द्रवीभूत होकर जनकनन्दिनी की खोज में आगे बढ़े यथा -

मुधैव व्याहारं जनयति विलोलव्यतिकरो
न शक्तो सौमित्रिस्तरलतरलोऽभूत्तदनुगः।।[153]
निदेशं ज्येष्ठानां तदपि शिरसाऽङ्गीकृतवता
सुमित्राजातेनाभिमतदिशि चक्रे पदयुगम्।।[154]

(2) मनोहर :- लक्ष्मण गौरवर्ण सर्वाङ्गसुन्दर है, उनका मनोहर व्यक्तित्व मन को चुरा लेने वाला है। यथा-

नवनील बलाहकप्रभं शरदभ्रद्युति दारकद्वयम्।
हृतचित्तमनङ्गमन्दिरं स दृशोः प्राघुणिकीचकार तत्।।[155]

राम-लक्ष्मण की शोभा निहार जनक ठगे से रहे जाते हैं एवं हठात् ही पूछ बैठते हैं-

बटुकौ गुरुवर्य! काविमौ स्मरशोभौं सरसीरुहेक्षणौ।
कृतिनो ननु कस्य भूपते र्हृदयानन्दकरौ यशोधरौ।।[156]

अयोध्या नरेश दशरथनन्दन राम-लक्ष्मण नयनाह्लादक शोभा सम्पन्न हैं-

कुतुकेन वशीकृताविमौ मिथिलां कोशलभूपनन्दनौ।
वसुधेन्द्र! मदेकसङ्गिनौ सुभगौ ह्लादयितुं समागतौ।।[157]

(3) पराक्रमी :- लक्ष्मण वीर हैं, यह उनके शोभन व्यक्तित्व का विशिष्ट गुण है। विश्वामित्र ने उनका परिचय महाराज को वीर सन्तति के रूप में ही दिया:-

शममेत्य शृणु प्रजापते! रघुवीरौ भुजशौर्यदर्पितौ।
निजवंशकुवेलभास्करौ प्रतिभातौ किल राम लक्ष्मणौ।।
दनुजौ मखविघ्नकारकौ जननी चापि तयोर्नु ताड़का।
निखिलः पिशिताशनान्वयः सकृदाभ्यां यमसेवकीकृताः।।[158]

चतुर्दश सर्ग में मेघनाद के साथ युद्ध करते हुए लक्ष्मण का पराक्रमी एवं ओजस्वी स्वरूप समझ आता है। यथा द्रष्टव्य है-

विभीषणविबोधितः प्रबलरोषसम्मूर्च्छितो
ज्वलन्मुखमहीधरप्रतिमविग्रहो लक्ष्मणः।
मरुत्सुतन लाङ्गदप्रभृतिभिर्वृतस्तत्क्षणं
चचाल स निकुम्भिलां सपदि राघवाशीर्युतः।।[159]

लक्ष्मण ने मेघनाद का सिर काट डाला एवं राघव राम अपने अनुज की वीरता पर हर्षित विमुग्ध है:-

ततस्तुमुलसंगरोऽभवदनन्तशस्त्रान्वितो
बभर्ज शरपीडया जलदनाद आतङ्कितः।
विलोक्य विनशद्बलं प्रघसरोषयुल्लक्ष्मण-
श्चकर्त किल शीर्षकं झटिति तस्य संराविणः।।
समीक्ष्य विहतञ्च तं हनुमदादयः सिष्णिहुः
कुमारमथ लक्ष्मणं ननृतुरूहिरे पृष्ठके।[160]
जहर्ष ननुराघवोऽनुजपराक्रमोत्साहितो
महाभयविमोचितं कपिबलं च मेने स्वयम्।।[161]

ऐसे महासंग्राम में घोर मायावी को मार डालना, लक्ष्मण के प्रचण्ड पराक्रमी व्यक्तित्व का ही परिचायक है।

(4) सहिष्णु :- भातृ-प्रेम एवं भातृ आज्ञा को ही सर्वस्व मानने वाले वीरवर लक्ष्मण ने जानकी की अप्रिय लगने वाले, चरित्र को लांछित करने वाले मर्मभेदी कटुवचनों को भी सहन कर लिया। यथा-

देवेरोदतिसान्त्वनामृतसत्ययुक्तां जानकी न ववार कालगतिप्रमोहात्।
साऽऽक्षिपच्चरितं स्त्रियोचितभीरूबुद्धिर्लक्ष्मणस्य मृषोहितैर्दुरितैश्च गर्ह्यैः।।
मर्मविद्ध इवाहतो वनदेवतानां वीरुधामथ भूरुहां सरितां खगानाम्।
आश्रये वनितां विहाय सहोदरस्य लक्ष्मणो व्यथयार्दितो विपिने विवेश।।[162]

अग्निपरीक्षा हेतु अग्निवेदिका की रचना सुनकर अप्रसन्न मन लक्ष्मण अपने अग्रज राम पर क्रोधित हो उठे फिर भी अपने क्रोध पर नियन्त्रण करके समधिक सहिष्णुता से आज्ञा पालन की-

ततश्चितां काष्ठचयेन सत्वरं विरच्य दीप्तामकरोत्सहोदरः।[163]

(5) विनोदी :- किसी भी उत्सव के समय सौमित्र की विनोदी प्रकृति मुखर हो उठती थी। वे अपनी भाभियों के साथ होली खेलते हुए हास-परिहास करते हुए पूरे राजभवन को पुलकित कर देते। यथा-

यदा च वामनीभूय पृष्ठतोनीरवैः पदैः।
समाक्रम्य स सौमित्रिर्भ्रातृजायां प्रगृह्य च।
कपोलमण्डलेन गौरे कज्जलं कर्दमं मसीम्।
लिम्पति स्म भृंश नृत्यन् चर्चरीं कामिनीप्रियाम्।।[164]

इसी प्रकार भाभियाँ भी देवर लक्ष्मण के सोये रहने पर विचित्र भाव-भंगिमायें चेहरे पर अंकित कर देती और फिर हँसती रहती। यथा-

यदा च माण्डवी सुप्तं लक्ष्मणं प्रीतदेवरम्।
श्मश्रुकूर्चादिभिर्वक्रैश्चित्रितवत्यनर्गलम्।।
दर्शं दर्शं तदा बोधे भण्डवेषं तदीयकम्।
अट्टहासैश्च ताः सर्वाः प्रत्युज्जग्मुस्तमञ्जसा।।[165]

(6) नारी गौरव रक्षकः- शूर्पणखा अपनी निर्लज्जता एवं मनोरथ की पूर्ति में विदेहनन्दिनी को विघ्न मानते हुए जैसे ही सीता को मारने के लिए झपटी वैसे ही नारी मर्यादा की रक्षा करते हुए लक्ष्मण ने उसे कर्ण सहित नासिका को काट डाला। यथा -

वीक्ष्य भैरवविक्रियां किल यातुधान्या लक्ष्मणस्त्वरितं चकर्त सकर्णनासाम्।[166]

इसी प्रकार यशस्विनी सीता को मात्र रजक के कथन से निर्वासित कर देना। लक्ष्मण को न्यायोचित प्रतीत नहीं होता अतएव नारी गौरव के रक्षार्थ वे विश्वामित्र के पास जाते हैं एवं उनसे कोई औचित्यपूर्ण समाधान सुझाने को कहते हैं वे दिव्य उद्भव वाली, सूर्यवंश की महीयसी कुलदेवी के अपमान से इतने क्रोधित होते हैं कि सम्पूर्ण अयोध्या को ही अस्मसात् कर देना चाहते हैं। उनके चरित्र की यह विलक्षणता द्रष्टव्य है:-

शत्रुधाम्नि तिरस्कृता सा निर्दयं सर्वलोकसमक्षमेवानादृता।
प्राणलोभमपोह्य संरूढा चिंता मत्करै रचितां न दग्धा पावकैः।।
मैथिलीमभनन्द्य धाता धूर्जटिः पावको मम तातपादोऽपि स्वयम्।
ग्राह्यां किल चक्रतुः श्रीराघवं वेद्म्यहं किमतः परं तद्गौरवम्।।
राघवस्य करे न सा क्रीडाशुकी सा प्रभो! जनपट्टराज्ञी सम्मता।
नोऽधिकार इहावमन्तुं कस्यचित् तां यशोविमलां तिरस्कर्तृ ततः।।
सत्यमेव वदामि देवेमां पुरीमित्यरैर्निर्मिषे शरैर्धक्ष्याम्यहम्।
मज्जितस्सरयूजले पश्चात्स्वयमात्मदेहमपि प्रभो! नक्षाम्यमुम्।।[167]

निस्संदेह लक्ष्मण की वीरता, धीरता श्लाघनीय है। वे राम के सतत् साथ चलने वाली छाया की भाँति सम्पृक्त है। उनका राम के प्रति प्रेम, विनय, समर्पण, सेवा से रचित चरित्र विशेष गरिमामयी है। वे जहाँ मनोहर है, वहीं मनोहर व्यवहार से चित्त को हरण कर लेने में पूर्ण सक्षम

हैं। भाभी सीता के लिए उनका यह आदर ही है जो मर्मभेदी वचनों को कहने के पश्चात् भी वे शान्त ही बने रहे तथा जानेसे पूर्व भी लक्ष्मण रेखा को खींचकर उन्होंने भाभी की सुरक्षा का प्रबन्ध किया। नारी गौरव के लिए विशेष जागरुक लक्ष्मण की गम्भीरता एवं प्रकृति दृढ़ता को विश्वामित्र के सम्मुख प्रस्तुत उनके उद्गारों में अनुभव किया जा सकता है। प्रचण्ड योद्धा एंव तेजस्वी लक्ष्मण की विनोदप्रियता को वनम् सर्ग में समधिक चारुता से अंकित किया गया है। जहाँ लक्ष्मण चपल, चञ्चल, अल्हड़ दृष्टिगत होते हैं, जो भाभी सीता के साथ फाग खेल रहे हैं। तथा माण्डवी के साथ हास –परिहास कर रहे। इसके अतिरिक्त गर्भिणी सीता के स्वरूप एवं चाल को देखकर हास्योक्ति कह रहे हैं।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में लक्ष्मण के चरित्र को पूर्ण भास्वरता के साथ उकेरा गया है। वे राम चरणों में समर्पित सेवक हैं तो पराक्रमी योद्धा भी हैं। राम के सहचर, उनके अन्तरङ्ग भावों को समझने वाले मित्र हैं। राम ने जानकी के प्रति अनुराग का सर्वप्रथम प्रकाशन लक्ष्मण से ही किया तथा वैदेही की पावनता की परीक्षा के समय काष्ठचिता भी उन्होंने ही तैयार की। लक्ष्मण राम की आज्ञानुसार चलने वाले विनीत भ्राता हैं। उनकी सहिष्णुता अपार है किन्तु देवी सीता को कोई लाँछित करे यह उन्हें सह्य नहीं।

इस प्रकार महाकाव्य में लक्ष्मण का चरित्र दो विरोधी धाराओं के समन्वय से रहित है। उनकी चरित्र शोभन गुणों से मण्डित श्लाघनीय भ्राता का है, जिन्होंने अपना सर्वस्व राम के चरणों में अर्पित किया हुआ है।

हनुमान

हनुमान की नयनें के समक्ष जो छवि उभरती है। वह अनन्य राम भक्त, निश्छल सेवक, पराक्रमी, अतुलित बलशाली, बुद्धि चातुर्य सम्पन्न, तेजस्वी व्यक्तित्व की है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में हनुमान अद्‌भुत पराक्रमी, शक्तिशाली, निर्भीक, संवेदनशील, आनन्ददायी के रूप में चित्रित किये गये हैं। उनकी चारित्रिक विशिष्टताओं का आकलन प्रस्तुत हैं:-

(1) शक्तिशाली :- अपार शक्ति के स्वामी हैं- हनुमान। असम्भव प्रतीत होने वाले कार्य को भी पलक झपकते ही सम्भव बना डालते हैं। व्यथित सीता को धैर्य बँधाते हुए केसरीनन्दन अपने बल का परिचय देते हैं यथा –

उक्त्वेति सीतां व्यथयाऽवसन्नां दधार देहं प्रकृतं हनुमान्।
भीष्मं महाभूधरशृङ्गतुल्यं चाम्पेयवर्णं श्रितरोमराजिम्।।
करालदंष्ट्रं दृढ़तालजङ्घं प्रलम्बबाहुञ्च वरेण्यघोणम्।
मनःशिलाव्यायतदीर्घवक्षः कपाटयुग्मं बलविक्रमाद्यम्।।[168]

विशाल पर्वतशिखर के समान, चम्पई रंग वाला, रोमराजियों से भरा-पूरा सुदृढ़ शरीर, कराल दाढ़ें जाँधें, सुदीर्घ बाँहें, सुडोल नासिका, कपाटयुगल के समान चौड़ा वक्षस्थल जो विशाल मनशिशला के समान आभासित होता था तथा शरीर बल विक्रम से ओतप्रोत था।

अञ्जनीनन्दन ने सीता को विश्वास दिलाने के लिए कहा - हे जननी सम्पूर्ण लंकानगरी को उजाड़ देने में समर्थ हूँ। देखो तो मेरा बल! मात्र आपका कुशल-क्षेम जानने के लिए, समुद्र लाँघ कर मैं यहाँ आ पहुँचा और पूर्ण मनोरथ हुआ परन्तु हे जननी! तुम्हारी सान्त्वना के लिए अब कुछ कर गुजरने की इच्छा है।[169] और उन्होंने लंकानगरी में जो कुछ किया वह उनकी अपार शक्ति का स्वयं ही परिचय दे जाता है। यथा द्रष्टव्यः-

जघ्रौ स पुष्पाणि सकृत्ससहस्त्रं चचर्व कन्दान् वसुधां चखान।
विलासवापीनलिनीमृणालोच्चयं सहेलं चपयाञ्चकार।।[170]

निर्भय हनुमान अशोक वन में प्रवेश कर गए। वहाँ उन्होंने इच्छा पर्यन्त मधुर फल खाये, वृक्षों को तोड़ डाला, लताओं को उखाड़ फेंका, फूलों को वृन्त से तोड़-तोड़ कर एक बार क्या, हजार बार सूँघते रहे, कन्दमूलों को चबाया, पृथ्वी को खोद डाला, वापी में खिले कमलपुष्पों के मृणाल-समूह को तहस-नहस कर डाला। भयभीत वनपालों को उन्होंने पकड़ लिया, तीक्ष्ण नखों से उन्हें क्षत-विक्षत कर डाला। मारुतिनन्दन ने अशोक वन को सशोक बना डाला। सेवकों के मुँह से वानर द्वारा किए गए उपद्रव को सुनकर रावण का महाबली पुत्र अक्ष आया तो बलशाली हनुमान ने मुष्टि से वज्रोपम प्रहारों से उसकी चटनी बना दी तथा राक्षसों की विशाल सेना को उन्होंने वृक्षों की असह्य मार से विनष्ट कर डाला। यथा -

उद्यानपालान् जगृहे विभीतान् तुतोदतांस्तीक्ष्णनखैर्विषाक्तैः।
चकार वै संस्मरणयी शोभां वनीमशोकां विधुरां सशोकाम्।।[171]
उपद्रवं भृत्यमुखैर्निशम्य समागतोऽक्षो दशशीर्षपुत्रः।
पिपेष त मुष्टिदृढ़प्रहारजगज चण्ड प्ररुषा हनुमान्।।[172]

मायावी राक्षसों की नगरी में घुसकर इस प्रकार का शक्ति-प्रदर्शन तो मात्र हनुमान जैसे विरले सुभट ही कर सकते है। अदम्य है उनका साहस! अनुपम है उनका बल! जो राक्षसों को भी इस तरह भयभीत कर दिया कि वे रात्रि में सो भी नहीं पाते। अपार बल-विक्रम के भण्डार पवनपुत्र की लम्बी चर्चाएँ गली-गली में सुनाई पड़ने लगीं। यथा-

पथि पथि पृथुचर्चाऽश्रूयतासौ नगर्यां बहलबलनिधीनां मारुतीनां नितान्तम्।
भयविकल पिशाचाः स्वापसौख्यं न जग्मुर्गतवति कपिनाथेऽप्याहितानर्थशंकाः।।[173]

(2) पराक्रमी :- हनुमान का पराक्रम श्लाघनीय है। उनके अदम्य उत्साह से रावण की सेना में सदैव ही भय व्याप्त रहता है। राम-रावण युद्ध में मारुतिनन्दन की वीरता द्रष्टव्य है, जहाँ अनेक

दुर्जय योद्धा परास्त हुए। उद्‌भट सेनापति पवनपुत्र हनुमान मेघनाद द्वारा आरक्षित पश्चिमी कमरद्वार पर जा डटे। शीघ्र ही जम्बुमाली, अकम्पन, धूम्राक्ष, कुम्भकर्ण का पुत्र निकुम्भ हनुमान के द्वारा मारे गये। घोर मायावी मेघनाद को निकुम्भिला मंदिर में अन्वेषण करके मार डालने में कुमार लक्ष्मण के सहायक हनुमान ही बने। रघुवीर के विजयाभिमयान में मारुतिनन्दन के पराक्रम का अतिशय योगदान रहा। विदेहनन्दिनी के समक्ष राम की विजय का समाचार लेकर उपस्थित हुए, हनुमान के शौर्य की प्रशंसा करते हुए स्वयं सीता ने कहा–

सगद्‌गदोत्कण्ठमुवाच जानकी प्रचण्डशौर्यो भव वत्स मारुते!!।[174]

हे वत्स हनुमान! तुम्हारा पराक्रम प्रचण्ड हो! धरणिजा ने हनुमान को आशीर्वाद देते हुए कहा–

बलं बलीयोऽक्षतमस्तु विक्रमोऽक्लमो न ते वैक्लवमेतु मारुते!
प्रवर्धतां रामयशोऽतिगं यशो मदश्रुशुक्लीकृतमेव तेऽनघ!![175]

हे मारुते! तुम्हारा शौर्य–पराक्रम अक्षत एवं शक्तिसम्पन्न हो। क्लमविहीन तुम्हारा विक्रम कभी विकलता को न प्राप्त हो! हे अनघ! मेरी अविरल अश्रुधारा से प्रक्षालित एवं धवलित तुम्हारा यश, राघव के यश को भी अतिक्रान्त कर निरन्तर बढ़े!!

(3) बुद्धि चातुर्य सम्पन्न :– अतिशय बलवान पवनपुत्र विवेक बुद्धि सम्पन्न है। मायावी राक्षसों की नगरी लंका में जाना, सीता को खोजना, शत्रु को अपनी शक्ति से भयाक्रान्त करना तथा सुरक्षित लौट आना निस्संदेह अतिशय बुद्धि कौशल का कार्य है।

जिसे मारुतिनन्दन सहजता से सम्पादित कर डालते हैं। अशोक वाटिका में स्थित धरापुत्री रावण की कामुक दृष्टि से अतिशय अधीर हो उठती है। माता की यह दुर्दशा देखकर भी हनुमान अतीव धैर्य से काम लेते हैं। वे उन्हें मन्द मधुर स्वर में राम कथा सुनाते हैं, तत्पश्चात् माता जानकी के समक्ष आते हैं तथा राम नाम अंकित मुद्रिका प्रस्तुत करते हैं, यह उनकी चतुराई ही तो है। यथा –

इयं कथा प्रत्ययमात्रसिद्ध्यै आश्रावित सारमयी त्वदर्थम्।
उपैमि मातस्तदहं पुरस्तात् विभीहि नो तेऽस्मि तनूजभूत:।।[176]
समर्पयामास मुदाऽङ्गुलीयं श्रीरामनामाङ्कितमादरेण।
जगाद चैनां शृणु देवि सीते! मनस्समाधाय शुचं न याहि।।।[177]

सम्पूर्ण अशोक वाटिका को उजाड़ डालना, अक्षकुमार का वध करना तथा नागपाश में आबद्ध होकर राक्षसराज रावण के सम्मुख उपस्थित होकर अतिशय धृष्टता एवं निर्भीकता से उत्तर देना। यथा –

अथाहित प्रश्न अवाच विज्ञो वातात्मजो धृष्टताया दशास्यम्।
अवेहि मां रामपदाब्जपूतं दूतं हनूमन्तमनन्तवीर्यम्।।
दशास्य ! सीता रघुवीरभार्यां समर्प्य तस्मै विभवं भजेथा:।
ध्रुवं विजनीहिकबथाऽन्यथा ते लोकाऽचले संस्मृतिमेष्यतीति।।[178]

हे दशानन! अमित बलशाली मुझ हनुमान को तुम राघव के चरण कमलों के संस्पर्श से पवित्रित उनका एक दूत समझो! हे दशानन! रघुवीर की भार्या सीता को उन्हें समर्पित कर वैभव-ऐश्वर्य का भोग करो। अन्यथा इसे ध्रुव जान लो कि संसार में तुम्हारी कहानी, स्मृति का विषय बनकर रह जायेगी!

यह पूरा प्रकरण मारुतिनन्दन के बुद्धि कौशल का परिणाम है। केवल सिया सुधि ही लेने नहीं आये अपितु शत्रु को अपनी शक्ति का परिचय भी देने आये हैं, जिनके दूत में इतनी शक्ति है कि वह शत्रुनगरी में प्रवेश कर निर्बाध घूम सकता है, वाटिका तहस-नहस कर सकता है, शत्रुओं का संहार कर सकता है तथा रावण के सम्मुख उपस्थित होकर निर्भयता से अपनी बात रख सकता है तब स्वामी राम की शक्ति सामर्थ्य तो अपार ही होगी।

सभा में सभासदों के मध्य में रावण की भर्त्सना करके पवनात्मज ने रावण के क्रोध को जगा दिया तथा उन्होंने आदेश दिया कि वानर की पूँछ जला दी जाये। हनुमान तो चाहते ही यही थे। उन्होंने अत्यन्त चतुराई से सम्पूर्ण लंका को ही जला डाला। यथा -

गृहाद् गृहं हर्म्यतलात्ततोऽन्यत् प्रवातवेगात् परितोऽपि धावन्।
प्राभञ्जनिर्भीष्मकृशानुदाहैर्ददाह लङ्कां मरुता समिद्धै:।।[179]

स्वयं राघव को मरुत्सुत की बुद्धि एवं विवेक पर पूर्ण विश्वास है तभी तो रमणीय सन्देश पहुँचाने के लिए उन्होंने हनुमान को ही आदेश दिया। यथा -

अथ प्रवृत्ति रुचिरामिमां प्रभुर्विदेहजां श्रावयितुं समादिशत्।
मरुत्सुतं बुद्धिविवेक मण्डितं वशंवदं प्रीततमं सहायिनाम्।।[180]

(4) संवेदनशील :- सहृदय हनुमान दूसरों की पीड़ा से अतिशीघ्र द्रवित हो जाते हैं। उनकी संवेदनशील प्रकृति को जानकीजीवनम् महाकाव्य में बखूबी उभारा गया है। यथा धरणिजा के दु:ख से द्रवित हो हनुमान भावविह्वल हुए जा रहे हैं:-

असह्यसन्तापरयं विलोक्य दम्भोलिमर्मच्छिदमात्मसंस्थम्।
प्राभञ्जनिश्चापि विपन्नधैर्यो मुमोच नेत्राम्बुनिरभ्रवर्षम्।।[181]

वज्रघात के समान मर्मान्तक, हृदय में अवस्थित देवी सीता के असह्य सन्ताप को अनुभव कर, हनुमान भावोद्रेक के कारण निरभ्र वर्षा के समान अश्रुपात करने लगे।

इसी प्रकार अञ्जनीनन्दन को राघव की हृदयस्थ पीड़ा का एहसास है। वे देवी सीता के समक्ष राघव की असहनीय व्यथा को बता रहे हैं। यथा –

वेत्स्यम्ब! मन्येऽधिकमात्मदु:खं न कोसलेन्द्रस्य चिनोषि पीड़ाम्।
त्वत्तोऽधिकं ताम्यति दूनचित्तो धवस्त्वदीयस्सततं त्वदर्थम्।।[182]

हे अम्ब! आप अपनी ही व्यथा को अधिक मान रही हैं, कोसलेन्द्र राघव की पीड़ा नहीं। आप विश्वास करें, माता! विदीर्ण हृदय आपके स्वामी आपके वियोग में निरन्तर ही आपसे भी अधिक सन्तप्त रहते हैं!

हनुमान के निश्छल हृदय में माता वैदेही की वेदना इस तरह समा गई कि राघव के समक्ष वे भावविह्वल हो गये । यथा–

व्यथार्तनयनोत्पल प्रवहमानधाराम्बुभी
रघूत्तमपदद्वयं कमलकोमलं क्लेदयन्।
उवाच खलु मारुती रघुपते! विषादाम्बुधौ
निमज्जति विदेहजा झटिति देव! तां वारय!![183]

व्यथा से आर्त नेत्रकमलों से प्रवहमान अश्रुधाराजलों से रघूत्तम श्रीराम के कमलकोमल चरणद्वय को पखारते हुए मारुति ने कहा – हे रघुनाथ! विदेहनन्दिनी विपत्ति के सागर में डूबी हैं! स्वामी! शीघ्र ही उन्हें उबार लीजिये!

निवेद्य विनयाञ्चित: कपिपतिस्ततो जानकी –
प्रदत्तमतिदारुण करुणकातरं वाचिकम्।
रूरोद शिशुसन्निभ: स्मृतविदेहजाऽतङ्कित:
शशाक न च हिंसितुं पवननन्दनो वेदनाम्।।[184]

तदनन्तर विनयावत हनुमान ने जानकी द्वारा निवेदित किए गए मर्मस्पर्शी सन्देश को प्रस्तुत किया। सन्देश कहते–कहते ही देवी सीता का स्मरण हो आने से वे बच्चों की तरह रोने लगे। माता जानकी की वेदना पवनतनय के संवेदनशील हृदय में स्वत: ही प्रतिबिम्बित होने लगी तथा राघव के समक्ष समधिक भावुकता से उसी का प्रस्फुटन हुआ।

(5) आनन्ददायी :– पवनतनय अपनी कर्मठता, सद्आचरणों से सभी के लिये आह्लादकारी है। वे अपने प्रचण्ड शौर्य से लंका में पहुँच जाते हैं तथा माता वैदेही को प्रिय राम का संदेश सुनाकर आह्लादित करते हैं। यथा–

प्रभाञ्जने! राघवदूत! वत्स! दास्यामि किन्ते विपदन्विताऽहम्?
मृत्युदधावद्य निमिञ्जिताऽहं त्वयोद्धृताऽस्मि प्रसभं समेत्य।।

घनाभिषिक्ता धरणीव साऽहं विलुप्तातापा शिशिरान्तराला।
त्वद्वाचिकैर्जीवितमाध्र्वलुब्धा प्राणाङ्कुरं हन्त बिभर्मि भूयः।।[185]

राघव के दूत! प्रभञ्जनापुत्र हनुमान! वत्स! मृत्यु के सागर में निमग्न मुझे वेगपूर्वक पहुँच तुमने बचा लिया। घनवर्षा से अभिषिक्त धरा के समान अब मेरा सन्ताप नष्ट हो गया, हृदय शीतल हो उठा है! कितना आश्चर्य है कि तुम्हारे वचनामृतों को सुनकर पुनः जीवित रहने की कामना से, मैं प्राणरूपी अंकुर को धारण कर रही हूँ। स्वतः ही स्पष्ट है कि मारुतिनन्दन का आगमन सीता के लिये घनवर्षा के समान आनन्दमयी है।

सफल मनोरथ हनुमान के समुद्रतट पर पहुँचने पर वानर समुदाय में हर्ष की लहर दौड़ गई। इसी प्रकार प्रिया का पता एवं चूड़ामणि पाकर राघव मुदित मन हुए।

मार्ग में पलक बिछाये प्रतीक्षारत कुमार भरत को राम-आगमन का रमणीय सन्देश सुनाकर पवनात्मज ने हर्षविभोर कर दिया। यथा-

इतिकथयति वाचं वायुसूनौ प्रहृष्टो विशदनयनदृष्टिः कैकयीनन्दनोऽसौ।
विपुलपुलकभारैर्द्राक्पपात क्षमायां क्षणमपि बुबुधे नो चित्तचैतन्यमार्तः।।
अथ सपदि मुहूर्ताल्लब्धसंज्ञः समुत्थः पवनतनयमङ्के सन्निधाय प्रगाढ़म्।
निखिलविजनवृत्तं साधु पप्रच्छ वीरः कपिपतिरपि तस्मायाचचक्षे क्रमेण।।[186]

राम आगमन का प्रियतम सन्देश हनुमान द्वारा प्रकट करते ही आह्लाद से ओतप्रोत, देदीप्यमान नेत्रदृष्टि वाले कुमार भरत अपार पुलक के वेगवश, अकस्मात् ही पृथ्वी पर गिर पड़े। आनन्दित भरत क्षण भर के लिए, चित्त की चेतना ही भूल बैठे! तदनन्तर दूसरे ही क्षण, चेतना लौटते ही वेगपूर्वक उठकर पवनतनय को प्रगाढ़ आलिङ्गनपाश में बाँध लेते हैं। भरत का यह हर्ष का आवेग हनुमान के आनन्ददायी चारित्रिक गुण को उजागर करता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में महनीय गुणों से विभूषित हनुमान का चरित्र समाधिक चारुता के साथ रेखाङ्कित किया जाता है।

भरत

निर्मल अन्तःकरण, रामचरणों में अनन्य भाव से समर्पित अनुज के रूप में भरत का चरित्रांकन महाकाव्य में किया गया है।

(1) तपस्वी :- श्रेष्ठ गुणों से अलंकृत भरत का पावन व्यक्तित्व है। जिन्होंने भैया राम के समान ही तपस्वी जीवन को अङ्गीकार किया हुआ है। वे निरन्तर राम नाम का स्मरण, जप, ध्यान, तप किये जा रहे हैं। मारुति ने उन्हें नगर से दूर नन्दिग्राम में तप करते हुए देखा। यथा द्रष्टव्य :-

समशितफलमूलं रूक्षगात्रं कृशाङ्ग जटिलमतनुशोकं वल्कलं संवसानम्।
रघुपतिपदलीनं वेष्टितं साध्व मात्यैः कुलगुरुबलमुख्यैः पौरवर्गप्रजाभिः।।[187]

मारुति ने दूर से ही फलमूल का भक्षण करने वाले, रुखे गात्र एवं कृश अङ्गों वाले, जटाजूट से सुशोभित, वल्कल वस्त्रों को धारण किए हुआ, रघुपति के श्रीचरणों में निलीन, श्रेष्ठ अमात्यों, कुलगुरु वशिष्ठ, सेनापति एवं प्रजाजनों से आवेष्टित तपस्वी भरत को देखा।

(2) निस्पृह :- कुमार भरत कमल के समान निस्पृह हैं जो राजमहल में भी वनवासी बनकर रहे। अनायास प्राप्त प्रभूत ऐश्वर्य एवं साम्राज्य का भोग करने की भरत के चित्त में कोई आकांक्षा नहीं है। सरलमना भरत इस साम्राज्य पर भैया राम का ही अधिकार मानते हैं एवं वे इसे विनयपूर्वक राम के चरणों में अर्पित करने के लिए चित्रकूट में जा पहुँचते हैं तथा राम के समझाने पर अयोध्या लौट जाते हैं किन्तु राजसिंहासन पर प्रतीक स्वरूप रामचरणपादुकाओं को स्थापित कर, बिना किसी स्पृहा के राज्य को राम की धरोहर मानकर बात करते हैं। अनको यह कार्य उनकी निस्पृहता को प्रतिबिम्बित करता है। यथा द्रष्टव्य :-

विमलमणिविटङ्के पादुके राघवस्य चतुरुदधिधरित्रीं पालयन्तं निधाय।
अथ भरतमुदारं ब्रह्मतेजः प्रकर्ष दधतमवलुलोके मारुतिर्दूरतोऽपि।।[188]

विमल मणियों से निर्मित वेदिका पर राघव की चरणपादुकाओं को संस्थापित करके, चतुस्सागरपर्यन्त भूमण्डल का पालन करते हुए, ब्रह्मतेज के प्रकर्ष से श्रीमण्डित उदार भरत सुशोभित हुए।

(3) त्यागी :- रामानुज भरत निःस्पृह त्यागी है। माता के हठ से प्राप्त साम्राज्य को उन्होंने छुआ भी नहीं तत्काल ही चित्रकूट जाकर भैया राम के चरणों में विपुल सम्पदा को अर्पित कर दिया। यथा -

आगतो भरतस्ततो विनतोऽश्रुसिक्तः सङ्गत गुरुपौरजानएदैश्य सर्वैः।
प्रार्थयां स चकार वंशपरम्पराया रक्षणाय निवेद्य तात महाप्रयाणम्।।[189]

यह भरत का अनुपमेय त्याग ही है जो हठात् प्राप्त राज्य को भाई के पक्ष में त्याग दिया और स्वयं किसी धरोहर के रक्षक की भाँति राज्य की देखभाल करते रहे।

(4) राम अनुरागी :- भरत राममय है, उनकी रामचरणों में प्रीति प्रकृष्ट है। भरत अग्रज राम के लिये यह अतिशय अनुराग ही है जो भैया के समान ही कठोर वनवास व्रत को धारण किया। प्रज्जवलित दीपशिखा के समान कुमार भरत ने अनवरत चौदह वर्ष तक राम के पथ पर आँखें बिछाई रखीं। उनकी राम की मनोहर छवि के दर्शन करने की तड़फ से राम आगमन का सुखद सन्देश देने पहुँचे हनुमान ने स्वयं देखा। यथा द्रष्टव्यः-

त्यज हृदयजदाहं दारुणं भो मनस्विन् भवति सदभिलाषस्तेऽधुना पूर्णकामः।
अयि भरत! यमित्थं नीलमेघाभ देहं विगणयसि समाधौ सोऽभ्युपेतस्समक्षम्।।[190]

हे मनस्विन्! अपने दारूण हृदयदाह को समाप्त कर दीजिए। आपकी श्रेष्ठ आकांक्षा अब कृतार्थ होने को है! हे भरत! इस कठोर तप द्वारा, जिस नीलमेघ के समान श्यामल मूर्ति वाले राघव का दर्शन आप समाधि में करते रहे हैं, वहीं आपके समक्ष उपस्थित है।

चिरप्रतीक्षित भैया राम से साक्षात्कार होगा, यह सोचकर ही भरत के नयनों से अविरल अश्रु प्रवाहित होने लगे, अपार हर्ष के आवेग से वे रोमाञ्चित हो उठे। तत्काल ही उन्होंने मारुति को प्रगाढ़ आलिङ्गनपाश में बाँध लिया। गद्‌गद् हृदय भरत अतिशय पुलकित हो उठे तथा आनन्द के अतिरेक से मूर्च्छित हो धरा पर गिर पड़े।[191] भरत एवं राम के सङ्गम से समय प्रस्फुटित सात्त्विक, प्रकृष्ट प्रेम की शोभा की झलक द्रव्टव्य है:-

रघुपतिपदलीनं दण्डवद्भूमितल्पे नयनसलिलसेकक्लिन्नगात्रञ्च पश्यन्।
भरतमतिविपन्न राघवञ्चाऽप्यधीरं क इद नहि रुरोद ग्लानिहर्षप्रवेगैः।।[192]

पृथ्वी पर दण्ड के समान पड़े, रघुपति के चरणों में विलीन, अश्रुवर्षा से भीगी देह वाले अत्यन्त अनुरागी कुमार भरत एवं अधीर राघव को देखता हुआ कौन व्यक्ति पुनर्मिलनजन्य हर्ष के प्रवेगों से नहीं रो पड़ा?

अथ रघुपतिरङ्के सोदरं सन्निधाय भरतमतिविनीतं लालयंश्च प्रगाढम्।
अवददतिशयार्द्रः मा शुचं याहि तात! ननु युगपदिदानीमावयोर्दुः खनाशः।।[193]

राघव ने अत्यन्त विनीत भाई भरत की गोद में लेकर प्रगाढ़ रूप से दुलारते हुए, अतिशय आर्द्र होकर कहा- हे तात! शोक मत करे। सचमुच इस समय, एक ही साथ हम दोनों की वेदनाओं का अन्त हो रहा है! यहाँ राम का भरत के लिए तथा भरत का राम के लिए प्रवृद्ध अनुराग ही अभिव्यञ्जित हो रहा है। तपस्वी, त्यागी, निःस्पृही, रामचरणानुरागी के रूप में भरत का रेखाङ्कन समधिक लालित्यपूर्ण है।

जनक

मिथिला नरेश जनक का सम्पूर्ण जीवन ही त्यागमय आदर्श का प्रतिष्ठापक है। अभिराज राजेन्द्र मिश्र विरचित जानकीजीवनम् महाकाव्य का प्रारम्भ राजा जनक से ही होता है। प्रस्तुत महाकाव्य में अतिशय वात्सल्यपूर्ण पिता, प्रजावत्सल राजा, धर्म, सत्य, अतिथि सत्कार पारायण एवं गुरुचरणाविन्द अनुरक्त श्रेष्ठ चारित्रिक विशिष्टताओं से मण्डित जनकराज का निरूपण हुआ है।

(1) प्रजावत्सल :- महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही हमें राजा जनक का प्रजावत्सल स्वरूप दिखाई देता है। जब कई वर्षो तक मिथिला नगरी दुर्भिक्ष से संतप्त हो गई तो राजा जनक अत्यधिक व्याकुल हो गये तथा गुरु के पास इस दुर्भिक्ष से बचाव का उपाय पूछने के लिए जाते हैं। यथा द्रव्टव्य :-

दुरन्तदुर्भिक्षनिदाघदाहो दहत्यजस्त्रं जनतालतालीम्।
न भव्यमाराम इवावकेशी विधातुमीशः प्रभवामि तस्याः।।
कनीनिकासीकरपूतवाग्भिर्निवेद्य दैन्योपहतार्थितानि।
इतीव भूजानिरियाय जोषं श्रुतिव्यथो यावदसो मनस्वी।।[194]

अतिशय व्यथित होकर जनकराज ने गुरुदेव से कहा, भयानक दुर्भिक्ष तथा निदाघ की आग जनता रूपी लतावलियों को निरन्तर भस्म कर रही है और मैं उपवन में खड़े-फूल फल विहीन वृक्ष की तरह उनका कल्याण कर पाने में असमर्थ हूँ। जन कल्याण के लिये लालायित नरेश की आँखों की कोर से झरती अश्रुधारा उनके वात्सल्य की ही परिचायक है।

गुरु शतानन्द राजा से ही शुभ मुहूर्त में हल जोतने के लिए कहते हैं। राजा जनक अपनी प्रजा के लिए कुछ भी असाध्य करने को प्रस्तुत हैं, वे निर्दिष्ट काल में यथोक्त विधि से पूजनपूर्वक हल जोतना प्रारम्भ कर देते हैं-

समागतेऽथामृतसिद्धियोगे गुरोर्निदेशान्मिथिलाधियोऽसौ।
निवेश्य सीरं पृथुकन्धरायां प्रचक्रमे कर्षितुमात्मगोप्ता।।[195]

विदेहराज के स्वयं ही कृषि कर्म करने पर, ऐसे अद्‌भुत राजन् को अपने मध्य पाकर सभी गौरवान्वित अनुभव कर रहे हैं। यथा द्रष्टव्यः-

प्रजाहितार्थी न बभूव कश्चिन्न वास्ति नो वा भविता त्रिलोक्याम्।
य ईदृशं हृद्यकृषाणकार्य समाचरेदाहुरिति स्म लोकाः।।
शिविर्दधीचो न च रन्तिदेवः पृथुर्नृगो वा नहुषम्बरीषौ।
न कोऽपि जग्मुर्जनकप्रतिष्ठां प्रजानुराग प्रसरावदाताम्।।[196]

त्रिलोकी में प्रजा की हितकामना करने वाला ऐसा कोई नरेश न हुआ, न है और न ही होने वाला है जो इस तरह अपने प्रशस्त कंधों पर हल रखकर, स्वयं ही बैल बनकर भूमि जोते। प्रजा के प्रति वात्सल्यभाव के प्रसार से देदीप्यमान राजा जनक की प्रतिष्ठा को कोई भी पूर्ववर्ती नृपति प्राप्त नहीं कर सके। उनका उज्ज्वल यश पूर्वजों की कीर्ति को भी अतिक्रमण कर गया। राजा जनक का कठोर परिश्रम एवं मङ्गलकामना फलीभूत हुई। तत्काल ही नभ पर श्यामवर्ण मेघ छा गये एवं घनघोर वर्षा आरम्भ हो गई। मेघों के बरसने पर संतप्त धरा एवं मिथिला की प्रजा हर्षित

होकर नृत्य करने लगी। प्रजा वत्सल राजा जनक ने अपने परिश्रम से जन-जन का दारूण कष्ट हर लिया।

(2) स्नेही पिता :- राजा जनक अपनी शील गुण शोभन पुत्री सीता के प्रति अत्यन्त स्नेहिल हैं। राजा जनक के महल में सीता पिता के अपार वात्सल्य की छाँह में क्रमशः वयः वृद्धि को प्राप्त करती हैं। राजा जनक अनेक प्रकार से सीता को दुलारते हैं। एक बार रमणीयतर प्रभात काल में, हर्षित चित्त वाले माता-पिता के पास पहुँचने पर पिता जनक ने चुम्बन लेकर, मुस्कान भरकर सीता से पूछा- 'बेटी! हम दोनों में से तुम्हें कौन अधिक प्रिय लगता है?' यथा-

अथैकदा चारुतरप्रभातके प्रसेदिवांसौ पितरावुपागता।
प्रचुम्ब्य पृष्टा जनकेन सस्मितं क आवयोस्तेऽतितरान्नु रोचते।।[197]

पिताश्री के मनोऽभिप्राय की तर्कना करती हुई सीता कभी उनकी ओर कभी माता की ओर दृष्टिपात करती हुई, कुछ भी कह पाने में समर्थ नहीं हो पाई। तब अपनी कन्या के बालोचित मनोहर भय को देखकर, तत्क्षण सीता की मनोहर छवि पर मुग्ध होते पिता जनक ने स्नेहिल स्वर में कहा- 'ओहो! मेरी दुधमुँही बिटिया कितनी गुणवती है! कितनी अकिञ्चन, धीर-गम्भीर और शुभ नक्षत्र वाली है।' इस प्रकार पुचकराते हुए राजा जनक ने प्यारी बिटिया को गोद में उठा लिया। यथा द्रष्टव्य :-

अहो सुता मे कियती गुणान्विता मितम्पचाऽसंकसुका स्तनन्धया।
अहो शुभंयुः कियतीति लालयन् चकार सीतां नृपतिर्भुजान्तरे।।[198]

जनक सीता के लिए श्रेष्ठ वर की खोज हेतु विशिष्ट स्वयंवर का आयोजन करते हैं, वहाँ मुनि विश्वामित्र के साथ पधारे राम को देखते ही उन्हें अपनी लाड़ली पुत्री सीतोचित वर की समता का अनुमान करके, अतिशय आह्लादित हो जाते हैं। यथा :

क्षणमेव विदेहनन्दिनीवरसाम्यं त्वनुमाय राघवे।
हरिचन्दनसेकसान्त्वनां प्रययौ भूमिपतिर्विलक्षणाम्।।[199]

जब स्वयंवर की प्रतिज्ञा के अनुरूप राम द्वारा धनुर्भङ्ग किया जाता है तो जनक पूर्ण वैदिक रीति से सीता का विवाह राम के साथ कर देते हैं। यहाँ राजा जनक अपने कर्तव्य का निर्वाह कर अत्यधिक सुख को प्राप्त होते हैं -

निशाक्षतोन्मिश्रदधिप्रपूरैः प्रदीप्तभाले विरचय्य शुभ्रम्।
विशेषकं दशरथेरनल्पं प्रजेश्वरोऽवाप सुखातिरेकम्।।
ततश्च सम्पाद्य तदेव कृत्यं वधूटिकावेषलसत्सुतायाम्।
स कारयामास निजानुरूपां क्रियां महिष्याऽपि शुभामनूनाम्।।[200]

कर्तव्य पालन का सुख प्राप्त करते हुए भी राजा जनक पुत्री के प्रति असहनीय वियोग का स्मरण कर अत्यन्त भाव विह्वल हो जाते हैं। उन्हें 'विदेहराज' कहा जाता है, फिर भी सामान्य पिता की भाँति पुत्री का स्नेह उनके स्नेहिल पिता होने को अभिव्यञ्जित करता है –

निशम्य भावाञ्छितगीतगर्मान् स्मृताङ्कजाशैशवकेलिसौख्यौ।
विमुक्तनेत्राम्बुजवारिधारौ विषेदतुर्विहह्वलदम्पती तौ।
विदेहनाम्नोऽपि विलोक्य रागं सतुतोन्तमक मम्।
विवाहपीठस्थितसर्वलोक बभूव नीहारलसत्कुवेलम्।।[201]

बेटी की विदाई के समय राजा आँसुओं को पोंछते हुए सीता से भी धैर्य धारण करने को कहते हैं। ससुराल में सास–ससुर और देवरों को ही अपना माता–पिता और भाई बना लेने की शिक्षा देते हैं। नीति–वचनों का कथन करते हुए[202] भी राजा जनक सीता के स्नेह के वशीभूत अत्यधिक व्यथित हैं। प्यारी बिटिया को गोद में लेकर, उत्तरीय के आँचल से विदेहनन्दिनी के आँसु पोंछते हुए, मधुर वचनों से प्रसन्न करते हुए दुलारने लगे। यथा–

अथ प्रजेशोऽङ्कपाल्यां सुतां समाधाय मृदूपदेशैः।
पटाञ्चलेनाश्रुजलं प्रमृज्य प्रसादयन् संस्पृहायाम्बभूव।।[203]

बेटी तो पराया धन होती है और पिता तो उसका रक्षक मात्र। बेटी! आज तुम्हें तुम्हारे स्वामी को समर्पित करके मुझे अपार प्रसन्नता प्राप्त हो रही है कि पुत्री सुपात्र को दान हुई। यथा द्रष्टव्यः–

धनं भवत्येव सुताऽन्यदीयं पिताऽविता मात्रमसौ नु तस्याः।
समर्प्य जातेऽधिकृतेऽष्तां त्वां विभाति निर्मक्षिकमेव मच्छम्।।[204]

प्रगाढ़ व्यथा वाली सीता को सदुपदेशों से सान्त्वना प्रदान करते हुए, राजा जनक यह जान भी नहीं पाये कि कब अविरल अश्रुधारा से विस्तार से उनका मुखमण्डल भीग चुका है। यथा :–

स सान्त्वयन् गाढशुचं वचोभिस्सुतां नरेशो न च वेद किञ्चित्।
निरर्गलाश्रुप्रसरैस्तथापि प्रपार्द्रतामीयतुरस्य गण्डौ।।
पुनः पुनर्विस्मृतसंस्मृतार्थान् निवेद्य भावान् हृदये च कृत्वा।
नृपः पृथक्कारितलोलवत्सां स सौरभेयीमपि घोरदुःखै।।[205]

चन्द्रमुखी सीता अपनी तीनों बहनों के साथ जब आँखों से ओझल हो गई तथा विवाह समारोह भी पूर्णता को प्राप्त हो गया तब चेतना एवं बुद्धि की क्रियाशीलता से विरहित वह विदेहराज राजमहल में कहीं पर भी, क्षणमात्र के लिये भी विश्राम पाने में सक्षम नहीं हो सके। यथा द्रष्टव्यः–

गता सीता दूरं स्वसृभिरथ सार्धं विधुमुखी
समारोहोऽप्येवं परिणयविधेः पूर्तिमभजत्।

विदेहोऽसौ किन्तु क्षपितचितिबुद्धिव्यतिकरो
न निद्रातुं रात्रौ क्षणमपि शशाक क्वचिदपि।।[206]

(3) बलवान :- राजा जनक अत्यधिक वीर एवं पराक्रमशाली व्यक्तित्व के धनी हैं। अत्यन्त बलवान एवं दृढ़, शरीर वाले राजा जनक के शारीरिक बल का परिचय महाकाव्य के प्रथम सर्ग में ही प्राप्त हो जाता है जब गुरु के आदेश से राजा जनक स्वयं भूमि जोतने के लिए जाते हैं :-

निवेश्य सीरं पृथुकन्धरायां प्रचक्रमे कर्षितुमात्मगोप्ता।।[207]

प्रवृद्ध आत्मशक्ति वाले राजा जनक का प्रचण्ड बाहुबल दर्शनीय है, जब वे धरा में धँसे हल को खींचते हैं तथा सभी को चमत्कृत कर देने वाला अद्‌भुत ज्योतिपुञ्ज वहाँ प्रगट हो जाता है। यथा द्रष्टव्य :-

निरुद्ध शौर्यद्विगुणीकृतौजास्ततः प्रचण्डोभय बाहुशक्त्या।
चकर्षसीरं भुवि यावदेव प्रकाशधारा प्रकटीबभूव।।[208]

सीता के स्वयंवर महोत्सव हेतु राजा जनक भगवान शिव के धनुष पर प्रत्यञ्चा चढ़ाने रूपी पराक्रम शुल्क रखते हैं, जिसे कोई भी अनायास पूर्ण नहीं कर पाता किन्तु उसी विलक्षण धनुष को पूजन के समय अत्यन्त सरलता से अपरिमित शक्तिसम्पन्न विदेहराज एवं विदेहननिछनी बार-बार इधर-उधर किया करते। जिस धनुष को राजसभा में लाने के लिए पाँच हजार सेवकों को लोहे की पहियेदार गाड़ी की सहायता लेनी पड़ी वही धनुष राजा जनक सहज ही उठा लेते, यह उनके अपराजेय बल का ही श्रेष्ठ निदर्शन है-

मञ्जूषिकामष्टरथाङ्गयुक्तां ततस्समानिन्युरमेघभिन्तिम्।
शतानि पञ्चाशदहो नराणामेयोमयीं भासुरचापगर्भाम्।।
सीरध्वजोऽहं मम सोदरश्च कुशध्वजाख्यस्स्वयमात्मजा मे।
यच्छाङ्करं कार्मुकमर्चनार्थे संस्थापयामासुरितस्ततोऽलम्।।[209]

4. अतिथि-सत्कार परायण :- राजा जनक अतिथि सत्कार में अत्यन्त निपुण हैं। गृहागत अतिथि का सर्वविध सत्कार एवं सम्मान करने में स्वयं आगे बढ़कर उत्साह दिखाते हैं। सीता स्वयंवर के समय राजा स्वयं उपस्थित होकर अभ्यागतों की अभ्यर्थना करते हैं। सम्पूर्ण नगरी की सुवासित जल से अभिषिक्त किया गया तथा भव्य रूप से सुसज्जित किया गया।[210]

जब मुनि विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के साथ महल में पहुँचते हैं तो राजा जनक सचिवों सहित द्वार पर पहुँच कर अगुवानी करते हैं तथा अतिथियों को भोजन-शयनादि का सम्पूर्ण समुचित प्रबन्ध करवाते हैं:-

अधिराजगृहं समागतं जनको गाधिसुतं मुनीश्वरम्।
अवगत्य चरानुजल्पनैस्सचिवैस्सार्धमथाययौ द्रुतम्।।
प्रणनाम स दण्डसन्निभो मुनिपादाम्बुजयोर्निपत्य हि।
नयनोच्छ्रितरागवेदिभिस्सलिलैश्चाशु ममाजं साग्रहम्।।
भवदङ्घ्रिरजोऽतिलिप्सवे ननुमह्यं भवदीयदर्शनम्।
पुरुषार्थचतुष्टयादपि प्रतिमानाधिकमेति साम्प्रतम्।।
तदनन्तरमाशुगो नृपः स्वयमेत्यातिथियासवेश्मनि।
निरवद्यविधिं ह्याचीकरच्छयनार्चाशनरञ्जनापरम्।।[211]

राम सीता के विवाह अवसर पर विदेहराज की श्लाघनीय अतिथि सत्कार परायणता दर्शनीय है:-

अवाप्य सम्बन्धिजनोचिताढ्यां लसत्सपर्यां निमिवशंकेतोः।
न मार्गशूलं स्मृतवान्नृपेन्द्रः समित्रवर्गस्सगुरुस्सभृत्यः।।[212]

सम्बन्धीजनों के अतिशय अनुकूल, शोभन पहुनाई को प्राप्त कर मित्रों, गुरुजनों तथा सेवकोंसहित नृपश्रेष्ठ दशरथ ने मार्ग की कठिनाइयों का स्मरण तक नहीं किया। शोभा सम्पन्न सरोवरों के आङ्गण में खिले कमलों से सुवासित बयार ने, भ्रमरों के मधुर गुञ्जार ने, नगरवधुओं के सुरीले गीतों ने, बिखेरे धान के लावों, अक्षतों एवं गन्धचूर्णों ने अतिथियों का रमणीय स्वगात किया।।[213]

वाणी से भी अधिक साकार प्रतिष्ठा और उस प्रतिष्ठा से भी कहीं ऊँची प्रीति भरी प्रशस्ति, विदेहराज जनक ने अयोध्या नरेश दशरथ को समर्पित की। यथा द्रष्टव्यः-

वचोऽधिकां कर्ममयीं प्रतिष्ठां ततोऽप्युदूर्ध्वां प्रियताभिशंसाम्।
समर्पयामास विदेहराजो नृपाय साकेतधनाय तस्मैः।।[214]

यथा योग्य वैदिक, लौकिक क्रियाओं एवं सुविधाओं द्वारा बारातियों की अगवानी करते हुए, मुदितमन विदेह ने किस की सहज ममता प्राप्त नहीं कर ली? यथा :-

यथोचितैर्वैदिकलौकिकैर्वा क्रियोपचारैर्वरयात्रि पुञ्जम्।
समर्चयन् प्रीतमना विदेहो न कस्य हृद्यां ममतामवाम्।।[215]

ऐसा प्रीतिपूर्ण, भव्य सत्कार पाहुनों का कभी भी, कहीं पर नहीं किया गया, वार्तानिपुण बुजुर्ग परस्पर इस प्रकार की प्रशस्ति करते प्राप्त हो रहे थे। यथा द्रष्टव्य ::-

न तादृशी प्राघुणसत्क्रियाऽभूत्कदापि काचित्क्वचिदातिथेयैः।
इतीव वृद्धा निभृतं लपन्तः श्रुताः पुरीवीथिषु वाचि दक्षाः।।।[216]

राजा जनक के अनुरूप सम्पूर्ण प्रकृति भी राजा दशरथ की अगवानी हेतु उद्यत दिखाई दी।

उपरोक्त श्रेष्ठ गुणों के अतिरिक्त राजा जनक गुरु के प्रति अतीव नम्र, व्यावहारिक नियमावली के ज्ञाता, सर्वश्रेष्ठ नृपति हैं। उनके मानवीय औदार्य एवं राजोचित गुणों के कारण प्रजा अत्यधिक स्नेह करती है। राजा हर क्षण अपनी सन्तान की भाँति प्रजा के हित चिन्तन में संलग्न दिखाई देते हैं।

सुनयना

जानकीजीवनम् महाकाव्य में राजरानीसुनध्यना मनोवृत्तानुसारिणी पत्नी एवं अतीव ममतामयी माँ के रूप में चित्रित हुई है। महाकाव्य में रानीसुनयना का अतिसंक्षिप्त किन्तु शोभन प्राप्त होता है। जिसके अनुसार रानी सुनयना धर्माचरण में पति की पूर्णतः सहभागी, लोक व्यवहार को निपुणता से निभाने वाली एवं शोभन पुत्री सीता के प्रति समधिक प्रेमपूर्ण चित्रित हुई है।

(1) वात्सलयमयी :- रानी सुनयना का वात्सल्यमयी होना, उनके चरित्र की सर्वप्रमुख विशेषता है। मनभावन पुत्री की मनोहर बाल क्रीड़ाओं से आह्लादित सुनयना का वात्सल्य उमड़ा आता और सीता उस मधुर ममता से सराबोर हो जाती। यथा :-

विलोक्य चन्द्रंवियति प्रभोज्जवलं विलोभनीयं ननु पर्वसंस्थितम्।
भृशं ययाचे जननीं विलक्षितां नवीनखेलाश्रितबालतर्कनैः।।[217]

आकाश में प्रभाधवल, रमणयी पूर्णिमा के चाँद को देखकर, चन्द्रयाचना रूपी नवीन क्रीड़ा से सम्बद्ध बालसुलभ तर्कों द्वारा सीता हठपूर्वक माँ सुनयना से बार-बार चाँद माँगा करती।

इसी प्रकार रत्नों से देदीप्यमान राजमहल की अँगनाई में, सखीजनों के सुखपूर्वक सो जाने पर भी, जागती हुई पुत्री सीता के द्वारा हठपूर्वक जागने पर, वात्सल्यमयी माँ सुनयना पुत्री के कहानी सुनाने के आग्रह को अतिशय प्रीति एवं आनन्दपूर्वक पूर्ण किया करती। यथा द्रष्टव्य :-

गृहाङ्गणे रत्नचिरत्नभासुरो सुहज्जने सुप्तिसुखं गतेऽपि सा।
क्वचिद्धठोत्थापितजन्मदांकथाग्रहैकसौख्यां विदधेस्नुतसतनीम्।।[218]

पुत्री जानकी के लिए राजा जनक के द्वारा उत्पन्न किये गये मनोहर भय से प्यारी पुत्री रक्षा करने के लिए, किसी भी प्रकार समर्थ नहीं हुई तब सुनयना ने ही जानकी को उभारा। यथा द्रष्टव्य :-

विलोक्य बालोचितवल्गुसाध्वसं निजाङ्कजाया नृपतिर्विलक्षितः।
रूषा महिष्याऽपि निकामजल्पितस्सान्त्वनं सोऽभिननन्दमैथिलीम्।।[219]

कपोलो पर ढलकते अश्रु एवं अपनी कन्या के बालोचित मनोहर भय को देखकर, राजरानी सुनयना द्वारा रोषपूर्वक खरी-खोटी सुनाने पर, राजा जनक ने सान्त्वना देते हुए जानकी को दुलार किया।

विवाह के अवसर पर स्नेहिल मां गीतों के अन्तराल गुँथे हुए भावों को सुनकर भावविह्वल हो गई तथा सीता के शैशवकालीन सुखों का स्मरण कर माँ के नेत्राम्बुजों से अश्रुधारा बरसने लगी। यथा:-

निशम्य भावाञ्छ्रितगीतगर्भान् स्मृताङ्गजाशैशवकेलिसौख्यौ।
विमुक्तनेत्राम्बुजवारिधारौ विषेदतुर्विह्वलदम्पती तौ।।[220]

(2) लोकव्यवहार में कुशल :- रानी सुनयना सम्पूर्ण लोकाचार, लोकव्यवहार को जानने वाली है। प्यारी पुत्री को मनभावन पति मिलने पर, हर्ष से उमंगित सुनयना ने तत्परतापूर्वक नीलमेघ के समान साँवले जामाता का एवं हिमधवल छोटे भाई लक्ष्मण का अभिनन्दन किया। यथा :-

ततश्च सीरध्वजपट्टराज्ञी सहैव वृद्धाभिरूपेतपार्श्वा।
ननन्द जामातरमबुदाभं सहोदरञ्चापि हिमवदातम्।।[221]

कलश, सूप तथा आँचल के छोर से दूल्हे की परछन करके तथा वात्सल्य भाव प्रवाहित करने वाले नेत्र युगलों से सस्पृह देखती, रानी सुनयना प्रेम वर्षा करती हुई आगे बढ़ी। यथा :-

घटेन शूर्पेण पटाञ्चलेन प्रदक्षिणीकृत्य वरन्नु राज्ञी।
वात्सल्यनिस्यन्दिविलोचनाभ्यां निपीय वेश्माभिमुखीबभूव।।[222]

प्राणों से भी प्यारी पुत्री सीता विवाहोपरान्त चली जायेगी, यह विचारकर मातृहृदय विह्वल है किन्तु पुत्री तो धरोहर है, उसे सुपात्र को दान कर देना, शाश्वत लोकपरम्परा है, यह यथार्थबोध भी है। अतएव माता सुनयना समधिक धैर्य के साथ सम्पूर्ण माङ्गलिक कृत्य पूर्ण विधि विधान के साथ सम्पन्न करती है। यथा :-

अथोपपन्नेऽखिलमाङ्गलिक्ये विवाह चर्याश्रितकर्मकाण्डे।
समं महिष्या मिथिलापुरीन्द्रः समाययौ सौम्यसुतार्पणाय।।
ततश्च सम्पाद्य तदेव कृत्यं वधूटिकावेषलसत्सुतायाम्।
स कारयामास निजानुरूणं क्रियां महिष्याऽपि शुभामनूनाम्।।[223]

(3) सहयोगिनी :- रानी सुनयना सरल हृदया है, जो धर्म, दान, तप, परोपकरा में पति की सदैव सहभागी रही। शुभसंकल्पों, मङ्गल कार्यों में रानी सुनयना का श्लाघनीय सहयोग रहता। धर्माचरण एवं माङ्गलिक कार्य में राजा जनक को उनका परामर्श, मन्त्रणा, सहयोग अपेक्षित रहता। यथा द्रष्टव्य :-

अथागते मङ्गललग्नकाले निजाङ्गजास्वामिकुलप्रयाणम्।
व्यचिन्तयद्भूमिपतिर्महिष्या सहैव सम्मन्त्र्य कुलानुरूपम्।।[224]

मङ्गलमयी लग्नवेला आने पर महाराज जनक ने राजरानी सुनयना से मन्त्रणा करके, कुल के अनुरूप, अपनी पुत्री को ससुराल भेजने पर विचार किया।

सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान, निष्णात विदेहराज जनक सुनयना से परामर्श लेकर कार्य सम्पादित करते हैं, यह रानी सुनयना के चारित्रिक उत्कर्ष को ही उजागर करते हैं।

महाकाव्य में रानी सुनयना सदाचारिणी पत्नी, ममतामयी माँ एवं कर्तव्यनिष्ठ राजमहिषी के रूप में चित्रित हुई हैं।

दशरथ

जानकीजीवनम्' के चरित-नायक राम के पिता राजा दशरथ का वर्णन महाकाव्य के चतुर्थ एवं दशम् सर्ग में ही प्राप्त होता है। यहाँ उनके व्यक्तित्व का परिचय हमें निम्न बिन्दुओं के रूप में उपलब्ध हो जाता है-

(1) प्रेमपूर्ण पिता :- राजा दशरथ अपने पुत्रों से बहुत अधिक स्नेह किया करते। राम उनके सर्वाधिक प्रिय रहे, जिन्हें वे अपनी दृष्टि से ओझल नहीं होने देते। मुनि विश्वामित्र जब यज्ञ की रक्षा हेतु राम और लक्ष्मण को लेने के लिए आये तो प्रेमाकुल दशरथ व्यथित हो उठे तथा प्राणातिप्रिय पुत्रों राम के बिना क्षण भी जीवित नहीं रह सकते। यथा:-

तत्राप्ययं सुतवरो मम रामचन्द्रः
प्राणाधिकोऽस्त्यखिल जीवितनिर्विशेषः।
चैतन्यमेव वपुषां श्लथनेत्रदीप्तिः
रामान्तमेव कुशलं भुवि मेऽपि मान्यम्।।
प्राणैर्विना दशरथीभवितुं न शक्तो
दृष्टिं विना दृगुभयं ननु मोघजन्म।
किं वा करोमि तदहं वितथं न भाष
रामं विना क्षणमपि श्वसितुं न शक्यम्।।[225]

विश्वामित्र के साथ राम गमन का विचार करके ही राजा दशरथ की दशा अत्यन्त दयनीय हो गई और चित्रलिखित प्रवञ्चित व्यक्ति की भाँति वे कुछ भी बोलने में समर्थ नहीं हो सके।[226]

पुत्रों के समान रूप, गुण सम्पन्न अतिशय चारू चरित्र वाली कन्याएँ प्राप्त हुई हैं तथा पुत्रों के विवाह निश्चत होने का समाचार सुनकर पिता दशरथ अत्यधिक पुलकित हो गये। उनके आनंद का पारावार नहीं रहा। यथा -

अथाधिपः पङ्क्तिरथोऽधिगत्य प्रवृत्तिमाह्लादकरीमुपेताम्।
तनूजसौभाग्यनिवेदयित्रीं बभूव सम्मोदविसंष्ठुलाङ्ग।।

मुदो न मान्त्ये हृदि भूमिपस्यास्ततताङ्गता नेत्रकुशेशयाभ्याम्।
प्रसुस्त्रुवुर्मौक्तिकमञ्जुभासो गलावरोधानपि सन्दधाना:।।[227]

राम के राज्याभिषेक हेतु आयोजित उत्सव के अवसर पर राजा दशरथ को अचानक ही कैकयी के कोप-भवन में पहुँचने की सूचना मिलती है तो वे उसे मनाने के लिए पहुँचते हैं किन्तु कैकयी जैसे ही राम के लिए चौदह वर्ष के वनवास का वर माँगती है तो राजा दशरथ संज्ञाविहीन होकर गिर पड़ते हैं और कैकयी से प्रार्थना करते हैं कि राम से दूर कर देने वाला ऐसा वर न माँगे-

निशम्यैव वाचोऽपतद्भूमितल्पे विसंज्ञो नृपश्छिन्नमूलद्रुकल्प:।
चिरस्थायिनीं तामतिक्रम्य मूर्च्छां सनेत्राश्रुपातं स्खलद्वागुवाच।।[228]

दशरथ की करूणाजनक स्थिति स्वयं ही राम के प्रति अतिशय प्रेम की परिचायक है। यथा द्रष्टव्य-

सुतस्ते भवेत्स्थापितो यौवराज्ये करष्ये सुखं राज्यतृष्णा न रामे।
द्वितीयं परं जीवितं प्राणमूलं न शक्नोमि समं पृथक्कर्तुमिष्टम्।।
विजानन्ति देवा: प्रजा: मित्रवर्गा रहस्यं स्फुटन्तेऽपि सुष्ठु प्रियेऽस्ति।
न रामं बिना जीवनाय क्षमेऽहं क्षणञ्चापि का वा कथा हायनानाम्।।[229]

दशरथ प्राणों के निष्यन्दभूत तथा अपने दूसरे जीवन के समान प्रिय राम को किसी भी प्रकार दूर करने में सक्षम नहीं हैं राम के विरह में अतीव प्रेममय पिता एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकते, फिर चौदह वर्षों की बात ही क्या ? तत्काल ही दशरथ ऐसा वर माँगने वाली कैकयी की मँडराती हुई मृत्यु मानकर भूमि पर मूर्च्छित होकर गिर पड़े। यथा-

समासन्नमृत्युव्यथां मन्यमानो नृप: कैकयीं कातरीभूय भूमौ।
पपाताश्रुसिक्तो व्यथाशून्यदृष्टि: फणीवाङ्गनिर्मोककल्पप्रसक्त:।।[230]

और अब राम पिता को प्रतिज्ञाबद्ध जानकर अनुकूल आचरण करते हुए दशरथ की कीर्ति रक्षा हेतु वनवास चले जाते हैं तो राजा दशरथ मृत्यु शय्या पर अंतिम साँसे लेने लगते हैं।

अयोध्यापतिश्चापि नि:स्नेहदीपो विलुप्यच्छिखोऽप्राणवर्तिर्बभूव।।[231]

(2) पत्नी में आसक्त :- महाकाव्य में राजा दशरथ अपनी पत्नी के प्रति अत्यन्त कोमल व्यवहार करने वाले चित्रित किए गए हैं। जब कैकयी के अचानक कोप भवन में पहुँचने का समाचार मिलता है तो स्वयं राजा दशरथ शीघ्र ही मानिनी के मान की रक्षा हेतु पहुँच जाते हैं-

अनुश्रुत्य कर्णाद्धि कर्णं सरन्तीं प्रवृत्तिं नृपो मानिनीमानरक्षी।
द्रुतं कैकयीकोपहर्म्यं ससाद प्रभुर्भूभृतामिन्द्रसख्योपपन्न:।।
ददर्श प्रियामश्रुसम्पातसिक्तां प्रभतेन्दुबिम्बाननां भूमिशय्याम्।
गलद्धारताटङ्कमञ्जीरभूषां च्यवन्नूपुरां क्षिप्तकेयूरयुग्माम्।।[232]

राजा दशरथ कोमलतापूर्वक कैकयी से इस प्रकार के व्यवहार का कारण पूछते हैं, हे देवी! रोष मत करो। आखिर किससे रूठी हो? मुझसे? जो तुम्हारे मुख रूपी कमल का मधुरकरभूत हैं? आखिर क्यों रूठी हो? उठो न!! सुन्दर परिधान एवं आभूषण धारण कर लो। तत्काल पूर्ण करूँगा। यथा द्रष्टव्य:-

अलंराज्ञि ! रोषेण केनासि रुष्टा मया? स्वानाम्भोजभृङ्गेण? कस्मात्?
समुत्तिष्ठ सन्धत्स्व वासोऽवतंसं वदाऽकाङ्क्षितं देवि! तूर्णं करिष्ये।।
यदि क्लेशहेतुर्भवेदन्य एव तमप्याशु सन्धेहि मा गाः शुचस्त्वम्।
त्वदुद्वेजकं धर्षितुं सुक्षमोऽहं कथा का नराणां सुरं दैत्यसंघम्।।[233]

कैकयी द्वारा अपने आप को उपेक्षित किए जाने की बात कहने से पीड़ित होकर राजा दशरथ कहते हैं कि देवि! तुम अपनी इच्छा को व्यक्त करो मैं प्राणों का पण लगाकर भी उसे पूर्ण करूँगा। रघुवंशियों के लिए वचनबद्धता की प्रसिद्धि समस्त संसार में है और मैं राम की शपथ लेकर तुम्हारी इच्छा पूर्ण करने का वचन देता हूँ-

अथाद्यैव ते कामनां पूरयिष्ये पणीकृत्य मञ्जीवितञ्चापि देवि!
प्रमाणं तदेवास्तु मे त्वत्परस्य स्वमाकाङ्क्षितं प्रस्फुटं ब्रूहि राज्ञि।।
रघूणांकुले सत्यसन्धोऽस्मि जातो गरीयो वचो जीवितेभ्योऽपि येषाम्।
न मे रामचन्द्रात्प्रियं किञ्चिदन्यच्छपाम्यद्य तेनापि वाक्ये स्थितोऽस्मि।।
निरुद्धो भवेद्यौवराज्याभिषेकस्त्वदाकांक्षया कैकयि! प्राणभूते।
भवेद्वाञ्छितं रत्नमाणिक्यभारं त्वदिच्छानुकूलं किमप्यन्नदेव!![234]

(3) समादरशील :- राजा दशरथ अतिथि एवं गुरुजनों के प्रति अत्यन्त विनीत हैं एवं उनकी आज्ञा पालन हेतु निरन्तर तत्पर रहते हैं। जब महर्षि विश्वामित्र राम और लक्ष्मण को लेने के लिए राजा के पास पहुँचते हैं तो ऋषि के आगमन को सुनकर स्वयं पूजन सामग्री सहित राजा शीघ्र ही आगे बढ़ते हैं और सम्मानपूर्वक वन्दना करते हैं:-

प्रक्षाल्य सादरमुभौ चरणौ गरिम्णा
तस्मै समर्प्य चरणोदकविष्टरञ्च।
देवोचितं सुमधुपर्कमपि प्रयच्छन्
सद्योऽभिवाद्य निजगाद विनीतवाचम्।।[235]

राजा दशरथ गुरु कृपा को ही अपनी सभी समृद्धियों का मूल कारण मानते हैं। यथा द्रष्टव्य :-

देवप्ररूढमहिमन् विनमद्दयालो
ज्ञातम्मया तदखिलं भवदेकमूलम्।
यावद्गुणा वनभुवां प्रभवेत् समृद्धि-
र्नासौ किमस्ति विभुतैव वसन्तकस्य।।[236]

राजा दशरथ आदरणीय विश्वामित्र के प्रिय कार्य को सम्पन्न करने के लिए लालायित है। यथा द्रष्टव्य:-

सोऽहं समर्च्यचरणाम्बुजचञ्चरीकः
कुर्यामहो किमु सदौपयिकं हितन्ते।
प्राणैरपि प्रयतनं प्रविधातुमीहे
सत्याश्रयैकरुचिको भगवन् किमन्यत्।।[237]

पूज्यापाद! प्राणों के मूल्य पर भी आपके प्रिय कार्य को सम्पन्न करने का प्रयत्न करूँगा। दशरथ की देवताओं, गुरुजनों तथा पितरों में लीन रहने वाली सेवा वृत्ति दाक्षिण्यभाव का सुस्पष्ट अंकन जानकीजीवनम् में किया गया है। उनकी अतिथिजनों की प्रणयपारण-स्वरूपिणी प्रीति, निष्ठा श्लाघनीय है। यथा :-

दाक्षिण्यभावललिता मम चित्तवृत्ति-
र्देवे गुरौ पितरि यत् कलितावकाशा।
यद्वाऽतिथिप्रणयपारणमस्ति हार्द
भृत्यायितस्य मम सेवनदर्पितस्य।।[238]

(4) वीर :- दशरथ का पराक्रम देवराज इन्द्र द्वारा प्रशंसित है। उनके प्रवृद्ध शौर्य के कारण ही अयोध्या का राज्य विच्छिन्न शत्रुओं वाला रहा।[239] चतुर्थ सर्ग में स्वयं विश्वामित्र राजा दशरथ की वीरता के वारे में कह रहे हैं, हे राजन! हे अपरिमेय भुजविक्रम! हाथ में धनुष लेकर आपके प्रशासन करते भला प्राणियों को क्या भय हो सकता? यथा-

राजन्नमेयभुजविक्रम! चापपाणौ
धात्रीं प्रशासति भयं त्वयि जन्मिनां किम्।।[240]

राजा दशरथ की वीरता का लेहा देवगणों ने भी माना। देवासुर संग्राम में देवताओं ने दशरथ की सराहना की, उन्हीं के अद्‌भुत पराक्रम के कारण देवगण जीत गये तथा इस विजय से मुदित मन इन्द्र ने अपना अर्धासन दशरथ को प्रदान किया। यथा-

ददावासनं देवराजोऽपि मह्यं जयानन्तरं शौर्यसाह्यं विलोक्य।
न वा मर्त्यलोके न वा देवलोकेऽपरं काङ्क्षितं सन्तरं विद्यते मे।।[241]

(5) धर्मपरायण राजा :- राघवकुलसूर्य दशरथ के शासन में दिग्दिगन्तों में निरन्तर ही अक्षुण्ण सुख-समृद्धि व्याप्त हुई। उनके शासनकाल में अयोध्यापुरी में कभी भी दुख, अकालमृत्यु, महापुरुषों का संकट, उपालम्भ, लोकनिन्दा का भय अथवा धनापहरण नहीं दिखाई पड़ता था। यह उनके शोभन राज्यनेतृत्व का ही सुखद परिणाम था। यथा :-

दुःखं न जातु ददृशे पुरि नापमृत्यु-
र्नैवात्ययोऽपि महतां क्वनीयता नी।
कौलीनभीतिरथवा द्रविणापहारो
राज्यं प्रशासति नृपे त्वजनन्दनेऽस्मिन्।।[242]

राजा दशरथ का एकमेव लक्ष्य प्रजारक्षण ही था। सतत दान, परोपकार, धर्माचरणों के द्वारा पुत्रवत् अपनी प्रजा का पालन किया करते। जो उनके धर्म परायण राजा होने को परिलक्षित करता है। यथा -

गतं जीवनं चारुचर्याभिरेव प्रजारक्षणैर्दानधर्मक्रियाभिः।
न मे पुत्रलाभात्किमप्यन्यदिष्टं पुराऽऽसीन्न वा वर्तते नापि भावि।।[243]

(6) विवेकवान :- दशरथ गुरुओं के निरन्तर पादसेवन से प्राप्त नीतिशास्त्र सम्मत ज्ञान एवं सदुपदेशों से युक्त है। दर्पण में हित-श्वेत केशों को देखकर, उन्हें तुरन्त अपने कर्त्तव्य का बोध हो जाता है। यथा -

मृतं संविलोक्यापि नो तर्कतेऽद्धा जनो यत्स्वयं सोऽपि मृत्युग्रहेऽस्ति।
निजं सुस्थिरं सर्वतन्त्रस्वतन्त्रं विजानाति जीवः कियच्चित्रमेतत्।।
कृपाजागदीशीयमाभाति यन्मे हितं प्रस्तुतं सत्वरं दर्पणेन।
इदानीं न कार्यो विलम्बो न तर्को मया चिन्तनीयं ध्रुवं वर्तमानम्।।[244]

अगर व्यक्ति को मृत देखकर भी कोई व्यक्ति यह नहीं सोचता कि वह स्वयं भी मृत्यु की पकड़ में है। प्राणी स्वयं को सुस्थिर एवं स्वतन्त्र ही समझता है। कितना विचित्र है यह!! यह तो परमेश्वर की कृपा ही प्रतीत हो रही है जो दर्पण ने मुझे अपना कर्तव्य बोध करा दिया। अब मुझे विलम्ब नहीं करना चाहिये, शीघ्र ही अपना वर्तमानकालिक कर्तव्य पूर्ण कर देना चाहिए। समधिक विवेक के साथ वे अपना उत्तराधिकारी राम को चुनते हैं। यथा द्रष्टव्य :-

अयं राज्यभारोऽधुनाऽऽरोपणीयो दृढस्कन्धयो रामचन्द्रस्य शीघ्रम्।
स एवास्ति धर्मेध पुत्रक्रमेण प्रजाऽऽकाङ्क्षितेनापि योग्यो महिम्नः।।[245]

साम्राज्य का भार मुझे शीघ्र ही रामचन्द्र के सुदृढ़ कन्धों पर रख देना चाहिए। धर्म की दृष्टि से, पुत्रों की ज्येष्ठता की दृष्टि से तथा प्रजावर्ग की आकांक्षा की दृष्टि से भी वही इस गरिमा के योग्य हैं। अयोध्या एवं प्रजाजनों को सुरक्षित हाथों में सौंपना प्रत्येक श्रेष्ठ राजा का पुनीत कर्तव्य होता है। राम का उत्तराधिकारी के रूप में चयन, दशरथ का सर्वथा विवेकानुप्राणित निर्णय है। यथा द्रष्टव्य:-

प्रजारञ्जने साधु रामः क्षमोऽस्ति स्वभावेन शौर्येण सोदर्यसक्तः।
प्रशासत्यहो रामभद्रे रघूणां भवेदक्षया कीर्तिरित्येव मन्ये।।[246]

राम, प्रजाओं के अनुरञ्जन में अच्छी तरह समर्थ हैं। स्वभाव एवं सामर्थ्य-दोनों ही दृष्टियों से वह अपने भाइयों में अनुरक्त हैं। निस्संदेह राम के शासन करते, रघुवंशियों की कीर्ति अक्षुण्ण बनी रहेगी, मैं यही अनुभव करता हूँ।

दशरथ उदार हृदय, पुत्रों के लिये अतिशय प्रेममय, अपनी ही प्रतिज्ञा में आबद्ध कैकेयी के हठ के समक्ष विवश, धर्मपरायण नृपति के रूप में महाकाव्य में निरूपित किये गये हैं।

कौशल्या

लोकाभिराम राम की जननी शीलगुण समन्वित पुनीता नारी है। जिनका अपने पुत्र के लिए ममत्व अथाह है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में निश्छल स्नेह की साकार मूर्ति के रूप में कौशल्या माता का चित्रण हुआ है। विश्वामित्र के साथ रामगमन को सुनकर माता पुत्र प्रेमवश मूर्च्छित हो जाती है। यथा -

धात्र्यस्तु वत्सलतया भुवि सम्मुमूर्च्छः।[247]

पुत्र विवाह को सुनकर माता कौशल्या का स्नेह छलका जा रहा है, वह तत्क्षण ही द्वार पर दौड़ जाती है। यथा -

श्रुत्वा प्रियजनैर्वृत्तं हृदयानन्दवर्धनम्।
कौशल्यादिमहिष्यस्ता आगता गृहतो बहिः।।
दृष्ट्वा स्तनन्धयान् वत्सान् प्रोषितान् प्रह्वताङ्गताः।
सौरभैय्य इवातस्थुर्महिष्यो हर्षविह्वलाः।।[248]

हृदयानन्द को संवर्धित करने वाले विवाह के मङ्गल समाचार को प्रियजनों से सुनकर कौशल्या प्रभूति रानियाँ द्वार पर आईं। बिछड़े हुए दूध पीते वत्सों को देखकर विह्वल हो उठने वाली धेनुओं के समान माता कौशल्या हर्ष विह्वल हुई जा रही थीं। स्नेहिल माता कौशल्या से भाव-विभोर होकर, नववधूओं ने आगे बढ़कर मांगलिक वध्वाचार किया। यथा :-

श्रुत्वा गुरुजनाज्ञप्तिं पट्टराज्ञी शुचिव्रता।
अग्रे ससार कौशल्या नयमाङ्गल्यशंसिनी।।
प्रथमं दीपकव्रातैरानुपूर्व्यांऽभिनन्दनम्।
वधूनां किल सर्वासां विदधे स्मितमण्डिता।।[249]

मङ्गलाचार करने वाली माता कौशल्या के हृदय का प्रेम छलका जा रहा है। नववधूओं का द्वीपमालाओं से अभिनन्दन करती माता का वात्सल्य हर्ष, पुलक, आशीर्वाद के रूप में सिमट कर पुत्र एवं पुत्रवधुओं पर बरस रहा है।

सलोने पौत्रों के मनोहर मुखमण्डल को देखकर तो राघव की माता कौशल्या की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं रही। यथाः–

रुचिर पौत्रमुखे विधुसन्निभे समवलोक्य मनोरथवर्धिताः।
ननृतुरेव महोत्सवमेदुरा भरतलक्ष्मणराघवमातरः।।[250]

इस प्रकार कह सकते है कि माता कौशल्या वात्सल्य की जीवन्त प्रतिमा है, जिनके हृदय में निश्छल स्नेह का सागर हिलोरे लेता है।

कैकयी

उदार, वात्यल्यमयी होती हुई भी मन्थरा द्वारा दुष्प्रेरित होकर कठोर, निर्दय आचरण करने वाली, अपने ही सौभाग्य सूर्य को अस्त करने वाली पाषाण हृदय के रूप में कैकयी का चित्रण महाकाव्य में प्राप्त होता है। कैकयी की चारित्रिक विशेषताओं का विवरण प्रस्तुत है :–

(1) मानिनी :– कैकयी राजा दशरथ की प्रीति की विशेष पात्र रही। वे कौशल्या एवं सुमित्रा की अपेक्षा उन्हें अधिक प्रेम करते रहे। पति से प्राप्त पूर्ण प्रेम के कारण वह मानिनी प्रकृति की थी। स्वयं दशरथ कैकयी के चारित्रिक गुणों का कथन कह रहे हैं यथा–

परं भावुका कम्रधीः कोमलात्मा परं मानिनी कैकयी मत्प्रियासु।
तथाप्यात्मजाताधिकं निर्विकारं मयाऽऽलोकितं प्रेम रामे तदीयम्।।[251]

मेरी पत्नियों में कैकयी सर्वाधीन मानिनी, कोमलहृदय, सरल बुद्धिवाली तथा भावुक–प्रकृति की है। राम के प्रीति उसका अपने पुत्र भरत से अधिक, विकार रहित प्रेम मैंने देखा है।

पति पर पूर्ण समर्पित, पुत्रों के प्रति ममतामयी कैकयी के मान का अवसर वहाँ उपस्थित हो जाता है, जब दशरथ कैकयी से बिना मन्त्रणा किये राम का राज्याभिषेक घोषित कर देते हैं। यथा :–

विना मन्मतै राजकार्याणि भूपः स्वतन्त्राण्यपि प्रीतिमान्नो चकार।
विधूयाधुना प्रेष्ठभार्यामिदानीं तनोत्येकलोयौवराज्याभिषेकम्??[252]

जिन राजकार्यो में मेरी मन्त्रणायें कतई अपेक्षित नहीं थी, उन्हें भी मेरे प्रति अनुराग होने के कारण, भूपति ने कभी विना मुझसे पूछे नहीं किया। सर्वाधिक प्रिय लगने वाली अपनी उसी भार्या को तिरस्कृत करके आज वह अकेले ही अपने मन से राम का यौवराज्याभिषेक सम्पन्न कर रहे हैं? इसी कारण मानिनी कैकयी की रोषाग्नि में सभी की खुशियाँ झुलसने वाली है। यथा –

सहे सर्वमेव प्रभो! नावमानं छलं वञ्जनं नापि कूटप्रयोगम्।
अहं कैकयी स्वप्नसौधं समेषां धराशायिनं तत्करिष्ये क्षणेन।।[253]

हे प्रभो! मैं सब कुछ सह सकती हूँ परन्तु अपनी अवमानना, छल, वञ्चना तथा षड्यन्त्र को क्षमा नहीं कर सकती। मेरा भी नाम कैकयी है, मैं सब लोगों के स्वप्नसौधों को क्षण भर में

धराशायी कर दूँगी। प्रवृद्ध मान वाली कैकयी कोप भवन में जाने का निर्णय ले लेती एवं अपनी कोपाग्नि में स्वयं के ही सौभाग्य को भेंट चढ़ा देती है। यथा –

गमिष्याम्यहं मन्थरे! कोपगेहं मया चिन्तितं भाविकृत्य यदस्ति।
त्वमप्यद्य मे पश्य रूपप्रभावं नृपप्रेयसीत्वं गतं वर्तते वा।
इतीवाशु सम्मन्त्र्य राज्ञी विषण्णा विहायान्नतोयाभिषेकावतंसान्।
विरूपा स्त्रवन्नेत्रसन्तप्तनीरा व्यथोच्छूनदृष्टिर्गता कोपहर्म्यम्।।[254]

(2) स्नेहमयी :- कैकयी स्वयं ही राम के प्रति अपने प्रकृष्ट प्रेम का कथन करती हुई, महाकाव्य में उपनिबद्ध की गई है। यथा –

न किं रामभद्रे ममास्ति प्रगाढं परं प्रेम पूतं दृढं निर्विकारम्?
अहं प्रत्यवायोन्मुखी नाभविष्यं तदीयाभिषेको यदि ख्यापितः स्यात्।।[255]

क्या रामभ्रद के प्रति मेरा अत्यन्त प्रगाढ़, अतिशय पवित्र, विकार–रहित, सुदृढ़ प्रेम नहीं है? यदि उनके राज्याभिषेक का समाचार महाराज मुझे बताते तो निश्चय ही मैं उसमें बाधक न बनती!!

यदीयाननेन्दुं चकोरीव नित्यं निपीयैव मे धन्यमासीत्प्रसूत्वम्।
तमेवात्मजं जीवितं जीवितानां कथं नाभिषिक्तं मुदाऽलोकयिष्यम्।।[256]

जिस पुत्र राम के चन्द्रमुख को चकोरी की तरह निरन्तर निहारती हुई, मैं अपने मातृत्व को धन्य समझती थी। प्राणों के भी प्राण उसी सपूत राम को युवराज के पद पर अभिषिक्त होता हुआ, भला मैं प्रसन्नतापूर्वक कैसे न देख पाती? अर्थात् अवश्य ही देख पाती। कैकयी के ये उद्‌गार उनके राम के प्रति अतीव स्नेह के ही परिचायक हैं।

लव–कुश के मनोहर मुखमण्डल को निहारने के लिए अत्यन्त उत्कण्ठित रामचन्द्र के मनोभावों को माता कैकयी तुरन्त ही पहचान जाती है तथा राम की इस मनोरथ को पूर्ण भी करती है। यथा–

अथ रघूत्तमगाध्विभाविनी ह्यवयरं समवाप्य च कैकयी।
चरणसंवरणाय समागतं स्फुटमुवाच मुदा नतराघवम्।।
अयि नरेन्द्र! रघूत्तम! नन्दन! कथमिव त्रपसे किल राघव!
विधुमुखी यमजौ रघुवंशिनी ननु विलोकय पङ्कजलोचनौ।।[257]

महाराज! रघूत्तम! राघव बेटा! तुम इतना लजा क्यों रहे हो? पंकज लोचन, चन्द्रमुख इन जुड़वे रघुवंशियों को जरा देखो तो सही! इतना कहकर माता कैकयी ने उन सुकुमारों को राम की गोद में बारी–बारी से दिया। यह कैकयी की स्नेहमयी प्रकृति को ही उजागर करता है।

(3) चालाक :- अपने पर पूर्ण आसक्त दशरथ की दुर्बलता को भली प्रकार जानने वाली, अपनी बात को चालाकी से मनवाने वाली स्त्री के रूप में कैकयी को महाकाव्य में रूपायित किया गया है। यथा द्रष्टव्य:-

व्यलीकोपचारैरलं कोसलेश प्रभो! नाहमस्मि प्रिया बल्लभाऽसौ।
गतान्येव मे तानि दीप्यहिनानि मदायत्तमासीद्यदा मानसं ते।।[258]

स्वामी! कोसलेन्द्र! निरर्थक झूठे उपचारों से क्या लाभ? अब मैं आपकी पहले जैसी प्रेयसी वल्लभ नहीं रही! मेरे सौभाग्य के दिन अब बीत चले, जब आपका मन एकमात्र मेरे अधीन था।

रानी कैकयी का कौशल देखिये, अपनी दुष्प्राप्य बात को मनवाने के लिए वे राजा दशरथ को किस चालाकी से तैयार कर रही है। यथा -

अथाद्यैव ते कामनां पूरयिष्ये पणीकृत्य मज्जीवितञ्चापि देवि!
प्रमाणं तदेवास्तु मे त्वत्परस्य स्वमाकाङ्क्षितं प्रस्फुटं ब्रूहि राज्ञि!![259]

हे देवि! अपने प्राणों को भी गिरवी रखकर मैं तुम्हारी इच्छा आज ही पूर्ण करूँगा। मैं तुम्हें कितना मानता हूँ, इसका प्रमाण तुम्हारी आकाङ्क्षा की पूर्ति ही बनेगी। हे रानी! अपने मन की बात निःसंकोच कहो।

रानी कैकयी अपने मनोरथ को अव्यक्त रख रही है क्योंकि वह जानती है कि उनकी आकाङ्क्षा इतनी सहजता से पूर्ण नहीं की जा सकेगी। अन्ततः कैकयी ने दशरथ को इतना उत्प्रेरित कर दिया कि वे प्राणों से भी प्रिय राम की शपथ लेकर प्रतिज्ञाबद्ध हो जाते हैं। यथा द्रष्टव्य :-

रघूणां कुले सत्यसन्धोऽस्मि जातो गरीयो वचो जीवितेभ्योऽपि येषाम्।
न मे रामचन्द्रात्प्रियं किञ्चिदन्यच्छपाम्यद्य तेनापि वाक्ये स्थितोऽस्मि।।।[260]

जिनके लिए अपना वचन प्राणों से भी अधिक महनीय रहा है, सत्यव्रती मैं ऐसे ही रघुवंशियों के कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। रामचन्द्र से अधिक प्रिय इस भूतल में मेरे लिए कुछ भी नहीं है। आज मैं इस पुत्र की ही शपथ लेता हूँ, मैं अपनी प्रतिज्ञा पर अटल हूँ।

दशरथ के उस दुर्धर्ष प्रतिज्ञाव्रत को देखकर तथा मन ही मन उनकी सत्यनिष्ठा का अनुभव कर, विजयी मुस्कान के साथ कैकयी उठ बैठी[261] तथा अपने मनोऽभिलषित वरों को कोशलेन्द्र के समक्ष प्रस्तुत किया। यथा-

वचोवद्धमालोक्य भूपं प्रहृष्टं जमादरशु राज्ञी प्रभो! कोसलेन्द्र!
अनेनैव राज्याभिषेकोत्सवेन सुतः स्थाप्यताम्मे वरोऽयं स एकः!![262]

प्रतिज्ञावद्ध राजा को देखकर साम्राज्ञी कैकयी ने तत्काल कहा- स्वामी! कोशलेन्द्र! राज्याभिषेक के इसी उत्सव से मेरे पुत्र भरत को युवराज पद पर स्थापित करें। यह मेरा प्रथम वर है।

वसानस्तपोवल्कलं बद्धकेशः उदासीनवृत्तिश्च रामोवनान्ते।
दशावंद तुरीयाधिकं यावदास्तामयोध्यातिदूरं वरोऽयं द्वितीयः।।[263]

तपस्योचित वल्कल वस्त्रों को पहने हुए, जटाजूट बाँधे हुए तथा उदासीन वृत्ति वाले राम चौदह वर्षों तक, अयोध्या से अत्यन्त दूर किसी वनखण्ड में निवास करे, यह मेरा दूसरा वर है।

यहाँ कैकयी की वाक्प्रवञ्चना, बुद्धि कौशल, धूर्तता, चतुराई, चालाकी सभी एक साथ प्रस्फुटित हो रहे हैं।

(4) कटुभाषिणी :- रानी कैकयी ने अपनी अवमानना में झुलसती हुई, मर्मान्तक पीड़ा देने वाले व्यंग्यवचनों एवं कटूक्तियों से राजा दशरथ को आहत कर दिया। यथा-

मृगप्राणपीडां क्व जानाति भिल्ली मृदुस्वादुमां सार्थिनी लोलजिह्वा।
वभाषे स्फुटं कैकयी कोसलेन्द्रम् अलंदेव! वाचां प्रसारैरपार्थैः।।[264]

अत्यन्त स्वादिष्ट मांस खाने के लिए लालायित, चपल जिह्वा वाली भीलनी मृग के प्राणों की पीड़ा भला कहाँ जानती है? कैकयी ने स्पष्टतः कोशलेन्द्र से कहा- महाराज! निरर्थक वचनोद्गारों से क्या लाभ? मुझे जो कुछ अभीष्ट था, आपकी शपथ को प्रमाण मानकर वह मैंने कह दिया। न मेरा अन्य कोई विकल्प है और न ही किन्हीं अन्य कामनाओं की चिन्ता! अब चाहे आप कीर्ति पाने के लिए ऋत की रक्षा करें और चाहे अपकीर्ति पाने के लिए उसे वेगपूर्वक तोड़ डालें। मैं बीच में बाधक नहीं बनूँगी। यथा -

अभीष्टम्मया प्रस्तुत त्वत्प्रमाणं विकल्पो न मे नापि चिन्ताऽपरेषाम्।
ऋतं रक्ष कीर्त्यायकीर्त्यायिदानीं द्रुतं छिन्धि वा नो भवाम्यन्तरायः।।[265]

कैकयी के ऐसे रुक्ष एवं पुरुष वचनों को सुनकर राजा दशरथ मृतप्राय ही हो गये।

(5) हठी : कैकयी नितान्त हठीली नारी है, जिसने अपनी इच्छा को पूर्ण करने के लिये नारी मर्यादा, कुल-गौरव को तिलाञ्जलि दे दी। अपने पति से ही विश्वासघात करने वाली, राम जैसे सुकुमार को वन में भेजने की अपनी बात पर वह अडिग रही। दशरथ उससे बारम्बार आग्रह करते हैं कि वह राम के वनवास के स्थान पर अन्य कुछ भी माँगे तो वे तत्काल पूर्ण करेंगे परन्तु राम को वन भेजें, यह कदापि सम्भव नहीं। यथा-

कृतं किं त्वया कैकयि! प्राणहन्त्र्या न यच्चिन्तनीयं मया स्वप्नकेऽपि।
प्रयुक्तं यदि प्रेयसि! स्फीतनर्म त्वया मच्चिदर्श त्यजेस्तर्हि तूर्णम्।।[266]

प्राणघातिनि कैकयी! यह तूने क्या किया? इस व्यवहार की तो मैंने स्वप्न में भी कल्पना नहीं की थी! प्रेयसि! यदि तुमने जान-बूझकर यह परिहास किया है तो मुझे चैतन्य बनाने के लिए,

शीघ्र ही इसे समाप्त कर दो परन्तु हठीली रानी कैकयी पर दशरथ की इस याचना का कोई प्रभाव नहीं पड़ा और वह अपने हठ पर दृढ़तापूर्वक स्थिर रही।

(6) जानकीजीवनम् महाकाव्य में अपने कठोर व्यवहार से अपने ही स्वामी के प्राणहरण में निमित्त बनी कैकयी पाषाण हृदय निरुपित की गई है। जो पूर्णत: आसक्त पति की दयनीय दशा पर भी करुणा नहीं करती तथा राम जैसे सुकुमार को कैकयी वन के पथ पर भेजने को उद्यत बनी, अपनी ही निर्दयता का परिचय देती है। पुत्र वियोग से विह्वल, वन के दारुण पथ पर प्राणप्रिय सुकोमल राम पग रखेंगे, राम के जीवन के कष्टों से व्यथित बने तथा कुधन कर पाने की विवशता से छटपटाते राजा दशरथ की करुण स्थिति पर हृदयहीन कैकयी को तनिक भी दया नहीं आती। स्वयं दशरथ कैकयी से मूर्च्छावस्था में दया की याचना करते हैं किन्तु पाषाण हृदय कैकयी को पति के अश्रुओं पर, आर्तवचनों पर तथा मरणासन्न अवस्था पर कोई दया नहीं आती। यथा –

यदिस्याद्धवे तेऽणुमात्रं प्रमोहो यदि द्वेषलेशोऽपि पश्चाद्व्यथातः।
प्रजारञ्जने वापि तृष्णा यदि स्याद् ध्रुवं वार्यतां तर्हि पापाङ्कुशोऽहम्।।[267]

इस प्रकार महाकाव्य में उपनिबद्ध कैकयी के चरित्र में मानिनी, स्नेहमयी, चालाक, कटुभाषिणी, हठी तथा निर्दयता का दिग्दर्शन होता है।

विश्वामित्र

ज्ञान एवं तप समन्वित विश्वामित्र शोभन गुणों से अलंकृत समधिक समादृत चरित्र है। वे केवल शास्त्र ज्ञाता ही नहीं, शस्त्र विद्या निष्णात भी है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में विश्वामित्र के चरित्र का चारु प्रस्फुटन हुआ है। विश्वामित्र की चारित्रिक विशेषताओं का वितरण इस प्रकार है :-

(1) तेजस्वी :- भास्कर सरीखे देदीप्यमान विश्वामित्र ज्ञान, तप, संवलित पराक्रमी व्यक्तित्व है। विश्वामित्र दिव्यास्त्रों के प्रयोग में प्रवीण, अप्रतिहत तेज से सम्पन्न तथा विश्वविश्रुत ऊर्ध्व रेता हैं। यथा –

एषोऽस्ति गाधितनयस्स्फुरदूर्ध्वरेता
दिव्यास्त्रयोगकुशलोऽनभिभूततेजाः।।[268]

(2) स्पृहणीय गुरु :- विश्वामित्र के चरित्र की यह महनीय विशिष्टता कि वे उच्च कोटि के गुरु है। उनके सान्निध्य में रहने वाले शिष्य श्रेष्ठ गुणों से सुशोभित होकर महान बन जाते हैं। यथा –

एनं विधाय गुरुगौरवभूरिधाम्ना
प्रीतं प्रभो! तब सुतौ निशितौ भवेताम्।।[269]

राम-लक्ष्मण ने गुरु विश्वामित्र की कृपा से दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्राप्त किया तथा खेल ही खेल में सुबाहु आदि राक्षसों को यमपुरी भेजने में सक्षम हो सके। यथा -

निर्यद्दिनैः कतिपयैरथ राघवौ तौ
दिव्यायुधानि परिगृह्य गुरोः प्रसादात्।।
सम्प्रेष्य चापि दनुजाञ्छिशुलीलयैवं
कीनाशसमन्दिमवापतुरात्मसौख्यम्।।[270]

विश्वामित्र जैसे गुरु को पाकर राम लक्ष्मण के पराक्रम में ही निखार नहीं आया अपितु वेद इतिहास षट्शास्त्र पुराणवार्ता काव्यभेद कामशास्त्र एवं चौसठ कलाओं में भी निपुण हो गये। यथा द्रष्टव्यः-

वेदेतिहासबहुशास्त्रपुराणवृत्तैः
काव्योपभेदरतिशास्त्रकलादिभिश्च।
रात्रौ रघोः परिवृढद्वितयस्य मेधां
विद्योतयन् कुशिकीर्तिधरस्तुतोष।।[271]

(3) स्नेहिल :- विश्वामित्र राम-लक्ष्मण के प्रति अत्यन्त स्नेहिल एवं कृपालु रहे। उनका हृदयस्थ स्नेह, उनके व्यवहार एवं वाणी से स्वतः ही प्रगट हो जाता है। महामुनि विश्वामित्र ने स्नेहलसित वाणी में राम से कहा-

दैवं ह्युपैति रघुवीर! सपक्षभावं
सिद्धं निमन्त्रणसुपत्रिकया तदेतत्।
वत्सो! श्व एव तरणौ सति सम्मुखीने
गन्तास्म ऊर्ध्वनगरीं मिथिलाभिधानाम्।।[272]

मुदितमन विश्वामित्र ने राम से स्नेहिल व्यवहार करते हुए स्नेहपगी बातें कही। यथा-

अपनीय विदधद्रघुवीर कौतुकं मुनिराहस्म सुधाञ्चितं वचः।।[273]

रात्रिवेला में निवासस्थान में लौट आने पर, उपकार-परायण आचार्यश्री विश्वामित्र ने, अगले दिन घटित होने वाले सीता स्वयंवर के बारे में प्रसन्नतापूर्वक बताते हुए, राम को स्नेह प्रदान किया। यथा -

समागतेऽप्यावसथं निशायामाचार्यवर्यः कथमिष्टयोजी।
सिष्णेह रामे कथयन्समोदं श्वोभावि सीतैकविवाहवृत्तम्।।[274]

(4) गुणानुरागी :- विश्वामित्र के चरित्र का यह गुण उन्हें औदात्य प्रदान करता है। लावण्यमयी सीता के गुणों को स्मरण करके ही विश्वामित्र का स्नेह सीता के लिए उमड़ा जा रहा है। यथा -

एवं प्रशंस्य बहुभिर्वचनोपहारै-
लींलामयीं जनकजां स्मृतसौम्यशोभाम्।
पादाब्जपीडनसुखं पुलकानुमेयं
ताभ्यां मुनिस्त्वनुभवन्सहसा निदद्रौ।।[275]

राम-लक्ष्मण अपने उत्तम गुणों के कारण ही विश्वामित्र के प्रीति भाजन बने हुए हैं। राजा जनक द्वारा सर्वाङ्ग सुन्दर कुमारों के बारे में पूछते ही, आह्लादित होते हुए विश्वामित्र ने प्रीतिपूर्वक उनका परिचय दिया। यथा द्रष्टव्य :-

शमेत्य शृणु प्रजापते! रघुवीरौ भुजशौर्यदर्पितो।
निजवंश कुवेलभास्करौ प्रतिभातौ किल रामलक्ष्मणौ।।[276]
कुतुकेन वशीकृताविमौ मिथिला कोशलभूपनन्दनौ।
वसुधेन्द्र! मदेकसङ्गिनौ सुभगौ ह्लादयितुं समागतौ।।[277]

विश्वामित्र के चरित्र की यह विशिष्टता, उनके चरित्र को विशेष गरिमा प्रदान कर देने में सक्षम है।

(5) उपकार-परायण - मुनि विश्वामित्र उदार हृदय है, जिसमें दूसरों की पीड़ा को हर्ष में परिवर्तित कर देने का विशिष्ट गुण है। कमलनयनी पुत्री के अनुरूप वर नहीं मिलने पर, जब विदेहराज अतिशय व्यथित हो गये तब उपकार-परायण विश्वामित्र बोले -

उत्तिष्ठ भो राघव रामभद्र! विपद्यतेन्येष महीमहेन्द्रः।
प्रवर्षणैः किं ज्वलिते हि शस्ये कालोचितञ्चैव विभाति यत्नः।।[278]

हे रघुनन्दन श्रीराम! उठो। निश्चय ही यह महाराजाधिराज जनक विपन्न हो रहे हैं। फसल के झुलस जाने पर अतिशय वृष्टि से क्या लाभ होगा? समय के अनुसार ही प्रयत्न प्रशंसनीय होता है।

उत्थायेमं शिवचापमुग्रं मौर्वीं समारोपय मानवेन्द्र!
समादिशत्येष गुरुस्त्वदीयो विदेहजां ह्लादय तां विदेहम्।।[279]

हे पुरुषश्रेष्ठ! तुम्हारा यह गुरु आदेश दे रहा है। इस दुर्धर्ष शम्भु-चाप को उठा लो, इस पर डोरी चढ़ाकर, विदेहनन्दिनी तथा विदेह को आह्लादित कर दो।

निदेशमाकर्ण्य गुरोश्चिकीर्षुः प्रियं समेषां रघुनन्दनोऽपि।
समुत्थितोऽतर्कितमेव पीठात्तुङ्गाद्रिसानोरिव बालसूर्यः।।[280]

सभी लोगों का प्रिय करने के लिए इच्छुक रघुनन्दन श्रीराम, गुरुदेव का आदेश सुनकर, उत्तुङ्गपर्वत शिखर से बालरवि के समान, ऊँचे आसन से उठ खड़े हुए तथा धनुर्भङ्ग करके शोभन

जानकी एवं जनकराज को आनन्दित किया। मुनि विश्वामित्र की उपकार परायणता के कारण ही नयनों के अश्रु, हृदय की पुलकन में परिवर्तित हो गये। इस प्रकार कह सकते हैं, गुरु विश्वामित्र का चरित्र शोभन गुणों से मण्डित समधिक आदरणीय है।

वशिष्ठ

जानकीजीवनम् महाकाव्य में रघुवंश के कुलगुरू वशिष्ठ का व्यक्तित्व अतिशय प्रभावशाली चित्रित किया गया है। उनके चारित्रिक गुणों का विवेचन प्रस्तुत है, जो उनके व्यक्तित्व को एक गरिमामयी छवि प्रदान करते हैं :-

(1) गुरुता :- वे ज्ञान एवं तपस्या की गुरुता से तेजस्वी तथा उदात्त आचार-विचारों के धनी सात्विक वृत्ति के गुरु हैं, जिन्हें रघुवंश की कीर्ति एवं रघुराज के अभ्युदय एवं लोककल्याण की समधिक चिन्ता है। अपनी तपश्चर्या के प्रभाव से वे भूत, भविष्य एवं वर्तमान को प्रत्यक्ष देख सकते हैं। ऋत एवं सत्य के मर्म को जानने वाले वशिष्ठ सप्तर्षियों में गिने जाते हैं।[281] प्रजापति ब्रह्मा के मानस पुत्र वशिष्ठ उन्हीं के आदेशवश एवं मृत्युलोक के मंगल हेतु धराधाम में सूर्यवंशी नरपतियों के कुलगुरु बने हुए हैं।[282] भागीरथ, मित्रसह, दिलीप, दिग्विजयी रघु तथा देवराज इन्द्र के सखा यशस्वी दशरथ को वशिष्ठ ने अपने तपस्तेज से, लौकिक अभ्युदयों का अधिकारी बनाया।[283]

(2) श्रेष्ठ परामर्शदाता :- गुरु वशिष्ठ रघुवंश के राजाओं को उचित समय पर उपयुक्त परामर्श देकर रघुवंश की कीर्ति एवं राज्य के गौरव को अक्षत बनाये हुए हैं। जब विश्वामित्र राम-लक्ष्मण को यज्ञ के रक्षार्थ लेने आये तब दशरथ राम के प्रति प्रेम के कारण स्वयं को राम से विलग करने में असमर्थ अनुभव कर रहे थे। तत्क्षण वस्तु स्थिति को सम्यक् पहचान कर गुरु वशिष्ठ ने राजा दशरथ को धैर्य धारण करवाते हुए, उपयुक्त परामर्श दिया कि राजन् ये विश्वामित्र तो आपको श्रेष्ठ ऐश्वर्य प्रदान करने के लिए आये हैं। गुरु-गौरव से युक्त प्रभूत ऐश्वर्य से इन्हें श्री मण्डित करके तुम्हारे दोनों पुत्र महान् बन जायेंगे। यथा-

राजन्नलं बहु विजल्प्य मुधा प्रमुह्य
मामाव्यमत्य चिरवाञ्छितभागधेयम्।
नायं प्रयाचितुमिहोपययौ महर्षि -
र्दातुं परार्ध्यविभव पुनरेव तुभ्यम्।।[284]

राम का राज्याभिषेक कर ही दिया जाना चाहिये, ऐसा जनकल्याणकारी परामर्श गुरु वशिष्ठ ने राजा दशरथ को दिया। यथा द्रष्टव्य :-

यथा प्राप्तकालोऽम्बुदो वृष्टिमेति प्रभो! तावकी धर्मबुद्धिस्तथैव।
नकार्योविलम्बोऽनभीष्टश्शुभेऽस्मिन् भवेद्रामराज्यं प्रजासौख्य कारि।।[285]

रमणीय, उदार एवं प्रजा के योग क्षेम की सिद्धि में समर्थ सुखकारी राम का राज्य अब अविलम्ब स्थापित हो जाना चाहिए।

(3) नारी सम्मान के रक्षक :- जानकीजीवनम् महाकाव्य में महर्षि वशिष्ठ के चरित्र का यह गुण समधिक भास्वरता के साथ उकेरा गया है। उन्होंने नारी गौरव की रक्षा हेतु अपने सम्पूर्ण तपोबल, ज्ञान, गाम्भीर्य का उपयोग किया है। यथा :-

प्रदीप्तवैश्वानरवेदिकायां स्थिताऽपि या काञ्चनतामवाप।
तां देववन्द्यामपि मैथिलीं त्वं जानासि सत्यं चरितावलीढाम्!![286]

जिस मैथिली ने धधकती हुई आग की चिता पर आरूढ़ होकर चरित्र शुद्धि एवं तेजिस्वता प्राप्त की, देवताओं द्वारा भी संस्तवन करने योग्य वह पुनीता क्या कलंकित चरित्र वाली हो सकती है?

यन्नेत्र दीप्ताग्निभयाऽभिभूतश्शशाक नो स्प्रष्टुमसौ दशास्य:।
सवपापपश्चात्तपनप्रविद्ध सा जानकी किं चरितै विर्लुप्ता??[287]

जिसके नयनों में पातिव्रत तेज की दहकती अग्निज्वाला के भय से सहमा हुआ महाबली दशानन उसे छू भी नहीं पाया तथा मन ही मन अपने पापों के पश्चात्ताप से निरन्तर बिंधा रहा, वह देवी जानकी चरित्रहीन कैसे हो सकती है?

कुलगुरु वशिष्ठ ने देवी सीता की निष्पापता प्रमाणित करने के लिए समस्त पौरजनों के समक्ष कहा :-

एकोऽहमसयाहिततत्त्वबोध: सीतां विजानामि जगत्प्रवद्याम्।
यश्शङ्कते तच्चरितं प्रपूतं स चापरस्त्वं रजक! प्रमादिन।।[288]

तत्त्वबोध सम्पन्न एक मैं वशिष्ठ हूँ जो देवी सीता को त्रिभुवन-वन्दनीय समझता हूँ! विक्षिप्त रजक! और दूसरे वह तुम हो जो कि वैदेही के सर्वथा पवित्र चरित्र को कलंकित कर रहे हो!

शक्तिर्भवेच्छक्तिमत: प्रमाणं प्रमाणमन्यन्न परन्तु शक्ते:।
स्वयं सृजत्यात्मगतं प्रमाणं ह्यनेहसि प्रार्थितपञ्चतत्त्वम्।।[289]

शक्ति शक्तिमान् का प्रमाण बन सकती है परन्तु स्वयं शक्ति का प्रमाण, कोई दूसरा नहीं बन सकता! इस संसार में सर्वजन्मकाम्य पञ्च तत्त्व अपना प्रमाण स्वयं होते हैं। उनके लिये परत: प्रामाण्य की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इसी प्रकार धरणिजा का चरित्र स्वयं विशुद्ध हैं, उसे प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं। यथा :-

देव्याश्चरित्रं न च तर्कबुद्ध्या ज्ञातुं हि शक्येत निरुद्धगत्या।
तज्ज्ञापिका नाऽपि विपन्नदृष्टिरात्मैव तत्र क्षमते प्रदीप्तः।।[290]

देवी वैदेही का दिव्य चरित्र भी, अवरुद्ध गति वाली तर्कबुद्धि से नहीं जाना जा सकता। पूर्वाग्रह से ग्रस्त दृष्टि भी उस दिव्य चरित्र की ज्ञापिका नहीं बन सकती। वस्तुतः निर्विकार प्रकाशमाना आत्मा ही उस कार्य में समर्थ है।

जिसके प्रशस्तशील की वन्दना ब्रह्मा ने की, अग्नि ने पुनीता सीता के स्पर्श से स्वयं को धन्य माना तथा मर्यादा सिन्धु राघव जिस अग्निपरीक्षा के प्रत्यक्ष साक्ष्य हैं एवं वीरवर लक्ष्मण, जिन्होंने स्वयं काष्ठ एकत्रित कर चित्ता का निर्माण किया। क्या वे सब असत्यभाषी हैं? लङ्का की प्रजा एवं सम्पूर्ण वानर-समुदाय, जिनके समक्ष यह अलौकिक घटना हुई, क्या वह केवल कल्पना है?[29] निराधार एक रजक के अनर्गल प्रलाप को वरीयता देकर पुनीता पट्टमहिषी के चरित्र को लांछित करने का दुस्साहस किसी भी स्थिति में सहनीय नहीं हो सकता। कुलगुरु वशिष्ठ के नारी के प्रति सम्मानपूर्ण विचार उनके चरित्र की गरिमा के परिचायक है। नारी के गौरव की रक्षा हेतु वशिष्ठ की कटिबद्धता द्रष्टव्य है :-

अतः स्फुटं वच्मि निजाधिकारैस्तपोमहिम्ना गुरुगौरवेण।
विरौम्यहं चण्डमुदूर्ध्वबाहुः शृण्वन्तु सर्वे किल पौरवर्गाः।।[292]

अतएव धर्मव्यवस्थापक होने के अपने अधिकार से तपश्चर्या की महिमा से तथा कुलगुरु होने के गौरव से स्पष्टतः उद्घोष कर रहा हूँ, ललकारता हुआ प्रचण्ड स्वर में गर्जना कर रहा हूँ, समस्त नागरिक गण कान खोल कर सुन ले-

चरित्रमास्कन्दति पट्टराज्ञ्याः प्रजाजनो यो हि विरुद्ध बुद्धिः।
चितां समारुह्य निजं चरित्रं प्रदर्शयेत्सोऽपि सकृत् पवित्रम्।।[293]

विरुद्धबुद्धि रखने वाला जो कोई भी प्रजाजन राजमहिषी देवी सीता के चरित्र को लाच्छित कर रहा है, वह स्वयं भी केवल एक बार, चिता पर चढ़कर, अपने चरित्र की पवित्रता का प्रदर्शन करे!

(4) न्यायप्रियः- जानकीजीवनम् महाकाव्य में गुरु वशिष्ठ की छवि न्यायप्रिय धर्म गुरु के रूप में चित्रित की गई है। प्रजारञ्जक, उदार राघव की प्राणप्रिया निष्पाप वैदेही के चरित्र पर आक्षेप लगाना, जहाँ सीता के साथ अन्याय करना है,[294] वहीं निर्दोष प्रिया की पीड़ा से व्यथित सीतावल्लभ राम के साथ भी अन्याय करना है। राम सीता के प्रति न्याय हो सके, इस हेतु वशिष्ठ धर्मसभा का आयोजन करते हैं। जिसमें राम एवं चारों भाई, सुमन्त्र आदि आठ मन्त्रिमण्डल के

सदस्य, सेनापति, चारों वर्गों के प्रतिनिधि, सपत्नीक रजक तथा समस्त पौरजन उपस्थित होते हैं। इसी सभा के मध्य में रजक को अपना पक्ष प्रस्तुत करने को कहा जाता है तथा सीता की पावनता के पक्ष में वशिष्ठ अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हैं। वशिष्ठ अपने पक्ष का औचित्य प्रस्तुत करते हुए कहते हैं :-

भार्यैव सीता नाहिराघवस्य प्रजाऽपि सा प्राप्त समाधिकारा।
सौभाग्यलक्ष्मी रघुवंशिनां सा पौरप्रजानामपि पट्टराज्ञी।।[295]

सीता राघव की भार्या मात्र ही नहीं है, वह औरों के ही समान अधिकार प्राप्त कोसल की प्रजा भी है। वह रघुवंशी नरपतियों की सौभाग्यलक्ष्मी तथा नागरिकों एवं प्रजाजनों की साम्राज्ञी भी है, अतएव उन्हें पूरा अधिकार है कि वह न्याय प्राप्त करे।

एकं मतं नैवं मतं समेषां निरर्थकं तत्खलु लोकतन्त्रे।
मतं बहूनां यदि पट्टराज्ञीं क्षिपेत्तदा लोक इह प्रमाणम्।।[296]

मात्र एक व्यक्ति का मत, जनसमूह का मत नहीं माना जा सकता। लोकतन्त्र में वह निश्चित रूप से निरर्थक है। हाँ यदि बहुमत पट्टमहिषी देवी सीता को कलंकित करता हो तो उसका प्रमाण, इस संसद में जनता स्वयं है।

दण्ड्योऽपराद्धः खलु धर्मशास्त्रे न साधुताशीलगुणार्जवानि।
न वेद्मि वैदेहसुतापराधं कस्माद्धि दण्ड्या खलु पट्टराज्ञी!![297]

धर्मशास्त्र की व्यवस्था यह है कि अपराध करने वाला व्यक्ति दण्डनीय होता है परन्तु साधुता, सच्चरित्रता, गुणवत्ता तथा ऋतुजा के दण्डित होने का कोई विधान नहीं, जिनकी धरणिजा साकार प्रतिमा है। मैं तो विदेहनन्दिनी का अपराध जानता ही नहीं! तो फिर कोसल-साम्राज्य की साम्राज्ञी कैसे दण्डनीय हो सकती है?

वशिष्ठ आगे की कार्यवाही प्रजा के मत के आधीन कर देते है। यथा -

न दण्डनीया रजकापवादात् न चापि पत्युः परुषाधिकारात्।
मतैः प्रजानामिह सांसदीनां निर्णेष्यते भाग्यमथो महिष्याः।।[298]

देवी सीता, न तो एक धोबी द्वारा की गई निन्दा के कारण दण्डनीय हैं और न ही पति के परुष अधिकार मात्र से! राजमहिषी के भाग्य का निर्णय तो इसी जनसभा में बैठी प्रजाओं के मत से होगा।

अन्ततः वशिष्ठ देवी सीता के चरित्र की भास्वरता को प्रमाणित करने में सक्षम रहे। यथा-

अजस्त्रनेत्राम्बुनिग्नदेहा नार्यो नरा वर्षवराश्च सर्वे।
महासतीं मैथिलभूपकन्यां श्रद्धाभिभूता मनसा प्रणेमुः।।[299]

अनवरत गिरती अश्रुधारा से भीगी देह वाली महिलाएँ, पुरुष तथा वर्षवर सब के सब, श्रद्धा से अभिभूत होकर, महासती मैथिलभूप कन्या को मन ही मन प्रणाम करने लगे।

आक्षेप लगाने वाला रजक निरन्तर पश्चात्ताप की अग्नि में जलता हुआ, दीन-हीन, रोदन करता हुआ पाँवों में गिर पड़ा। यथा -

ततोह्यकस्माद्रजको विपन्नः स्खलद्गतिर्नेत्रजलावमग्नः।
उपेत्य मञ्चं ननु वातगत्या वसिष्ठपादेषु पपात तूर्णम्।।[300]

हे रामभद्र! मैं भूमिजा देवी सीता के दिव्य लक्ष्मी रूप को स्पष्ट देख रहा हूँ। मेरे अक्षम्य अपराध को क्षमा करे। यथा -

ब्रह्मर्षिवाण्या अमृतं निपीय किन्नु प्रलीनं मम बुद्धिजाड्यम्।
विलोकये सम्प्रति विष्णुरूपं लक्ष्मीनिभां भूमिसुताञ्च दिव्याम्।।[301]

इस प्रकार ब्रह्मषि वशिष्ठ अपने अथाह ज्ञान, विवेक, क्रान्तदृष्टि एवं न्यायप्रियता के कारण राम-सीता को न्याय दिलवाने में पूर्ण सफल रहे।

(5) अमित प्रभाव :- ब्रह्मर्षि वशिष्ठ के चरित्र की यह भूयसी विशिष्टता है कि वह अतिशय प्रभावपूर्ण है। ज्ञान, तपस्या, अवस्था एवं वंशगुरुत्व के कारण गुरुवशिष्ठ के परामर्श की अपेक्षा राजाओं एवं राज्य की सदैव ही बनी रही। उन्हीं के प्रभाव के कारण राज में नीति का समावेश सम्भव हो सका। वे राजाओं के निर्णयों को परिवर्तित करवा सकते थे। लोकापवाद के कारण जब राघव निष्पाप गर्भवती प्रिया को आहूति बना देने के लिए तत्पर थे तब लक्ष्मण के द्वारा वस्तुस्थिति से अवगत करवाने पर, वशिष्ठ के कथन उनके अमित प्रभाव को ही प्रतिबिम्बित करते हैं। यथा -

माऽतिमात्रमुपेहिं दैन्य लक्ष्मण! जीवितेभविता न मय्युत्सदनम्।।[302]

वत्स लक्ष्मण! अत्यधिक दैन्य का अनुभव मत करो। मेरे जीवित रहते यह उत्सादन नहीं होगा।

राघवाश्रितमेव नो सिंहासनं मत्तपोभिरिहोह्यते भारं भुवः।
भूपतिर्न निरङ्कुशत्वं यास्यति चेष्टिते मयि तद्दिधास्येऽप्यंकुशम्।।[303]

यह राजसिंहासन केवल राघव पर ही आश्रित नहीं है। पृथ्वी पालन के दायित्व का निर्वाह मेरी तपश्चर्याओं से ही संभव हो सका है, अतएव मेरे प्रयत्न करने पर राम निरकुंश नहीं होंगे! मैं उन पर नियन्त्रण करूँगा।

गच्छ वत्स! कवाटरन्ध्रोद्घोषितैः श्रावय द्रुतमेव रामं मद्वचः।
मामुपेक्ष्य न निर्णो ग्राह्यस्त्वया कोऽपि राघव! सन्दिशत्येवं गुरुः।।[304]

वत्स लक्ष्मण! जाओ, किवाड़ों की दरार से की गई उद्घोषणाओं द्वारा अभी इसी क्षण, राम को मेरा आदेश सुना दो कि गुरुवर्य वशिष्ठ ने यह कहलवाया है– 'हे राघव! मेरी उपेक्षा करके तुम्हें कोई भी मनचाहा निर्णय नहीं लोना है।

नो भविष्यति मैथिली हव्यं पुनर्भूपतिप्रकृतिप्ररोषस्याध्वरे।
इत्यहं प्रतिजान एव स्वात्मनो निष्टया रवि वंशमाङ्गल्यव्रती।।[305]

सूर्यवंश के कल्याण को व्रत लेने वाला में वशिष्ठ अपने हृदय की पूर्ण निष्ठा से यह शपथ लेता हूँ कि महाराज राम अथवा प्रजाजनों के रोष रूपी यज्ञ में मैथिली को आहूति नहीं बनने दूँगा! और वशिष्ठ ने अपने अतिशय प्रभाव का प्रयोग कर यह कर दिखाया। निष्पाप सीता को न्याय दिलावाकर उन्हें अपने व्यक्तित्व के अमित प्रभाव को ही प्रगट किया। इस प्रकार जानकी जीवनम् महाकाव्य में कुलगुरु वशिष्ठ का चरित्र अतिशय गरिमामय रूप में चित्रित किया गया है। गुरु वशिष्ठ अमित ज्ञानवान, विवेकी, नीतिज्ञ, तपस्वी, मनस्वी, रघुवंशियों को पग-पग पर जीवन उन्नायक परामर्श देने वाले के रूप में सहृदयों के समक्ष उभरते हैं।

रावण

इस महाकाव्य का प्रतिनायक रावण है जो धीरोद्धत प्रकृति का है, दर्प, मात्सर्य से भरा हुआ, क्रोधी घमण्डी चञ्चल, आत्मश्लाघी है। कपट एवं मायाचरण करके शठ, धूर्त्त रावण ने राम की अनुपस्थिति सीता का में हरण कर लाया। अपने ऐश्वर्य एवं शक्ति का प्रलोभन देकर परस्त्री को अपने में अनुरक्त करने की भरसक कोशिश किया करता। माया का प्रयोग कर राम को मृत दरशा दुष्ट रावण सीता को व्यथित करता है। अहंकारी, कामान्ध, ईर्ष्यालु ने अपने ही हठ में अपने कुल का विनाश कर डाला। राम-सीता का वियोग करवा असीम दु:ख का सृजन किया। आततायी रावण के भय से पूरी सृष्टि ही त्रस्त है।

(1) अहंकारी :- रावण अपनी उपलब्धियों का आकलन कर निरन्तर अहंकारी बनता गया। देव, देवराज, दिक्पालों एवं लोकपालों को आक्रान्त कर वह इतना मदान्ध बन गया है कि उसे अपने समक्ष परमेश्वर की शक्ति भी नगण्य प्रतीत हुई एवं वह यथास्थिति का सम्यक् विश्लेषण नहीं कर पाया। अपने ही अहंकार के वशीभूत हो उसने शूर्पणखा से दुष्प्रेरित होकर राम से वैर मोल लिया है। रावण के अहंकार पूर्ण कथन की एक झलक द्रष्टव्य है:-

तिष्ठ शूर्पणखे! शुभे! मयि वर्तमाने नाक्षतो भविता शठो हि तवावमन्ता।
दिक्पतीन् विबुधानपि क्रमितुं क्षमोऽहं त्वद्पुनथ का कथा खलु तापसानाम्!![306]

धैर्य धारण कर शूर्पणखे! हे शभु! तेरा अपमान करने वाला कोई भी शठ व्यक्ति मेरे जीवित रहते अक्षत नहीं रह सकता। तुझसे शत्रुता करने वाले दिक्पालों और देवताओं को भी आक्रान्त

करने में मैं समर्थ हूँ, तपस्वियों की तो बात ही क्या ? जिस राम के शौर्यपूर्ण कार्यों से सम्पूर्ण जगत हतप्रभ है, उसी राम को तपस्वी कहकर उपहास बना रहा है। यह रावण की अहंकारी प्रवृत्ति का ही परिचायक है। सूर्य–चन्द्र को अपने अधीन कर रावण गर्वोन्मत्त हो उठा। यथा द्रष्टव्य :-

वासवोऽपि नमत्यधीन चरिस्त्रसन्ध्यं नो कलापचयं विधुस्तनुते कदाचित्।
भास्करो न पतत्यलं पवनो न वात्या चेष्टत प्रभविष्णुतामहमद् वहामि।।[307]

मुझे, अधीनस्त देवराज इन्द्र प्रातः मध्यान्ह एवं सन्ध्यावेला में प्रणाम अर्पित करता है! चन्द्रमा कभी भी अपनी सोलह कलाओं में ह्रास नहीं करता! प्रचण्ड सूर्य बहुत अधिक ताप नहीं उत्पन्न करता तथा पवन आँधी–बवण्डर नहीं उठाता! वस्तुतः समस्त लोकों पर मेरा अखण्ड प्रभुत्व है! दशानन अभिमान कर रहा है कि वह प्रकृति के नियमन को करने में सक्षम है।

(2) आत्मश्लाघी :- रावण अपने पराक्रम, शक्ति, ऐश्वर्य का स्वयं ही गीत गाता रहता। अपनें प्रभूत ऐश्वर्य का बखान करके उसे असीम तृप्ति का बोध हुआ करता। जानकी को अपने में अनुरक्त करने के लिए वह आत्मश्घाघ करके प्रलोभित करना चाहता हूँ। यथा द्रष्टव्य :-

मैथिलि! प्रमदोत्तमे! जलधौ त्रिकूटे राजते नगरी सुवर्णमयी महार्घा।
तत्र में हृदयेश्वरीव लभस्व सौख्यं देवभोग्यमचिन्त्यमेव धराचराणाम्।।[308]

हे प्रमदोत्तमे! मैथिली! समुद्र के मध्य स्थित त्रिकूट–पर्वत शिखर पर अत्यन्त ऐश्वर्यशालिनी, सुवर्णनिर्मित मेरी राजधानी लङ्कापुरी स्थित है! वहाँ चलकर तुम हृदयेश्वरी के रूप में, देवताओं द्वारा भोगने योग्य तथा पृथ्वी–लोक में स्थित मनुष्यों के लिए सर्वथा अचिन्त्य सुखों का उपभोग करो!

पतिव्रता सीता के पराङ्मुख होने पर दशानन उन्हीं के सम्मुख आत्मश्लाघा किये जा रहा है। यथा द्रष्टव्य :-

साम्प्रतं प्रकृतं वदामि हिताय सीते! मां भजस्व सुरासुरोज्जयिनं समृद्धम।
रावणोऽस्मि शुभे! त्वदास्यमृगाङ्कसिन्धुः आगतस्तव दिव्यरूपसुधावकृष्टः।।[309]

हे सीते! अब मैं तुम्हारे हित के लिये वास्तविक तथ्य प्रकट कर रहा हूँ! तुम देवताओं एवं असुरों पर विजय प्राप्त करने वाले मुझ ऐश्वर्यशाली का वरण करो। हे शुभे! मैं लङ्कापति रावण हूँ! मैं तुम्हारे मुखचन्द्र के लिए उत्कण्ठित सिन्धु–सदृश हूँ तथा तुम्हारीं दिव्य रूप सुधा से आकृष्ट होकर ही यहाँ आया हूँ।

मैं रावण त्रिलोकविजयी हूँ, मेरा अपार वैभव है, जिसे पाकर कोई भी रमणीस्वयं को धन्य मानेगी ऐसे वक्तव्यों से रावण स्वयं को प्रशंसित करता प्रसन्न हुआ करता। यथा द्रष्टव्य :-

हरिणाक्षि! जिगीषुसत्तमं त्रिजगज्जिष्णुमुपेत्य रावणम्।
वद पूर्तिमिता न का स्पृहा विभवेऽप्यद्य न येन मोदसे।।[310]

हे हरिणाक्षि! विजयशील नरपतियों में सर्वश्रेष्ठ, त्रिलोक विजयी रावण को प्राप्त करके तुम्हारी कोई भी इच्छा अपूर्ण नहीं रह सकती।

(3) क्रोधी, मत्सरी :- अपने सामने दूसरे को तुच्छ समझने वाला रावण जब अन्य किसी की शौर्यादि गुणों की प्रशंसा सुनता तो क्रोध एवं मात्सर्य से भर उठा करता। अपनी इस प्रवृत्ति के सामने उसे कुछ नहीं सूझता। झूठे प्रपञ्चों से समन्वित तथा क्रोध एवं रोषरूपी अग्नि को उद्दीप्त करने वाले शूर्पणखा के वचनों को सुनकर, अपने पराक्रम की निन्दा का अनुभव करने में असमर्थ शोकविद्ध अपने ही मात्सर्य की आग से क्रोधित हो उठा। यथा द्रष्टव्य :-

तद् वचांसि मृषाप्रपञ्चसमन्वितानि क्रोधरोषकृशानुवृद्धिकराण्यवेत्य।
आत्मशौर्यकदर्थनाऽनुभवासहिष्णुः रावणः स्वमदोष्मणैव ददाह विद्धः।।[311]

ईष्यालु रावण को अपने ऐश्वर्य के समक्ष वनवासी राघव अकिञ्चन नजर आये। उसने विदेहजा से कहा, 'ऐश्वर्य विहीन तथा अपहृत साम्राज्य वाले उस दरिद्र राघव को छोड़कर हे मानिनी! राजमहिषी की प्रतिष्ठा प्राप्त कर तुम त्रिलोकवन्दित मुझ रावण को स्वीकार करो।' यथा द्रष्टव्य :-

अपहाय दरिद्रराघवं हृतराज्यं गतवैभवञ्चतम्।
अयि मानिनि! लोकवन्दितं भज मां त्वं महिषी प्रतिष्ठया।।[312]

देदीप्यमान विद्युल्लता के समान वैदेही के द्वारा अस्वीकार करने पर तथा राम के समक्ष अपनी अवमानना देखकर, रावण एक ही साथ भय, रोष से भर उठा एवं जनकजा पर प्रहार करने के लिये चन्द्रहास खड्ग निकाल लेता है। यथा :-

अनुभूय निजावमाननां विकरालं स हि चन्द्रहासकम्।
अवकृत्य रूपैव कोशतो ज्वलदङ्गरनिभो जगाद ताम्।।
विषवल्लरि! मैथिलि! त्वया मम रागं ह्यपलप्य जल्पितम्।
अधरोत्तरमाश्रितं बहुप्रथमञ्चापि तथैव साम्प्रतम्।।[313]

राम को सम्मुख देख, दशानन का क्रोध एवं ईर्ष्या जाग उठी एवं वह रणभूमि में राम को जली-कटी सुनाने लगा जो उसे उसके आत्मदंभ एवं मात्सर्यप्रवृत्ति का परिचायक है:-

जगाद किल राघवं दशमुखो रूषा मर्त्सयन्
कुलक्षयफलानि ते समुपनेष्यते रावणः।
अये मुषितवैभव! स्मरसि किन्न मां विक्रम-
प्रसारजितनिर्जरं त्रिभुवनैकमल्लं रणे।।[314]

(4) कपटी एवं मायाचारी :- अनिन्द्य सुन्दरी सीता को पाने को लालायित रावण ने कपट जाल बुना :-

साम्प्रतं मम पश्य कूटनयाभियानं शत्रुसंहरणाभ्युपायमपि प्रगूढम्।
इत्यमुं परितोष्य सोऽभ्रपथैः प्रतस्थे पापनिष्कृति दारुणः प्रविलुप्तधर्मः।।[315]

एवं इसकी क्रियान्विति के लिए मारीच के पास जा पहुँचा। जिसने अद्भुत स्वर्ण मृग बनकर जानकी का मन मोह लिया। पति एवं देवर के दूर जाते ही महर्षि के वेश में भिक्षा याचना के लिये वैदेही के पास जा पहुँचा। अपने ऐश्वर्य का बखान कर उस सती को अपने पथ से डिगाने का समधिक प्रयत्न किया। अपना प्रयास विफल होते देख दशानन अपने प्रच्छन्न यतिवेश को छोड़कर विभूतिमय वास्तविक शरीर में प्रकट हो गया तब सीता उसका समस्त कपटजाल समझ गई तथा दशानन की भर्त्सना करते हुए कहा-

साम्प्रतं खलु ते छलं निखिलं प्रवेद्मि राघवो मम देवरश्च यथोपनीतौ।
आगतोऽसि निरन्तरायमवेत्य सर्व पाप! पापमयीमिमां विनतिं प्रयोक्तम्??[316]

अनुपम सुन्दरी सीता को पाने की अभिलाषा में मदान्ध रावण के कपट से मैथिली को अपहृत कर ही लिया। अब उनके हृदय से राम की प्रीति हटाने के लिए माया का आश्रय लिया एवं माया द्वारा निर्मित राम-लक्ष्मण के छिन्न मस्तक लेकर जा पहुँचा:-

प्रवञ्चनपरायणात्सपदि विद्युजिह्वान्तत-
शिरश्छलयितुं च तां जनकजामसौ प्राप्तवान्।।[317]

रघुपति से उस छिन्न मस्तक को दिखाकर वह मैथिली से बोला - हे सीते! मेरी बात सुन! दिवंगत राघव को अब भूल जा! मेरी आँखों के लिए अमृतस्वरूप हे जनकजे! तू मेरी पट्टमहिष बन जा। यथा द्रष्टव्य:-

प्रदर्श्य किल मस्तकं रघुपतेरसौ मैथिली-
मुवाच शृणु जानकि! प्रहतराघवं विस्मरेः।
मदीक्षण सुधे! प्रिये! जनकजेऽधुना रावणं
भजस्व भव भामिनि! प्रथितपट्टराज्ञी च मे।।[318]

प्रवञ्चना परायण रावण के जाने से साथ ही, षड्यन्त्रभरी वह माया भी स्वयमेव नष्ट हो गई। राम एवं लक्ष्मण के वे दोनों छन्न मस्तक भी अन्तर्धान हो गये। यथा :-

ननाश विगते स्वयं दुरभिसन्धि मायाप्यसौ
शिरोयुगलमप्यदस्त्वरितमेव चान्तर्दधे।।[319]

(5) दुष्ट, पापाचारी, कामान्ध:- आततायी रावण की दुष्टता से तीनों लोकों में हाहाकार मचा हुआ था। उसकी दुष्टता एवं नृशंसता पूर्ण कृत्यों से सम्पूर्ण भूमण्डल कम्पित था। रावण के

पापाचरण से सम्पूर्ण लोक त्रस्त था। सुकोमलाङ्गी पतिव्रता सीता के अनिन्द्य रूपलावण्य को सुनते ही, असंयमी, इन्द्रियों का दस दशानन सीता को पाने के लिए लालायित हो उठा, यह उसके चरित्र की दुष्टता का ही परिचायक है, जो पराई स्त्री पर कुदृष्टि रखता है। यथा :-

हृद्यरूपकथा विदेहनृपाङ्कजाया कर्णगोचरिता हि शूर्पणखावचोभिः।
तं हृषीक जसौख्यलोलुपमस्थैर्य वाडवाग्निरिवोन्ममाथ पयोधिगर्भम्।।[320]

कामी रावण को अनुपम सुन्दरी सीता को पाने की कामना वैसे ही मथ रही थी जैसे समुद्र के गर्भ में विद्यमान वाडवाग्नि जल को मथ डालती है। रावण तत्काल ही अपने मामा के पास जानकीहरण की योजना बनाकर जा पहुँचा। यथा :-

ताटकातनुजं ससाद स मातुलं स्वं सिन्धुनीर परीतभूमितले वसन्तम्।
जानकी हरणोद्यमस्य निशाम्य तस्मैं योजनां स सहायतां त्वरितं ययाचे।।[321]

रावण की दुष्टता का चरमोत्कर्ष देखिये, सन्यासी के वेष में भिक्षा याचना हेतु द्वार पर उपस्थित होकर, सीता को कुटिया में एकाकिनी पाकर, अपने प्रच्छन्न यतिवेश को छोड़कर वास्तविक स्वरूप में प्रगट हो गया तथा भयाक्रान्त सीता का हरण कर लिया। यथा :-

एवमादि विजल्प्य छन्नतनुञ्च हित्वा आस्थितः स्वतनुं विभूतिमयीं दशास्यः।
तद् वचांसि निशम्य रूपमवेक्ष्य मूलं मैथिली भयविह्वला विकलाऽचलाभूत्।।[322]

रावण के इस पापमय आचरण की भर्त्सना करते हुए विदेहजा कहती हैं :-

न भयं मम चन्द्रहासतः शृणु कामान्ध ! मुमूर्षरस्मयहम्।
रमनाथद्दिदृक्षया परं वपुरद्यावधि रक्ष्यते मया।।[323]

रावण के दुष्चरित्र का कथन भरी सभा में हनुमान ने किया:-

मालिम्लुचस्त्वं दयितापहारं छलेन कुर्वन न गतोऽसि लज्जाम्?
दुर्दान्त! नीचाधम! निस्त्रपस्त्वं भुवस्तनोष्येव कलंकभारम्।।[324]

कामान्ध रावण ने अनेक वनिताओं के शीलभङ्ग किये। असंयमी, इन्द्रिय तृष्णा की तृप्ति हेतु उसने सभी मर्यादाओं को भङ्ग किया। पथभ्रष्ट पापाचारी रावण ने पुत्रवधू लगने वाली रम्भा का शीलभङ्ग किया। तपश्चर्या में निरत वेदवती को क्लेश पहुँचाया तथा शुभाँगी पतिव्रता वैदेही का पति की अनुपस्थिति में छल से हरण किया। वनिताओं को फँसाना एंव पापाचरण करना ही रावण का कर्म बन चुका था। यथा -

स्नुषाऽपि नलकूबरप्रियतमा त्वया धर्षिता
तपांसि किल चिन्वती पतित! वेदवत्यर्दिता।
हृता यतिविडम्बितैर्मयि गते प्रिया मैथिली
स्मरान्ध! वनिताग्रहिस्तदयमेव ते विक्रमः??[325]

दशानन ने अपने सहोदर कुबेर को अपमानित करके बलपूर्वक पुष्पक विमान पर अधिकार किया। पराधीन, असहाय महिलाओं के साथ रति व्यापार से अपनी कामपिपासा को शान्त कर पापाचार किया। ऋत एवं सत्य के मार्ग की संहिता को अपने पापों से नष्ट कर डाला। यथा :-

निरस्य खलु सोदरं जगृहिषे बलात्पुष्पकं
ततर्ष्थ रतिभिश्चिरं विवशयोषितामिन्द्रियम्।
ननंष्ट शठ! संहितामृतपथस्य पापैर्निजैः
पुलस्त्यकुलकालिमन्! तदयमेव ते विक्रमः??[326]

रावण के दुष्टाचरण से सम्पूर्ण सृष्टि व्यथित थी इसीलिए राघव ने उसे त्रिभुवन के लिए महान् शोकशंकु बताया। यथा –

हरामि भुवनत्रयप्रचितशोकशङ्कुं रणे
निहत्य दनुजाधमं बहुतिथावधिप्रेक्षितम्।।[327]

जानकीजीवनम् महाकाव्य में धीरोद्धत प्रकृति के प्रतिनायक के रूप में रावण की छवि उभर कर सामने आती है। रावण का चरित्र अहंकार, क्रोध, मात्सर्य, कपट, धूर्तता, मायाचार, दुष्टाचरण, काम, असंयम, इन्द्रियमद से परिपूर्ण रहा।

जटायु

साहस एवं बलिदान के रङ्गों से रचित जटायु का चरित्र विशेष प्रेरणास्पद है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में जटायु का उल्लेख एकादश सर्ग में प्राप्त होता है। प्रस्तुत है, जटायु की चारित्रिक विशेषताएँ :-

(1) साहस :- मित्र दशरथ की पुत्रवधू सीता को विकराल राक्षसराज रावण के शिकंजे में फँसी देखकर जटायु ने प्रचण्ड साहस के साथ उस पर आक्रमण किया। यथा द्रष्टव्य :-

मैथिलीकरुणस्वरं परिदेवनाद्यम् आरुणिहिं निशम्य गृध्द्रपतिर्जटायुः।
प्रेक्ष्य ताञ्च बलाद् दशाननीयमानां चक्रमे तरसा सपक्षधराधराभः।।[328]

एक अकिञ्चन् गृद्ध का अपूर्व साहस तो देखिये, जो भयंकर मायावी शक्तियों के स्वामी रावण से टकराने चला है। यथा द्रष्टव्य :-

सान्त्वयन् स विदेहजां कुलिप्रहारैः पादचञ्चुपुटाग्रयोर्विरथञ्च कृत्वा।
चिक्षिणे ननु रावणं रुधिरप्लुताङ्गम् ऊर्णुनाव वधूं प्रसारित पक्षतिभ्याम्।।[329]

विदेहननन्दिनी को सान्त्वना देते हुए चरणों तथा नुकीले चञ्चुपुटों के वज्रोपम प्रहारों से रथविहीन करके उसने रावण के अङ्ग-प्रत्यङ्ग को रुधिर धारा से ओतप्रोत कर दिया तथा प्रसारित किये गये पंखों से वधू वैदेही को गिरने से सँभाल लिया।

जटायु ने अपने अद्‌भुत पराक्रम से राक्षसराज रावण को क्षत-विक्षत कर दिया।

(2) बलिदान :- जटायु ने रामप्रिया की रक्षा करते हुए अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। यथा द्रष्टव्य :-

लब्धसंज्ञ इहान्तरे कुपितोऽधमोऽसौ प्राहरच्छतधा चकर्त विहङ्गपक्षौ।
सन्निपात्य च तं भुवि प्रससार तूर्ण लङ्घयन् गिरिशृङ्गलाततटिनीवनानि।।[330]

जटायु के प्रहारों से मूर्च्छित रावण जब होश में आया तब क्रोधाविष्ट दशानन ने अपने खड्‌ग से सैकड़ों प्रहार किये तथा जटायु के पंखों को काट डाला। घायल, दर्द से तड़फड़ाता जटायु धरा पर गिर पड़ा। निस्सन्देह सीता को बचाने के अनवरत प्रयत्न जटायु ने अपने प्राणों का बलिदान कर दिया। यथा :-

प्रियां विचिन्वन् गहने वनान्ते जटायुषं तातसखं खगेन्द्रम्।
विदेहजारक्षणभूरियत्ने निकृत्तपक्षं समवाप वीरः।।[331]

इस प्रकार जटायु का चरित्र मैत्री धर्म को गौरवान्वित करने वाला, साहस एवं बलिदान की उत्कृष्टता के कारण श्लाघनीय है।

त्रिजटा

जानकीजीवनम् महाकाव्य में त्रिजटा एक सात्विक वृत्ति वाली, राक्षस कुल में जन्मने पर भी सहृदय नारी के रूप में चित्रित हुई है। वह दशानन की लोलुप दृष्टि से आहत वैदेही को सान्त्वना दिया करती। प्रिय वियोग से मरणासन्न वैदेही को राम से पुनर्मिलन की आशा दिलवाकर, जीवन दीप को ज्योतित रखने में सफल रही। क्रूर राक्षसियों से घिरी त्रिजटा की ममता भरी छाँव में सीता किञ्चिद् विश्राम अनुभव किया करती।

(1) दुःखों की सङ्गिनी :- दुःख के क्षणों में सान्त्वना देने वाली त्रिजटा को अत्यन्त वेगपूर्वक बाँहों में धरणिजा भर लेती है एवं अपने दुःखों की सङ्गिनी त्रिजटा की सहृदयता को अनुभव कर मानसिक परितोष अनुभव करती है। यथा द्रष्टव्य है:-

त्रिजटामितिवादिनीं प्रियामुपगृह्यातिजवेन जानकी।
निजगाद सखि! त्वमेव मे हृदयज्ञा मम सम्बलं परम्।।[332]

क्रन्दन करती मैथिली की पीड़ा की अनुभूति कर त्रिजटा द्रवित हो जाया करती। यथा :-

अवलोक्य तदीयदुर्विधं सदयं पार्श्वमुतेत्यसत्वरम्।
त्रिजटा निजगाद चिन्मयी न शुचं याहि परां विदेहजे!!
ननु राक्षसवंशजाऽप्यहं तव दैन्यं विपदं विभावये।
त्वमसि प्रियजीवितान्तरं शुभचारित्र्यवती प्रियार्पिता।।[333]

धर्माचरण, आर्जव, शील एवं संस्कार विरहित इस लंकापुरी में त्रिजटा समान सहृदय का मिल जाना जनकजा को किसी पूर्वजन्म के पुण्यों के फल के सदृश दृष्टिगत हुआ करता। यथा :-

इह रावणपालिते पुरेच्युतधर्मार्जवशीलसंस्कृतौ।
मम पूर्वशुभैरथोद्‌गतां मरणं स्याद्ध्रुवमन्यथा मम।।[334]

(2) धर्मसङ्गत व्यवहार करने वाली :- त्रिजटा धर्म के इस सूक्ष्म तत्त्व को भली प्रकार जानने वाली है कि शील, सदाचार सम्पन्न एक पतिव्रता नारी का पति ही सर्वस्व होता है। किसी बलशाली राजा का ऐश्वर्य, दर्प, भय उसे इस सत्पथ से भ्रष्ट नहीं कर सकता। अतएव एक सती नारी के सतीत्व की रक्षा एवं उसे सम्बल प्रदान करना ही औचित्यपूर्ण है। यद्यपि वह दशानन की सेविका है तथापि वह दशानन की पापपूर्ण अभिलाषा को पूर्ण करने में सहयोग नहीं करती। वह सीता का सहयोग करके धर्मानुकूल आचरण करने वाली ममतामयी माँ है। त्रिजटा के चरित्र की इस विशिष्टता को महाकाव्य में उजागर किया गया है। यथा द्रष्टव्य :-

अहमस्मि त्वाङ्घ्रिचारिणी मयि विश्वस्तमनास्त्वमर्हसि।
अभिधातुमशेषमन्त्रणां मनसो नासि शुभे! ह्यरक्षिता।।
न बिभीहि च रावणाधमात् स्मरमूर्च्छाहृतधर्मगौरवात्।
अयि देवि! न तेऽवमाननां क्षमते कर्तुमसौ हि भीरुकः।।[335]

विवेकहीन, कामी दशानन से भयभीत होने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि पतिव्रता का तेज ही उसके सतीत्व का रक्षाकवच है, त्रिजटा के ऐसे ओजोमय प्रेरक उद्‌गार ही विपत्ति के उन क्षणों में सीता का सम्बल बना करते। त्रिजटा का सीता का सहायक बनना उसका धर्मसङ्गत व्यवहार को ही प्रतिबिम्बित करता है।

(3) आशान्विता :- कठिन परिस्थिति में भी आशान्वित रहना, त्रिजटा के चरित्र का विशिष्ट गुण है। राम के चरणों में अनन्य भाव से अनुरक्त सीता का मन जब जल बिनु मछली के समान तड़फने लगा एवं उसकी जीवन-नैय्या डगमगानी लगी तब त्रिजटा ने सीता को राम के अनन्य प्रेम एवं अतुल पराक्रम के प्रति विश्वस्त करवाते हुए पुनर्मिलन का आशादीप ज्योतित करवाया। यथा द्रष्टव्य:-

न मयेति न तेऽनुभूयते निकृतिर्देवि! तथापि वच्म्यहम्।
त्यज मा त्वरितं जिजीविषां हृदयं धारय वल्लभाशया।।
अवबुध्यसि सत्यमेव चेत् स्वतनुं वल्लभलोभरक्षितम्।
तदिमां फलमूलसेवनैरशनैर्या परियोदुमर्हसि।।[336]

रघुवीर के अनन्य प्रेम के बारे में त्रिजटा व्यथित सीता को प्रत्येक क्षण स्मरण करवाया करती एवं सीता के विरह में राघव कैसे जीवन धारण करते होंगे? उन्हीं के प्रेम के लिए तुम्हें जीवन धारण करना है, ऐसे आश्वस्त किया करती यथा :-

ध्रुवमेष्यति शोकमूर्च्छनां रघुवीरोऽपि तवाक्षतस्मृतिः।
न दुनोति विशिष्य चन्द्रिकामुपरागो विधुमप्यमत्यलम्॥
न भविष्यति राघव सुखी विरहे नन्दिनि! तावके ध्रुवम्।
नुनु विश्वसिहि प्रवर्धितार्तिरसौ ते कुरुते गवेषणाम्॥[337]

इस प्रकार स्पष्ट है कि जैसे डूबते हुए को तिनके का सहारा बहुत होता है, वैसे ही जनकजा को घोर विपत्ति के उन क्षणों में त्रिजटा का स्नेहपूर्ण आश्रय है। त्रिजटा के स्नेहिल सान्तवना पूर्ण वचन ही व्यथित जानकी को घनघोर अन्धकार में आशा में किरण दृष्टिगत होते हैं। यथा :-

नृपनन्दिनि! तावकं तपः परिणामं ध्रुपभूरिमङ्गलम्।
त्वरितन्तु ददाति मे मनो नितरां विश्वसितीति निर्मलम्॥[338]

हे राजपुत्री! मेरा निष्पाप मन सदैव यही विश्वास करता है कि तुम्हारी यह तपस्या प्रभूत मङ्गल से ओत-प्रोत परिणाम अतिशीघ्र ही प्रकट करेगी।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में त्रिजटा दयालु, ममतामयी, सदाचारिणी, विश्वासपूर्ण, संवेदनशील, नारी मर्यादा को जानने वाली सहृदय राक्षसी के रूप में चित्रित हुई है।

वाल्मीकि

वेद निष्णात, निर्मल, सात्विक वृत्ति एवं तपोपूत व्यक्तित्व के स्वामी हैं, आदि कवि वाल्मीकि। सर्वत्र उनकी प्रतिभा एवं काव्य कमनीयता का अमित प्रभाव है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में लव-कुश के विद्या गुरु एवं रामायणी कथा के रचयिता के रूप में वाल्मीकि का परिचय प्राप्त होता है। उनकी चारित्रिक विशेषताओं का विवेचन इस प्रकार है:-

(1) सहृदय :- शोभन भावों से आपूरित, संवेदनशील, कोमल प्रकृति वाले वाल्मीकि के चरित्र की यह भूयसी विशिष्टता है कि ये सहृदय हैं। गङ्गा एवं तमसा नदियों के मध्यवर्ती वन में अपनी प्रिया से रमण करने को उत्कण्ठित, व्याध के शर से बींध दिये गये हृदय वाले क्रौञ्च पक्षी को तथा अपार करुणा से ओतप्रोत मार्मिक क्रन्दन करने वाली क्रौञ्ची को देखकर ही वाल्मीकि आमूलचूड़ शोकसन्तप्त हो उठे। यथा :-

क्रौञ्चं पुरा द्युतटिनीतमसान्तराले व्याधप्रविद्धहृदयं दयितारिरसुम्।
क्रौञ्चीममेयकरुणाञ्चितमर्मरावा दृष्ट्वैव शोकनिहतोऽयमभून्नितान्तम्॥[339]

करुणा से आप्लावित हृदय से जो करुण वाणी प्रस्फुटित हुई, वहीं अनुष्टुप छन्द बना एवं अनुपमेय आदिकाव्य का सृजना हो सकी। वह वाल्मीकि की सहृदयता को ही प्रतिबिम्बित करता है।

(2) कविपुंगव :- विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न वाल्मीकि नवरस रुचिर अतिशय मनोमुग्धकारी आदिकाव्य रामायण के रचयिता के रूप में समधिक समादृत व्यक्तित्व के रूप में महाकाव्य में उभारे गये हैं। जिन्हें स्वयं प्रजापति ने रामायणी कथा का प्रणयन करने को प्रेरित किया, देवर्षि नारद ने सर्वाङ्ग सुन्दर चरित्र राम-सीता के बारे में उन्हें बताया। भावयित्री प्रतिभा तथा मन की आँखों से ही समस्त वृत्तान्त को हस्ताम मलकवत् देख लेने से सक्षम वाल्मीकि ने छह काण्डों, पाँच सौ सर्ग तथा चौबीस हजार श्लोकों के प्रमाण में रामायण का प्रणयन किया और वे श्रेष्ठ कवियों की कोटि में आये। यह उनके चरित्र की सर्वप्रमुख विशिष्टता है। यथा :-

त्वच्चेष्टितानि हसितानि सचिन्तितानि गूढान्यपि प्रतिभया वने वा।
प्रत्यक्षमेदय किल मानसचक्षुषैव सोयं लिलेख सुकविः परिभूः स्वयम्भूः।।[340]

(3) श्रेष्ठ विद्या गुरु :- वेद, पुराणों में निष्णात, उदात्त गुणों से श्रीमण्डित, तपस्वी, अलौकिक शक्ति सम्पन्न मनीषी वाल्मीकि, विद्यागुरु के गरिमामय पद पर अधिष्ठित हैं। उनके ज्ञान एवं विज्ञान के समक्ष सभी नतमस्तक हैं। राम में प्रख्यात विद्यागुरु को ही अपने दोनों सुकुमारों को सौंपने का निर्णय लिया:-

गुरुकुलाश्रयणस्य क्योविन्दं जनकजे! स्वयमेव विचारय।
क्व खलु लभ्य इह प्रथितो गुरुश्चिरयशा वलमीकजसन्निभः??[341]

वाल्मीकि के समीप रहकर लव-कुश वेद, पुराण, शास्त्र, सङ्गीत, सभी में पूर्ण निष्णात बने। उनकी योग्यता को प्रत्यक्ष अनुभव कर सम्पूर्ण यज्ञवाट ही मोहग्रस्त हो गया। यथा :-

यशस्विनौ वेदपुराणनिष्ठितौ महर्षिवाल्मीकि कवित्वविग्रहौ।
विलोक्य तौ चन्द्रमुखौ कुमारकौ स यज्ञवाटो लुलुभेऽतिवत्सलः।।[342]

(4) तपस्वी :- वाल्मीकि उत्कृष्ट तपस्वी हैं, जो अपनी तपश्शक्ति के कारण ही परोक्ष वस्तुओं को भी हस्तामलकवत् देख सकते हैं। प्रजापति ब्रह्मा जिनके सम्मुख प्रत्यक्ष हो गये। गङ्गा एवं तमसा नदियों की संगमभूमि में अवस्थित तपोवन में रहते हैं। जहाँ सूर्यवंश में उत्पन्न सुदास के पुत्र मित्रसह ने अनेक वर्षों तक प्रवर्तमान महायज्ञ को पूर्ण किया। अपनी अकुण्ठित तपश्चर्या के कारण ही वे राघवेन्द्र द्वारा पूज्नीय है। यथा:-

सुविदितं तमकुण्ठतपोनिधिं स्वयमुपागतवीक्ष्य रघूत्तमः।
सविनयं सकुटुम्बमपूजुजन् मुनिजनोचितवेद विधानतः।।[343]

महाकाव्य में गरिमामय चरित्र के रूप में वाल्मीकि ऋषि का रूपायन किया गया है।

लवकुश

जानकीजीवनम् महाकाव्य में लव-कुश के चरित्र का समधिक चारू प्रस्फुटन प्राप्त होता है। यशस्वी सुन्दर, सुयोग्य पात्रों के रूप में लव-कुश का मञ्जुल वर्णन है। लव-कुश का चरित्रांकन इस प्रकार है :-

(1) **प्रियदर्शन** :- सुकोमल लव-कुश हठात् ही चित्त को आकृष्ट कर देने वाली शोभा से युक्त हैं। यथा:-

समदृशी रामचन्द्रमुखावुभौ समरुचि समयोजना पानकै।
सहदृशरोदनगायननर्तनी ननु कुटुम्बिमनांसि बबन्धुतः।।[344]

दोनों ही कुमार एक सरीखे कमल नेत्रों वाले, एक सरीखे चन्द्रमुख वाले, एक जैसी रुचि वाले तथा एक समान भोजन एवं पान वाले थे। कमलपुष्प के समान कोमल एवं कमनीय काय वाले वे दोनों सुदर्शन कुमार सभी के लिये दर्शनीय बने हुए थे।

राम की आकृति को धारण करने वाले, अतिशय रूप सम्पन्न, किसी श्रेष्ठ बिम्ब के प्रतिबिम्ब सदृश, नीलकलम के समान नेत्र वाले, शिखण्डक मण्डित देवी सीता के पुण्यों के पवित्र सत्फल जैसे लव-कुश शोभायमान थे। यथा :-

रघुत्तमाकारधरौ सुरूपिणौ महार्घबिम्बप्रतिबिम्बसन्निभौ।
कुवेलनेत्रौ च दधच्छिखण्डकौ विदेहजापुण्यपवित्रसत्फलौ।।[345]

महर्षि वाल्मीकि भी लव-कुश की मनोहारी शोभा को देखकर सम्मोहित हैं। यथा :-

जनकजातनयौ स्फुटविग्रहौ रुचिरवेषधरावतिमोहनौ।
समवलोक्य तयोरभिधानकं मुनिवरः समपृच्छदथाधिपम्।।[346]

सुडौल शरीर वाले, कमनीय वेषधारी तथा सम्मोहन उत्पन्न कर देने वाले कुमारों को देखकर, मुनिश्रेष्ठ वाल्मीकि ने राम से उनके नाम पूछे।

(2) **नयनतारे**:- सुदर्शन व्यक्तित्व, मनोहारी क्रीड़ाएँ, मृदु बैन, शोभन गुणों से युक्त लव-कुश सभी के नयनों के तारे हैं। रमणीय लव-कुश को देखकर राम की माताओं के हर्ष का पारावार नहीं रहा। यथा :-

रुचिरपौत्रमुखे विधुसन्निभे समवलोक्य मनोरथवर्धिताः।
ननृतुरेव महोत्सवमेदुरा भरतलक्ष्मणराघव मातरः।।[347]

सुकुमारों को कभी दादी दुलारती तो कभी माँ, तो कभी माँ की बहनें दुलारती। इस प्रकार लव-कुश सबकी आँखों के तारे बने हुए थे :-

क्वचिदलालयताशु पितामही क्वचिदथो जननीभगिनीचयः।
क्वचिदसौ जननीगृहसेविका ननु बभूवतुरीक्षणसन्निभौ।।[348]

राम सीता की प्रीति तो पुत्रों की छवि को निहार-निहार कर ही उत्तरोत्तर बढ़ती जाती थी।

फुर्तीले मृगछौनों के समान प्रतिफल घर की अँगनाई में कुलाँचे भरने वाले, कमलपुष्प के समान कोमल काया वाले कुमारों ने जानकी के हृदय को बरबस चुरा रखा था। यथा :-

प्रतिपलं जवनौ मृगशावकाविव गुहाङ्गण्ण एधितधावनौ।
जनकजाहृदयं किल जह्रतुः कमलकोमलकान्तकलेवरौ।।[349]

(3) सुसंस्कृत :- अनुपम गुणों के धारी राम-सीता के आत्मज लव-कुश श्रेष्ठ संस्कारों से आपूरित थे। उनका शील, आर्जन श्लाघनीय रहा। उदात्त राघव का अनुकरण एवं पुनीता माँ सीता के वात्सल्य की छाँह ने लव-कुश को सुसंस्कृत बनाया। गुरुवशिष्ठ द्वारा सम्पन्न कराए गए, कुलसम्मत संस्कारों द्वारा पवित्रित शरीर वाले तथा ऋत संस्कृत उन दोनों कुमारों ने अपने चपल शैशव की क्रीड़ाओं द्वारा स्वजनों के हृदयों को भली-भाँति चुरा लिया। यथा :-

गुरु वशिष्ठ कृतैः कुलसम्मतैर्विधिभिरिद्धतनू ऋतसंस्कृतौ।
चपलशैशवलोलविहारणैः स्वजनहृन्दि च तौ प्रमुमोषतुः।।[350]

(4) विनीत :- लव-कुश के चरित्र में सरलता एवं विनय का पल्लवन समधिक है। राजपुत्र हैं, किन्तु उनके चरित्र में वैभव का विलास अथवा हठधर्मिता देखने को भी नहीं मिलती। गुरुजनों के प्रति अतीव समादरशील है। त्याग, तपस्या संवलित सात्विक तपोवन में विद्याजर्न करते, दोनों ही कुमार विनीत हैं। यथा:-

प्रणम्य वाल्मीकिमय स्वगौरवं विदेहजां राघव मात्मसर्जकौ।
ततो गुरुन् पारिषदांश्च तल्लजान् कुमारकौ तौ जगतुः कथामृतम्।।[351]

(5) शस्त्र-शास्त्र निष्णात :- वाल्मीकि जैसे अक्षत, यशस्वी गुरु के सान्निध्य में लव-कुश शस्त्र-शास्त्र परमनिष्णात बन गये। उनके ज्ञान की गुरुता के समक्ष सम्पूर्ण यज्ञवाट सम्मोहित हो गया। यथा :-

यशस्विनौ वेदपुराणनिष्ठितौ महर्षि वाल्मीकिकवित्वविग्रहौ।
विलोक्य तौ चन्द्रमुखौ कुमारकौ स यज्ञवाटो लुलुभेऽतिवत्सलः।।[352]

(6) सङ्गीत विद्या विशारद :- लव-कुश सामदेव के ज्ञाता होने के कारण गंधर्व विद्या में निपुण थे। सङ्गीत विद्या के स्वर, लय, थाट के मर्मज्ञ, विमूर्च्छना के जानकार, वीणा वादन में निपुण, नवरसों की प्रस्तुति से युक्त कथाभिनय में पटु, ललित कलाओं में निष्णात थे। यथा :-

विपञ्चिकादण्डधरौ सुवर्णिनावशेषगान्धर्वरहस्यवेदिनौ।
लयस्वर स्थान विमूर्च्छनाविदौ मयूरकेकाकलकण्ठनिः स्वनौ।।[353]

मनमोहक वीणा वादन के साथ, लव-कुश की मधुर स्वर लहरियों में गाई जाने वाली रामायण में हठात् ही सभी का मन मोह लिया। जो लवकुश के सङ्गीत विशारद होने का परिचायक है। यथा :-

यज्ञान्ते ननु साम्प्रतं कुशलवौ रामायणीं तां कथां
गन्धर्वाविव रूपिणौ स्वरलयस्थानप्रमापारगौ।
तन्त्रीवाद्यसमन्वितौ नवरसोद्गाराभिनेये पटू
कूजत्कण्ठमधुस्वरौ तव सुतौ मध्येसभं गास्यतः।।[354]

(7) मेधावी :- जानकीजीवनम् महाकाव्य में लव-कुश अतीव मेधाशक्ति सम्पन्न चित्रित हुए हैं। वाल्मीकि प्रणीत सम्पूर्ण रामायण उन्हें कण्ठस्थ हैं तथा सभा के मध्य में आदिकाव्य का अतिशोभान प्रस्तुतीकरण करते हैं। यथा -

काण्डैश्च षड्भिरथ पञ्चशतैश्च सर्गैः श्लोकैश्चतुर्भिरपि विंशतिभिस्सहस्रैः।
कृत्वा रघूत्तम! पुरात्वदमोघगाथां तद्गायने कुशलवौ प्रयुयोज पश्चात्।।[355]

(8) सुमधुर गिरा :- लव-कुश की वाणी अतिशय मधुर है, जो बरबस ही चित्त का हरण कर ले जाती । यथा :-

मधुरया च गिरा धृतवाचिकौ स्वजनचित्तमरञ्जयतामुभौ।।[356]

दोनों कुमारों ने शृङ्गारादि नवों रसों से ओतप्रोत, कण्ठ-माधुर्य से लसी, मधुर झङ्कार वाली वीणा के सप्तस्वरों में बँधी रामायण का सुमधुर गायन किया। यथा :-

इतिनवरससिद्धां कण्ठमाधुर्यनद्धां क्वणनमृदुविपञ्चीसप्तनादानुबद्धाम्।
चतुरभिनययोगस्वैरबुद्धां कुमारौ जगतुरमितशक्ती विस्मृतक्षुत् पिपासौ।।[357]

इस प्रकार जानकीजीवनम् महाकाव्य में सुकुमार, अतिशय शोभा सम्पन्न, तेजस्वी, मेधावी राजपुत्रों के रूप में लव-कुश का मञ्जुल विवेचन प्राप्त होता है। श्रेष्ठ माता-पिता की सन्तान होने के साथ ही वाल्मीकि सरीखे गुरू को पाकर इन सुकुमारों का व्यक्तित्व मणिदीप के समान जगमगाता चित्रित हुआ है। महाकाव्य के लव-कुश संस्कार, विनय, ललित कलाओं से पूर्ण विशिष्ट चारित्रिक व्यक्तित्व है।

इनके अतिरिक्त जानकीजीवनम् महाकाव्य में प्रेममयी बहिनों के रूप में उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति का शोभन वर्णन प्राप्त होता है। जानकी की बहिनें शीलगुणान्विता दुलारी पुत्रियाँ, प्यारी बहिनें एवं सदाचारिणी कुलवधुओं के रूप में चित्रित की गई हैं, जो सखियों के समान सीता का

मनोविनोद करती हैं।[358] सुख के क्षणों में हर्षित होती है तो दु:ख के क्षणों में आँसु बहाती है। उर्मिला, माण्डवी, श्रुतकीर्ति का चरित्र निश्छल स्नेह की प्रतिमूर्ति के रूप में महाकाव्य में उभारा गया है।

महाकाव्य में तपस्वी ऋषि एवं मिथिला के राजपुरोहित के रूप में शतानन्द का प्रथम सर्ग में प्रभावशाली वर्णन प्राप्त होता है। जिसमें शतानन्द के तपस्वी, ज्ञान-विज्ञान सम्पन्न, सद्परामर्शदाता स्वरूप का दिग्दर्शन होता है।[359]

नारी धर्म की उपदेशक के रूप में सती अनुसूया, षड्यंत्रकारी दुर्मति मन्थरा[360], कामयाचना करती, स्वेच्छाचारिणी, निर्लज्ज राक्षसी शूर्पणखा[361], रावण को सुबुद्धि देने में प्रयासरस केकसी, मन्दोदरी, नाना माल्यवान, दशानन के पापपूर्ण कृत्य में सहयोगी बने मायावी मारीच[362], घोर मायावी एवं प्रचण्ड योद्धा मेघनाद[363], कुम्भकर्ण, अक्षकुमार, वज्रदंष्ट, प्रहस्त, शुक-सारण, राम के शरणागत हुए एवं धर्म के पथ पर अग्रसर होने वाले विभीषण[364], मित्र सुग्रीव, अंगद, जाम्बवान, नल-लील, गरुड़, सुमन्त्र, लोकापवाद का दारुण समाचार लाने वाला दुर्मुख[365], निष्पाप वैदेही के चरित्र को लांछित करने वाले एवं पश्चाताप करता रजक[366] का चरित्र महाकाव्य में प्राप्त होता है।

इन पात्रों का चरित्र महाकाव्य में पूर्णत: उभारा तो नहीं गया किन्तु इन पात्रों की उपस्थिति ने प्रधान पात्रों के चरित्र को भास्वर बनाने में सहयोग किया है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि जानकीजीवनम् महाकाव्य में पात्रों के चरित्र चित्रण की दृष्टि से अभिनव प्रयोग किये गये हैं। नायिका प्रधान इस महाकाव्य में नायिका सीता का चरित्र समधिक भास्वर एवं मुखर चित्रित किया गया है। नायिका प्रधान इस महाकाव्य में नायिका सीता का चरित्र समधिक भास्वर एवं मुखर चित्रित किया गया है। इक्कीस सर्गों में विस्तीर्ण इस महाकाव्य में सीता की छवि को अयोनिजा, जनकनन्दिनी, नवयौवना, लोकविश्रुता, सौभाग्यवती, अनुरागिणी, परिणीता, प्रियानुगता, रामप्रिया, सहचरी, अपहृता, तपस्विनी, प्रत्युज्जीविता, समुद्धता, भर्तृमती, राजमहिषी, संशियता, पुण्यशीला, वीरप्रसविनी, अर्धाङ्गिनी एवं अनुकीर्तिता के रूप में उभारा गया है।

नायक राम की धीर गम्भीर प्रकृति में रसिक एवं विनोदी प्रकृति का सम्मिश्रण कर, महाकाव्य में सुमधुरता का सृजन करने का प्रयास किया गया है। वैदेही का निर्वासन नहीं दिखलाकर नायक राम के चरित्र को उत्कृष्टता प्रदान की गई है।

महाकाव्य में प्राचीन उदात्त चरित्रों का लौकिकीकरण कर दिया गया है। राम रसिक, सीता मुखर, लक्ष्मण विनोदी चित्रित हुए हैं। लक्ष्मण भाभी सीता के साथ फाग खेलते चित्रित हुए हैं।

जनमानस की आस्था से गहरे पैठे लक्ष्मण का चरित्र विनीत भाई एवं भाभी के मात्र चरणारविन्द का दर्शन करने वाले का है, वहीं लक्ष्मण फागोत्सव पर भाभी के कपोलों पर रङ्ग मलने वाला एवं लोकापवाद के अवसर पर क्रोधित, भैय्या राम के अधिकार को विश्लेषित करने वाले के रूप में चित्रित किए गए हैं।

महाकाव्य में हनुमान, भरत, जनक, सुनयना, दशरथ, कौशल्या, कैकयी, वशिष्ठ, विश्वामित्र, रावण, जटायु, त्रिजटा, वाल्मीकि, लव–कुश का प्राञ्जल चरित्र चित्रण प्राप्त होता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य का चरित्रांकन शास्त्रीय दृष्टिकोण से संवलित होते हुए भी अभिनव है। रामकथा के इतने बड़े वाङ्मय में विलसित पात्रों को जानकीजीवनम् महाकाव्य के कलेवर में समेटना, निस्संदेह चातुर्यपूर्ण है।

सन्दर्भः–

1. जा.जी. 1/43, 44

2. जा.जी. 3/13

3. जा.जी. 4/42, 43

4. जा.जी. 6/23

5. जा.जी. 6/39

6. जा.जी. 12/20

7. जा.जी. 11/30

8. जा.जी. 11/101

9. जा.जी. 12/68

10. जा.जी. 12/69

11. जा.जी. 12/79, 80

12. जा.जी. 1/45

13. जा.जी. 1/46

14. जा.जी. 15/70

15. जा.जी. 15/79

16. प्रथमावतीर्णयौवनमदनविकारा स्तौ वामा।

    कथिता मृदुश्च माने समधिकलज्जावली मुग्धा।। सा. द. 3/58

17. जा.जी. 3/5, 6, 7, 8

18. जा.जी. 3/5, 7, 8

19. जा.जी. 3/25

20. जा.जी. 3/27

21. जा.जी. 3/28

22. जा.जी. 3/26

23. जा.जी. 3/33

24. जा.जी. 6/50

25. जा.जी. 6/48

26. जा.जी. 6/57

27. जा.जी. 9/63

28. जा.जी. 7/81

29. जा.जी. 7/82

30. जा.जी. 9/44

31. जा.जी. 9/63

32. जा.जी. 11/100

33. जा.जी. 11/102

34. जा.जी. 12/51

35. शलभो नु था शिखार्दितो दहनात्प्राक् भयमेति पुष्पकलम्।
स ददर्श विनीतलोचनां नियमक्षामतनुं तथैव ताम्।। जा.जी. 12/52

36. जा.जी. 12/61, 62

37. जा.जी. 12/66

38. जा.जी. 12/67

39. जा.जी. 12/70

40. जा.जी. 15/21, 22

41. जा.जी. 15/25, 31

42. जा.जी. 15/34

43. जा.जी. 15/41

44. जा.जी. 15/58

45. जा.जी. 15/61

46. जा.जी. 15/62

47. जा.जी. 15/85

48. जा.जी. 12/79

49. जा.जी. 15/69, 83

50. जा.जी. 11/12

51. जा.जी. 2/35

52. जा.जी. 2/46

53. जा.जी. 2/48

54. जा.जी. 7/32

55. जा.जी. 7/63

56. जा.जी. 9/65, 66

57. जा.जी. 9/67

58. जा.जी. 9/68

59. जा.जी. 9/99

60. जा.जी. 11/11

61. जा.जी. 11/25

62. जा.जी. 11/31, 34

63. जा.जी. 7/87

64. जा.जी. 7/86

65. जा.जी. 9/60, 63

66. जा.जी. 11/1

67. जा.जी. 11/6

68. जा.जी. 11/19

69. जा.जी. 11/32

70. जा.जी. 12/19

71. जा.जी. 12/27

72. जा.जी. 12/28

73. जा.जी. 12/29

74. जा.जी. 12/30

75. जा.जी. 15/86

76. जा.जी. 19/51

77. जा.जी. 19/26

78. जा.जी. 19/39, 40

79. जा.जी. 19/41

80. जा.जी. 19/47

81. जा.जी. 13/40

82. जा.जी. 13/52

83. जा.जी. 15/12

84. जा.जी. 2/44

85. जा.जी. 11/11

86. जा.जी. 2/45

87. जा.जी. 5/91

88. जा.जी. 5/32

89. जा.जी. 5/33

90. जा.जी. 6/33, 36

91. जा.जी. 6/34, 37

92. जा.जी. 6/47

93. जा.जी. 6/63

94. जा.जी. 4/21

95. जा.जी. 11/57, 58

96. जा.जी. 11/6

97. जा.जी. 11/61

98. जा.जी. 14/73

99. जा.जी. 14/85

100. जा.जी. 10/79

101. जा.जी. 11/36

102. जा.जी. 11/38

103. निभालयन्तीं करकावपातं विहङ्गबालामिव तर्षदीनाम्।
विकर्तनाकांक्षितभूरिभाग्यां पाथोजिनी सिन्धुरमर्दिताङ्गीम्।। जा.जी. 7/61

104. जा.जी. 7/65

105. जा.जी. 7/66

106. जा.जी. 9/56, 57

107. जा.जी. 9/58, 59

108. जा.जी. 9/60, 61

109. जा.जी. 11/46

110. जा.जी. 11/10

111. जा.जी. 11/52

112. जा.जी. 11/57

113. जा.जी. 11/71

114. जा.जी. 13/11

115. जा.जी. 13/12

116. जा.जी. 15/85

117. जा.जी. 15/86

118. जा.जी. 15/87

119. जा.जी. 19/51

120. जा.जी. 19/52

121. पथिगौतमगृहिणीश्रितचरणः। जा.जी. 21/33

122. मत्स्यादिनं यो गुहमङ्कपाल्यां संस्कारहीनं कृतवान् सहर्षम्।

स्वसौहृदे तं नियुयोज सद्यः स राघवः किं मनुजो न देवः?? जा.जी. 18/33

123. जा.जी. 18/31

124. जा.जी. 18/32

125. जा.जी. 10/88

126. जा.जी. 18/31

127. जा.जी. 21/102

128. जा.जी. 14/18

129. जा.जी. 14/19

130. जा.जी. 14/23

131. जा.जी. 18/109, 110

132. जा.जी. 18/112

133. जा.जी. 15/77, 78

134. जा.जी. 11/44

135. जा.जी. 7/85

136. जा.जी. 9/46

137. जा.जी. 16/54

138. जा.जी. 19/44

139. जा.जी. 19/66

140. जा.जी. 10/11

141. जा.जी. 18/111

142. जा.जी. 10/10

143. जा.जी. 17/1

144. जा.जी. 18/113

145. जा.जी. 20/1

146. जा.जी. 20/5

147. जा.जी. 20/36

148. जा.जी. 20/20

149. जा.जी. 20/21

150. जा.जी. 20/37

151. आख्याहि मे त्रिभुवनार्चितपादपद्म! लोके नु साम्प्रतमिह प्रियदर्शनः कः?
विद्वान कृतज्ञ इह चारुचरित्रयुक्तः कोवाऽत्मवान्निखिल भूतहिते रतोऽस्ति!! जा.जी. 20/48

152. जा.जी. 5/60

153. जा.जी. 5/63

154. जा.जी. 5/64

155. जा.जी. 5/31

156. जा.जी. 5/33

157. जा.जी. 5/38

158. जा.जी. 5/36, 37

159. जा.जी. 14/67

160. जा.जी. 14/70

161. जा.जी. 14/71

162. जा.जी. 11/82, 83

163. जा.जी. 15/66

164. जा.जी. 9/90, 91

165. जा.जी. 9/93, 94

166. जा.जी. 11/55

167. जा.जी. 17/47, 48, 44, 82

168. जा.जी. 13/53, 54

169. जा.जी. 13/50, 51

170. जा.जी. 13/60

171. जा.जी. 13/61

172. जा.जी. 13/62

173. जा.जी. 13/75

174. जा.जी. 15/9

175. जा.जी. 15/11

176. जा.जी. 13/32

177. जा.जी. 13/33

178. जा.जी. 13/65, 66

179. जा.जी. 13/72

180. जा.जी. 15/1

181. जा.जी. 13/47

182. जा.जी. 13/49

183. जा.जी. 14/7

184. जा.जी. 14/10

185. जा.जी. 13/39, 41

186. जा.जी. 16/61, 62

187. जा.जी. 16/56

188. जा.जी. 16/57

189. जा.जी. 11/35

190. जा.जी. 16/59

191. जा.जी. 16/61, 62

192. जा.जी. 16/71

193. जा.जी. 16/72

194. जा.जी. 1/20, 22

195. जा.जी. 1/32

196. जा.जी. 1/35, 36

197. जा.जी. 2/30

198. जा.जी. 2/35

199. जा.जी. 5/40

200. जा.जी. 8/29, 30

201. जा.जी. 8/41, 42

202. जा.जी. 8/68–73

203. जा.जी. 8/66

204. जा.जी. 8/68

205. जा.जी. 8/74, 75

206. जा.जी. 8/77

207. जा.जी. 1/32, 39

208. जा.जी. 1/40

209. जा.जी. 7/37, 50

210. जा.जी. 5/18

211. जा.जी. 5/25.27, 41

212. जा.जी. 8/18

213. जा.जी. 8/21

214. जा.जी. 8/19

215. जा.जी. 8/22

216. जा.जी. 8/23

217. जा.जी. 2/13

218. जा.जी. 2/18

219. जा.जी. 2/34

220. जा.जी. 8/41

221. जा.जी. 7/78

222. जा.जी. 7/79

223. जा.जी. 8/27, 30

224. जा.जी. 8/48

225. जा.जी. 4/24, 25

226. गादीभवन्नरपतिश्चमरैणनेत्रोत्सङ्गस्फुटाम्बुनिवहाल्पित वैखरीकः।

वक्तं शशाक कृपणो न मनागधीरश्चित्रार्पितस्य मुषितस्य गतिं जगाम।। जा.जी. 4/26

227. जा.जी. 8/1-2

228. जा.जी. 10/68

229. जा.जी. 10/70, 71

230. जा.जी. 10/75

231. जा.जी. 10/85

232. जा.जी. 10/49-50

233. जा.जी. 10/54, 55

234. जा.जी. 10/60-62

235. जा.जी. 4/9

236. जा.जी. 4/13

237. जा.जी. 4/14

238. जा.जी. 4/12

239. जा.जी. 4/10

240. जा.जी. 4/15

241. जा.जी. 10/6

242. जा.जी. 4/6

243. जा.जी. 10/5

244. जा.जी. 10/8, 9

245. जा.जी. 10/10

246. जा.जी. 10/11

247. जा.जी. 4/33

248. जा.जी. 9/18, 19

249. जा.जी. 9/27, 28

250. जा.जी. 19/5

251. जा.जी. 10/13

252. जा.जी. 10/43

253. जा.जी. 10/46

254. जा.जी. 10/47, 48

255. जा.जी. 10/44

256. जा.जी. 10/45

257. जा.जी. 19/18, 19

258. जा.जी. 19/57

259. जा.जी. 10/60

260. जा.जी. 10/61

261. जा.जी. 10/63

262. जा.जी. 10/66

263. जा.जी. 10/67

264. जा.जी. 10/73

265. जा.जी. 10/74

266. जा.जी. 10/69

267. जा.जी. 10/72

268. जा.जी. 4/30

269. जा.जी. 4/30

270. जा.जी. 4/36

271. जा.जी. 4/37

272. जा.जी. 4/40

273. जा.जी. 5/43

274. जा.जी. 7/11

275. जा.जी. 4/44

276. जा.जी. 5/36

277. जा.जी. 5/38

278. जा.जी. 7/56

279. जा.जी. 7/57

280. जा.जी. 7/58

281. त्रिकालवेदी स्वतपः प्रभावैः ऋतस्य सत्यस्य च तत्त्वगोऽहम्।

सप्तर्षिवृन्दे गणितो महिम्ना विरञ्चिपुत्रोऽस्मि वसिष्ठनामा।। जा.जी. 18/16

282. धातुर्निदेशादथ जीवलोकमण्याय सूर्यान्वयभूपतीनाम्।

अङ्गीकृता वंशगुरुप्रतिष्ठा मया चिरत्नात्समयात्प्रथव्याम्।। जा.जी. 18/19

283. भगीरथं मित्रसहं दिलीपं रघुं जिगीषुञ्च तमिन्द्रमित्रम्।

भूपोत्तमं पवित्तरथं स्वधाम्ना निनाय लोकाभ्युदयं वसिष्ठः।। जा.जी. 18/19

284. जा.जी. 4/29

285. जा.जी. 18/19

286. जा.जी. 18/53

287. जा.जी. 18/54

288. जा.जी. 18/62

289. जा.जी. 18/58

290. जा.जी. 18/61

291. जा.जी. 18/75, 76

292. जा.जी. 18/77

293. जा.जी. 18/78

294. तदाप्रभृत्येव विवद्धताप: प्रजाहितार्थाय दृढ़प्रतिज्ञः।

विमुक्त भोज्यान्नजलो निरुद्धदारो निशायां न शैके।। जा.जी. 18/40

295. जा.जी. 18/67

296. जा.जी. 18/68

297. जा.जी. 18/73

298. जा.जी. 18/69

299. जा.जी. 18/86

300. जा.जी. 18/89

301. जा.जी. 18/101

302. जा.जी. 17/53

303. जा.जी. 17/54

304. जा.जी. 17/55

305. जा.जी. 17/57

306. जा.जी. 11/64

307. जा.जी. 11/95

308. जा.जी. 11/96

309. जा.जी. 11/94

310. जा.जी. 12/55

311. जा.जी. 11/63

312. जा.जी. 12/56

313. जा.जी. 12/73, 74

314. जा.जी. 14/76

315. जा.जी. 11/65

316. जा.जी. 11/100

317. जा.जी. 14/26

318. जा.जी. 14/27

319. जा.जी. 14/30

320. जा.जी. 11/66

321. जा.जी. 11/67

322. जा.जी. 11/97

323. जा.जी. 12/67

324. जा.जी. 13/67

325. जा.जी. 14/78

326. जा.जी. 14/79

327. जा.जी. 14/74

328. जा.जी. 11/111

329. जा.जी. 11/112

330. जा.जी. 11/113

331. जा.जी. 13/13

332. जा.जी. 12/45

333. जा.जी. 12/33, 34

334. जा.जी. 12/47

335. जा.जी. 12/41, 42

336. जा.जी. 12/38, 43

337. जा.जी. 12/39, 40

338. जा.जी. 12/44

339. जा.जी. 20/39

340. जा.जी. 20/52

341. जा.जी. 19/44

342. जा.जी. 21/4

343. जा.जी. 19/30

344. जा.जी. 19/25

345. जा.जी. 21/02

346. जा.जी. 19/32

347. जा.जी. 19/5

348. जा.जी. 19/22

349. जा.जी. 19/26

350. जा.जी. 19/27

351. जा.जी. 21/05

352. जा.जी. 21/4

353. जा.जी. 21/3

354. जा.जी. 20/54

355. जा.जी. 20/53

356. जा.जी. 19/24

357. जा.जी. 21/167

358. भनिनीनां विनोदाय सा कदाचिदुपेयुषी।
तासां निवाससद्‌ानि कुरुते स्मानुरञ्जनम्।। जा.जी. 9/68

359. जा.जी. 1/17-31

360. जा.जी. 10/31-40

361. जा.जी. 11/47-55, 62

362. जा.जी. 11/68-77

363. जा.जी. 14/44, 45, 58-59

364. जा.जी. 14/19, 67

365. जा.जी. 17/21, 23, 29-32

366. जा.जी. 18/89-105

महाकाव्य में प्रयुक्त रस, गुण, अलंकार, छन्द आदि का विवेचन

काव्य में माधुर्य, सरसता एवं चारुता के संवर्धन के लिए रस का समावेश आवश्यक है। रसों का संतुलित समावेश ही महाकाव्य को मनोहरता प्रदान करता है। रसौ वै सः। रसं ह्येवायं लब्ध्वाऽऽनन्दी भवति।[1] रस को प्राप्त कर आत्मा आनन्द रूप होता है। इसी आनन्द को साहित्यिक परिभाषा में 'रस' कहा जाता है। 'रस' शब्द का अर्थ ही है- वह वस्तु विशेष जिनका आस्वादन किया जाता है- शब्द का अर्थ ही है- वह वस्तु विशेष जिनका आस्वादन किया जाता है- रस्यते आस्वाद्यते इति रसः। रसनं रसः आस्वादः के अनुसार जो आस्वाद है, उसको रस कहते हैं, इसी आधार पर श्रृंगार आदि को रस कहा जाता है। महाकाव्य के पठन-श्रवण से सहृदयों को जिस विलक्षण आनन्द की प्राप्ति होती है, वही रस है अतएव महाकाव्यों में रस सन्निवेश अपरिहार्य है। रस सिद्धान्त के आदि प्रवर्तक भरत मुनि के अनुसार रस के बिना किसी अर्थ का प्रवर्तन काव्य में नहीं होता-

नहि रसाद् ऋते कश्चिदर्थः प्रवर्तते।[2]

जानकी जीवनम् महाकाव्य में संयोग श्रृंगार का शिष्ट एवं विप्रलम्भ श्रृंगार का सभी अवस्थाओं सहित समधिक चारु प्रस्फुटन है। जानकी जीवनम् महाकाव्य में संयोग श्रृंगार का शिष्ट एवं विप्रलम्भ श्रृंगार का पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण अवस्थाओं सहित समधिक सुन्दर परिपाक हुआ है। परस्पर प्रणय है, किन्तु मुनिव्रत के कारण नायक-नायिका में सङ्गम का अभाव है। तत्पश्चात् अपहृता सीता राम के लिए अप्राप्य है अतएव रति का स्थायित्व होने पर भी आयोग श्रृंगार की स्थिति में उनका मिलन नहीं होने के कारण विप्रलम्भ श्रृंगार की अवस्थिति बनी रहती है। इस वियोग के पश्चात् राम-सीता के जीवन में संयोग की सुन्दर स्थिति बनती है एवं सदैव बनी रहने के कारण श्रृंगार की मधुर अनुभूति सहृदयों को होती है अतएव महाकाव्यों के अंगीरस के रूप में श्रृंगार रस को माना जा सकता है। महाकाव्य में अंगरस के रूप में हास्य, करुण, रौद्र वीर, भयानक वीभत्स, अदभुत, शान्त रसों का पल्लवन हुआ है।

श्रृंगार रसः नायक-नायिका रूप आलम्बन से तथा ऋतु, माल्य, चन्द्र, उपवन आदि उद्दीपनों से उद्बुद्ध, भ्रूविक्षेप, कटाक्ष आदि कायिक अनुभवा, मधुर-ललित वचन रूप वाचिक अनुभाव एवं स्वेद आदि सात्विक अनुभाव एवं स्वेद आदि सात्विक अनुभाव से प्रतीति योग्य, लज्जा, औत्सुक्य आदि व्यभिचारी भावों से परिपुष्ट रति रूप स्थायी भाव आस्वाद श्रृंगार रस है। यथा -

ऋतु माल्यालं कारैः प्रियजन-गान्धर्व-काव्य-सेवनतः।
उपवन-गमन-विहारैः श्रृंगार रसः समुद्र भवति।।[3]

कामदेव का आगमन श्रृंगार रस है एवं वह प्राय: उत्तम प्रकृति वाला होता है। यथा –

श्रृंग हि मन्मथोद्भदस्त दागमनहेतुक:।
उत्तम प्रकृति प्रायो रस: श्रृंगार इष्यते।।[4]

जानकी जीवनम् महाकाव्य में धीरोदात्त राम के हृदय में जानकी दर्शन से उत्पन्न होने वाला काम भाव सहृदयों को श्रृंगार रस की सहसा ही अनुभूति करवा रहा है यथा–

रतिराग विवर्धनाङ्गधकुरैर्मदनो घ्यान मनोज्ञ दर्शनै5।
ज्वलितो ननुजानकी शिखो हृदि रामस्य मनोभवानल:।।
चि बुक मुन्नमयत्यथ राघवे पुलक जाततनूरूह चेतने।
वृति निलीन सखीजन मण्डलै: स्फुट महासि जितंन्यितियादिभि:।।[5]

रति जब स्त्री तथा पुरूष, दोनों के संयोग काल में उपयुक्त होती है, तब वहाँ सयोग श्रृंगार होता है।[6] प्रसन्न मन रनिवास में संचरण करती हुई सीता को छुपकर खड़े हुए राम के द्वारा एकाएक ही आलिगिंत कर चूम लिया जाता है, तब सहसा ही श्रृंगार रस की अनुभूति हो जाती है। यथा–

अन्त: पुरप्रतोलीषु चरन्ती निभृतम्मुदा।
स्तम्भ कोण निलीनेन प्रियेण गोपितात्मना।।
मुञ्चमुञ्चेति सव्रीडं भणन्ती मृदुबाचिकम्।
कदाच्चि दृढं बद्धवा भुजयोराशु चुम्बिता।।[7]

यहाँ सीता सम्मत रति का आलम्बन विभाव राम है तथा नायका राम सम्मत रति का आलम्बन विभाव सीता है, अन्तपुर का एकान्त स्थल उद्दीपन विभाव है। दर्शन आलिंगन, चुम्बन, मृदुवचन, अनुभाव एवं रोमांच लज्जा व्यभिचारी भाव है।

विप्रलम्भ श्रृंगार : जहाँ नायक–नायिका का परस्पर अनुराग रहता है। परन्तु परतन्त्रता वश अथवा दैव के कारण दूर रहना पड़े या उनका संगम नहीं हो पाता वहाँ विप्रलम्भ श्रृंगार होता हैं। आचार्य विश्वनाथ के अनुसार–

“यत्र तु रति: प्रकृष्टा नाभीष्टमुपैति विप्रलम्भोऽसौ”[8]

यह विप्रलम्भ श्रृंगार (अ) पूर्वराग (ब) भान, (स) प्रवास, (द) करूण उपर्युक्त भेदों से चार प्रकार का होता है।[9] जानकी जीवनम महाकाव्य में इन चारों ही अवस्थाओं का सन्निवेश हुआ है। राम एवं सीता का परस्पर प्रवृष्ट प्रेम है। महाकाव्य में सीता राम के अति प्रवृद्ध प्रेम को दर्शाया गया है किन्तु नियति प्रेरित वनवास, अपहरण आदि प्रकरणों में विप्रलम्भन श्रृंगार की स्थिति घटित कर दी।

हास्य रस :- हास्य रस का स्थाई भाव हास है। विक्रत आकार, वाणी, वेष के दर्शन से चित्त के विकास को हास कहते हैं।[10] जानकी जीवनम् महाकाव्य के नवम् सर्ग में हास्य रस का सन्निवेश किया गया है, लक्ष्मण जब उर्मिला को पंकिला तथा मिथिला को शिथिला कहकर मुँह चिढ़ाते हैं, तब सीता अपने वाक् कौशल से लक्ष्मण को परास्त कर देती है। यथा -

कूष्माण्डालाबुतुल्याः किं मिथिलाया कुमारिकाः।
यास्तु यः कोऽपि गृहृणीयात् पक्वानशन लोलुपः।।
वीर्यशुल्का भवन्त्येताः काऽत्र कार्या विचारणा।
अयोध्यादारिका एव सन्ति दानार्पणक्षमाः।।
एवमार्या वचोयुक्ता सिद्ध मैथिल गौरवा।
उर्मिलाऽपि जहासो च्चैर-तालशब्द विकस्वरा।।[11]

यहाँ सीता की विनोद पूर्ण वाणी आलम्बन विभाव, विचित्र मुद्रायें उद्दीपन विभाव, खिल उठना, ताली बजाना, उठाकर हँसना, अनुभाव तथा हर्ष, मुदिता जैसे संचारी भावों से अभिव्यञ्जित हास रस रुपता को प्राप्त हो रहा है।

करुण रस : इष्ट वस्तु के नाश पर या अनिष्ट वस्तु की प्राप्ति पर उत्पन्न शोक स्थाई भाव की पुष्टि करुण रस है। विश्वनाथ के अनुसार -

इष्टनाशादि मिश्चेतोवैकलव्यं शोकशब्द भाक्।।[12]

जानकी जीवनम् महाकाव्य में करुण रस का समावेश अंग रस के रूप में किया गया है, करुण रस परिमलिल महाकाव्य का अंश समधिक मर्म स्पर्शी बन पड़ा है, कैकयी के द्वारा चौदह वर्ष के लिये राम का वनवास माँगे जाने पर, राजा दशरथ पुत्र वियोग की आशंका में अतिशय व्याकुल हो गये। यथा-

निशम्यैव वाचोऽपतद्भूमिल्ये विसंज्ञौ नृपश्छिन्न मूलद्रुकल्पः।
चिर स्थानियीं तामतिक्रम्य मूर्च्छां सनेत्राश्रुपातं स्खलद् वागुवाच।।[13]

यहाँ प्रिय राम के वियोग में दशरथ व्याकुल हैं। दशरथ सम्मत शोक के लिये, राम आलम्बन विभाव, भूतल पर गिरना, मूर्छा, रोदन, कण्ठ का भर आना अनुभाव तथा जड़ता, दैन्य से पोषित करूण रस रुपता को प्राप्त हो रहा है।

रौद्र रस : रौद्र का स्थाई भाव क्रोध है, विरोधियों के प्रति जो हृदय में तीक्षणता या प्रतिरोध की भावना उत्पन्न होती है वही क्रोध कहलाता है।

प्रतिकूलेषु तैक्ष्ण्यस्यात बोधः क्रोध इष्यते।[14]

जानकी जीवनम् में रौद्र रस का सर्वप्रथम स्वरूप हमें मन्थरा क्रोध में दिखाई देता है, जब विधाता प्रेरित बुद्धिवाली, वह राम के राज्याभिषेक से कैकयी का अहित होता देखती है, तो अत्यन्त क्रोध से भरकर कैकयी का अहित होता देखती है, तो अत्यन्त क्रोध से भरकर कैकयी को समझाने के लिये आती है कि तुम्हारे पुत्र को घर से बाहर में जाकर तुम्हारे विरूद्ध षड्यन्त्र किया जा रहा है, मन्थरा का रौद्र स्वरूप प्रस्तुत है–

पदास्कन्दिता कालसर्पीव रोषाच्छ वसन्ती द्रुतं लोहित प्रेक्षणाऽसौ।
स्मितैर्नन्दिता भुवतन्या सहेलं विपृष्य कथं मन्थरे खिद्यसेत्वम्।।[15]

यहाँ पर राम का राज्याभिषेक मन्थरा के लिये आलम्बन, राम राज्याभिषेक से प्रफुल्लित, अयोध्या में उत्सव, इस बात का ज्ञान कैकयी को न होना और भरत की अनुपस्थिति उद्दीपन, उच्छ वास लेना, नेत्रों का रक्तवर्ण होना अनुभाव, अमर्ष व्यभिचारी भाव है।

वीर रसः वीर रस का स्थाई भाव उत्साह है। कार्य करने में स्थिर उद्योग का नाम उत्साह है। जानकी जीवनम् में वीर रस के उदाहरण कतिपय स्थलों पर अव्यक्त तथा कुछ स्थानों पर स्पष्ट रूप से मिलते हैं। महाकाव्य के नायक राम अत्यन्त पराक्रमी हैं तथा बाल्यावस्था में ही गुरु विश्वामित्र की कृपा से दिव्यास्त्रों का ज्ञान प्राप्त करके, उत्साह पूर्वक शत्रुओं का संहार में वीर रस का सन्निवेश प्राप्त होता है। दण्डकारण्य में अवस्थित राक्षसों के लिये राघव का उत्साहित होना वीर रस से सहृदयों को आप्यायित कर जाता है। यथा–

मण्डली कृत कार्मकस्स विमुच्य मौर्वी चण्डरावम जीजनत् भुवन प्रकम्पम्।
राक्षसा बधिरायिताः किल येन कल्प ध्वंस कालपयोद गर्जित सन्निभेन।।
निर्भय प्रविवेश राक्षस सैन्यगर्भे केसरीव कराल द्रष्ट इभेन्द्रयूथे।
तीक्ष्ण सायकतर्षणै ककुभोविरून्धन राक्षसान् स ददाह तूलनिभान् क्षणेन।।[16]

यहाँ राम सम्मत उत्साह के लिये राक्षस आलम्बन विभाव, यज्ञ में विघ्न, मुनियों की हत्या, राक्षसी सेना का घेरा उद्दीपन विभाव, वैष्णव धनुष की प्रत्यञ्चा खींचना, युद्ध भूमि में प्रवेश करना, तीक्ष्ण वाणों का वर्षण, राक्षसों का मारना अनुभाव तथा धैर्य, निर्भयता व्यभिचारी भावों से अभिव्यञ्जित होकर वीर रस का आस्वादन हो रहा है।

भयानक रस : भयानक रस का स्थायी भाव भय है, किसी भीषण वस्तु के कारण चित्त में जो विकलता उत्पन्न हो जाती है। वही चित्तवृत्ति 'भय' कहलाती है। यथा –

रौद्र शक्त्या तु जनितं चित्तवैक्लव्यदं भयम्।[17]

जानकी जीवनम् महाकाव्य में रावण का षड्यंत्र एवं मारीच की प्रवञ्चना सीता के लिए भय की सृष्टि करती है एवं भयानक रस के परिपाक के लिए अवसर प्राप्त है। राम जब गहन वन में

पहुंच जाते हैं तो मारीच रावण की योजनानुसार राम के स्वर में आर्तनाद करता है जिसे सुनकर सीता अत्यन्त भयभीत हो जाती है और रावण पर आपत्ति की आशंका करती हुई लक्ष्मण से राम की सहायतार्थ जाने की बात कहती है। यथा –

मैथिली धन गर्जित प्रचितं तदार्त वाचिकं नु निशम्य नष्ट विवेक धैर्या।
राघव व्यसनार्दिता सदति भयार्ता लक्ष्मणं वचनं जगाद सवाष्प कण्ठा।।
राघवो व्यसनार्दितो ध्रुवमेव मन्ये आजुहोति सहोदरं स्वसहायतायै।
गच्छ लक्ष्मण! या विलम्यमये भजेथा भज्जतीव मनो भदीय मगाध सिन्धौ।।[18]

मेघ गर्जना के समान उस आर्तवाणी को सुनकर, सीता का विवेक एवं धैर्य नष्ट हो गया, वह राघव की विपत्ति की आशंका से भयार्त हो उठी तथा रोती हुई, भर्राए कण्ठ से, देवर लक्ष्मण से बोली –मेरा मन कहता है।

निस्संदेह संकट ग्रस्त राघव अपनी सहायता के लिये सहोदर को पुकार रहे हैं। जाओ लक्ष्मण विलम्ब मत करो। मेरा मन अबाध विपत्ति सागर में डूबता जा रहा है। यहाँ सीता सम्मत भय के लिये आर्त स्वर आलम्बन विभाव, मायावी राक्षसों की निवास स्थली पञ्चवटी का नीरव वातावरण उद्दीपन विभाव, रोदन, भर्राए कण्ठ से कथन अनुभाव तथा अस्थिरता अधीरता, व्यभिचारी भाव हैं।

अद्भुत रस : अद्भुत रस का स्थायी भाव विस्मय है। विलक्षण वस्तुओं के दर्शन श्रवण आदि से होने वाला चित्त का विकास ही विस्मय कहलाता है। यथा –

विविधेषु पदार्थेषु लोक सीमति वर्तिषु।
विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृत:।।[19]

जानकी जीवनम् में अद्भुत रस का परिचय कुछ स्थलों पर दृष्टिगोचर होता है। सर्वप्रथम तो सीता के जन्म से पूर्व ही अद्भुत अवस्था उत्पन्न हो जाती है। सीता का जन्म ऐसी अवस्था में हुआ जो पूर्णरूपेण आश्चर्य जनक ही था। गुरू की आज्ञा से स्वयं राजा नजक भूमि जोतने के लिये खेतों में पहुंचे, उस समय एक स्थान पर अचानक ही हल का अग्रभाग जमीन में अटक गया जिसे निकालने के लिये उन्होंने पूरी शक्ति से हल की नोंक लगजाने से टूटा हुआ घड़ा दिखाई दिया जिसमें कोमल बालिका शयन कर रही थी। उसे देखकर राजा सहित सब लोग आश्चर्य चकित हो गये। यथा –

दृगञ्चलानि द्युतिमिर्नयन्तां मलीय सान्धत्यममन्दवेगा।
समाजयन्ती कुतुकं समेषां युगान्तमेघोदरदामिनीव।।
व्यलोक सर्वैरपि लाङ्गलाग्रप्रहारभिन्नोदर कुम्भतल्पे।
सुखं शयाना मदिरायताक्षी दिवौकसां श्री रिव कापि बाला।।[20]

यहां पर जमीन से उत्पन कन्या आलम्बन, वहाँ का वातावरण उद्दीपन, नेत्रों का विकास अनुभाव तथा राजा और प्रजा का कुतुहल हर्ष, उस दिव्य कन्या के प्रति आकर्षण व्यभिचारी भाव है। साथ ही आकाशवाणी द्वारा राजा को वह कन्या पुत्री रूप में लेने की आज्ञा देना तथा बालिका के अवतरण के साथ ही वर्षो। पुराने अकाल का समापन हो जाना भी विलक्षण घटना है। यहाँ आकाश में उमड़ती घटायें तथा घनघोर वर्षा भी विस्मया वह है, अतः अद्‌भुत रस की सृष्टि करती है।

विदेहवाचेति विकीर्य माणे स्फुटाक्षरासंख्य मौक्तिकौघे।
बलाहकाना ततयोऽप्यकस्मान्निरन्तरालं गगने विरुढाः।।[21]

शान्त रस : जानकी जीवनम् महाकाव्य में अंग रस के रूप में शान्त रस का प्रयोग किया गया है। मम्मट के अनुसार शान्त रस का स्थायी भाव निर्वेद है। यथा –

निर्वेदस्थायी भावोऽस्ति शान्तोऽपि नवयो रसः।[22]

पं. जगन्नाथ के अनुसार नित्य एवं अनित्य वस्तुओं के विचार करने से जिसकी उत्पत्ति होती है, उस विषय विरक्ति नामक चित्र की वृत्ति को निर्वेद कहते हैं। यथा –

नित्यानित्यवस्तु विचार जन्मा विषय विरागाख्यो निर्वेदः।[23]

जानकी जीवनम् महकाव्य में षोडश सर्ग में अनेक रमणीय एवं पावन स्थलों का अभिराम विवेचन है, जिनका दर्शन मात्र ही चित्त वृत्तियों का शमन करने में सक्षम है। द्रष्टव्य है–

अयमुपनदि वृक्षैः सत्फलैः सान्द्रकुञ्जैरमृत सलिल वारिस्रोतसा सम्परीतः।
गिरिशखर विलीनश्चाश्रयोऽत्रेर्महर्वेरिह सकृदन सूया त्वांदिदेशात्रभार्या।।[24]

यहाँ परमात्म स्वरूप आलम्बन विभाव, अत्रि ऋषि का रमणीय वातावरण, उद्दीपन अनूसया के उपेदशमृत का पान अनुभाव तथा मति संचारी भावों से अभिव्यञ्जित शान्त रस है।

संदर्भ सूची

1. तैत्तिरीयोपनिषद 12.7
2. भरत नाट्य शास्त्र अध्याय – 6
3. नाट्य शास्त्र 6/47
4. साहित्य दर्पण 3/186
5. जानकी जीवनम् 6/59
6. साहित्य दर्पण 3/210
7. जानकी जीवनम् 9/48, 49
8. साहित्य दर्पण 3/213
9. जानकी जीवनम् 19/49, 50
10. वागङ्गादिविकार दर्शन जन्मा विकासोख्यो हासः। रसगङ्गा धर। प्रथम आनन
11. जानकी जीवनम् 9/73, 74, 77
12. साहित्य दर्पण 3/176/2
13. जानकी जीवनम् 10/68
14. साहित्य दर्पण 3/177
15. जानकी जीवनम् 10/32
16. जानकी जीवनम् 11/58, 60
17. साहित्य दर्पण 3/178
18. जानकी जीवनम् 11/77-78
19. साहित्य दर्पण 3/180
20. जानकी जीवनम् 1/41, 42
21. जानकी जीवनम् 1/49
22. काव्य प्रकाश 4। सूत्र 47
23. रस गंगाधर !प्रथम आनन
24. जानकी जीवनम् 16/4

गुण

महाकाव्य के अन्तर्गत माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण संवलित भाषा की विशिष्ट विशेषता स्वीकार की गई है। ये गुण काव्य की आत्मा के उपकारक हैं।[1] जानकी जीवनम् महाकाव्य में प्रसाद गुण प्रमुख रूप से परिलक्षित होता है। साथ ही राम-रावण युद्ध में वीरत्व अभिव्यञ्जन में ओज गुण का तथा राघव राम की जानकी जी के प्रति प्रीति में माधुर्य गुण का चारू प्रस्फुटन है।

आलोच्य महाकाव्य में विलसित गुणों का विवेचन निम्न प्रकार है-

(1) प्रसाद गुण :-

शुष्केन्ध नाग्निवत् स्वच्छ जलवत्स हसैव यः।
व्यानोत्यन्यत् प्रसादोऽसौ सर्वत्र विहितस्थितिः।।

अर्थात् सूखे ईंधन में अग्नि के समान तथा स्वच्छ वस्त्र में जल के समान जो गुण एकाएक चित्त में व्याप्त हो जाता है, उसे प्रसाद गुण कहते हैं। प्रसाद गुण के व्यञ्जक तत्त्व -

श्रुतिमात्रेण शब्दात्तु येनार्थ प्रत्ययो भवेत्त्।
साधारणः समग्राणां स प्रसादो गुणो मह:।।

अर्थात् जिस वर्ण, समास अथवा रचना के श्रवण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाए, वह सभी रचनाओं में रहने वाला तत्त्व प्रसाद गुण का व्यञ्जक तत्व कहलाता है। जानकी जीवनम् में प्रसाद गुण का चित्रण दृष्टव्य है-

अर्धाङ्गिनी दाशरथेर्बभूव प्रभामयी भूमिसुता प्रियेण।
स्वञ्जीकृते शम्भुशरासनेऽस्मिन् स्वयंवरेणैव जगत्समक्षम्।।[2]

यहाँ श्रुति मधुरवर्ण, मध्यम समास तथा मधुर रचना, सभी प्रसाद गुण को अभिव्यजित कर रहे हैं। पढ़ने या श्रवण मात्र से अर्थ की एकाएक प्रतीति हो रही है। -

कर्णामृतझरीकल्पं श्रुत्वा प्रियतमोदितम्।
निर्व्याज मधुरं रम्यं स्मर भाव विवर्धनम्।।
प्रभात कुन्द संकोचा लोलयत्सतरी गतिः।
त्रपा भार निरुद्धाऽपि कान्तानुनय चञ्चला।।[3]

भाषा की सरसता एवं प्रसादिकता अनुभावगम्य ही है, प्रकृति सुषमा का चित्रण मसृण, कोमल, प्रसादगुणानुन्वित शैली में शोभाजनक हुआ है।-

जातं कोक नदं भिन्नवाति मन्दं समीरणः।
नीहार कणिका श्चापि नलिनीपत्र भर्त्सिताः।।
गन्धचूर्णै रजोभिश्च पुष्पाणां तटवासकैः।
तारापथाङ्गणं रम्यं सुरचपायितं वयौ।।[4]

(2) माधुर्यगुण :-

आह्लाद कत्व माधुर्य श्रृंगारे द्रुतिकारणम्।

अर्थात् चित्त की द्रुति का कारण आह्लाद कत्व या आनन्द स्वरूपता ही माधुर्य गुण है और वह श्रृंगार रस में रहता है। इस प्रकार माधुर्य गुण-करूण, विप्रलम्भ श्रृगार एवं शान्तरस में उत्तरोत्तर चमत्कार जनक होता है। माधुर्यगुण व्यञ्जक तत्व-

मूर्ध्नि वर्गास्त्यगाः स्पर्शा अटवर्गा रणौ लघू।
अवृत्तिर्मध्यवृत्तिर्वा माधुर्ये घटना तथा।।

अर्थात्- ट, ठ, ड, ढ से रहित क से लेकर म पर्यन्त समस्त स्पर्श संज्ञक वर्ण अपने वर्ग के अन्तिम वर्ण से युक्त तथा हृस्व से व्यवहित रेफ तथा ण कार, समास रहित एवं स्वल्प समास युक्त या अन्य पदों के साथ योग से माधुर्य युक्त रचना, माधुर्य गुण की व्यञ्जक होती है।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में माधुर्य गुण का रुचिक समावेश सीता की शोभा राम वर्णन, सीता के उदात्त प्रणय की अभिव्यञ्जना में, राम-सीता की वियोगावस्था में तथा शान्त रस की मधुरिम अभिव्यञ्जना में हुआ है। यथा- सीता की कङ्कण किङ्किणी नूपुर की सुमधुर ध्वनि राम को विकल बना रही है। उनकी हृदस्थ प्रीति का प्रकाशन माधुर्य गुण संवलित होकर शोभातिशायी बन गया :-

तमनङ्गशरासन ध्वनिं जय निञ्चापि निशम्य विक्लवः।
स्मर भाव विसारणणामयाद्दधुना थोऽनुजमाह पशेलम्।।
क्व नु सारसनावम्बिनी श्रवणान्तं समुपैति किङ्किणी।
प्रिय लक्ष्मण मार्यगा चिंर विजनेऽस्मिन्क्वनु गीमते कलम्।।[5]

इसी प्रकार विप्रलम्भ श्रृंगार में माधुर्य गुण की अवस्थिति-

त्यपाङ्ग विभङ्ग लोकनश्रिमसंख्य मम लोचन द्वयम्।
दयितोत्तम! काङ्क्षति ध्रुवं समवाप्तुं करकज्जलोर्पणम्।।[6]

करुण रस की अभिव्यञ्जना में माधुर्यगुण का सौन्दर्य द्रष्टव्य है-

वियोग सन्ताप दुरन्त दुःस्मृति प्रसूत नेे जाम्बुभरैर्न्वलन्तनुम्।
निषेचयन्ती दृगपाङ्ग भङ्गिभिः प्रियोन्मुखी सा लघुतामशि श्रियत्।।[7]

(3) ओजगुण :-

दीप्त्यात्मविस्तृते र्हेतुरोजो वीरस रस स्थितिः।

अर्थात् चित्त के विस्तार की हेतुभूत वीर रस में रहने वाली दीप्ति ही ओजगुण कहलाती है। पुरुष वर्णो का प्रयोग, दीर्घ समास तथा विकट रचनाएँ ओजगुण के व्यञ्जक होते हैं। जानकी

जीवनम् महाकाव्य में सागर संस्तरण वर्णन तथा राम–रावण युद्ध पृथ्वी छन्दोबद्ध है। वहीं पर ओजगुण का सम्यक् प्रतिपादन हुआ है। यथा–

विदेह तनयाव्यथा क्षुभितसर्वगात्रो ज्वलतरोष–
शिखिधर्षितो भ्रकुटिवक्रतामादधत्।
दिधक्षुरिवरावणं सकुल मेवं लंकापुरं
कृशानुमुखभूधरो रघुपतिर्द्रुति प्रोत्थितः।।[8]

यहाँ पर कठोर वर्णो का प्रयोग, दीर्घ समास एवं विकट रचना होने के कारण ओजगुण ध्वनित हो रहा है, इसी प्रकार सागर संस्तरण का प्रतिपादन ओजगुण में होने से वह चित्त को उदीप्त करने वाला है।

अथोदधितितीर्षया सुदृढ़ सेतुकं त्वष्ट् ऋजौ
बबन्ध तुररिन्दमौ गिरिबृहच्छिला सञ्चयैः।
विलोक्य नलनीलयोः स्थपति कर्म दाक्ष्यं प्रभुः
शशंस सुपथञ्च तं जलधि पारगं मञ्जुलम्।।[9]

इस प्रकार जानकी जीवनम् महाकाव्य की भाषा शैली में तीनों ही गुणों का मञ्जुल समन्वय हुआ है। जो काव्य चारूता का संवर्ध तो करता ही है। भावों की संप्रेषणीयता को भी तीव्रता कर देता है।

सन्दर्भ –

1. ये रस संयोगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
   उत्कर्ष हेतवस्ते स्युश्चला स्थितयो गुणाः।। काव्य प्रकाश
2. जानकी जीवनम् 7/87
3. वही 9/61, 62
4. जानकी जीवनम् 9/82, 89
5. जानकी जीवनम् 5/60, 61
6. जानकी जीवनम् 12/27
7. वही 13/28
8. वही 13/29
9. वही 14/27

अलंकार

अलंकार काव्य को विविध प्रकार के सौन्दर्य से सुशोभित कर देता है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में अंलकारों की योजना स्वाभाविक है, जिनसे काव्य सौन्दर्य विलसित हुआ है। कवि ने अपनी कृति को विविध अलंकारों से सम्पन्न बनाकर चारूता का सवर्धन तो किया है। जानकी जीवनम् महाकाव्य में उपमा, अनुप्रास, रूपक, उत्पेक्षा, यमक, श्लेष, अर्थान्तरन्यास, दृष्टान्त, निदर्शना, विभावना, विशेषोक्ति, उदात्त, स्वभावोक्ति समासोक्ति, दीपक, प्रतिवस्तुपमा, पर्यायोक्त, काव्य लिङ्ग व्यतिरेक एवं एकावली अलंकारों का अति मनोरम प्रयोग है। दृष्टव्य हैं जानकी जीवनम् महाकाव्य में प्रयुक्त अंलकारों का उदाहरण सहित विवेचन।–

1. उपमा : काव्य में जहाँ उपमान व उपमेय में प्रस्फुट, सुन्दर साम्य का चित्रण हो, वहाँ उपमा अलंकार होता है।

प्रस्फुटं सुन्दर साम्य मुपमेत्यभिधियते।[1]

उपमालङ्कार में मुख्यत: चार अवयव होते हैं, उपमेय, उपमान, समान धर्म व उपमावाचक शब्द। 'साधर्म्यमुपमा भेदे'। अर्थात् उपमान तथा उपमेय का भेद होने पर साधर्म्य का कथन 'उपमा' अलंकार होता है। यह साम्य क्रियागत, गुणगत तथा क्रियागुणगत होता है। पूर्णा, लुप्ता, मालोपमा के विचार से इस अलंकार के अनेक भेद होते हैं, जानकी जीवनम् महाकाव्य में नायक-नायिका के सौन्दर्य वर्णन में चरित्र की दिव्यता, माधुरी के विलास में मनमोहक उपमाओं का प्रयोग किया है। यथा–

सा मल्लिकाक्षप्रमदाङ्घ्रिचर्या नीराजना विग्रह सम्मुखीना।
शशाङ्कलेखेवे पुरस्सरन्ता सीता कथञ्चित्प्रिय माजगाम।।[2]

राजहँसिनी के समान पदगति वाली, मूर्ति के सम्मुख प्रज्ज्वलित आरती के समान तथा सञ्चरण शीला चन्द्रिका के समान आगे बढ़ती हुई वह सीता यथा कथञ्चित् प्रियतम तक आई यह क्रियागत उपमा का उदाहरण है, आगे बढ़ती हुई अपूर्व शोभा को प्राप्त सीता उपमेय, राजहँसिनी की चाल, प्रज्ज्वलित आरती एवं सञ्चरण शीला चन्द्रिका उपमान इव उपमावाचक शब्द है।

दीप्त्या रविश्चन्द्रकमेय चन्द्रो वसन्तलक्ष्म्येव हि चैत्रमास:।
रत्या स्मरो लोकपति: श्रिया वा रराज रामोऽपि तथा तदानीम्।।

मयूख प्रभा के साथ सूर्य चन्द्रिका के साथ चन्द्रमा, बसन्त सुषमा के साथ मधुमास, रति के साथ कामदेव, लक्ष्मी के साथ नारायण के ही समान सीता के साथ राम अनुपम लग रहे थे। यह पूर्णोपमा का प्राञ्जल उदाहरण है। यहाँ सीताराम की युगल छवि उपमेय मयूख प्रभा सूर्य, चन्द्रिका

चन्द्र, बसन्त सुषमा मधुमास, रति–कामदेव, लक्ष्मीनारायण उपमान, इव उपमा वाचक शब्द तथा रराज साधारण धर्म है। एक ही उपमेय की अनेक उपमानों के साथ समानता होने के कारण यहाँ मालोपमा विलसित हुआ है। माला पक्ष की अन्यत्र प्रस्तुति शोभनीय है। यथा –

कलेव चान्द्री स्फुट चारुशोभा ज्वलद्धुताशप्रतिया तनेव।
लतेव मालेव धरासुतेव प्रमोहविद्धं विदध जनं सा।।[3]

पृथ्वी कन्या उपमेय को अनेक उपमानोंसे उपमित करने के कारण यहाँ मालोपमा अलंकार है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में उपमा का अतिशय शोभन स्वरूप दृष्टिगत होता है। उन्हीं में से क्रियागुण गत उपमा का उदाहरण द्रष्टव्य है:–

त्रिपथगेव सरन्निकरान्विता गगम मेव शचीन्द्रधनुर्युता।
स्वनदलि च्छुरितेव वशावृत वनयमङ्ग सुतेव समीयुषा।।[4]

चली आती हुई सीता को सरिन्मालाओं से अन्वित त्रिपथगा के समान इन्द्रधनुष से श्री मण्डित आकाशदीप्ति के समान तथा हथिनियों से घिरी–घिरी भन भनाते हुए मधुकरों से व्याप्त वन मतङ्ग बाला के समान बताया गया है।

यहाँ सीता उपमेय, त्रिपथगा, आकाश दीप्ति, वन मतङ्ग बाला उपमान, इव उपमावाचक शब्द है। सीता की शोभा गुण है तथा चाल क्रिया होने के कारण यहाँ गुण क्रियागत उपमा का प्रयोग हुआ है।

2. अनुप्राश : वर्णो की सुन्दरता से आवृत्ति काव्य सौन्दर्य संवर्धन में तो सहायक है ही काव्य में अनुरणात्मक प्रभाव उत्पन्न करने में भी सक्षम हैं। जानकी जीवनम् महाकाव्य में अनुप्राश अलंकार का अतिशय शोभन उपयोग हुआ है। गेयात्मक जानकी जीवनम् महाकाव्य में अनुप्राश अलंकार की योजना मोहक रूप में हुई है।

वर्णा साम्यानुप्राश : वर्णसाम्य को अनुप्रास कहा जाता है , इसमे शब्द विधान द्वारा काव्य चारूता में चमत्कारित्व पाया जाता है। स्वरों की विषमता होने पर भी जो शब्द साम्य होता है, वही अनुप्राश अलंकार है।[6]

इसी को स्पष्ट करते हुए काव्य दीपिका में कहा गया है कि

स्वरवै सादृश्येऽपि व्यंजन मात्र सादृश्यम् अनुप्राश:।

व्यञ्जनों की पुनरावृत्ति को ही अनुप्रास अलंकार कहेगें। यहाँ आवृत्ति रसानुकूल हो तभी शोभादायक हो सकती है। अर्थात् काव्य के द्वारा जिस रस की व्यंजना की जा रही है। उस रस के अनुकूल ही वर्णो की पुन: आवृत्ति होनी चाहिये।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में अनुप्रास अलंकार का समायोजन रसानुकूल ही है। श्रृंगार, करुण, शान्त, वात्सल्य आदि रसों में श्रुति मधुर कोमल वर्णों की आवृत्ति है तो वीर, रौद्र रसों में पुरुष वर्णो की आवृत्ति है। अनुप्रास अलंकार का लालित्यपूर्ण उदाहरण द्रष्टव्य है–

मुदिर मेदुर चन्दिरवन्दितं चटुल कुन्तल लालिततन्मुखम्।
यदि कृतं न दृशोस्स कृदा स्पदं धिगयि मैथिलि! जीवितमेवते।।[7]

यहाँ मुदिर मेदुर में द् र् वर्णो की, चन्दिर वन्दितं में न्द, न्द वर्णो की एवं ल् स् वर्णो की आवृत्ति होने से अनुप्रास अलंकार है। वियोग में अनुसार का प्रयोग चित्ताकर्षक है यथा –

सजल जल धराणां घोरघोरं विरावं श्रवनपुट निवेयं धैर्य विध्वंसदक्षम्।
शिशुरिव निक्षिश्रृण्वन्न स्फुट क्रन्द नार्तः इह सुदति घृतोऽहं लक्ष्मणेनाङ्कपालयाम्।।[8]

यहाँ सजल जलध में जल, घोरघोरं में घोर शब्द साम्य के आधार पर अनुप्रास अलंकार है–

प्रजामनोवृत्तिसमर्थ नम्मे श्रद्धेय कृत्यं प्रथमं वरिष्ठम्।
प्रजाहितं प्रीततमं महिष्ठं प्रजैव सर्व किल राम राज्ये।।[9]

यहाँ प्र, त, रा वर्णों की चारुता पूर्ण आवृत्ति होने से ही अनुप्रास अलंकार है।

3. रूपक :

तद्रुपकमभेदो य उपमानोपमेययोः।[10]

अर्थात् जहाँ उपमान व उपमेय में अभेदत्व का आरोप किया जाये वहाँ रूपकालंकार होता है। रूपक अलंकार में उपमेय पर उपमान का आरोप कर दिया जाता है। अर्थात् उपमेय को ही उपमान बता दिया जाता है, या समझ लिया जाता है।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में रूपक अलंकार का सुन्दर स्वरूप प्रस्तुत है। –

कराङ्घ्रिरक्तोत्पल मास्य पङ्कजं विलोचन द्वन्द्व कुवेलमद्भुतम्।
विलम्बिह स्ताग्रमृणाल युग्मकं समेत्य जातं क्षितिजाङ्गपुष्करे।।[11]

कर तथा चरण रूपी लाल कमल, मुखी रूपी श्वेत कमल, नेत्र द्वय रूपी अद्भुत नील कमल तथा अवनमित मणिबन्ध रूपी कमल नाल का जोड़ा सब एक ही साथ सीता के शरीर रूपी सरोवर में उत्पन्न हुये।

यहाँ पर अतिशय सादृश्य के कारण हस्त, चरणों पर अरूण कमल का, मुख पर श्वेत कमल का, नेत्रों पर नीलकमल का, मणिबन्ध पर कमल नाल का तथा सीता की काया पर सरोवर के अभेदत्व का आरोप किया गया है, उपमेय पर उपमान का आरोप होने के कारण यह रूपकालंकार है।

4. उत्प्रेक्षा : जानकीजीवनम् महाकाव्य में जानकी जी की शोभा का मञ्जुल वर्णन करने में उत्प्रेक्षा अलंकार का समधिक शोभन प्रयोग किया गया है। जहाँ पर उपमेय की उपमान के साथ उत्कट कोटिक संभावना की गई है। अत: उत्प्रेक्षा अलंकार है।

संभावनमथोत्प्रेक्षा प्रकृतस्त समेन यत्। मम्मटाचार्य सम्भावना का तात्पर्य किसी वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानते हुए भी उसमें अन्य स्वरूप की कल्पना करना। इसमें मन्ये, शंके, इव, नु, किम् इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यथा –

स विलोक्य देहजां ज्वलन्मनि भूषामिव हृद्य भीषणाम्।
भुजगस्य भिया शशाक नो सहसा स्वीर्यवचांसि जल्पितुतम्।।[12]

यहाँ उपमेय वैदेही की उपमान ज्वलन्मणिभूषायिव भुजगस्य के साथ उत्कट कोटी की संभावना किये जाने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है।

शलभोन यथा शिखार्दितो दहनात्प्राक् भयमेति पुष्कलम्।
स ददर्श विनीत लोचनां नियमक्षामतनुं तथैवताम्।।[13]

यहाँ उपमेय रावण की उपमान शलभ तथा उपमेय विदेहजा का उपमान शिखा के साथ उत्कट कोटिक संभावना होने के कारण उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसमें उत्प्रेक्षावाचक नु शब्द का प्रयोग किया गया है।

5. यमक :

अर्थेसत्यर्थभिन्नानां वर्णन सा पुन: श्रुति यमकम्।[14]

भिन्न-भिन्न अर्थ वाले समान वर्णों की उसी क्रम से पुनरावृत्ति होने पर यमक अलंकार होता है। जानकी जीवनम् महाकाव्य में अनेक स्थलों पर यमक की शोभा देखी जा सकती है। यथा –

विलोक्य चिरकां क्षितं भुवनरावणं रावणं
सुरासुर विमाथिनं जनक जाहरं वैरिणम।[15]

यहाँ पर रावण शब्द में वर्णों की आवृत्ति ठीक उसी क्रम में है, तथा अर्थ भी भिन्न-भिन्न हैं। प्रथम रावणं का अर्थ – लोक संतापक तथा द्वितीय का अर्थ 'दशानन व्यक्ति विशेष है। इस प्रकार यहाँ पर यमक अलंकार है।

वैदेहीं वैदेही पञ्चवटि! नो चेद्धन्मि शरीरम्।
मम दयितां प्रजघास घस्मरं मन्ये हतक कुटीरम्।।[16]

यहाँ वैदेही वैदेही वर्ण समुदाय की उसी क्रम में आवृत्ति है तथा प्रत्येक बार भिन्न अर्थ व्यञ्जित है। प्रथम वैदेही का अर्थ सीता है तथा द्वितीय वैदेहि का अर्थ लौटा देने से है।

एक अन्य स्थल पर यमक का सप्रयोजन प्रयोग प्रस्तुत है–

लोक रावण रावणे निहते लसित नीलाम्बराः।
सिद्ध सुर गन्धर्व किन्नर यक्ष पितृ विद्या धराः।।[17]

यहाँ प्रथम रावण शब्द का अर्थ रुलाने वाले से है तथा द्वितीय अर्थ राक्षस राज रावण व्यक्ति विशेष है। यहाँ भिन्न–भिन्न अर्थ वाले समान वर्णों की उसी क्रम से पुनरावृत्ति होने से यमक अलंकार है।

6. श्लेष :

शिलष्टैः पदैरनेकार्थाभिधाने श्लेष इष्यते।

अर्थात् शिलष्ट पद एक ही बार प्रयुक्त होकर, जब एकाधिक अर्थों का अभिव्यञ्जक होता है तो श्लेष अलंकार होता है। शब्द तथा अर्थ भेद से यह दो प्रकार का होता है।

(1) शब्द श्लेष :

वाच्यभेदेनभिन्ना यद् युगपद् भाषणस्पृशः।
शिलष्यन्ति शब्दाः श्लेषोऽसावक्षरादिभिरष्टधा।।

अर्थात – अर्थभेद होने से भिन्न –भिन्न शब्द समानापूर्वीक होने से एक साथ उच्चारण के कारण जब आपस में मिलकर एक हो जाते हैं, तो वह शब्द श्लेष कहलाता है।

(2) अर्थ श्लेष :–

श्लेषः स वाक्ये एकस्मिन् यत्रानेकार्थता भवेत्।

अर्थात् जहाँ पर एक ही वाक्य में एक पद के अनेक अर्थ होते हैं, वहाँ अर्थश्लेष अलङ्कार होता है। यह अर्थनिष्ठ होता है तथा शिलष्ट पदों से अनेकार्थ को कहता है।

जानकी जीवनम् में कतिपय स्थलों पर अर्थश्लेष को देखा जा सकता है। यथा द्रष्टव्य :–

रागेऽक्षते वल्लभसम्पदस्तु प्रियाऽङ्गना तत्र न मे विरोधः।
परन्त्वसिद्धे खिलु रागबन्धे न साऽप्रिया पत्युरुपार्जितं स्वम्।।[18]

यहाँ 'स्वम्' पर पत्नी व सम्पत्ति दोनों का वाचक है। 'वल्लभ' (प्रेमी, पति), 'सम्पद' (सम्पत्ति, अधिकार), 'प्रिया' (प्रेमिका, पत्नी, नारी), 'साऽप्रिया' (प्रिया, पत्नी, अप्रिया, पति को न भाने वाली महिला) आदि शब्दों का दोनों ही पक्ष में द्विविध अर्थ प्रकट होने के कारण अर्थश्लेष है।

(7) अर्थान्तरन्यास :-

सामान्यं वा विशेषो वा तदन्येन समर्थ्यते:।
यत्तु सोऽर्थान्तरन्यास: साधर्म्येणेतरेण वा।।[19]

जहाँ पर सामान्य का विशेष के द्वारा या विशेष का सामान्य के द्वारा समर्थन होता है, वहाँ अर्थान्तरन्यास अलङ्कार होता है, जो साधर्म्य या वैधर्म्य के भेद से दो प्रकार का होता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में अर्थान्तरन्यास अलङ्कार का प्रचुर प्रयोग हुआ है। यथा द्रष्टव्य :-

क्लैव्यं गम: मास्म विदेहराज! प्रपूर्यते सम्प्रति तेऽभिलाष:।
व्यापोह्यते नो तमसां हि भार: खद्योतपुञ्जै रविभाऽपनेय:।।[20]

'विदेहराज! धैर्य धारण करें, विपरीत परिस्थितयों में कातरता को प्राप्त नहीं करें।' इस सामान्य कथन का समर्थन 'सूर्य की प्रभा से दूर करने योग्य अन्धकार-राशि जुगुनुओं की टोली से नहीं हटाई जाती है।' इस विशेष कथन से किया गया है। अत: यहाँ साधर्म्यपूर्वक अर्थान्तरन्यास अलङ्कार है।

(8) दृष्टान्त :- 'दृष्टान्त: पुनरेतेषां सर्वेषां प्रतिबिम्बनम्।' अथात् जहाँ पर उपमान, उपमेय उनके विशेषण तथा साधारण धर्म का दोनों वाक्यों (उपमान वाक्य तथा उपमेय वाक्य) में बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होता है, वहाँ दृष्टान्त अलङ्कार होता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में दृष्टान्त अलङ्कार का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। यथा :-

जानकी के मन में प्रियतम की एक प्रभामयी काल्पनिक प्रतिमा उत्पन्न हो गई। वैसे ही जैसे बावली के किनारे उगा हुआ वृक्ष, पानी के ऊपर प्रतिबिम्बित होकर छविमान हो उठता है:-

तथापि तस्या मनसि प्रभामयी प्रकल्पनैकप्रतिमा पदं दधे।
यथाम्बुतुल्ये प्रतिबिम्बताङ्गतश्चकास्ति वापीतटजोऽप्यनोकह:।।[21]

यहाँ दो स्वतंत्र वाक्य हैं तथा उपमान, उपमेय उनके विशेषण तथा साधारण धर्म का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव है।

दृष्टान्त अलङ्कार का शोभन उदाहरण देखिये-
ध्रुवमेष्यति शोकमूर्च्छनां रघुवीरोऽपि तवाक्षतस्मृति:।
न दुनोति विशिष्य चन्द्रिकामुपरागो विधुमप्यमत्यलम्।।[22]

यहाँ पर नायक राम तथा चन्द्रमा का, नायिका सीता व चन्द्रिका का, वियोग व ग्रहण का, शोक एवं मूर्च्छा का कष्ट, अतिशय धर्षित होने का बिम्ब-प्रतिबिम्ब भाव होने से दृष्टान्त अलङ्कार है।

(9) निदर्शना :-

अभवन् वस्तुसम्बन्ध उपमापरिकल्पकः।
निदर्शना भवेत्सेयं मम्मटेन यथोदिता।।

जब वर्णनीय वस्तु अर्थात् विषयों का परस्पर सम्बन्ध अनुत्पन्न होने के कारण अपनी उपपन्नता के लिए उपमा (परस्पर साम्य) का परिकल्पन अर्थात् अनिवार्य रूप से बोध करता है, तब आचार्य मम्मट के अनुसार 'निदर्शना अलङ्कार' होता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में निदर्शना अलङ्कार का प्रयोग द्रष्टव्य है:-

हन्त राजसुते! क्व ते लवलीलताभं कोमलं वपुरीदृशं क्व च भूमि शय्या?
पल्लवेषु विचिन्वतीं राजहँसीं दर्दुरान् परिलक्ष्य मे हृदयं प्रभिन्नम्।।[23]

यहाँ पर जिस प्रकार राजहँसिनी का कीचड़ भरे तलाबों में मेंढ़कों का अन्वेषण करना शोभनीय नहीं है, उसी प्रकार राजनन्दिनी सीता का लवली लताओं के समान कोमल शरीर कठोर शैय्या के योग्य नहीं है। इस प्रकार पूर्वार्द्ध एवं उत्तरार्द्ध दोनों वाक्यों पर परस्पर सम्बन्ध अनुत्पन्न होने के कारण अन्वयबोध के लिए उपमानोपमेयभाव की कल्पना ली गई है। अतः यहाँ निदर्शना अलङ्कार है।

(10) विभावना :- जब बिना कारण के कार्य की उत्पत्ति बताई जाती है, तब विभावना अलङ्कार होता है :- 'विभावना बिना हेतु कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।'[24]

जानकीजीवनम् महाकाव्य में विभावना अलङ्कार का प्रचुरता से प्रयोग किया।

दयया न मया निरर्थकं कुसुमञ्चापि वियोजितं क्वचित्।
रघुनाथ! तथाप्यनाथिता दुरितैः कैर्गमिता दशामिमाम्!![25]

बिना किसी प्रयोजन के, अनुकम्पाभाव से ओत-प्रोत मैंने तो कभी पुष्प को भी वृन्त से वियुक्त नहीं किया! हे रघुनाथ! फिर भी अनाथिनी मैं आज इस दुर्दशा को पहुँचा दी गई हूँ?

यहाँ कारण नहीं फिर भी कार्य होने के कारण विभावना अलङ्कार है।

ग्रहण काल में भी चन्द्रिका चन्द्र से दूर नहीं होती, फिर किस कारण से प्रगाढ़ अनुराग होते हुए भी चन्द्रिका सीता चन्द्र राम से दूर है। यथा:-

भजते न पृथक्त्ववेदनामपि राहुग्रसिते विधौमुदी।
उपरागमिमं न वेद्मि हा प्रविभक्तामृतचन्द्रचन्द्रिकम्।।[26]

यहाँ कारण नहीं होने पर भी राम का सीता से पृथक् होने रूप कार्य होने पर विभावना अलङ्कार है।

(11) विशेषोक्ति :- जब हेतु के होने पर भी फल का अभाव बताया जाता है, तब विशेषोक्ति अलङ्कार होता है।[27] 'विशेषोक्तिरखण्डेषु कारणेषु फलावचः।' समस्त प्रसिद्ध कारणों के एकत्र होने पर भी फलोत्पत्ति का अभाव ही विशेषोक्ति कहा जाता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में विशेषोक्ति का अनेक स्थलों पर शोभन प्रयोग हुआ है। यथा द्रष्टव्य :-

सतिशौर्यपराक्रमोद्धुरे त्वयि रिहि ननु सिंहिकामिमाम्।
कुदृशा किल जम्बुकाधमः समपश्यतदियं विगर्हणा।।[28]

शौर्य एवं पराक्रम से उद्दीप्त आप जैसे सिंह के विद्यमान रहते हुए भी इस सिंहिनी को अधम जम्बुक ने कुदृष्टि से देखा, निश्चय ही मेरे लिए यही डूब मरने की बात है।

यहाँ पर शौर्य एवं पराक्रम से उद्दीप्त सिंह के समान राम के होने पर भी जम्बुक रावण के नाशरूप फलोत्पत्ति का अभाव होने के कारण विशेषोक्ति अलङ्कार है।

(12) उदात्त :-

लोकातिशय सम्पत्तिवर्णनोदात्तमुच्यते।
यद्वापि प्रस्तुतस्याङ्गं महतां चरितं भवेत्।।

विश्वनाथ

लोकोत्तर चरित का असामान्य वर्णन उदात्त अलङ्कार है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में सीता राम के उदात्त गुणों का चारू प्रस्फुटन उदात्त अलङ्कार में किया गया है। महाकाव्य में प्राप्त उदात्त अलङ्कार की झलक द्रष्टव्य है:-

या श्री श्चिरन्तनसखी कमलालयाख्या
नारायणस्य नवलाम्बुधरे कधाम्रः।
त्रेतायुगे जनकवेश्मनि सैव जाता
रामप्रिया दशमुखान्वयनाशनाय।।[29]

यहाँ विदेहनन्दिनी का श्री नारायण की सहचरी लक्ष्मी के रूप में कथन, लोकोत्तर चरित्र का असामान्य वर्णन होने के कारण उदात्त अलङ्कार है। इसी प्रकार राम के गुणकथन में उदात्त अलङ्कार का शोभातिशायी प्रयोग है। यथा :-

रामोऽभिरामचरितो मदनाङ्गयष्टि-
स्त्वाजानुबाहुररविन्द विलोचनोऽसौ।
साक्षात्स्वयं निखिललोकपतिर्मुरारि-
र्वंशे रघोरवततार किलोध्योध्यम्।।[30]

अभिराम चरित, कामदेव सदृश मनोज्ञ व्यक्तित्व वाले, आजानुबाहु, कमलनयन, समस्त लोकों के अधीश्वर साक्षात्, भगवान विष्णु स्वयं ही राम बनकर, अयोध्या नगरी में रघु के वंश में अवतरित हुए हैं।

यहाँ लोकोत्तर चरित्र का राम का 'समस्त लोकों के अधीश्वर साक्षात् भगवान् विष्णु के रूप में' कथन असामान्य वर्णन होने के कारण उदात्त अलङ्कार है।

(13) स्वभावोक्तिः अर्थ का उसी अवस्था में वर्णन स्वभाव कहलाता है :-

अर्थस्य तदवस्थत्वं स्वभावोऽभिहितो यथा।।[31]

पदार्थों के नानावस्थाओं में प्रकटित रूप का साक्षात् दर्शन कराने वाली अलंकृति स्वभावोक्ति है-

नानावस्थं पदार्थानां रूपं साक्षाद् विवृण्वती।।[32]

जानकीजीवनम् महाकाव्य में सीता की अल्हड़ बाललीलाओं का लालित्यपूर्ण वर्णन स्वभावोक्ति अलङ्कार में जीवन्त एवं ताजगीपूर्ण बन सका है।

विलोक्य चन्द्रं वियति प्रभोज्ज्वलं विलोभनीयं ननु पर्वसंस्थितम्।
भृशं ययाचे जननीं विलक्षितां नवीनखेलाश्रितबालतर्कनैः।।[33]

श्रुतिमधुर वर्णों में जानकीजी की बाल सुलभ लीलाओं का चारू चित्रण है। आकाश में प्रभाधवल, रमणीय पूनम के चाँद को देखकर माँ से चाँद माँगना स्वभावगत ही है। इसी प्रकार हिरणी सी सीता की चपल क्रीड़ाओं का मनमोहक वर्णन स्वभावोक्ति अलङ्कार में किया गया है। यथा -

सखीं कदाचित्परिकल्प्य मैथिली मृगाङ्गनां कामपि हार्दमेदुराम्।
परस्परोल्लासनचाटुकर्मभिस्स्वयं मृगीभूय रतिं ह्यचीकरत्।।[34]
गृहं विनिर्माय तृणादिसाधनैर्निवेश्य तत्रेप्सितदारुयोषितम्।
विलासविब्बोककटाक्षमण्डितां नवागत गेहवधूटिकामिव।।[35]

यहाँ पर सीता की मनोहर बाल क्रीड़ाओं का वर्णन स्वाभाविक होने के कारण स्वभावोक्ति अलङ्कार विलसित हुआ है।

(14) समासोक्ति :-

'परोक्तिर्भेदकैः शिलष्टैः समासोक्तिः।'

अर्थात् श्लेषयुक्त विशेषणों के द्वारा प्रस्तुत अर्थ के प्रतिपादक वाक्य के द्वारा, जो अप्रस्तुत अर्थ का कथन होता है। वह संक्षिप्त रूप से प्रकृत तथा अप्रकृत दोनों को कहने के कारण

समासोक्ति अलङ्कार कहलाता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में समासोक्ति अलङ्कार बहुशः प्रयोग हुआ है। यथा द्रष्टव्य :-

प्रदीपहारावलिराजिता पुरी नवा वधूटीव दधेऽवगुण्ठनम्।
समुल्लसत्स्थासकचारुकल्पनैर्नखक्षतानि प्रकटं विरेजिरे।।[36]

यहाँ पर केवल विशेष्यवाचक मिथिला पुरी अप्रकृत नववधू अर्थ का वाचक नहीं है, अपितु शिलष्ट विशेषणों - मङ्गलदीपों की हारयष्टि-अवगुण्ठन, देदीप्यमान स्थासक-चन्दनानुलेपन, मनोहर अल्पनाएँ-नखक्षतों द्वारा पुरी शब्द नायिका का बोधक भी है। अतः यहाँ समासोक्ति अलङ्कार है।

विततेऽपि रतिप्रिये मधौ प्रतिभाव्ये न कथं त्वया शठ!
इति जातरुषेव शम्बरः प्रिययोपेत्य तृणान्निवारितः।।[37]

यहाँ पर केवल शम्बर विशेष्यवाचक शब्द अप्रस्तुत कान्त रूप अर्थ का वाचक नहीं है, अपितु शिलष्ट विशेषणों (रतिप्रिये, मधौ, शठ, जातरुषेव, प्रिययोपेत्य) द्वारा प्रस्तुत मृग अर्थ के प्रतिपादक वाक्य के द्वारा, अप्रस्तुत नायक अर्थ का कथन करने के कारण समासोक्ति अलङ्कार है।

(15) दीपकः-

अप्रस्तुतप्रस्तुतयोर्दीपकं तु निगद्यते।

जब प्रस्तुत और अप्रस्तुतों का एक ही धर्म से सम्बन्ध वर्णित किया जाता है, तब दीपक अलङ्कार होता है। इस अलङ्कार का दीपक नाम सप्रयोजन है, जिस प्रकार दीपक घर के साथ मार्ग को भी प्रकाशित कर देता है, उसी प्रकार प्रस्तुत के लिए कथित धर्म प्रकरणवश आये प्रस्तुतों को भी प्रकाशित कर देते है।

कवि ने दीपक अलङ्कार का बहुत ही सुन्दर प्रयोग किया है। महाकाव्य में शताधिक पद्यों में इस अलङ्कार का प्रयोग किया गया है। इसमें या तो कई क्रियाओं का एक कर्त्ता होता है या कई कर्त्ता एक ही क्रिया से जुड़े रहते हैं। यथा -

क्रतौ विवाहे व्यसने स्वयंवरे विपत्सु युद्धेषु च दर्शन स्त्रियः।
न दूष्यते नीतिविदोऽब्रुवन्निति स्थिते स्वयं का मयि दोष सर्जना!![38]

यहाँ पर युद्ध का अवसर प्रस्तुत है, जिसमें स्त्रियों का दर्शन अनुचित नहीं है, यह समान धर्म है किन्तु इसके साथ ही यज्ञ, विवाह, व्यसन, स्वयंवर, विपत्ति अप्रस्तुतों का एक ही धर्म 'दर्शनं स्त्रियः न दूष्यते' के साथ अन्वय हो जाता है। इस प्रकार प्रस्तुत एवं अप्रस्तुतों का एक ही धर्म से सम्बन्ध होने के कारण दीपक अलङ्कार है।

मृता लता या च्युतवृक्षसंश्रया मृता नदी मूलमुपेत्य मारवम्।
मृता कुलस्त्री पति सौहृदच्युता धिगङ्गनात्वं भवपापमिश्रितम्।।[39]

यहाँ 'कुलाङ्गना' वर्ण्य है, जिसका समान धर्म 'मृता' है, किन्तु इसके साथ ही लता, नदी अप्रस्तुतों के साथ भी इस एक 'मृता' समान धर्म का अन्वय हो रहा है। इस प्रकार प्रस्तुत एवं अप्रस्तुत का एक ही समान धर्म कथित होने के कारण यहाँ दीपक अलङ्कार है।

(16) **प्रतिवस्तूपमा :-**

प्रतिवस्तूमा सा स्याद् वाक्योर्गम्यसाम्ययो:।
एकोऽपि धर्म: सामान्यो यत्र निर्दिश्यते पृथक्।।

अर्थात् जब दो ऐसे वाक्यों में, जिनमें कि वर्णनीय विषयों का साम्य गम्य हो, कोई एक ही सामान्य धर्म भिन्न-भिन्न शब्दों या प्रकारों के द्वारा कहा जाता है, तब प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार होता है। इसे ऐसे भी कहा जा सकता है, जिनमें सादृश्य प्रतीयमान हो, ऐसे दो वाक्यों में एक ही धर्म का पुनरुक्ति के भय के कारण शब्दान्तर के द्वारा निर्देश किया जाता है, तो 'प्रतिवस्तूपमा' हाती है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में ऐसे अनेक पद्म हैं, जो प्रतिवस्तूपमा के प्रयोग की उत्कृष्टता के ज्ञापक हैं। यथा :-

विगलच्चितिरेतदीक्षणैरुपयातोऽस्मि विमूढसंस्थितिम्।
समवाप्य समृद्धिमैश्वरीं विकल: स्वैरिव भैक्ष्यलम्पट:।।[40]

उक्त श्लोक में 'अनिवर्चनीय स्थिति' रूप एक ही धर्म दोनों वाक्यों में भिन्न-भिन्न शब्दों के द्वारा निर्दिष्ट है। एक में 'उपयातो' कहा है और दूसरे में 'समवाप्य' कहा, किन्तु बात एक ही है, दोनों वाक्यों में वर्णनीय विषय का साम्य गम्य है, अतएव प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है।

(17) पर्यायोक्त :- जहाँ विवक्षित अर्थ को सीधे-सादे ढंग से न कहकर भिन्न प्रकार से, चमत्कारपूर्ण ढंग से व्यक्त किया जाता है वहाँ पर्यायोक्त अलङ्कार होता है। 'पर्याय' का अर्थ होता है, प्रकार। अर्थात् अभीष्ट अर्थ का प्रकारान्तर या व्यञ्जना वृत्ति के द्वारा कथन ही पर्यायोक्त अलङ्कार होता है :-

पर्यायोक्तं यदा भङ्ग्या गम्यमेवाभिधीयते। विश्वनाथ

जानकीजीवनम् महकाव्य में मुग्धा सीता को सखियाँ प्रियतम विषयक बातें विहङ्ग युगल को दिखाकर अथवा लता को आम्रवृक्ष के साथ आबद्ध कर प्रकरान्तर से समझा रही है, अतएव यहाँ पर्यायोक्त अलङ्कार है। यथा द्रष्टव्य :-

अये क्षणं पश्य विहङ्गयुग्मकं सखीति सान्द्रं लपिताऽपि मैथिली।
प्रदत्तसङ्केतविलक्षभावनां विभावयन्ती न ददर्श तन्मुखम्।।[41]

पर्यायोक्त अलङ्कार का चित्ताकर्षक प्रयोग द्रष्टव्य है :-

इयं लताहन्त न चूतसंश्रियाऽस्त्यतो विधास्ये परिरब्धभर्तृकाम्।
सखीजने चेति विजल्प्य विस्मृते सदृष्टिरोष न चचाल मानिनी।।[42]

सीता जैसे अद्भुत नारी रत्न का वरण कोई अपूर्व पराक्रमी, श्रेष्ठ पुरुष ही करेगा। इस अर्थ का चमत्कारपूर्ण कथन पर्यायोक्त अलङ्कार में किया गया है। यथा :-

न शारदी चन्द्रमुदी कदाचिच्छिखावलाना भवतीष्ट साध्या।
न चापि तारापथचारुगङ्गा सम्भावयत्यानतभूमिगर्तान्।।[43]

यहाँ लक्ष्मी स्वरूपा सीता का वरण नारायण स्वरूप रामभद्र ही कर सकते हैं, इस विवक्षित अर्थ को सीधे-सादे ढंग से न कहकर प्रकारान्तर से कहा जा रहा है, हे राजन्! शरत्कालीन चन्द्रमा की चाँदनी कभी भी दीपकों का अभीष्ट लक्ष्य नहीं होती है और न ही रमणीय आकशगङ्गा भूमि के गहरे गड्ढ़ों को पूर्ण करती है, अतएव यहाँ पर्यायोक्त अलङ्कार है।

(18) काव्यलिङ्ग :- महाकाव्य में काव्यलिङ्ग अलङ्कार का मञ्जुल समन्वय है। काव्यलिङ्ग अलङ्गार का प्रयोग वहाँ होता है, जहाँ पर किसी कथन का समर्थन करने के लिए एक वाक्यार्थ या पदार्थ में उसका कारण भी प्रस्तुत किया जाए। काव्यलिङ्ग शब्द का अर्थ ही यही है कि विषय का लिङ्ग या हेतु प्रस्तुत किया जाए।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में काव्यलिङ्ग अलङ्गार का अनेक स्थलों पर समावेश है। यथा द्रष्टव्य :-

कथय वत्स! हृदि प्रणयोर्मिभिः किमिवरिङ्गणमाशु विधीयते।
न खलु कच्चिदियं मुखचन्द्रिका भवति कारणमस्य यथोचितम्।।[44]

हे प्रिय भाई! यह तो बताओ कि मेरे हृदय में प्रणय-हरियाँ वेगपूर्वक उथल-पुथल क्यों मचा रही हैं? कहीं ऐसा तो नहीं कि सीता के मुखचन्द्र की यह चाँदनी ही इसका समुचित एकमात्र कारण है।

यहाँ राघव के हृदय में हिलोरे होती प्रणय लहरियों का कथन करके, 'सीता के मुखचन्द्र की चाँदनी ही इसका एकमात्र समुचित कारण' को प्रस्तुत करके वर्ण्य विषय का समर्थन किया जा रहा है, अतएव काव्यलिङ्ग अलङ्गार है।

आत्मपापप्रधर्षिताऽस्मि ममैव दोषः पूर्वजन्मकृतं भवेन्ननु पातकम्मे।
वत्स लक्ष्मण सौम्य! मूढधिया भवन्तं न्यक्षिपं यदिदं नु तस्य फलं विषाक्तम्।।[45]

यहाँ सीता के अपमान, अपहरण, वियोग व्यथा का कथन करके, सीता का अपने ही पापों का प्रभावी हो जाना एवं अपनी मूढ़ता से लक्ष्मण के सौम्य चरित्र को कलंकित करने रूप कारण का प्रस्तुतीकरण यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार का सृजन कर रहा है।

इसी प्रकार रामचरणारविन्द से दूर रहने पर भी सीता प्राण धारण कर रही है तो इसमें एकमात्र कारण वल्लभ राम के मुखचन्द्र को पुनः देख पाने की आकाङ्क्षा ही है, अतएव यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार का चमत्कार स्वतः स्पष्ट है। यथा –

मुखचन्द्रदिदृक्षयैव हा व्यवसाये मरणस्य मानसम्।
अयि वल्लभ! कातरायते प्रणयैस्ते शिशुवद्धि लालितम्।।[46]

(19) व्यतिरेक :– जानकीजीवनम् महाकाव्य में यतिरेक अलङ्कार का कतिपय स्थलों पर प्रयोग किया गया है। जब उपमेय का उपमान से व्यतिरेक अर्थात् आधिक्य वर्णित होता है, तब 'व्यतिरेक अलङ्कार' होता है:–

उपमानाद्यदन्यस्य व्यतिरेकः स एव सः।

मम्मटाचार्य महाकाव्य में व्यतिरेक के प्रयोग सर्वत्र मनापहरण करते हैं।

राघव की अयोध्या की तुलना में नागों की भोगवती पुरी, देवताओं की अमरावती पुरी एवं कुबेर की अलका की शोभा न्यून है। यथा :–

भोगावती न नागानां द्युसदां नामरावती।
नालका राजराजस्याप्ययोध्यातुल्यताङ्गता।।[47]

यहाँ भोगवती, अमरावती, अलकापुरी, इन उपमानों की अपेक्षा अयोध्यापुरी उपमेय का व्यतिरेक बताया गया है, अतएव व्यतिरेक अलङ्कार है।

रघुपति के यज्ञ का व्यतिरेक अलङ्कार बद्ध वर्णन देखिये:–

नेन्द्रेण नैव वरुणेव न वा यमेन सम्पादितो रघुपते! समरूपयज्ञः।
का वा कथा प्रथित भूमिसदां नृपाणां प्राग्वर्तिनां
तनुकवैभवशक्तिभाजाम्!![48]

यहाँ उपमेय रघुपति के द्वारा सम्पादित यज्ञ का उपमान, इन्द्र, वरुण, यम एवं भारतभूमि में समुत्पन्न प्राचीन नरपतियों द्वारा सम्पादित यज्ञ से आधिक्य वर्णित होने के कारण व्यतिरेक अलङ्कार है। इसी प्रकार राजा जनक के धवल यश का व्यतिरेक बताया गया है:–

शिबिर्दधीचो न च रन्तिदेवः पृथुर्नृगो वा नहुषाम्बरीषौ।
न केऽपि जग्मुजनकप्रतिष्ठां प्रजानुरागप्रसरावदाताम्।।[49]

यहाँ उपमेय राजा जनक का उपमान शिवि, दधीच, रन्तिदेव, पृथु, नृग, नहुष तथा अम्बरीष से गुणाधिक्य है। उपमान की तुलना में उपमेय का उत्कर्ष वर्णित होने के कारण यहाँ व्यतिरेक अलङ्कार है।

(20) एकावली:- जहाँ पर पदार्थों का विशेषण-विशेष्य भाव से श्रृंखला रूप में वर्णन किया जाता है, वहाँ पर एकावली अलङ्कार होता है। इस अलङ्कार में क्रम पूर्व पर का ही रहता है अर्थात् कभी पूर्व में विशेषण और पर में विशेष्य तो कभी पूर्व में विशेष्य और पर में विशेषण रहता है:-

पूर्वं पूर्वं प्रति विशेषणत्वेन परं परम्।
स्थाप्यतेऽपोह्यते वा चेत्स्यात्तदैकावली द्विधा।।[50]

जानकीजीवनम् महाकाव्य में एकावली अलङ्कार की छटा देखिये:-

न तद्गृहं यन्न विकीर्णगीतकं, न गीतकं व्यायतमूर्च्छनं न यत्।
न मूर्च्छनं यन्न रसाक्तवाचिकं, न वाचिकं यन्न सुधासहोदरम्।।[51]

यहाँ विशेषण-विशेष्य भाव का श्रृंखलाबद्ध वर्णन होने से एकावली अलङ्कार है। एकावली का एक और मनोज्ञ पद्य द्रष्टव्य है:-

न खलु सा सरणी रमणी न या न रमणी खलु याऽधृतगीतिका।
न च सुगीतिरसौ न रराध या सुहृदयानि दयानिचयात्मनाम्।।[52]

यहाँ विशेषण-विशेष्य भाव का श्रृंखलाबद्ध वर्णन होने से एकावली अलङ्कार है।

ब्रह्माण्डे विलसित वसुधेयं वसुधायां रघुवंश:।
रघुवंशे विलसति रघुनाथो रघुनाथे विष्ण्वंश:।।[53]

ब्रह्माण्ड में विराजमान है यह पृथ्वी, पृथ्वी में विराजमान है यह रघुवंश! रघुवंश में सुशोभित हैं रघुनाथ और रघुनाथ में सुशोभित है भगवान् विष्णु का अंश!

यहाँ पूर्व पर क्रम से विशेष्य विशेषण का श्रृंखलाबद्ध निरूपण होने के कारण एकावली अलङ्कार विलसित है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि जानकीजीवनम् महाकाव्य में अलङ्कार विधान स्वाभाविक है। अलङ्कारों का प्रयाग रसानुकूल एवं भावानुकूल रहा है। सुप्रयुक्त अलङ्कार महाकाव्य महाकव्य की चारुता संवर्धन में सहायक तो बने ही हैं, भावों की संप्रेषणीयता को तीव्र बनाने में भी सहयोगी रहे हैं।

संदर्भ सूची

1. काव्यादर्श – दण्डी
2. जानकी जीवनम् 7/82
3. जानकी जीवनम् 8/83
4. वही 1/44
5. काव्य प्रकाश कारिका 7
6. अनुप्रास शब्द साम्य वैषम्येऽपि स्वरस्ययत। साहित्य दर्पण।
7. जानकी जीवनम् 6/34
8. वही 16/31
9. वही 18/111
10. भम्भट काव्य प्रकाश सूत्र /39
11. जानकी जीवनम् 2/9
12. वही 12/52
13. जानकी जीवनम् 12/52
14. काव्य प्रकाश 9/83
15. जानकी जीवनम् 14/73
16. वही 21/97
17. वही 21/131
18. जा. जी. 18/70
19. जा. जी. 10/23
20. जा. जी. 7/54
21. जा. जी. 2/43
22. जा. जी. 12/39
23. जा. जी. 11/92
24. का. दी. पृ. 48
25. जा. जी. 12/16
26. जा. जी. 12/18

27. सति हेतौ फलाभावे विशेषोक्तिः। का. दी. पृष्ठ 49

28. जा. जी. 12/23

29. जा. जी. 4/1

30. जा. जी. 4/2

31. भामह, कात्र लत्र 2/93

32. दण्डी, का. द. 2/8

33. जा. जी. 2/13

34. जा. जी. 2/15

35. जा. जी. 2/19

36. जा. जी. 2/4

37. जा. जी. 5/51

38. जा. जी. 15/19

39. जा. जी. 15/59

40. जा. जी. 5/34

41. जा. जी. 3/26

42. जा. जी. 3/27

43. जा. जी. 7/55

44. जा. जी. 6/25

45. जा. जी. 11/110

46. जा. जी. 12/26

47. जा. जी. 9/1

48. जा. जी. 20/35

49. जा. जी. 1/36

50. सा. द. 10/78

51. जा. जी. 2/7

52. जा. जी. 19/11

53. जा. जी. 21/163

वेदस्य' अर्थात् 'छन्दोवेदाङ्ग' को वेद पुरुष के चरणों के रूप में स्वीकार किया गया है। साहित्य जगत में सुप्रयुक्त छन्द का महत्व अवर्णनीय है। छन्द के विना वाणी उच्चरित ही नहीं हो सकती – 'नाच्छन्दसि वागुच्चरति'। नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के अनुसार, 'छन्दहीनों न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्दवर्जितम्।' नाट्यशास्त्र के प्रणेता भरतमुनि के अनुसार, 'छन्दहीनों न शब्दोऽस्ति, न छन्दः शब्दवर्जितम्।'[1] छन्दों का शोभन प्रयोग काव्य में विलक्षणता का सृजन कर सकता है। छन्दोबद्ध महाकाव्य नितान्त रमणीय एवं सहज प्रवाह से युक्त होता है।

इस दृष्टि से जानकीजीवनम् महाकाव्य का छन्दोविधान मनापहरण कर लेने में सक्षम है।

इक्कीस सर्गो में वितीर्ण महाकाव्य में 17 वर्णिक एवं मुक्त मात्रिक छन्दों का आकर्षण प्रयोग किया गया है। महाकाव्यों में छन्दों का प्रयोग भावों का संप्रेषणीयता को तीव्र बना देने के अनुरूप ही है।

प्रस्तुत काव्य में भाषा की भाँति छन्दों की स्वाभाविक योजना ही कवि को अभीष्ट है। महाकाव्य में सर्वाधिक 206 पद्यों में उपेन्द्रवज्रा का उपयोग श्रृङ्गार, विवाह, नायिका सौन्दर्य वर्णन में हुआ है। हनुमान के मनोभावों के प्रकाशन में, रावण को धिक्कारने में, नीतिविषयक तथ्यों के प्रतिपादन में उपजाति छन्द का अभिनव उपयोग है। महाकाव्य 177 पद्य वंशस्थ छन्दोबद्ध है, जिसमें सीता की बालक्रीड़ाओं का एवं राम की शोभा का नयनाभिराम वर्णन है। वियोगिनी 139 पद्यों में, भुजङ्गप्रयात 85 पद्यों में, मालिनी 82 पद्यों में, शार्दूलविक्रीड़ित 55 पद्यों में, शिखरिणी 7 पद्यों में, तोटक 4 पद्यों में हरिणी 2 पद्यों में, मन्दाक्रान्ता छन्द 2 पद्यों में विलसित है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में कवि प्रतिभा सृजित दो सर्वथा नवीन मैथिली एवं स्यदिन्का छन्द का प्रयोग किया गया है। सुमधुर भावों से अनुप्राणित मैथिली 115 पद्यों में एवं स्वच्छ जलधरा के समान ही निश्छल भावों से पूर्ण स्यन्दिका छन्द का 57 पद्यों में शोभन प्रयोग हुआ है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य की यह महती विशिष्टता है कि इक्कीसवें सर्ग के 159 पद्य नये राग-रागनियों पर आधारित होने के कारण मुक्त मात्रिक छन्दों में उपनिबद्ध है। छन्दों का ऐसा अपूर्व विधान सहृदयों के चित्त में मधुर झङ्कार उत्पन्न कर देने में पूर्ण सक्षम है। छन्दो विधान की दृष्टि से जानकीजीवनम् महाकाव्य रमणीय है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में विद्यमान छन्दों का क्रमवार विवेचन प्रस्तुत है :-

(1) उपेन्द्रवज्रा :-

जतजगणा गुरु चाुपेन्द्रवज्रा नामवृत्त भवति। पार्द यतिः।।[2]

अर्थात् जगण, तगण, जगण तथा दो गुरू वर्णो से युक्त छन्द उपेन्द्रवज्रा है। श्रृङ्गार एवं वीररसों में उपेन्द्रवज्रा का प्रयोग शोभावर्धक रहता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में सर्वाधिक 206 पद्यों में उपेन्द्रवज्रा छन्द का प्रयोग किया गया है। महाकाव्य में उपेन्द्रवज्रा छन्दोपनिबद्ध पद्यों में श्रृङ्गार रस की सुकोमल अभिव्यञ्जना शोभा सम्पन्न है। यथा द्रष्टव्य :-

ज. त. ज. गु. गु.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
विदेहजा भावित चित्तवृत्ते **11 वर्ण**
ज. त. ज. गु. गु.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
रसौ निमेषोऽपि रघूद्वहस्य। **11 वर्ण**
ज. त. ज. गु. गु.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
अनन्त कल्पक्षयजातमान: **11 वर्ण**
ज. त. ज. गु. गु.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
कालो बभूवार्तिविनाशनस्य।।[3] **11 वर्ण**

विवाह की मङ्गलमय वेला का सुमधुर वर्णन उपेन्द्रवज्रा छन्द में जीवन्त हो उठा है। यथा द्रष्टव्य :-

ज. त. ज. गु. गु.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
विवाह सप्तभ्रमिपूरणान्ते **11 वर्ण**
ज. त. ज. गु. गु.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
गुरोर्निर्दिश: किल रामभद्र: **11 वर्ण**
ज. त. ज. गु. गु.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
पवित्र सिन्दूरभरैस्सहेलं **11 वर्ण**
ज. त. ज. गु. गु.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
बुभूष सीमन्तमथोर्विजाया:।।[4] **11 वर्ण**

यहाँ एकादश वर्णों में गणक्रम ज व ज का है तथा दो गुरूवर्ण प्रदान्त यति होने के कारण समवृत्त उपेन्द्रवज्रा है।

वधूवेष में देवबाला जैसी श्रीसम्पन्न सीता का उपेन्द्रवज्रा छन्दोपनिबद्ध मनोहर चित्रण द्रष्टव्य :-

ज. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

प्रभातमार्तण्डरूचिप्रजीना 11 वर्ण

ज. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

हिमाचलश्रीरिव वेषरम्या। 11 वर्ण

ज. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

प्रसूनपुञ्जीपहितेव वाटी 11 वर्ण

ज. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

रराज रोचिष्णुरसौ वधूटी।।[5] 11 वर्ण

जानकी विदाई के अवसर पर विदेहराज की विकलता का उपेन्द्रवज्रा छन्द में रूचिर वर्णन हुआ है:-

ज. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

पुनः पुनर्विस्मृत संस्मृतार्थान् 11 वर्ण

ज. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

निवेद्य भावान् हृदये च कृत्वा 11 वर्ण

ज. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

नृपः पृथक्कारितलोलवत्सा 11 वर्ण

ज. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

स सौरभेयीमपि धोरदुः स्वैः।।[6] 11 वर्ण

(2) उपजाति :-

इन्द्रवज्रोपेन्द्रवज्रयोः सम्मेलनमुपजातिः।

अर्थात् इन्द्रवज्रा एवं उपेन्द्रवज्रा के सम्मिश्रण के उपजाति छन्द बनता है। सुन्दरनायिका के रूप वर्णन, बसन्त तथा उसके अङ्गीभूत पुष्पपत्रादि के वर्णन में इस छन्द का बहुतायत से प्रयोग होता रहा है, किन्तु जानकीजीवनम् महाकाव्य में इसका प्रयोग भिन्न प्रकार से हुआ है।

महाकाव्य के त्रयोदश सर्ग में हनुमान का जानकी के संतप्त हृदय को धीरज बँधाना एवं रावण को आतंकित, भर्त्सित करने के प्रसंगों में उपजाति छन्द का प्रयोग सर्वथा मौलिक ही है।

इसी प्रकार अष्टादश सर्ग में 144 पद्य जो उपजाति छन्द में उपनिबद्ध हैं, उनमें वशिष्ठ जी द्वारा आयोजित धर्मसभा में जानकी कलंक प्रक्षालन की सर्वथा नवीन कल्पना को उपजाति छन्द में प्रस्तुत किया गया है। सप्तम् सर्ग में श्रृङ्गाररस की अभिव्यञ्जना में तथा सीता के सौन्दर्यवर्णन मं उपजाति का प्रयोग परम्परा निर्वाह की दृष्टि से किया गया है। जानकीजीवनम् महाकाव्य के 196 पद्य उपजाति छन्द में उपनिबद्ध है।

महाकाव्य में जानकी को धैर्य बँधाने के प्रसंग में समाविष्ट उपजाति छन्द का उदाहरण द्रष्टव्य है :–

ज. त. ज. गु. गु.
ऽऽ ऽ ऽ ऽऽ ऽ ऽ

ज. त. ज. गु. गु.
।ऽ। ऽ ऽ। ।ऽ। ऽ ऽ
विहाय चिन्तां ग्लपनञ्च दैन्यं 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा
ज. त. ज. गु. गु.
।ऽ। ऽ ऽ।। ऽ। ऽ ऽ
नियम्य मातर्नयनाश्रुवर्षम्। 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा
त. त. ज. गु. गु.
ऽऽ। ऽऽ।। ऽ। ऽ ऽ
कालं प्रतीक्षस्व रासैन्यरामो 11 वर्ण, इन्द्रवज्रा
ज. त. ज. गु. गु.
।ऽ। ऽऽ।। ऽ। ऽ ऽ
द्रुतं समायाति वधाय शत्रोः।।[7] 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा

यहाँ चारों चरणों में एकादश वर्ण है। प्रथम, द्वितीय, चतुर्थ चरणों का गणक्रम ज.त.ज. तथा दो गुरुवर्णों की अवस्थिति के कारण उपेन्द्रवज्रा है[8] तथा तृतीय चरण का गणक्रम त.त.ज. तथा दो गुरु वर्ण होने के कारण इन्द्रवज्रा है।[9] अतः यहाँ इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के समन्वय से उपजाति छन्द है।

रावण की भर्त्सना का उपजाति छन्दोपनिबद्ध नवीनता द्रष्टव्य है:–

ज. त. ज. गु. गु.
।ऽ। ऽ ऽ।। ऽ। ऽ ऽ
मलिम्लुचस्त्वं दयितापहारं 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा
ज. त. ज. गु. गु.
।ऽ ।ऽऽ । । ऽ । ऽ ऽ
छलेन कुर्वन् न गतोऽसि लज्जाम् 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा

त. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

दुर्दान्त! नीचाधम! निस्त्रपस्त्वं 11 वर्ण, इन्द्रवज्रा

ज. त. ज. गु. गु.

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

भुवस्तनोष्येव कलंकभारम्।।[10] 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा

सीता की चरित्र की उत्कृष्टता का उपजाति छन्द में शोभन चित्रण हुआ है:-

ज. त. ज. गु. गु.

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

प्रदीप्त वैश्वानरवेदिकायां 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा

ज. त. ज. गु. गु.

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

स्थिताऽपि या काञ्चनतामवापं। 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा

त. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

तां देववन्द्यामपि मैथिलीं त्वं 11 वर्ण, इन्द्रवज्रा

त. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

जानासि सत्यं चरितावलीढाम्!![11] 11 वर्ण, इन्द्रवज्रा

श्रङ्गार रसानुकूल उपजातिन्छोपनिबद्ध पद्य की रमणीयता द्रष्टव्य है:-

त. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

अग्रेसरीकृत्य पदद्वयं सा 11 वर्ण, इन्द्रवज्रा

त. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

बाला क्वचित्साध्वसमन्दवेगा 11 वर्ण, इन्द्रवज्रा

त. त. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

पश्चात्पदंन्वेकमुपाययौ यत् 11 वर्ण, इन्द्रवज्रा

ज. त. ज. गु. गु.

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

जिगाय तेनैव तु शम्बरारि:।।[12] 11 वर्ण, उपेन्द्रवज्रा

(3) वंशस्थ छन्द : 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में 'वंशस्थ छन्द' का शोभन प्रयोग हुआ है। वंशस्थ छन्द के लक्षण है :- 'वदन्ति वंशस्थविलं जतौ जरौ'

अर्थात् जिसमें जगण, तगण, जगण, रगण इस क्रम से 12 वर्ष हों वह वंशस्थ छन्द होता है।

क्षेमेन्द्र के मतानुसार वंशस्थ का प्रयोग नीतिविषयक स्थलों पर करना श्रेयस्कर रहता है। वीररस के वर्णन में वंशस्थ छन्द का प्रयोग किया जाये तो काव्य-चारुता में अभिवृद्धि हो सकती है।

'जानकीजीवनम्' महाकाव्य में वंशस्थ छन्द का प्रयोग द्वितीय सर्ग (1-49), तृतीय सर्ग (1-42), पञ्चदश सर्ग (1-81), एकविंश सर्ग (1-5) के कुल 177 पद्यों में हुआ है।

सुकोमल, मधुर भावों की संप्रेषणीयता वंशस्थ छन्द में वर्णित होकर चित्रोपम हो उठी है। सीता की मनोहर बाल क्रीड़ाएँ, सर्वाङ्गसुन्दर राम की हृदयावर्जक कल्पना का वर्णन वंशस्थ छन्द में हुआ है। ऐसे ही सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत हैं:-

ज. त. ज. र.
ISI S SII S I S I S
कदम्ब हिन्दोलविहार लीलया **12 वर्ण**
ज. त. ज. र.
I S I S SI I S I S I S
कलं स्वनन्ती मृदुगीतिमूर्च्छनाम्। **12 वर्ण**
ज. त. ज. र.
I S I S SI I S I S I S
क्वचिन्कुमारी दति दर्पमर्दिनी। **12 वर्ण**
ज. त. ज. र.
I S I S SI I S I S I S
पितुर्विनादं कलयाम्बभूव सा।।[13] **12 वर्ण**

महाकाव्य में नीतिविषयक तथ्यों का वंशस्थ छन्दोपनिबद्ध प्रतिपादन द्रष्टव्य है :-

ज. त. ज. र.
I S I S SI I S I S I S
क्रतौ विवाहे व्यसने स्वयंवरे **12 वर्ण**
ज. त. ज. र.
I S I S SI I S I S I S
विपत्सु युद्धेषु च दर्शनं स्त्रियः। **12 वर्ण**

ज. त. ज. र.

ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

न दूष्यते नीतिविदोऽद्युवन्निति 12 वर्ण

ज. त. ज. र.

। ऽ । ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

स्थिते स्वयं का मयि दोषर्सजना!![14] **12 वर्ण**

(4) वियोगिनी :- जिस पद्य के प्रथम और तृतीय चरणों में दो सगण, एक जगण और एक गुरु क्रम से दस वर्ण हो तथा द्वितीय, चतुर्थ चरणों में सगण, भगण, रगण, एक लघु और एक गुरु के क्रम से ग्यारह वर्ण हो, वहाँ पर वियोगिनी नामक अर्धसम वर्णिक छन्द होता है। इसका अपरनाम सुन्दरी है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में वियोगिनी छन्द का उपयोग मिथिलापुरी की शोभा वर्णन में, राम लक्ष्मण के सुदर्शन व्यक्तित्व को प्रस्तुत करने में, राम के अव्यक्त पूर्वराग को स्वर देने में तथा अपहृता जानकी की करुणा, व्यथा, स्वप्न बनी प्रणय स्मृतियों को अभिव्यञ्जित करने में किया गया है। सीता को तेजस्वी स्वरूप वियोगिनी छन्द में उदीप्त हो गया है। महाकाव्य के पाँचवे एवं बारहवें सर्ग में 139 पद्यों में वियोगिनी छन्द का प्रयोग उल्लास एवं विषादपरक दोनों ही स्थितियों को व्यक्त करने में किया गया है। राम की पूर्वरागावस्था का वियोगिनी छन्दोपनिबद्ध पद्य द्रष्टव्य है:-

स. स. ज. गु.

। । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

रतिराग विवर्धनाङ्कुरै 10 वर्ण

स. भ. र. ज. गु.

। । ऽऽ । । । ऽ । ऽ । ऽ

मदनाद्यानमनोज्ञदर्शनै:। 11 वर्ण

स. स. ज. गु.

। । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

ज्वलितो ननु जानकी शिखो 10 वर्ण

स. भ. र. ल. गु.

। । ऽऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

हृदि रामस्य मनोभवानल।।[15] **11 वर्ण**

वियोगिनी छन्दोपनिबद्ध धरणिजा की वियोगावस्था की संप्रेषणीयता द्रष्टव्य है:-

स. स. ज. गु.

। । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

अधिकण्ठमिदं भुजार्पणं **10 वर्ण**

स. भ. र. ल. गु.

। । ऽऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

न सुषुप्तौ शिथिलीकृतम्मया। **11 वर्ण**

स. स. ज. गु.

। । ऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

अपि यत्नवती सहं कथं **10 वर्ण**

स. भ. र. ल. गु.

। । ऽऽ । । ऽ । ऽ । ऽ

परिगाढां विरहव्यथामिमाम्।।[16] **11 वर्ण**

(5) द्रुतविलम्बित :- इस महाकाव्य में सुकोमल भावों की अभिव्यक्ति शीघ्र एवं विलम्ब से चलने वाले द्रुतविलम्बित छन्द में की गई है। रस पेशल, सहज, मधुर भावों की अभिव्यञ्जना में यह छन्द सफल रहा है। श्रृङ्गार सफल रहा है। श्रृङ्गार रस एवं करुण रस की मनोरम अभिव्यक्ति में यह छन्द अधिक उपयोगी एवं अनुकूल है। द्रुतविलम्बित छन्द का लक्षण है :-

"द्रुतविलम्बित माह नभौ भरौ"

अर्थात् जिसमें क्रमः नगण, भगण, भगण, रगण ये 12 अक्षर होते हैं।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में लगभग 134 पद्यों में द्रुतविलम्बित छन्द का प्रयोग किया गया है। षष्ठ सर्ग के 63 पद्यों को तथा एकोनविंश के 65 पद्यों को इस छन्द में उपनिबद्ध किया गया है। इसके अतिरिक्त 3/43, 4/45, 46, 7/88, 89, 9/99, 100 में यही छन्द प्रयुक्त हुआ है। यथा द्रष्टव्य :-

न. भ. भ. र.

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

दयति सङ्गम साध्वस पाण्डुरे **12 वर्ण**

न. भ. भ. र.

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

जनकजा मुख चन्द्रतले तदा। **12 वर्ण**

न. भ. भ. र.

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

समुदियाय मुहुः प्रसरत्त्रपा **12 वर्ण**

न. भ. भ. र.

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

मृतझरीशतविन्दुकदम्बकम्[17] 12 वर्ण

हृदयस्थ भावों की शोभन अभिव्यञ्जना में एवं सहृदयों को श्रृङ्गार रस की अद्‌भुत अनुभूति करवाने में यह छन्द सफल रहा है। यथा द्रष्टव्य :-

न. भ. भ. र.

। । ।ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

रघुवरोऽपि विलोक्य निमज्जितां 12 वर्ण

न. भ. भ. र.

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ । ऽ

प्रणायिनीं स्मरभावपयोनिधौ। 12 वर्ण

न. भ. भ. र.

। । । ऽ । । ऽ । । ऽ। ऽ

समभिमन्त्र्य शनैरिति शं ययौ।।[18] 12 वर्ण

(6) मैथिली :- जानकीजीवनम् महाकाव्य में जानकी के गरिमामय जीवन को समधिक प्राञ्जलता व औदार्य के साथ प्रस्तुत करने के लिए कवि ने नवीन छन्द 'मैथिली' का प्रयोग किया है, जो राम-सीता के वनवास के दिनों की मधुर झलक को प्रस्तुत करने में सफल रहा है। कोल-किरात भील स्त्रियों का नारी-सुलभ वार्त्तालाप, जानकी का पति चरणों में अनुराग, स्वर्ण मृगया, जानकी-अपहरण की दारूण घटना का चित्रोपम वर्णन इस छन्द में उपनिबद्ध किया गया है। मैथिली छन्द का लक्षण है -

मैथिली रसजा तत् जगौ गः पदान्तेयति।[19]

अर्थात् रगण, सगण, जगण तदन्तर जगण, दो गुरु वर्ण हो तथा पद के अन्त में यति हो तो मैथिली छन्द कहलाता है। एकादश सर्ग के कुल 115 पद्यों में मैथिली छन्द का शोभन प्रयोग किया गया है। यथा द्रष्टव्य :-

र. स. ज. ज. गु. गु.

ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

चन्द्रिका विधुसङ्गतेव दधत्प्रकाशा 14 वर्ण

र. स. ज. ज. गु. गु.

ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

मेघवारितवैभवा कुमुदाभिनन्द्या। 14 वर्ण

र. स. ज. ज. गु. गु.

ऽ ।ऽ।।ऽ।ऽ ।।ऽ।ऽऽ

मैथिली प्रययौ वनं रघुनाथनाथा। 14 वर्ण

र. स. ज. ज. गु. गु.

ऽ ।ऽ ।।ऽ। ऽ ।।ऽ।ऽ ऽ

सौध सौध्यमपास्य कान्तपदानुरागा।।[20] 14 वर्ण

धरणिजा की व्यथा मैथिली छन्द में मानो साकार हो उठी है। यथा द्रष्टव्य :-

र. स. ज. ज. गु. गु.

ऽ ।ऽ।।ऽ।ऽ। ।ऽ।ऽऽ

सा क्वचिज्जलचारिणां युगलं रिरंसुं 14 वर्ण

र. स. ज. ज. गु. गु.

ऽ ।ऽ।।ऽ।ऽ।। ऽ।ऽऽ

प्रेक्ष्य कातरमुद्रयादयितं पठन्ती। 14 वर्ण

र. स. ज. ज. गु. गु.

ऽ ।ऽ। । ऽ ।ऽ ।।ऽ।ऽऽ

दुस्त्यजं विपिनावधेश्शपथं स्मरन्ती 14 वर्ण

र. स. ज. ज. गु. गु.

ऽ।ऽ।।ऽ। ऽ।। ऽ ।ऽ ऽ

नेत्रवारि मुमोच वारिणि निम्नगाया:।।[21] 14 वर्ण

(7) **वसन्ततिलका :** - वसन्त के तिलक के समान अपनी रमणीयता के लिए प्रसिद्ध वसन्ततिलका छन्द कवियों का प्रिय रहा है। तगण, भगण, दो जगण तथा दो गुरु वर्ण क्रमश: विहित होने पर वसन्ततिलका छन्द होता है-

उक्ता वसन्ततिलका तभजा जगौ ग:।[22]

इसमें आठ एवं छ: वर्णों के पश्चात् यति होती है। आचार्य क्षेमेन्द्र के अनुसार, यह छन्द वीर और रौद्र रसों के मिश्रण के वर्णन में अधिक उपयुक्त रहता है। पहले अक्षर में आकार तथा ओज गुण से युक्त होने से इस छन्द की कान्ति द्विगुणित हो जाती है। वसन्ततिलका का कवि रत्नाकार ने अतिशय शोभन प्रयोग किया है तथा कालिदास के पद्य इस दृष्टि से रमणयी है, किन्तु राजेन्द्र मिश्र के पद्य उतने सुन्दर तो नहीं है पर उनमें एक सहज प्रवाह है।

जानकीजीवनम् में वसन्ततिलका छन्द का प्रयोग चतुर्थ सर्ग (1-44), द्वादश सर्ग (78-81), षोड़श सर्ग (73-78), एकोनविंश सर्ग (66-68) तथा विंश सर्ग (1-53) के कुल 110 पद्यों में किया गया है। यथा द्रष्टव्य :-

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ ।ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

सीतेति नाम रुचिरं रुचिराननां सा 14 वर्ण

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

दीप्यत्कपोलकलकान्तिजितप्रवाला 14 वर्ण

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

बाला सितेन्दुसुमुखी ननु पूर्वदृष्टा 14 वर्ण

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

सद्यः स्मृता स्मृतिपथं क्वचिदभ्युपैति।।[23] 14 वर्ण

इसी प्रकार महाकाव्य में करूण रसोद्बोध में यह छन्द अत्यन्त उपयोगी रहा है। यथा :-

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

प्राणप्रियां प्रियतमां, ननु जीववल्लीं 14 वर्ण

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

सीतांविना विरहिणो, निखिलास्त्रियामाः 14 वर्ण

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

वत्साननेन्दु परिवीक्षण सिन्धुकल्प 14 वर्ण

त. भ. ज. ज. गु. गु.

ऽ ऽ । ऽ । । । ऽ । । ऽ । ऽ ऽ

श्रीराघवस्य प्रणयोर्मिहता अभूवन्।।[24] 14 वर्ण

(8) अनुष्टुप् :- जो कर्णप्रिय, श्रुतिममधुर हो, वही अनुष्टुप् छन्द है। इस वृत्त में केवल चरण के पञ्चम, षष्ठ तथा सप्तम वर्ण की ही आलोचना की जाती है। इसके चारों चरणों में पञ्चमाक्षर लघु, षष्ठाक्षर गुरु, द्वितीय, चतुर्थ चरण में सप्तमाक्षर ह्रस्व तथा प्रथम व तृतीय में सप्तमाक्षर गुरु होता है।[25] अष्टवर्णात्मक इस छन्द के वर्ण्य विषय के बारे में कहा जाता है कि महाकाव्य के आरम्भ, कथाविस्तार, शमोपदेश वृत्तान्तों में इसका प्रयोग उपयुक्त रहता है।[26]

जानकीजीवनम् महाकाव्य में नौवें सर्ग के आरम्भ में, वधू-आगमन के समय सम्पादित माङ्गलिक आचारों में राम-सीता के प्रणय प्रसङ्गों में अनुष्टुप् छन्द का 98 पद्यों में अनुपम प्रयोग किया गया है। यथा द्रष्टव्य :-

ऽ ऽ ऽ
प्रथमं दीपकव्रातै 8 वर्ण

ऽ ऽ ऽ
रानुपूर्व्याऽभिनन्दनम्। 8 वर्ण

ऽ ऽ ऽ
वधूनां किल सर्वासां 8 वर्ण

ऽ ऽ ऽ
विदधे स्मितमण्डिता।।[27] 8 वर्ण

ऽ ऽ ऽ
ततः शूर्पेण कुम्भेन 8 वर्ण

ऽ ऽ ऽ
मुशलेनाऽचलेन च। 8 वर्ण

ऽ ऽ ऽ
गीतानुसृतसत्कारा 8 वर्ण

ऽ ऽ ऽ
सम्पाद्य कुलमङ्गलम्।।[28] 8 वर्ण

यहाँ चारों चरण में पञ्चम अक्षर लघु है तथा छठा वर्ण गुरु है। प्रथम व द्वितीय चरण में सातवाँ अक्षर गुरु है तथा द्वितीय व चतुर्थ चरण में सातवाँ अक्षर लघु है। अतः अनुष्टुप् छन्द है।

(9) पृथ्वी :- पृथ्वी छन्द आकार से गम्भीर, ओजगुण वर्धक वर्णों के द्वारा वर्णित होने पर दीर्घता को प्राप्त होता है। आक्षेप के साथ क्रोध में तथा किसी को धिक्कारने में यह छन्द उपयुक्त होता है। 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के चतुर्दश सर्ग में राम-रावण आवेशपूर्ण सम्भाषण में तथा जानकी का रावण को धिक्कारने के प्रसङ्ग के कुल 87 पद्यों में पृथ्वी छन्द का प्रयोग किया गया है। इस छन्द में पहचान है :-

जसौ जसयला वसुग्रहयतिश्च पृथ्वी गुरुः।

जगण-सगण-जगण-सगण-यगण हों तथा अन्त में लघु, गुरू हो तो उसे पृथ्वी छन्द कहते हैं। वस्तु आठ और ग्रह-नव अक्षरों के बाद विराम होता है।

जानकीजीवनम् महकाव्य के पृथ्वी छन्द में उपनिबद्ध उदाहरण प्रस्तुत है:-

ज. स. ज. स. य. ल.गु.

।ऽ।।।ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽऽ।ऽ

जगाद किल राघवं, दशमुखो रुषा भर्त्सयन् 17 वर्ण

ज. स. ज. स. य. ल.गु.

।ऽ।।।ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽऽ।ऽ

कुलक्षयफलानि ते समुपनेष्यते रावणः। 17 वर्ण

ज. स. ज. स. य. ल.गु.

।ऽ।।।ऽ।ऽ ।।।ऽ।ऽ ऽ।ऽ

अये मुषितवैभव! स्मरसि किन्न मां विक्रम 17 वर्ण

ज. स. ज. स. य. ल.गु.

।ऽ।।।ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽऽ ।ऽ

प्रसारजितनिर्जरं त्रिभुवनैकमल्लं रणे।।[29] 17 वर्ण

यहाँ ज., स., ज., स., य. गण क्रम है तथा ल., गु. का अवस्थिति है। यह सत्रह वर्णों का समवृत्त है तथा क्रोध, भर्त्सना भावों का पृथ्वी छन्द में समुचित अभिव्यञ्जन हुआ है।

लक्ष्मण के द्वारा मेघनाथ को ललकारने का शोभन चित्रण पृथ्वी छन्द में किया गया है। यथा द्रष्टव्य :-

ज. स. ज. स. य. ल.गु.

।ऽ। ।।ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽऽ।ऽ

विगूह्य तनुमात्मनः प्रहरसीह नो ते त्रपा 17 वर्ण

ज. स. ज. स. य. ल. गु.

।ऽ । ।। ऽ।ऽ।।।ऽ। ऽ ऽ।ऽ

हिनस्सि खल! मैथिलीं वितथमायया निर्मिताम्!! 17 वर्ण

ज. स. ज. स. य. ल.गु.

।ऽ।।।ऽ।ऽ ।।।ऽ।ऽ ऽ।ऽ

अथाद्य तव कौशलं दनुज! लोकयिष्येऽखिलं 17 वर्ण

ज. स. ज. स. य. ल.गु.

।ऽ।।।ऽ।ऽ।।।ऽ।ऽ ऽ।ऽ

पुरन्दरजयध्वजं प्रथितविक्रमं रावणे!![30] 17 वर्ण

(10) भुजङ्गप्रयातः- जानकीजीवनम् महाकाव्य में राज्याभिषेक जन्य आह्लादपूर्ण एवं वनवास जन्य विह्वलता पूर्ण, दोनों ही स्थितियों का बड़ा ही सुन्दर चित्रण एक ही छन्द में एक साथ एक ही सर्ग में 85 पद्यों में किया गया है।

जिस छन्द में चार यगण हों उसे भुजङ्गप्रयात नामक वृत्त कहते है–

भुजङ्गप्रयातं भवेद्यैश्चतुर्भि।[31]

उल्लासपूर्ण स्थिति का भुजङ्गप्रयात छन्दोबद्ध चित्रण द्रष्टव्य है:–

य. य. य. य.
ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
समग्रा पुरी कान्तकान्ता रघूणां **12 वर्ण**
य. य. य. य.
ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
बभौ नायिका प्रीतिबद्ध प्रियेव। **12 वर्ण**
य. य. य. य.
ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
ततं यावदालोकमासीद् विभुत्वं **12 वर्ण**
य. य. य. य.
ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
स्फुटं रामराज्याभिषेको नगर्याम्।।[32] **12 वर्ण**

वनवास के अवसर पर उपस्थित करुणोत्पादक मर्मस्पर्शी वर्णन भुजङ्गप्रयात छन्द में जीवन्त हो उठा है। यथा :–

य. य. य. य.
ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
विशीर्णाः क्षिती केचिदत्यन्तवृद्धाः **12 वर्ण**
य. य. य. य.
ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
शपन्तो विधिं कैकयीं पापहेतुम्। **12 वर्ण**
य. य. य. य.
ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
उरस्ताडनैः केचिदुन्मादवन्तोः **12 वर्ण**
य. य. य. य.
ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ ı ऽ ऽ
दुतम्मूर्च्छिताः केचिदाक्रोशयुक्ताः।।[33] **12 वर्ण**

(11) मालिनी :– मालिनी छन्द संस्कृत साहित्य में अनुष्टुप् के पश्चात् सर्वाधिक प्रचलित, सुन्दर एवं रमणीय छन्द है। वस्तुतः इस छन्द को सुन्दरता से अपने ग्रन्थ में प्रयोग किया है। माघ

ने तो 'शिशुपालवधं' में प्रभात वर्णन करते हुए समस्त ग्यारहवें सर्ग में केवल इसी एक ही छन्द का प्रयोग किया है। राजेन्द्र मिश्र ने भी परम्परा का निर्वाह करते हुए जानकीजीवनम् के षोडश सर्ग में प्रकृति-वर्णन में इस छन्द का उपयोग किया है।

श्रृङ्गार एवं करुण रसोद्‌बोधन में यह रस विशेष सहायक रहता है। क्षेमेन्द्र के अनुसार मालिनी छन्द का प्रयोग सर्ग के अन्त में करना चाहिए। इससे भावों की अभिव्यंजना सुमधुर होती है। अतएव जानकीजीवनम् महाकाव्य के प्रथम (1/53), त्रयोदश (13/74, 75), पञ्चदश (82,83) एवं सप्तदश (58-61) सर्गान्त में मालिनी छन्द का प्रयोग किया गया है।

मालिनी छन्द का लक्षण है,

'ननमययुतेय मालिनी भोगिलोकैः'

अर्थात जिस छन्द में दो नगण, एक मगण, दो यगण हो, वहाँ मालिनी वृत्त होता है। इसमें आठ तथा सात वर्णों पर यति होती है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में 82 पद्य मालिनी छन्दोबद्ध है। नीति परक तथ्यों की मालिनीवृत्त में अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है :-

न. न. म. य. य.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

क इह जगति भुङ्क्ते, सौख्यमत्यन्तमिद्धौ **15 वर्ण**

न. न. म. य. य.

विपदनुगतसौख्यं दृश्यते लोकसिद्धम् **15 वर्ण**

न. न. म. य. य.

प्रभवति खलु चान्द्रो, कौमुदी नन्दनायै **15 वर्ण**

न. न. म. य. य.

परमुदयति भानौ, साऽपि दैन्यं प्रयाति।।[34] **15 वर्ण**

पुनीता धरणीजा की शोभन छवि का अङ्कन मालिनी छन्द में समधिक भास्वर रूप में अभिव्यञ्जित हुआ है। यथा द्रष्टव्य :-

न. न. म. य. य.

तरूणतरणिदीप्तां नील वक्रालकान्तां **15 वर्ण**

न. न. म. य. य.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

निशितकनकभूषां, रक्तकौशेयवेषाम्। 15 वर्ण

न. न. म. य. य.

सपदिजनकजातां, राघवायाऽग्निदेवः॥[35] 15 वर्ण

(12) स्यन्दिका : अबाध गति से प्रवाहित होने वाली एवं कलकल निनाद से हृदय को झंकृत कर देने वाली स्यन्दिका सरिता की भाँति ही, अभिराज रचित नूतन स्यन्दिका छन्द सहृदयों के चित्त को हठात् ही आह्लादित कर जाता है। जानकी जीवनम् महाकाव्य के शिष्य विधान की यह महती विशिष्टता है कि नवीन उर्वर कल्पना के रङ्गों से रचित प्राचीन कथानक का प्रस्तुतीकरण नवीन छन्दों के माध्यम से किया गया है। महाकाव्य के सप्तदश सर्ग के 57 पद्यों का निर्माण स्वन्दिका छन्द में है।

स्यान्दिका छन्द का लक्ष्ण है,

'स्यन्दिका रसौयरौ श्रान्तो पदान्ते।'[36]

अर्थात रमण, सगण, यगण, रमण के गणक्रम से प्रत्येक चरण में बारह वर्ण हो तथा पदान्त गति हो, तब स्यन्दिका छन्द होता है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में राम राज्य का शोभन चित्रण स्यन्दिका छन्द में उपनिबद्ध हुआ यथा द्रष्टव्य :-

र. स. य. र.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

राघवे वसुधां प्रशासत्यञ्जसा 12 वर्ण

र. स. य. र.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

स्थापितं परितोऽपि सौराज्यंनयम्। 12 वर्ण

र. स. य. र.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

ईतिभीति विमोचिताऽऽयोध्या बभौ 12 वर्ण

र. स. य. र.
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

नायिका श्रितवल्लभेव प्रोन्मदा॥[37] 12 वर्ण

गर्भभार मन्थर गतिवाली राजरानी सीता के देवरों का हास–परिहास, दुर्मुख द्वारा लोकापवाद का रमा के समक्ष प्रतुतीकरण, लक्ष्मण का रोष एवं वशिष्ठ के साधिकार कथन का स्यन्दिका छन्द में सशक्ततया प्रस्तुतिकरण हुआ है। लक्ष्मण के तेजस्वी स्वरूप की झलक स्यन्दिका छन्दोबद्ध पद्य में द्रष्टव्य है:–

र. स. य. र.

S I S I I S I S S S I S

एष नीचकृमिश्चरित्रं शङ्कते **12 वर्ण**

र. स. य. र.

S I S I I S I S S S I S

नारको रजकः प्रकृत्या दुर्मतिः। **12 वर्ण**

र. स. य. र.

S I S I I S I S S S I S

क्षालितं वसनं नु तेनाऽजीवनं **12 वर्ण**

र. स. य. र.

S I S I I S I S S S I S

मानसं न तमोऽद्य यावत्क्षालितम्।।[38] **12 वर्ण**

(13) शार्दूलविक्रीडित :– शार्दूल के समान क्रीडा करने वाला यह छन्द वीर, रौद्र, भयानक, वीभत्स, अद्‌भुत तथा शान्त रस में अनुकूल है। 19 वर्णो का समवृत मगण–सगण–जगण–सगण–तगण–तगण तथा एक गुरू वर्ण क्रम से होता है

सूर्याश्वैर्मसजस्तताः सगुरवः शार्दूलविक्रीडितम्।[39]

इसमें बारह तथा सात वर्णों के बाद विराम होता है।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में प्रत्येक सर्ग के अन्त में एवं विविध विषयों के प्रस्तुतीकरण में कुल 55 पद्यों में शार्दूलविक्रीडित छन्द का प्रयोग हुआ है। पञ्चदश सर्ग में अग्नि परीक्षिता निष्पाप वैदेही का शोभन चित्रण शार्दूलविक्रीडित छन्द में किया गया है यथा :–

म. स. ज. स. त. त. गु.

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S

वैदेही सुरसिन्धुपूतचरितां गृह्णीष्व दत्ताम्मया **19 वर्ण**

म. स. ज. स. त. त. गु.

S S S I I S I S I I I S S S I S S I S

त्वत्प्राणां मनसा गिरा च कृतिभिः शुद्धमनन्याश्रयाम्। **19 वर्ण**

म. स. ज. स. त. त. गु.

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

कः शक्तेऽक्षततेजसैव नितरां स्वेनैव संरक्षितां 19 वर्ण

म. स. ज. स. त. त. गु.

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । ऽ । । । ऽ ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ

संस्प्रष्टुं मनसाऽपि दूषितमनाः सूर्यप्रभां राघव!![40] 19 वर्ण

(14) **शिखरिणी :-** जानकीजीवनम् महाकाव्य में शिखरिणी छन्द का प्रयोग तीन सर्गों में कुल 7 पद्यों में (5/63, 64, 8/77-80, 9/101) में किया गया है। काव्यशास्त्रियों ने शिखरिणी का लक्षण निर्धारित किया है :-

रसै रुद्रैश्छिन्ना यमनसभलागः शिखरिणी।[41]

जिस छन्द में यगण, मगण, नगण, सगण, भगण हों और अन्त में लघु गुरु हो, उसे शिखरिणी छन्द कहते हैं। इसमें रस (छः), रुद्र (11) अक्षरों के बाद विराम होता है।

क्षेमेन्द्र के अनुसर, जिस प्रकार शिखरिणी (पर्वत) के ऊपर चढ़ने में सहज ही ओज की स्थिति होती है, उसी प्रकार शिखरीणी छन्दके निर्माण में ओजगुण आवश्यक होता है। श्रृङ्गार, वीर, शान्त रस में शिखरिणी छन्द का प्रयोग सर्वाधिक उपयुक्त माना गया है।

जानकीजीवनम् महाकाव्य में श्रृङ्गार रस की अभिव्यंजना में शिखरिणी छन्दोबद्ध पद्य द्रष्टव्य है:-

य. म. न. स. भ. ल. गु.

। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ

दिनं चान्द्रं ज्योत्स्नातुलिततपनं शीतलकरं 17 वर्ण

य. म. न. स. भ. ल. गु.

। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ

निशीथिन्यो नूनं, प्रखररवितापप्रहरणाः 17 वर्ण

य. म. न. स. भ. ल. गु.

। ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ

तमो ज्योति र्ज्योतिरसघनतम इत्येवगनिशं 17 वर्ण

य. म. न. स. भ. ल. गु.

। ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । । । ऽ

विपर्यस्तं सर्वं, जनकतनुजायास्समभवत्।।[42] 17 वर्ण

(15) **तोटक** :- प्रत्येक चरण में 12 वर्णों वाले तोटक छन्द ताल, लय की शीघ्रता से युक्त होना चाहिए तथा पुरुष वर्ण से पूर्ण हो तो ऐसा तोटक चित्त को नचाता है, आनन्दित कर देता है। तोटक छन्द का लक्षण किया गया है:-

इह तोटकमम्बुधिसैः प्रथितम्।।[43]

अर्थात् जिस छन्द में चार सगण हो तथा पाद के अन्त में यति हो तो तोटक छन्द कहलाता है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में इस छन्द का 21 वें सर्ग में स्वल्प प्रयोग किया गया है। राम की बालक्रीड़ाओं का शोभन चित्रण इस छन्द में किया गया है। यथा द्रष्टव्य :-

स. स. स. स.
ऽ ऽ ऽ ऽ
।।ऽ ।।ऽ।।ऽ ।।ऽ
नटितं वलित लपितं स्खलितं **12 वर्ण**
स. स. स. स.
।।ऽ ।।ऽ।।ऽ ।।ऽ
हसित क्वचिदालयगोपितकम्। **12 वर्ण**
स. स. स. स.
।।ऽ ।।ऽ।।ऽ ।।ऽ
शशिबिम्बकरग्रहणाऽयतितं **12 वर्ण**
स. स. स. स.
।।ऽ।।ऽ। ।ऽ ।।ऽ
ह्यपराधभयेन निगूहितकम्।।[44] **12 वर्ण**

(16) **हरिणी** :- जानकीजीवनम् महाकाव्य में हरिणी छन्द माँ वाग्देवी की भावपूर्ण स्तुति की शोभन अभिव्यञ्जना में सहायक बना है। हरिणी छन्द का लक्षण है :-

'नसमरसलागः षड्वेदैर्हयैर्हरिणीमता।

अर्थात् जिसमें नगण, सगण, मगण, रगण, सगण लघु और गुरु क्रम से 17 वर्ण हों, हरिणी छन्द होता है। इसमें 6, 4, 7 वर्णों पर यति होती है। महाकाव्य में मात्र दो ही पद्य (10/86, 87) हरिणी दन्दोनिबद्ध है। हरिणीवृत्त में रचित माँ वाग्देवी का संस्तवन द्रष्टव्य है:-

न. स. म. र. स. ल. गु.
। । । । ।ऽ ऽऽऽ ऽ।ऽ । । ऽ । ऽ
स्वयमसि परं, काव्यं नाना, चरित्र समन्वितं 17 वर्ण
न. स. म. र. स. ल.गु.
। । । । ।ऽ ऽऽ ऽऽ।ऽ । । ऽ । ऽ
स्वयमसि कवि, वेधाः साक्षाद्, विलक्षणनिर्मितिः।। 17 वर्ण

न. स. म. र. स. ल. गु.

। । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ

रसिकहृदयो, त्वकण्ठा काव्ये, त्वमेव सदाशये। 17 वर्ण

न. स. म. र. स. ल. गु.

। । । । । ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ । ऽ । । ऽ । ऽ

जगति भवतीं, हित्वा किञ्चिन्, न वेद्मि गतागतम्।।[45] 17 वर्ण

(17) मन्दाक्रान्ता :- मन्दाकान्ता अर्थात् धीरे-धीरे चढ़ना इसलिए इस छन्द में पहिले वर्ण विन्यास मन्द तदनन्तर द्रुत होना चाहिए। मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग वर्षा एवं प्रवास दु:ख में किया जाये तो भावाभिव्यञ्जना तीव्र हो जाती है। मन्दाक्रान्ता छन्द का महाकवि कालिदास ने मेघदूतम् में अतिशय शोभन प्रयोग किया। मन्दाक्रान्ता छन्द का लक्षण कहा गया है:-

मन्दाक्रान्ता जलधिषडगैर्म्भौ नतौ ताद् गुरु चेत्।।[46]

अर्थात् जिस छन्द में मगण, भगण, नगण, तगण और अन्त में दो गुरु हों उसे मन्दाक्रान्ता नामक वृत्त कहते हैं। इसमें चार, छ: तथा सात पर यति होती है। जानकीजीवनम् महकाव्य में केवल दो पद्यों में मन्दाक्रान्ता छन्द का प्रयोग किया गया है। 'राघवानुरागसंज्ञक' चतुर्थ सर्ग में राम की पूर्वराग विषयक विरहदशा का चारू चित्रण इस छन्द में किया गया है:-

म. भ. न. त. त. गु.गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

तस्यां रात्रौ मनसिजकथानायिकाऽकृष्टचेता: 17 वर्ण

म. भ. न. त. त.गु.गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

काकुत्स्थोऽसौ क्षणमपि दृशौ मीलितुं नो शशाक 17 वर्ण

म. भ. न. त. त. गु.गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

स्मारं स्मारं जनकतनया वीतनिद्रं त्रियामां 17 वर्ण

म. भ. न. त. त. गु.गु.

ऽ ऽ ऽ ऽ । । । । । ऽ ऽ । ऽ ऽ । ऽ ऽ

रामोऽनैषीत्कथकतप च तां सोदराद् गोपितात्मा।।[47] 17 वर्ण

(18) मुक्तमात्रिक :- जानकीजीवनम् महाकाव्य में सरस रामायण काव्य का प्रस्तुतीकरण सुमधुर गेय राग-रागनियों पर आधारित होने के कारण इक्कीसवें सर्ग के 159 पद्य मुक्तमात्रिक छन्छोबद्ध है। स्वत: प्रस्फुटित शोभन भावों का निर्झर छन्दों की निश्चित सीमा के बन्धन को अस्वीकार करता हुआ, अबाध प्रवाहित हुआ है। यथा द्रष्टव्य :-

ऽ ऽ ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ

रामो रामकथाऽमृतमूलम्।　　　16 मात्रा

। । ऽ ऽ। । ऽ । । ऽ । । । । । । । ऽ । । ऽ ऽ

सगरेक्ष्वाकुसुदासभगीरथरघुचरिताम्बुधिकूलम्!!　28 मात्रा

ऽ । । । । ऽ । । । । । । । । । । । ऽ । ऽ । ऽ ऽ

स्फीतमुदितकोसलजनपदगत नगरी मनोरयोध्या। 28 मात्रा

। । । । ऽ । । ऽ । । ऽ ऽ । । । । । । । । ऽ ऽ

बहुधनधान्यवती सुविशाला नृपदशरथभुजयोग्या।।28 मात्रा

इसी प्रकार इक्कीसवें सर्ग के 7-24, 29-168 पद्यों में पृथक्-पृथक् मुक्त मात्रिक छन्द प्रयुक्त किये गये हैं। यथा द्रष्टव्य :-

। । । । । । ऽ । । । । । । । ऽ । । । । ऽ । । ऽ ऽ

मदिरगृगवधूसविनयनया स्मितवचनाऽप्यभिरामा।　28 मात्रा

ऽ । । । । । । । । । । । ऽ ऽ　ऽ ऽ । । । । ऽ ऽ

श्रावणसजलजलदशितिकेशाऽयामा क्व नु मम वामा!![49]　28 मात्रा

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि जानकीजीवनम् छन्दोविधान की दृष्टि से सफल महाकाव्य है। भावों की सुमधुर अभिव्यञ्जना में, चित्त के विस्तार में प्रयुक्त महाकाव्य की छन्दोयोजना अभिभूत कर देने वाली है। रसानुकूल छन्दों का प्रयोग अभिराम है। छन्दों के उपयोग की दृष्टि से शास्त्रीय दृष्टिकोण में नवीन दृष्टिकोण का समवोश किया गया है।

संदर्भ सूची–

1. नाट्य शास्त्र – भरतमुनि

2. वृ.र. 3/29

3. जा.जी. 7/65

4. जा.जी. 8/43

5. जा.जी. 8/54

6. जा.जी. 8/75

7. जा.जी. 13/36

8. उपेन्द्रवज्रा जतजास्ततो गौ।

9. स्यादिन्द्रवज्रा यदि तौ जगौ ग:

10. जा.जी. 13/67

11. जा.जी. 19/53

12. जा.जी. 7/81

13. जा.जी. 2/16

14. जा.जी. 15/19

15. जा.जी. 5/54

16. जा.जी. 12/22

17. जा.जी. 6/48

18. जा.जी. 6/58

19. छन्दोविराजजियम् – राजेन्द्र मिश्र

20. जा.जी. 11/1

21. जा.जी. 11/15

22. वृ. र. 3/79

23. जा.जी. 4/42

24. जा.जी. 19/68

25. श्लोके षष्ठं गुरुज्ञेयं सर्वत्र लघु पञ्चमम्।
द्विचतुष्पादयोर्ह्रस्वं सप्तमदीर्घमन्ययो।। छन्द प्रवेशिका पृ. – 2

26. आरम्भे सर्गबन्धस्य, कथाविस्तार संग्रहे।
शमोपदेशवृत्तान्ते, सन्तः शसन्त्यनुष्टुमम्।। वृ. र. पृ. 58

27. जा.जी. 9/29

28. जा.जी. 9/30

29. जा.जी. 14/76

30. जा.जी. 14/69

31. वृ. र. 3/55

32. जा.जी. 10/24

33. जा.जी. 10/18

34. जा.जी. 11/116

35. जा.जी. 15/83

36. छन्दोविराजियम् –राजेन्द्र मिश्र

37. जा.जी. 17/1

38. जा.जी. 17/49

39. वृ. र. 3/101

40. जा.जी. 15/84

41. वृ. र. 3/93

42. जा.जी. 9/101

43. वृ. र. 3/49

44. जा.जी. 21/25

45. जा.जी. 10/87

46. वृ. र. 3/97

47. जा.जी. 4/46

48. जा.जी. 21/6

49. जा.जी. 21/95

भाषा शैली

जानकीजीवनम् महाकाव्य की भाषा शैली ललित, मधुर, सरस है। भाषा में जीवन्तता तथा गञ्जलता है। भाषा भावों की चारू अभिव्यञ्जक है। महाकाव्य की शैली प्रसाद गुण संवलित वैदर्भी रीति से सम्पन्न है। जानकीजीवनम् महाकाव्य की भाषा शैली की कतिपय विशेषताओं का विवेचन प्रस्तुत है :-

(1) **भावानुगामिनी भाषा** - मनोहर भावों के सर्वथा उपयुक्त भाषा का प्रयोग ही जानकी जीवनम् महाकाव्य की सर्वप्रमुख विशिष्टता है। भावों का सम्प्रेषण ही नहीं होता वरन् भावों के माधुर्य की अनुभूति सहृदयों को होती है यथा द्रष्टव्य :-

तथापि तस्या मनसि प्रभामयी प्रकल्पनैकप्रतिमा पदं दधे।
यथाम्बुतल्पे प्रतिबिम्बिताङ्गतश्चकास्ति वापीतटजोऽप्यनोकहः।।[1]

यहाँ सीता के मन में प्रिय की जैसी मनोहर कल्पना है तदनुरूप ही शोभन पदावली है। इसी प्रकार मिलन में राघव की अधीरता सीता की लज्जा का चित्रोपम वर्णन सुगठित पद विन्यास में हुआ है। श्रीराम प्रिया के हृदयस्थ प्रणय को भली-भाँति अनुभव करके भी लज्जावश बोल न पाने के कारण तनिक कृत्रिम कोप दर्शाते हुए कहते है, 'अच्छा जाओ, तुम्हारे मार्ग में बाधा उत्पन्न नहीं करूँगा' कहकर राम के द्वारा मौन साथ लेने पर सहृदयों की राम-सीता का हृदयस्थ प्रीति का रसास्वाद हो जाता है।

रघुवरोऽपि विलोक्य निमज्जितां प्रणयिनीं स्मरभावपयोनिधौ।
भवतु गच्छ न ते पथि पीडये समभियमन्त्र्य शनैरिति शं ययौ।।[2]

वरमाला के अवसर पर समवयस्का सहचरियों द्वारा बार-बार प्रेरित की जाने पर प्राणेश्वर श्रीराम के कण्ठ में शीघ्रतापूर्वक वरमाला पहना दी एवं अश्रुमुखी हो उठी। भावों की चारूता शब्दों की मञ्जुलता के साथ मिश्रित हो रही है। यथा द्रष्टव्य :-

मुहुर्महस्तुल्यवयस्सखीभिः प्रणोदिता भूमिसुताऽथ दीना।
आरोप्य कण्ठे वरमाल्यमाशु प्राणेश्वरस्याश्रुमुखीबभूव।।[3]

रसिक प्रियतम की मनुहार भरी वार्ता सरसता एवं मधुरता का प्रकाशन कर रही है तथा तदनुरूप ही भाषा विन्यास है। यथा द्रष्टव्यः-

दोर्म्यानिपीड्य तामूचे सीते! श्रृणु वदामि यत्।
शरास्ते दृष्टि सम्पाता नेत्रयुग्मञ्च कार्मुकम्।।
अहमेव मृगीभूय त्वया हन्येऽनिशं शुभे!
सम्भाव्ये न कथं बाले! त्वदास्येन्दु चकोरकः।।[4]

राम की शोभा एवं जानकी जी की सुकुमारता निहार कर, कंकरीले-पथरीले मार्ग पर उन्हें चलते देख कर कोल-किरात की पत्नियाँ जहाँ राम-सीता के प्रति श्रद्धा से अभिभूत हो जाती हैं वहीं कारणभूत कैकेयी को धिक्कारती हैं। इन विधिध भावों का प्रकाशन किस चातुर्यपूर्ण ढंग से किया गया है-

कैकयीर्धिगहो प्रथा कृतमेतदेनो धिग्विधिं धिगदः पुरे धिगमंपंश्चपौरान।
हन्त! कोऽपि वभूव नो विपदां निरोद्धा द्वेषपापभुवां प्रजासु मृतान्वयोध्या!!
मा कृथा अयि साध्वि! कोपमथ प्ररोषं सत्कृतैर्हि विधेर्वयं ननु भाग्यवत्यः।
अन्यथा शरदिन्दुकान्तिमयी मुखश्रीः स्यात्कथं सुलभेतिकाचिदुवाच तन्वौ।।[5]

इसी प्रकार दशरथ की विवशता, विकलता, राम के प्रति अनन्य प्रेम, कैकयी के प्रति घृणा, वन में भेजने के नाम से दर्द से छटपटाते दशरथ की पीड़ा इन उद्गारों में चमत्कारपूर्ण ढंग से प्रगट हुई है-

मृगप्राणपीडां क्व जानाति भिल्ली मृदुस्वादुमांसार्थिनी लोलजिह्वा।
बभाषे स्फुटं कैकयी कोसलेद्रम् अलं देव! वाचां प्रसारैरपार्थैः।[6]

(2) रस मसृण भाषा (सरस) :- जानकीजीवनम् महाकाव्य रस-पेशल रचना है। अतिशय रमणीय सरस होने के कारण ही यह चित्त को रमाने वाली है। सुकुमार भावों की व्यञ्जना में श्रृंगार, अद्भुत, हास्य रसों की अभिव्यञ्जना हुई है तो वीर, भयानक, रौद्र रसों की उपस्थिति भावों के ओजत्व को अभिव्यक्त करते हैं। करूण, शान्त रस परिमलित भाषा महाकाव्य में रसों के अनुरूप ही प्रयुक्त हुई है।

श्रृङ्गार रस से संबंधित वर्णनों में कवि ने श्रुति-मधुर शब्द एवं कोमलकान्त पदावली द्वारा माधुर्यपूर्ण संघटना का विन्यास किया है :-

किमिव मामवलोक्य विलज्जसे सुतनु मैथिली ! मञ्जुलदर्शने!!
प्रचलितासि यदीयदिदृक्षया ननु तमेव जनं किमुपेक्षसे?
प्रतिवचः करभोरू! न दीयते यदि मनागपि सङ्गतया त्वया।
रघुवरोऽनुभविष्यति निश्चितं वितथमेव भवान्तरसौहृदम्।।[7]

करूण रसोपेत भाषा का सौन्दर्य द्रष्टव्य है :-

निशम्य दयितावधं रघुपतिर्जहज्जीवितो
रुरोदकरुणं गलन्नयनवारि मध्येरणम्।
विदेहतनये! प्रिये! दशरथस्नुषे! मैथिलि!
विहाय किल राघवं क्व नु गताऽसि तद्ब्रूहि मे!![8]

वात्सल्य भाव से पूर्ण सुन्दर पदावली की एक झलक द्रष्टव्य है :-

नटितं वलितं लपितं स्खलितं हसितं क्वचिदालयगोपितकम्।
शशिबिम्बकरग्रहणाऽयतितं ह्यपराधभयेन निगूहितकम्।।[9]

यहाँ बाल-सुलभ क्रीड़ाओं का अतीव लालित्यपूर्ण चित्रण हुआ है। ऐसे ही ममतापूर्ण जानकी का भावविह्वल शब्द चित्र. प्रस्तुत है –

कुशलवौ रघुनाथ! सुकोमलौ परुषकाननदाण जीवनम्।
न किल सोढुमिमौ सहजं क्षमौ विरहितौ नु कदापि कुटुम्बतः।।[10]

वात्सल्य भाव की मञ्जुल अभिव्यक्ति द्रष्टव्य है :-

अहो सुता मे कयती गुणान्विता मितम्पचाऽसंकसुका स्तनन्धया।
अहा शुभुये: कियतीति लालयन् चकार सीतां नृपतिर्भुजान्तरे।।[11]

यहाँ विदेहराज जनक का शील गुण सम्पन्न बिटिया सीता के लिए वात्सल्य भाव छलक रहा है तथा सौन्दर्य रस पेशल भाषा में पूर्ण गौरव के साथ अङ्कित हुआ है।

हास्य रस की अभिव्यक्ति उपयुक्त भाषा में अच्छी बन पड़ी है–

दर्श दर्श तदा बोधे भण्डवेषं तदीयकम्।
अट्टहासैश्च ताः सर्वाः प्रत्युज्जाग्मुस्तमञ्जसा।।[12]

(3) व्यञ्जना प्रधान (ध्वन्यात्मक) :- किसी भाव का चित्रण करते समय मिश्र जी एक अनूठी शैली का उपयोग करते हैं। वे उसे स्पष्ट कहने की अपेक्षा व्यञ्जना-शैली का आश्रय ले, उसकी ओर सूक्ष्म संकेत भर कर देते हैं जिससे सहृदयों को एक विशिष्ट आनन्द की अनुभूति होती है तथा एक अपूर्व सौन्दर्य की सृष्टि होती है। जैसे –

पदनखाग्रसमुद्धृतरेणुभिर्निज मनोजरुजामपलापिनी।
लघुमुहूर्तमितं समयं तदा युगमिवानुबभूव विदेहजा।।[13]

पुष्पवाटिका में पुष्प-चयन करते हुये अभिराम राम के प्रथम-दर्शन के समय जानकी जी की मनः स्थिति का बिना अधिक वर्णन किये ही कैसा रमणीय चित्र प्रस्तुत किया है। पदनखों के अग्रभाग से अपनी स्मरवेदना को झुठलाने वाली जनकनन्दिनी ने मुहूर्त भर की अवधि को भी एक युग के समान अनुभव किया। पदनखों के अग्रभाग से धूल को कुरेदने के वर्णन से वैदेही की सहज लज्जाशीलता, आन्तरिक प्रेम तथा आनन्दातिरेक के गोपन की प्रवृत्ति की अतिशय रुचिर एवं मार्मिक व्यञ्जना की गई है।

ऐसी ही नारी हृदय के शोभन भावों की समधिक चारु अभिव्यंञ्जना यहाँ हो रही है :-

न च ससार पुरो न च पृष्ठतो न खलु दक्षिणतो न च वामतः।
उपरि नैव ददर्श न वाप्यधो ह्यचलमूर्तिरिवाजनि जानकी।।[14]

प्राणवल्लभ राम को साक्षात् देखकर जानकी जी का मूर्ति बन एकदम स्थिर खड़े रह जाने के वर्णन के साथ ही कितने ही हृदयहारी भावों की एक साथ प्रतीति हो रही है यह कहने की नहीं केवल अनुभूति का विषय है।

(4) ललित पद विन्यास :- 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य अपनी सुन्दर भावव्यञ्जना, उदात्त एवं कोमल कल्पना तथा प्राञ्जल पद-विन्यास के कारण आधुनिक रुचि के विशेष अनुकूल है। महाकाव्य में सुकुमार भावों की अभिव्यञ्जना के लिये सुललित पदों का विन्यास किया गया है जो हृदयहारी है। अभिराम राम की शोभा को निहारने में जो अनिर्वचनीय आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। उसकी चित्ताकर्षक अभिव्यक्ति की झलक देखिये :-

मुदिरमेदुरचन्दिरवन्दितं चटुलकुन्तलललिततन्मुखम्।
यदि कृतं न दृशोस्सकृदास्पदं धिगयि मैथिलि! जीवितमेव ते।।[15]

प्रियतम के आङ्गन में नुपूरो की मधुर झंकार करती विदेहजा के मनोरम भाव चित्र का सुमधुर वर्णों में अभिव्यञ्जना द्रष्टव्य है :-

किसलयैररुणारुणकान्तिभिर्नयनवैश्च विकाससमुपेयुषी।
गृहलतेव सुखानि विदेहजा नवनवानि ददर्श प्रियाङ्गणे।।[16]

सीता की रमणीय शोभा का कैसा सर्वातिशायी चित्र ललित पदविन्यास के द्वारा किया गया है:-

सीतेति नाम रुचिरं रुचिराननना सा
दीप्यत्कपोलकलकान्ति जित प्रवाला।
बाला सितेन्दुसुमुखी ननु पूर्व दृष्टा
सद्यः स्मृता स्मृतिपथं क्वचिदभ्युपैति।।[17]

(5) शोभन बिम्ब-विधान :- जानकीजीवनम् महाकाव्य में सुन्दर भाव-चित्रों की सृष्टि हुई है। अभिराज कल्पना, सिया-राम समान अनुपम चरित्र के सरस-मधुर चित्र सम्पूर्ण महाकाव्य में बिखरे पड़े है। रसमयी रुचिर शोभा सम्पन्न बिम्ब-विधान चित्ताकर्षक है। यथा द्रष्टव्य :-

अग्रेसरीकृत्य पदद्वयं सा बाला क्वचित्साध्वसमन्दवेगा।
पश्चात्पदं न्वेकमुपाययौ यज्जिगाय तेनैव तु शम्बरारिः।।[18]

सीता की मनभावन शोभा जीवन्त बिम्ब विधान से मुखर हो उठी है :-

कुवेलमास्ये करयोश्च पल्लवं जपासुमञ्चापि कपोलमण्डले।
रदच्छदे बिम्बफलं दधद्विधिश्चकार सीतां किमरण्यदेवताम्।।[19]

प्रकृति से उपमित करते हुए सीता के अनुपमेय सौन्दर्य का बिम्ब प्रस्तुत किया जा रहा है। यथा :-

नितम्बगुर्वी विनतांससौष्ठवा सुमध्यमा चारुचकोरलोचना।
यशागति चन्द्रमुखी मिताक्षरा चकर्ष सीरध्वजजकन्यका न कम्॥
अनङ्ग लक्ष्मीमृदुतल्पसन्निभां ललामरोमौधहरिन्मणिप्रभाम्।
बभार सीता त्रिवलीमनुत्तमां रतेस्यपर्यास्थलिकामिवैव किम्॥[20]

(6) व्याकरणिक कौशल से पूर्ण :- जानकीजीवनम् महाकाव्य व्याकरण की दृष्टि से परिमर्जित है। उसमें विधिता एवं निपुणता की दृष्टि से अच्छे प्रयोग किए गए हैं। लौकिक संस्कृत का तो शोभन प्रयोग है ही लिट् लकार का भी महाकाव्य में मञ्जुल समन्वय है। जानकीजीवनम् में ययाचे, चचार, विचिक्रीड, प्रपेदे, बभाषे, ललास, निनाय, शशाक, दध्रे, चकर्ष, शुशुभे, बभार, पेदिरे, रराज, इयाय, शशाम, रुरोध, चचाल, विरेजे, ववर्ष, सिषेवे, आजगाम, ववौ, निजगाद, आजुहाव, दधे, तुतोष, उवाच, निदद्रौ, अवाप, चकार, शुश्रुवे, ननन्द, आदधे, मुमोच, जजागर, भावयामास, आचचक्षे, जगाहिरे, पस्पर्श, शुश्राव, चुकूज, प्रशिश्यरे, ननर्त इत्यादि धातु-प्रयोग दिखाई देते हैं। यथा -

तुतोष :-

स्मेरगर्भमधीत्य हृद्यवचः प्रकर्ष कोलभिल्लपुलिन्दयूथप सुन्दरीणाम्।
नागरैस्सह मैथिली ननुतोलयन्ती तास्तुतोष परं क्वोऽमृत नर्पयन्ती॥[21]

शुश्राव :-

अथ प्रभातोन्मुखरात्रिकाले विनिद्रनेत्रा विगतं स्मरन्ती।
शुश्राव वाणीममलाऽनवद्यां कुतोऽपि सीता सहसैव दिव्याम्॥[22]

चकार :-

उवास वर्षाणि बहूनि कुर्वन् स तापसानां महितोपकारम्।
नीराक्षसं शंसितचित्रकूटं चकार यः प्रोद्यतधुर्यधन्वा॥[23]

ननन्द :-

हनुमदभिमंत्रितो रघुपतिस्ततस्सादरं
ननन्द स विभीषणं समभिधाय लङ्केश्वरम्॥[24]

निजगाद :-

जनकजाऽपि निशम्य सुयोषितां रसमयं वचनं हृदि मोदिता।
सविनयं निजगाद ममात्मजौ निखिलवंश धरांशधराविति।[25]

रराज :-

दीप्त्या रविचन्द्रिकयेव चन्द्रो वसन्तलक्ष्म्येव हि चैत्रमासः।
रत्या स्मरो लोकपतिः श्रिया वा रराज रामोऽपि तथा तदानीम्॥[26]

(7) आलङ्कारिक भाषा :- भाषा के अलङ्कारों का आधान काव्य-सौन्दर्य में अभिवृद्धि ही करता है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में अलङ्कारों का समावेश अनायास स्वतः स्फूर्त है जो भाषा में एक चमत्कार का सृजन करता है।

इस सम्पूर्ण महाकाव्य में रूपक, अनुप्रास, काव्यलिङ्ग, उपमा, विभावना, विशेषोक्ति, यमक, एकावली, उत्प्रेक्षा का शोभन प्रयोग हुआ है। एकावली का एक मनोहर पद्य अवलोकनीय है :-

न तद्गृहंयन्नविकीर्णगीतकं, न गीतकं व्यायतमूर्च्छनं न यत्।
न मूर्च्छनं यन्न रसाक्तवाचिकं, न वाचिकं यन्नप सुधासहोदरम्॥[27]

उपमा से अलंकृत भाषा की चारूता तो बस देखते ही बनती है:-

सा मल्लिकाक्षप्रमदाङ्घ्रिचर्या नीराजना विग्रहसम्मुखीना।
शशाङ्कलेखेव पुरस्सरन्ती सीता कथञ्चित्प्रियमाजगाम॥[28]

सीता की वनयौवनावस्था का आलङ्कारिक भाषा में समधिक शोभन चित्रण द्रष्टव्य है:-

फलोत्सुकेव प्रसवर्धिगर्विता बभार बाला नवयौवनागमम्।
मरन्दनिस्यन्दवचोमधूनि सा तथैव दध्रे प्रतपच्छिलीमुखम्॥[29]

यौवनावस्था के आगमन पर सीता समधिक लज्जाशील हो जाने का स्वाभाविक वर्णन आलङ्कारिक भाषा में द्रष्टव्य है:-

रतिप्रवीजाङ्कुरयुग्मसन्निभौ, पयोधरौ वक्षसि वीक्ष्य वर्धितौ।
विदूरकन्दर्पकथा व्यथालसा, दुरन्तवैलक्ष्यमवापजानकी॥[30]

(8) अभिराम छन्दोबद्ध :- जानकीजीवनम महाकाव्य की भाषा छन्दोबद्ध है जो काव्य-कामिनी को कंकण किंकिणी सम ध्वननात्मक सौन्दर्य प्रदान करती है। सम्पूर्ण महाकाव्य में विविध छन्दों का प्रयोग भावानुसार किया गया है। सुमधुर, सुकोमल भावों की अभिव्यञ्जना में वंशस्थ, द्रुतविलम्बित, वसन्ततिलका, अनुष्टुप्, मालिनी, छन्दो का प्रयोग हुआ है। करुण, विप्रलम्भ में मैथिली एवं स्यन्दिका नामक दो नवीन छन्दों का प्रयोग किया गया है। माता सीता के प्रति विशेष अनुराग एवं भक्तिभाव निवेदित करने वाला मैथिली छन्द उनकी पीड़ा को समधिक शोभन व्यंजित करता है। इसी प्रकार अग्निपरीक्षिता सीता का निर्वासन सर्वथा अनुचित है, इसीलिए गुरु वशिष्ठ द्वारा आयोजित धर्मसभा में सीता का निष्कलंक प्रमाणित होना तथा निर्वासन नहीं होना,

इस सर्वथा नवीन विषय के प्रस्तुतीकरण के लिए जानकीजीवनम् में स्यन्दिका नामक छन्द का प्रयोग किया गया है जो निर्मल, उज्ज्वल जलधारा के समान ही जानकी के चरित्र को प्रमाणित करने वाली भावधारा का शोभन अभिव्यञ्जन करने में पूर्णतः सफल रहा है। विविध रसों के अभिव्यञ्जन के लिए उपेन्द्रवज्रा, उपजाति, वियोगिनी, पृथ्वी, भुजङ्गप्रयात, शार्दूलविक्रीडित, शिखरिणी, तोटक, हरिणी, मन्दाक्रान्ता छन्दों का चातुर्यपूर्ण समायोजन भाषा शैली की विशिष्टता है। एकविंश सर्ग में रामायण गान के लिए तो महाकाव्य में मुक्त मात्रिक छन्दों की योजना की गई है जो महाकाव्य को अनुपमता प्रदान करता है।

(9) गेयात्मक-नादात्मक सौन्दर्य :- जानकीजीवनम् महाकाव्य की भाषा सहज प्रवाह से युक्त है। उसमें एक स्वाभाविक लय है। महाकाव्य छन्दोबद्ध है, जिसे किसी भी साज के साथ गाया जा सकता है। इक्कीसवें सर्ग में जो रामायण काव्य का गान हुआ है, वह मुक्त मात्रिक छन्दोबद्ध है जो पूर्णतः राग-रागनियों पर आधृत हैं। वीणा की सुमधुर स्वरलहरियों पर, उसका गान हृत्तन्त्री को झंकृत कर जाता है। यथा - राम जन्मोत्सव का उत्साह शब्दों में समा नहीं रहा, हृदय के भाव वीणा की स्वरलहरियों पर मानों छलक रहे हैं:-

तनयजनन पुलकित तनुराधियो हृतसमग्रसन्तापः।
ननु बभूव शरदम्बर शुभ्रोऽञ्चित तारकोऽवदातः।।
सखि! भालय कोमसलभूपगृहम्।
नृपसूनुचतुष्टयमोदमयं सतता मृतनिर्झरशैत्यवहम्!!
पुरुषार्थचतुष्टयरूपधराः सदुपायचतुष्टयरूपधराः
बध्नन्ति दृशं हृदयेन शपे ननु भूपसुता नवकेलिपराः।।[31]

(10) सूक्तिरत्नों से जटित :- जीवन को सुन्दर एवं गरिमा प्रदान करते है। सुभाषित और इन्हीं सूक्ति रत्नों से जटित भाषा-कामिनी महाकाव्य के महनीय प्रयोजन को चारूता से सम्पादित करती हैं। जानकीजीवनम् महाकाव्य में समधिक चातुर्यपूर्ण ढंग से सूक्तियों का समावेश किया गया है। समय के अनुसार ही प्रयत्न प्रशंसनीय होता है, समय ही अनमोल है। इस सार्वभौम तथ्य की ओर सङ्केत किया गया है। यथा द्रष्टव्य :-

प्रवर्षणैः किं ज्वलिते हि शस्येकालोचित्र्चैव विभाति यत्नः।।[32]

शाखा से पृथक् हुई लता तथा नयना से एक बार गिरी रमणी कदापि सम्माननीय नहीं होती:-

लताशाखिच्युता कान्तभक्तिप्रगाढानुरागच्युता चापि भार्या।
सकृदभूयशये राज्ञि! शीर्षाधिरोहम अवाप्तुं क्षमे नैव सत्यं ब्रवीमि।।[33]

जीवन में सुख-दुःख धूप छाँव की तरह सदैव ही गतिमान रहते हैं। इसी को सशक्ततया सङ्केतित किया जा रहा है। यथा द्रष्टव्य :-

क इह जगति भुङ्क्ते सौख्यमत्यन्तमिद्धो
विपदनुगतसौख्यं दृश्यते लोकसिद्धम्।
प्रभवित खलु चान्द्री कौमुदी नन्दनायै।
परमुदयति भानौ साऽपिदैन्यं प्रयाति।।[34]

(11) लोक परम्पराओं का प्रतिबिम्बन :- वर्तमान समय में संस्कृत भाषा के प्रसार तथा उसकी लोकप्रियता की वृद्धि के लिये सहज प्रवाहमयी भाषा का प्रयोग तथा क्लिष्टता का परिहार अत्यन्त आवश्यक हो गया है। तदनुरूप ही कवि ने सामान्य जनजीवन से भाषा लोकपरम्पराएँ लोकोक्तियाँ आदि ग्रहण करके काव्य को अधिक सुन्दर एवं रोचक बनाया है।[35] जानकीजीवनम् महाकाव्य में लोक परम्पराओं की चारू अभिव्यञ्जना हुई है। द्वितीय सर्ग में सीता की नैसर्गिक बाल सुलभ चपल क्रीड़ाओं का अतिशय मनोहर वर्णन किया गया है। गुड्डे-गुड्डियों का खेल, जल संस्तरण, कन्दुक क्रीड़ा, चक्की पीसना, हरतालिका व्रत का चित्रोपम वर्णन ग्रामीण शब्दावली में किया गया है जो काव्य में एक निराले सौन्दर्य की अभिवृद्धि करता है। इसी प्रकार प्राजापत्य विवाह विधि अनुसार सप्तपदी का चारू चित्रण के साथ ही लोकप्रचलित लोकगीतों एवं लोकाचारों का सीता एवं राम के विवाह के अवसर पर समायोजन महाकाव्य में एक ताजगी का एहसास करवा जाता है।[36] लोक एवं शास्त्रीय परम्पराओं के समावेश से महाकाव्य में तो एक प्रकार की रोचकता का समावेश हुआ ही है, महाकाव्य में भाषा विषयक नवीन प्रयोग भी किए गए हैं। यह नवीन भाषा रचनाकार ने स्वयं गढ़ी है। अभिजात में लोक का पदार्पण दर्शनीय है। विदा के समय पुत्री सीता को विदेहराज का उपदेश,[37] अयोध्या पदार्पण के साथ ही शोभन वध्वाचार की परम्परा का विवेचन,[38] देवर-भाभी का हास-परिहास,[39] फागोत्सव पर लक्ष्मण का भांगड़ानृत्य[40] सर्वथा नवीन कल्पना है, पुत्र जन्मोत्सव इत्यादि प्रसंग अत्यन्त भावप्रवण तथा जीवन्त है जो लोक परम्पराओं का प्रतिबिम्बन करते है।

(12) वैदर्भी रीति सम्पन्न :- श्रृंगार रस की शोभन अभिव्यञ्जना एवं जानकी जी के गरिमामय जीवन की सुमधुर अभिव्यक्ति के लिये वैदर्भी रीति का जानकीजीवनम् महाकाव्य में प्रयोग किया गया है। प्रसादपूर्ण लालित्य युक्त एवं परिष्कृत शैली है वैदर्भीरीति, जिसका लक्षण आचार्यों ने इस प्रकार किया है-

माधुर्यव्यञ्जकैर्वर्णै रचना ललितात्मिका।
अवृत्तिरल्पवृत्तिर्वा वैदर्भीरीतिष्यते।।

ललित पदविन्यास के माधुर्य से तथा किलष्टता और कृत्रिमता के सर्वथा परिहार से महाकाव्य में एक स्वाभाविक सौन्दर्य है। वाक्य छोटे-छोटे होते हुए भी अपने में पूर्ण है। कोमलकान्त पदावली में भावाभिव्यञ्जना अपने चारूतम रूप में प्रस्फुटित हुई है यथा :-

दिनं चान्द्रं ज्योत्स्नानातुलिततपनं शीतलकरं
निशीथिन्यो नूनं प्रखररवितापप्रहरणाः।
तमो ज्योतिर्ज्योतिस्सघनतम इत्येवमनिशं
विपर्यस्तं सर्वं जनकतनुजायास्समभवत्।।[41]

दाम्पत्य प्रणय का वैदर्भी रीतिबद्ध समधिक शोभन चित्रोपम वर्णन किया गया है। यथा –

रूपशील गुणविनयविभूतिं स्वयं वृतां कनकाङ्गीम्।
सीतां तामुदुवाह रघुपतिः श्रीरामोऽपि नताङ्गीम्।।[42]

सुन्दर भावों का अतीव माधुर्यपूर्ण वर्णन किया गया है।

(13) गुणसंवलित भाषा :– माधुर्य, ओज, प्रसाद गुण संवलित भाषा महाकाव्य की महती विशेषता है। ये गुण काव्य की आत्मा के उपकारक है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में प्रसाद गुण का समधिक रूचिर सन्निवेश है। साथ ही राम–रावण युद्ध में वीरत्व अभिव्यञ्जन में ओज गुण का तथा राघव राम का जानकी जी के प्रति प्रीती में माधुर्य गुण का चारू प्रस्फुटन है।

संदर्भ सूची

1. जा. जी. 2/43

2. जा. जी. 6/58

3. जा. जी. 7/84

4. जा. जी. 9/59, 60

5. जा. जी. 7/84

6. जा. जी. 11/25, 27

7. जा. जी. 10/73

8. जा. जी. 6/50, 54

9. जा. जी. 21/50

10. जा. जी. 19/39

11. जा. जी. 21/35

12. जा. जी. 9/94

13. जा. जी. 6/56

14. जा. जी. 6/57

15. जा. जी. 6/34

16. जा. जी. 9/100

17. जा. जी. 4/42

18. जा. जी. 7/81

19. जा. जी. 3/13

20. जा. जी. 3/8, 11

21. जा. जी. 11/29

22. जा. जी. 13/1

23. जा. जी. 13/7

24. जा. जी. 14/19

25. जा. जी. 21/15

26. जा. जी. 7/83

27. जा. जी. 2/7

28. जा. जी. 7/82

29. जा. जी. 3/4

30. जा. जी. 3/7

31. जा. जी. 21/23, 24

32. जा. जी. 7/56

33. जा. जी. 10/40

34. जा. जी. 11/116

35. उदुम्बरोज्जृम्भित पुष्पभावं गता। जा. जी. 1/2

36. किमीहतेऽन्धो नयने ननु द्वे। 13/70

37. विषस्य विषमौषधम् 14/94

38. जा. जी. 8/24, 28, 29, 43, 44, 65 (लोकाचार)

39. जा. जी. 8/32-34, 37-40 (लोकगीतों का रूपान्तर)

40. जा. जी. 8/68-73

41. जा. जी. 9/101

42. जा. जी. 21/38

पंचम अध्याय

अभिनव प्रस्थान महाकाव्य परम्परा की उपादेयता

जानकीजीवनम् महाकाव्य राम-सीता के जीवन का शोभन चित्र ही उपस्थित नहीं करते वरन् उनके उदात्त सरस जीवन को आत्मसात् करने की प्रेरणा भी देते हैं। राम-सीता का चरित्र इतना भाव-विभोर कर देने वाला है कि प्रत्येक सहृदय उनके जीवन से प्रभावित होता है, प्रेरित होता है। महाकाव्य का प्रयोजन ही है कि समधिक सरसता तथा चारूता के साथ उदात्तजीवन मूल्यों को अंगीकार करने की प्रेरणा दें। रामादिवत् आचरण का उपदेश 'जानकीजीवनम्' महाकाव्य के द्वारा उसी सहजता से दिया गया है जैसे कि फूलों में समाई सुगन्ध, अपनी स्वाभाविकता से ही वातावरण को सुरभित कर देती है।

सागर से जल लेकर सूर्यरश्मियों से जैसे शत-शत मेघखण्डों का आविर्भाव होता है तथा वे बादल धरा पर बरस कर उर्वरता, जीवन्तता का संचार करते हैं वैसे ही सहृदय कवि उदात्त-जीवन मूल्यों से संवलित दिव्य चरित्रों की सृजना से समाज में जीवनदायी शक्ति का संचार करते हैं। राम-सीता का जीवन, शील, गुण, मर्यादा, आदर्श, लोकहित का अभिराम समन्वय है। कण-कण में संचरित हवा को जैसे महसूस करते है कि वे हमारे जीने के लिये कितनी आवश्यक है वैसे ही राम-सीता का चरित्र मानव-समाज की प्रथम आवश्यकता है। जनमानस में समाहित राम सीता के सद्गुणों की सुवास से ही यह जग-जीवन महक सकता है।

इस दृष्टि से जानकीजीवनम् महाकाव्य जीवन-मूल्यों के विवेचन करने के निकष पर खरा उतरा है। महाकाव्य में अनुस्यूत जीवनपरक मूल्यों का आंकलन प्रस्तुत है:-

(1) चारित्रिक सुदृढ़ता :- चारित्रिक सुदृढ़ता ही इस महाकाव्य का प्राण है। पिता की आज्ञापालन के लिये राजमहल के सुखों को तिलाञ्जलि देकर निस्पृहवृति से, समत्व भाव से वन के कंटीले पथ पर चल पड़े सुकुमार राम। कमल से भी कोमल सुकुमारी राजरानी सीता पति के पथ की अनुगामिनी बनी। भातृप्रेम का अद्भुत उदाहरण हैं- जहाँ एक भाई चल पड़ा अपार वैभव को छोड़कर तब दूसरे भाई ने राजसिंहासन को धराहर के रूप में सहेज कर रखा। भातृ प्रेम में भाई-भाई का कंटीले पथ पर सहयोगी बना। पतिव्रता पवित्रता की जीवन्त प्रतिमा जानकी जी की चारित्रिक सुदृढ़ता की समधिक उज्ज्वल झलक द्रष्टव्य है:-

वल्लभा रघुवंशभानुनिभस्य चाहं राघवस्य विदेहजा च कुलप्रसूता।
स्वप्नजाऽपि न मे रतिः पुरुषान्तरेषु स्वामिजीवितजीवितास्मि तदर्पिताऽहम्।।[1]

शक्तिशाली, ऐश्वर्य में मदान्ध रावण भी जिस सती की ओर नयन उठाकर नहीं देख पाया।

एकपत्नी वन धारी श्रीराम चारित्रिक उज्ज्वलता तो सूर्य से अधिक भास्वर है। रणङ्गधीर अभिराम राम प्रिया सीता में अनन्य भाव से अनुरक्त हैं। प्रिया के शील, पावनता पर अटल

विश्वास है फिर भी लोकरञ्जन हेतु हृदय पर पाषाण रखकर निष्पाप वैदेही की अग्नि परीक्षा लेते हैं– यह चारित्रिक सुदृढ़ता नहीं तो क्या है? स्वयं प्रजापति ने प्रशंसा करते हुए कहा–

अनिन्द्यसौन्दर्यवतीं गुणान्वितां धवानुरक्तां मृगलोचनां प्रियाम्।
परस्त्वदन्यः क इव त्यजेज्जनोऽन्यथा धरित्र्यां परिभोगकातरः।।[2]

सेवापरायण हनुमान सर्वस्व अर्पण करने को उद्यत है, यह चारित्रिक सुदृढ़ता का ही परिणाम है। त्रिलोकविजयी, ऐश्वर्य सम्पन्न, शिववरदानी दशानन का पुत्र–पौत्र सहित पतन होना दर्शाता है कि चारित्रिक पतन, असंयम, मर्यादाहीन आचरण ही विनाश का हेतु है तथा सच्चरित्रता, सदाचरण उत्थान का हेतु है अतएव जानकीजीवनम् महाकाव्य में पूर्ण सरसता के साथ चारित्रिक सुदृढ़ता का संदेश दिया गया है।

(2) उत्कृष्ट दाम्पत्य प्रेम का सन्देशः– जानकीजीवनम् महाकाव्य उत्कृष्ट दाम्पत्य प्रेम के सन्देश से अनुप्राणित है। 'दाम्पत्य' का एकमात्र आधार प्रणय ही हैः–

दाम्पत्यमस्ति प्रणयैकमूलं बिपर्यये तन्न विभर्ति संज्ञाम्।
रागानुबन्धे त्रुटिते न काऽपि कस्यापि भार्या न च कोऽपि भर्ता।।[3]

राम–सीता का प्रणय अनुपमेय है, स्पृहणीय है और यह प्रणय ही दाम्पत्य जीवन का सर्वस्व है। महाकाव्य में समाजोपयोगी इस सन्देश का अतिशय शोभन परिपाक हुआ है।

सीता राम के प्रति अनन्य भाव है और राम का विदेहजा के प्रति अनन्य भाव है। प्रेम का यह उत्कृष्ट स्वरूप ही तो गृहस्थ जीवन का आधार है, विश्वास है, सौहार्द है –

वल्लभा रघुवंशभानुनिभस्य चाहं राघवस्य विदेहजा च कुलप्रसूता।
स्वप्नाजाऽपि न मे रतिः पुरुषान्तरेषु स्वामिजीवितजीवितास्मि तदर्पिताऽहम्।।[4]

अव्यवस्थित जीवन, सुख–सुविधाओं की आकांक्षा की गृह–कलह एवं मानसिक अशान्ति का जनक है। राम–सीता की निस्पृहा वृति, सीता का वनवास अवधि में पति के सामीप्य को ही अतिशय सुख मानना प्रेरणा देता है कि परस्पर प्रेम ही जीवन का एकमात्र आधार हो सकता है। यथा द्रष्टव्य :–

अव्यवथित जीवन, सुख–सुविधाआं की आकांक्षा ही गृह–कलह एवं मानसिक अशान्ति का जनक है। राम–सीता की निस्पृह वृति, सीता का वनवास अवधि में पति के सामीप्य को ही अतिशय सुख मानना प्रेरणा देता है कि परस्पर प्रेम ही जीवन का एकमात्र आधार हो सकता है। यथा द्रष्टव्य :–

अम्ब! माऽतितरां गमस्त्वमखर्वखेदं वैभवं दयिताङ्घ्रिपद्युगेऽस्ति पत्न्याः।
राघवे सतिकानने विजनं न चैतत् आत्मनैव शापामि सौधसुखातिशायि।।[5]

अर्थात् मैया! तुम बहुत अधिक खेद का अनुभव मत करो, क्योंकि पत्नी का सम्पूर्ण ऐश्वर्य तो अपने पति के चरणयुगल में निहित होता है! राघव के स्वयं वन में रहते हुए यह स्थान जन शून्य वन है ही कहाँ? प्राणों की शपथ लेकर मैं तुम्हें विश्वास कराती हूँ कि यह वनवास राजमहल के सुखों को भी तुच्छ बना देने वाला है।

कैसा उच्चादर्श का संदेश मुखरित किया गया है! भीषण परिस्थितियों में भी दाम्पत्य प्रेम ही जीवन का आधार है -

अहमस्मि रमूत्तमप्रिया रघुनाथाननचन्द्रचन्द्रिका।
इतरेषु जनेषु का स्पृहा पुरुहूतोऽस्त्वथाऽस्तु रावणः।।[6]

(3) मर्यादित जीवन का सन्देशः- जानकीजीवनम् महाकाव्य में मर्यादित जीवन का सन्देश समधिक चारू रूप मे प्रस्फुटित हुआ है। महाकाव्य के नायक राम तथा नायिका राम तथा नायिका सीता के चरित्र का जो सर्वाधिक भास्वर स्वरूप है- वह है मर्यादा संवलित सम्बन्धों को जीना। राम ने पुत्र, पति, भाई, राजा, मित्र, शिष्य, आराध्य, शरेण्य, पिता, गुरू जिस भी सम्बन्ध को जीया उसकी मर्यादा रखते हुये उसे गौरवान्वित किया। राम ने सागर सी गम्भीरता दी सभी सम्बन्धों को। इसी प्रकार धरापुत्री सीता ने शील, गुण, सदाचरण से नारी-गौरव को संवर्धित करते हुए नारियों के समक्ष एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। कमल सी सुकुमार सीता माता-पिता की मनभावन वैदेही ने माता-पिता को अपनी क्रीड़ाओं से भरपूर आह्लादित किया तथा पिता के गौरव को सर्वतोभावेन संवर्धित किया। बहिन, प्रिया, परिणीता सहचरी कुलवधू, भाभी, राजरानी, माता नारी के सभी रूपों की मर्यादा को पूर्ण ईमानदारी के साथ निभाकर समाज को यह आदर्श दिया कि प्रत्येक रिश्ते को पूर्ण ईमानदारी, सच्चाई, पवित्रता, आस्था एवं मर्यादा के साथ जीना चाहिये।

(4) सत्य की विजय :- जानकीजीवनम् महाकाव्य में 'सत्य की ही विजय होती है' इस सन्देश का पूर्ण प्रखरता के साथ प्रतिपादन किया गया है। दशानन भयंकर शक्तियों एवं बहुत बड़ी सेना का स्वामी होते हुए भी राम से परास्त होता है क्योंकि राम के साथ सत्य की शक्ति है और राम की जय सत्य की विजय को प्रतिबिम्बित करती है।

इसी प्रकार यशस्वनी सीता निष्पाप है। उनके धवल यश एवं पवित्रता के साक्षी स्वयं ब्रह्मा, राम एवं अग्निदेव हैं:-

मैथिलीमभिनन्द्य धाता धूर्जटिः पावको भ्रम तातपादोऽपि स्वयम्।
ग्राहयां किल चक्रतुः श्रीराघवं वेद्म्यहं किमतः परं तद्गौरवम्।।[7]

सत्य स्वयं प्रमाण है, उसे प्रमाणित करने की कोई आवश्यकता नहीं है -

अग्निर्भवेदन्यपदार्थतापमात्रप्रमाणं ज्वलनप्रभावात्।
परन्तु तापोच्चयशक्तिभाजो भवेत्प्रमाणं किमहो कृशानोः!![8]

दिव्य जानकी जी के चरित्र की पावनता, मिथ्या आक्षेप लगाने वाले धोबी की अनर्गल बातों के आधार पर संशयित नहीं हो सकती–

एष नीचकृमिश्चरित्रं शङ्कते नारको रजकः प्रकृत्या दुर्मतिः।
क्षालितं वसनं नु तेनाऽजीवनं मानसं न तमोऽद्य यावत्क्षालितम्।।[9]

रजक का पश्चात्ताप एवं जानकी जी का निर्वासन न होना – महाकाव्य में सत्य की विजय का पूर्ण दीप्त उद्घोत है। अग्नि परीक्षित सत्य को इस महाकाव्य में निर्वासन रूपी दण्ड नहीं झेलना पड़ा अतएव सत्य की विजय का सन्देश व्याप्त है।

(5) निर्भयता :– राम का अवतरण दुष्टदलन एवं सज्जनों के रक्षण के लिये हुआ। सम्पूर्ण धरा को राक्षसविहीन कर सज्जनों को निर्भय बना देना ही अभिराम राम का संकल्प बताया गया है।

आज पूरा विश्व भय एवं आतङ्कवाद की गिरफ्त में है। कवि की आतङ्क–विरोधी दृष्टि उनके महाकाव्य जानकीजीवनम् में बहुत स्थलों में परिलक्षित होती है तथा शौर्य, पराक्रम से आतङ्क को समाज से निर्मूल करके निर्भयता का संदेश देती है–

राजन्नमेयभुजविक्रम! चापपाणौ
धात्रीं प्रशासति भयं त्वयि जन्मिनां किम्।।[10]

राक्षसों के द्वारा भूमण्डल पर भीषण आतङ्क उत्पन्न किया हुआ है–

ख्यातौ नृशंसचरितौ भुवि ताडकेयौ
यज्ञक्रियाव्रततपोनिधिधूमकेतु।
आद्योऽभिधानुमुपयाति सुबाहुमन्यो
मारीचमेव नृपते! भयमस्ति ताभ्याम्।।[11]

उन्हीं के विनाशार्थ विश्वामित्र श्रीराम लक्ष्मण को लेने आये। कृतान्तविजयी श्रेष्ठ रणबांकुरे दोनों भाई लोक को संरक्षण देने में पूर्ण सक्षम है–

सोऽहं भवन्तमवनीश! समागतोऽस्मि
तन्नाशनाय भवतस्तनयौ हि नेतुम्।
हेमन्तजातजडिमानमपोह्य लोकं
पातुं प्रभू न सुहृदौ मधुमाधवौ किम्।।[12]

यज्ञ में विघ्नोत्पादक ताड़का, सुबाहु–मारीच एंव अन्यान्य राक्षसों को श्रीराम ने मारकर[13] निर्भयता का आभरण इस धरा को पहनाया। दण्डकारण्य जो राक्षसों से ओतप्रोत था। वहाँ खर–दूषण, त्रिशिरा राक्षसों को धराविहीन किया। दण्डकारण्य की भयंकरता का अंकन कर राम ने उसे ही मनोवांछित राक्षस विनाश रूपी महायज्ञ में दीक्षित स्वयं के लिए यज्ञस्थल माना–

निश्चिकाय रघूत्तमः प्रसमीक्ष्य सर्व मानसे यदिदं वनं द्रुतमुद्धरिष्ये।
दण्डकं समभीष्टराक्षसनाशसत्रदीक्षितस्य भवेत्स्थलं मम राघवस्य।।[14]

राक्षसरास रावण का संहार करके श्रीराम ने धरा को राक्षसों के आतङ्क से मुक्त करवाया तथा अपने पराक्रम से जगत को निर्भयता का सन्देश दिया।

(6) धैर्य :– व्यक्ति के जीवन में सुख एवं दु:ख का आगमन धूप एवं छाँव के समान नित्य है। जीवन में दु:ख के क्षण आने पर व्यक्ति को राम के समान धैर्यशाली बनकर विषम परिस्थितयों का सामना करना चाहिये। महाकाव्य में सर्वतोभावेन इसी भाव का प्रतिबिम्बिन हुआ है कि व्यक्ति को धैर्य रखकर ही जवीन को सुन्दर बनाना है। सीता सुकुमारी होते हुए भी राम के पथ को अनुगामिनी बन वन के कंटीले पथ पर समधिक धीरता के साथ चली। यथा द्रष्टव्य :–

वैभवं नगरस्य नैव यथा वनान्ते सर्वथा वनवैभवं न तथैव सौधे।
मन्दिरे सुखिनी यथाऽऽसमहं रघूणां वल्लभेन सहाहमूनसुखा वने नो।।[15]

प्राणवल्लभ राम के साथ वनों के पथरीले पथ पर चलने को सीता ने आनन्ददायी ही माना। यह उनकी धीरता का ही परिचायक है। क्रूर नियति से उनका यह सुख भी सहन नहीं हुआ और वे राघव से दूर हो गई। इस असहनीय विषम स्थिति में भी धरापुत्री का धैर्य डोला नहीं। उन्होंने प्रिय राघव की प्रणय स्मृतियों को ही अपने जीवन का एकमात्र अवलम्ब मानकर धैर्य धारण किया। यथा द्रष्टव्य :–

मुखचन्द्र दिदृक्षयैव हा व्यवसाये मरणस्य मानसम्।
अयि वल्लभ! कातरायते प्रणयैस्ते शिशुवद्धि ललितम्।।[16]

(7) योग्यता ही वरण का आधार :– शरत्कालीन चन्द्रमा की चाँदनी कभी भी दीपकों का अभीष्ट नहीं होती है और न ही रमणीय आकाशगङ्गा भूमि के गहरे गड्ढों को पूर्ण करती है। वरण का आधार सदैव ही योग्यता होता है।[17] महाकाव्य में पूर्ण प्राञ्जलता के साथ इसी सन्देश को मुखरित किया गया है। सुन्दर कोमलाङ्गी सीता, नारायण की अनुगामिनी साक्षात् लक्ष्मी ही है, अतएव स्वयं विष्णु ही के द्वारा वरणीय है। यथा द्रष्टव्य :–

चाम्पेयपुष्पपरिताण्डुरकोमलाङ्गी
साक्षादसौ मधुजितोऽनुगतैव लक्ष्मीः

तां सुन्दरी परिणयेच्छृणु रामभद्र!
नारायणः स्वयमथो यदि वा तदंशः।।[18]

कमलनयन – सुकुमार दोनों कुमारों को देखते ही महाराज जनक के राघव राम में सीतोचित वर की समता का अनुमान करके, हरिचन्दन लेप से उत्पन्न विलक्षण शीतलता का अनुभव किया:-

क्षणमेव विदेहनन्दिनीवरसाम्यं त्वनुमाय राघवे।
हरिचन्दनसेकसान्त्वनां प्रययौ भूमिपतिर्विलक्षणाम्।।[19]

शीलगुण समन्विता प्यारी बिटिया के लिए उत्तम वर की प्राप्ति के लिये जनकराज ने पराक्रम प्रदर्शन ही मूल्य रखा:-

य एव वीरोऽक्षतशम्भुचापं द्रुतं समुत्थाय पिनाकमुच्चैः।
गुणञ्च दण्डेन युनक्ति सोऽसौ सीतापति र्लोकसमक्षमद्य।।[20]

कन्या को अनुरूप वर को ही प्रदान किया जाना चाहिये। युबोध संवलित यह संदेश निःसंदेह समाज के लिए अनुकरणीय है।

(8) नारी-गौरवः- जानकीजीवनम् महाकाव्य में नारी जीवन के विविध रूपों का समधिक शोभन अभिव्यञ्जन किया गया है। बालिका, नवयौवना, सौभाग्यवती, परिणीता, प्रियानुगता, वीरप्रसविनी सभी रूपों में चारित्रिक गौरव का चारू प्रस्फुटन किया गया है। नारी सहचरी है, प्रेयसी है, आदरणीय है, पूज्यनीय है, कल्याणी है, इसीलिए समाज में प्रतिष्ठित होनी ही चाहिये। जानकीजीवनम् महाकाव्य में इस समाजोपयोगी महनीय सन्देश का पूर्ण भव्य के साथ सम्प्रेषण हुआ है। यथा :-

महाकाव्य में बालिका रूप में नारी गौरव की अभिव्यञ्जना-

अहो सुता मे कियती गुणान्विता मितम्पचाऽसंकसुका स्तनन्धया।
अहो शुभंयुः कियतीति लालयन् चकार सीता नृपतिर्भुजान्तरे।।[21]

पिता की अपनी प्यारी बिटिया से गुणों से अनुरक्त कैसी गौरवपूर्ण उक्ति है। इसी प्रकार परिणीता के आदर्श स्वरूप का निदर्शन,[22] जो राजमहल में वनवास में भी सहधर्माचारिणी है-

राघवात्प्रथमं विहाय धराङ्कशय्यां जानकी दयितं प्रबोधितवत्युदारा।
आननेन्दुमथावलोक्य कुवेलकल्पं राघवस्य परामुदं बिभराम्बभूव।।[23]

नारी के तेजस्वी रूप का प्रतिबिम्बिन उस समय होता है जब पति द्वारा अपमानित होने पर पति को यथार्थ बोध करवाया जाता है-

स्वलोककीर्तेरियती प्ररोचना ममार्यशीलस्य च घोरलाञ्छना?
कुतोन्विदं राघव! तत्त्वपारग! ध्रुवंपतित्वेन जुहोषि गेहिनीम्।।[24]

अपने सामाजिक-यश के लिये इतनी आसक्ति? और पत्नी के उदात्त चरित्र की ऐसी अमर्यादित लांछना! हे राघव आप तत्वज्ञ हो फिर भी पति होने के कारण से पत्नी का साधिकार हवन कर रहे हैं। नारी के गौरव एवं पावनता का प्रमाण स्वयं अग्नि ने दिया-

स्ववल्लभां स्वीकुरु भद्र! राघव! कृशानुशक्तिः क्व तदीयदाहने?
स्वयं प्रपूतोङ्ग चयाभिमर्शतो न पावयित्रीं प्रपुनाति पावकः।।[25]

(9) अतिथि सत्कार : भारतीय संस्कृति में अतिथि सत्कार एवं गुरुजनों के आदर की अतिशय समादृत परम्परा रही है। महाकाव्य में इसी शोभन परम्परा का समधिक चारूता के साथ संदेश प्रसारित हुआ है। महकाव्य में विलसित इस उदात्त परम्परा की झलक प्रस्तुत है, जो आतिथ्य सत्कार का प्रभावोत्पादक संदेश परिलक्षित कर रही है।

महर्षि विश्वामित्र के आगमन पर महाराज दशरथ का भाव विह्वल सत्कार -

आकर्ण्य गाधितनयं स्वयमागतं तं
गादीभवन्नरपतिः प्रणिदेशभूमौ।
सोत्कस्ससार तनयैर्महिषीभिराक्तः
पाद्यादिकव्यतिकरैरभिनन्दनार्थम्।।[26]

राजा जनक ने तो गुरु के चरण अश्रुजल से ही पखार दिये-

प्रणनाम सदण्डसन्निभो मुनिपादाम्बुजयोर्निपत्य हि।
नयनोच्छ्रितरागवेदिभिस्सलिलैश्चाशु ममाजं साग्रहम्।।[27]

मुदितमन विदेह ने बारात का क्या ही भव्य स्वागत किया-

न तादृशी प्राघुणसत्क्रियाऽभूत्कदापि काचित्क्वचिदातिथेयैः।
इतीव वृद्धा निभृतं लपन्तः श्रुताः पुरीवीथिषु वाचि दक्षाः।।[28]

'अतिथि देवोभाव' का परिपालन सीता के चित्रकूट-प्रवास के समय देखा जा सकता है :-

राघवं मुनयो निभालयितुं य एताः
कामदेऽनुदिनं स्फुटपघुणोपचारम्।
सिद्धपाक कलाऽमृताति शयेन तेभ्यः
सा समर्प्य ररक्ष राघवगेहिनीत्वम्।।[29]

राघव के दर्शनार्थ उपस्थित मुनियों को अमृतातिशायी आतिथ्य-सत्कार से सन्तुष्ट करके सीता गृहिणी होने का गौरव निभाया करती। इसी प्रकार महर्षि भरद्वाज ने पाहुनों के भी पाहुन, परमप्रिय राघव के आतिथ्य के लिये तपोबल से शोभन प्रबन्ध किया -

इतिरघुपतिमिष्टं प्राघुणं प्राघुणानां मधुरविशदवाग्भिर्गाययन् मामतेय:।
महितविबुधभोगैरातिथेयं विधातुं प्रवरनिजतपोभि: सत्प्रबन्धांश्चकार।।[30]

भारत में अतिथि सत्कार की गौरवमय परम्परा है और महाकाव्य में आद्योपानत विलसित है। अकिञ्चन भिलनी शबरी ने भी झूठे बेरों से राम का आतिथ्य किया अतएव कहा जा सकता है, इसी महाकाव्य से आतिथ्य सत्कार का रमणीय संदेश प्राप्त होता है।

(10) दलित-उन्नयन :- समदर्शी राम ने दलितों को उठाकर हृदय से लगाया तथा जनमानस के समक्ष अनुकरणयी उदाहरण प्रस्तुत किया। दलितों को अस्पृश्य मानकर घृणा मत करो, वे ईश्वर द्वारा बनाई इस सृष्टि के अङ्ग हैं, उनसे प्रेम करना, मानवता को सम्मान देने के समान है। राम ने अपने आचरण द्वारा यही प्रदर्शित किया। यथा द्रष्टव्य :-

मत्स्यादिनं यो गुहमङ्कपाल्यां संस्कारहीनं कृतवान् सहर्षम्।
स्वसौहृदे तं नियुयोज सद्य:।।
जटायुषं तातसखं वनान्ते सीतार्थ मुत्सृष्टशरीरजीवम्।
ददाह तं योऽधिचितं सुतीयन् गृद्ध्रं।।
प्रेम्णा शबर्या वशगो जघास यो दण्डकायां बदरीफलानि।
स्वादावबोधाय तयैव पूर्ण भुक्तानि...??[31]

राम का संस्कारहीन निषादराज गुह को गले लगाना, जटायु का पुत्र बनकर दाह संस्कार करना तथा शबरी के झूठे बेर प्रेमपूर्वक खाना, दलित-उन्नयन का मर्मस्पर्शी सन्देश देते हैं।

(11) संस्कारित बचपन :- महाकाव्य में मधरुमूर्ति मनोहर कर्मा लव-कुश को अतिशय योग्य बनाने की कामना से राम उन्हें वाल्मीकि को समर्पित करते हैं-

सविनयं पुनरेव निवेद्यते जनकजातनयौ यदिमौ भवान्।
गुरुकुलेऽप्युपनीय निजाश्रमे प्रविदधातु यथारुचि संस्कृतौ।।[32]

आश्रम के सात्विक वातावरण में सत्त्वसम्पन्न संस्कारित बचपन ही भावी सुयोग्य राजा का निर्माण करेगा। वात्सल्यमयी विदेहजा जब पुत्रों को अपने से दूर भेजने के लिए तैयार नहीं हुई तब रघुपति ने पुत्रों को संस्कारित करना ही प्रथम दायित्व बताया -

हृदयदुर्बलतां त्यज मैथिलि! प्रियतमे! सुतमङ्गलमाश्रय।[33]

उत्तम गुरु के पास बाल्यावस्था में ही सुसंस्कृत होने के लिये बच्चों को भेजना माता-पिता का परम धर्म है। यथा :-

गुरुकुलाश्रयणस्य वयोन्विदं जनकजे! स्वयमेव विचारय।
क्व खलु लभ्य इह प्रथितो गुरुश्चिरयशा वलमीकजसन्निभ:??[34]

(12) वैयक्तिक अधिकारों का समर्थन :- महाकाव्य में प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता, समानता का अधिकार दिये जाने का सन्देश दिया गयाहै। राजा के समक्ष प्रत्येक व्यक्ति को अपनी बात कहने की पूर्ण स्वतंत्रता है। यथा :-

पौराः! इदं पावनरामराज्यं हिनस्ति वैयक्तिकपारतन्त्र्यम्।
राज्ञोऽधिकारे प्रकृतिर्न बद्धा प्रजाधिकारे नृपएव बद्धः।।[35]

यहाँ वैयक्तिक अधिकारों की स्पष्टतः अभिव्यञ्जना हुई है। इसी प्रकार रजक के द्वारा देव श्लाघनीय मैथिली पर आक्षेप लगाये जाने पर केवल इसलिये दण्डनीय नहीं हो जायेगी कि वह राजरानी है तथा राघव के अधिकार क्षेत्र में हैं। वरन् उसे भी प्रजाजनों के समान न्याय पाने का अधिकार है-

भार्येय सीता नहि राघवस्य प्रजाऽपि सा प्राप्तसमाधिकारा।
सौभाग्यलक्ष्मी रघुवंशिनां सा पौरप्रजानामपि पट्टराज्ञी।।[36]

(13) आदर्श नेतृत्व का सन्देश :- प्रजावत्सल राजा जनक का अपनी प्रजा के कष्ट से द्रवित होकर बैल बनकर स्वयं हल खींचना तथा प्रजा का पुत्रवत् भाव से पालन-पोषण करना आदर्श नेतृत्व का सन्देश मुखरित करता है।[37] प्रजा के प्रति वात्यल्यभाव रखना ही एक आदर्श शासक का परम पुनीत कर्त्तव्य है। जानकीजीवनम् महाकाव्य में राम का चरितसर्वतोभावेन आदर्श नेतृत्व का सन्देश दे रहा है। राम ऐसे प्रजानुरञ्जक राजा हैं जो सर्वथा निष्पाप प्रिया को भी आहुति बना सकते हैं, अपने सुखों की आहूति दे सकते हैं-

स एव रामो भगवान् नृपेन्द्रः प्रजोपकाराय हुतात्म सौख्यः।[38]

शासक जब स्वयं को प्रजा का विनीत सेवक मानेंगे तभी तो निरहंकार होकर सम्यक् नेतृत्व कर सकेगा। इसी तथ्य का महाकाव्य में सन्देश दिया गया है-

पूर्वं प्रतिज्ञातमिदं नृपेण यत्सेवकोऽसौ विनतः प्रजानाम्।
प्रजामनोवृत्तिपरीतराज्यं भुनक्ति रामो न निरङ्कुशोऽसौ।।[39]

(14) राजनीति को नीति सम्मत बनाने का सन्देश :- राजा किसी भी कार्य पर निर्णय लेने से पूर्व ब्रह्म ज्ञानी गुरु से धर्म एवं नीतिसम्मत परामर्श लिया करते। इसी प्राचीन परम्परा की उपादेयता का महाकाव्य में युगीन परिप्रेक्ष्य के अनुकूल शोभन अभिव्यञ्जन हुआ है। छल, छद्म, अनीति, भ्रष्टाचार, हिंसा से पूर्ण राजनीति का नीति के साथ अवश्यमेव संयोग होना चाहिये- यह प्रेरक संदेश जानकीजीवनम् में सम्यक्तया प्रतिपादित किया गया है।

गुरु वशिष्ठ का साष्टमत है कि राजसिंहासन केवल राघव पर ही आश्रित नहीं है। पृथ्वीपालन के दायित्व का सम्यक् निर्वाह उनकी तपश्चर्याओं के ही कारण संभव हो सका है, अतएव राघव उनके परामर्श के बिना कोई भी निर्णय लेने के लिये स्वतंत्र नहीं है-

राघवाश्रितमेव नोसिंहासनं मत्तपोभिरिहोह्योते भारं भुवः।
भूपतिर्न निरङ्कुशत्वं यास्यति चेष्टिते मयि तद्दिधास्येऽप्यंकुशम्।।[40]

यहाँ शासक की निरंकुशता पर नीति का अंकुश होना ही चाहिए, इस सन्देश की तीव्रतर अभिव्यञ्जना हुई है।

प्रजानुरञ्जन के लिये जब राम निष्पाप वैदेही के वैयक्तिक अधिकारों की उपेक्षा कर बैठे तब वशिष्ठ ने नीति सम्मत मार्ग पर चलने के लिए उन्हें प्रबोधित किया। यथा -

दण्ड्योऽपराद्धः खलु धर्मशास्त्रे न साधुता शील गुणार्जवानि।
न वेद्मि वैदेहसुतापराधंकस्माद्धि दण्ड्या खलु पट्टराज्ञी!![41]

अपने ज्ञान, गौरव, तपश्चर्या के बल से वशिष्ठ इस अन्याय को रुकवाने में समर्थ भी रहे-

परन्तु नेदं भविता दुरन्तं पापं वसिष्ठे मयि विद्यमाने।
नाहं भविष्यामि कृतावमानः सद्धर्मलुप्ते नगरे रघूणाम्।।[42]

आज के सन्दर्भ में राजनीति को नीति सम्मत बनाने की महती आवश्यकता है और महाकाव्य में पूर्ण्या मर्मस्पर्शिता के साथ इस सन्देश का सम्प्रेषण किया गया है।

(15) मानहानि करने का स्वतंत्रता नहीं :- जानकीजीवनम् महाकाव्य में यह तथ्य पूर्ण भास्वरता के साथ उकेरा गया है कि किसी भी व्यक्ति को बिना किसी आधार के किसी भी चरित्र पर आक्षेप लगाने का अधिकार नहीं है। किसी के गौरव को धूमिल करने, मानहानि करने की स्वतंत्रता बिल्कुल नहीं है। यशस्वनी, अग्निपरीक्षिता, निष्पाप वैदेही को केवल मन की शंका के आधार पर लांछित करे, राम राज्य में ऐसे दुस्साहसी को विशिष्ट धर्म-सभ में अपना पक्ष प्रस्तुत करने के लिये कहा गया-

दृढा मतिस्ते यदि तत्स्वकीयं मतं ह्युपस्थापय निर्विशङ्कम्।
सीता विरुद्धंवदसि त्वमेकश्चान्येऽपि वा तद्भविता प्रकाशम्।।[43]

रजक का जब जानकी के शोभन चरित के साक्षात् हुआ[44] तब उसे परास्त होना ही पड़ा।

जनकजा के पवित्र चरित्र पर उंगुली उठाने की धृष्टता में रजक से पश्चाताप के आँसू ही नहीं गिरवाये, भर्त्सना भी करवाई है, सभा में सभी के मध्य क्षमा भी मंगवाई है-

जिह्वामिमां स्वैरगतिं विलोलांस्तभ्नन्तु छिन्दन्तु यथायथं भोः!
न शास्मि यां वच्मि च पापगर्भं व्यलीकवादं कलि मन्दबुद्धि।।[45]

हे राम! हे राघव! दीनबन्धो! क्षमस्व मां देव! कृतापराधम्।

आयोध्यका जानपदाश्च सर्वे यूयं क्षमध्वं रजकं व्यथार्तम्।।[46]

जो यह प्रमाणित करता है कि सभ्य समाज में नारी के गौरव को लांछित करने की अनाधिकार चेष्टा क्षम्य नहीं है।

(16) राष्ट्रहित सर्वोपरिता का सन्देशः- महाकाव्य में राष्ट्रीय संवेदना एवं उद्‌भावना पूर्णतः प्रस्फुटित हुई है। राजा राष्ट्र के प्रति पूर्ण रूप से समर्पित है। राष्ट्र वही फलीभूत होता है जहाँ प्रजा प्रसन्न है। राजा और प्रजा मिलकर ही राष्ट्र को समुन्नत कर सकते हैं। यही महाकाव्य का प्रशासक एवं जनसामान्य के लिए सन्देश है-

यो यत्र यस्मिन् करणेऽवसक्तः समुन्नतस्तत्र भवेन्नितान्तम्।
राष्ट्रं यथा स्याच्चतुरस्त्रसिद्धिप्रभान्वितं सिन्धुनगेन्द्र मध्यम्।।[47]

एक-एक व्यक्ति के कर्त्तव्यनिष्ठ होने से ही राष्ट्र की उन्नति सम्भव है। प्रजाहित की सर्वोपरिता का सम्यक् प्रतिपादन किया गया है, यथा-

प्रजामनोवृत्तिसमर्थनम्मे श्रद्धेयकृत्यं प्रथमं वरिष्ठम्।
प्रजाहिंत प्रीततम महिष्ठं प्रजैव सर्वं किल रामराज्ये।।[48]

समुन्नत राष्ट्र में सज्जनों का रक्षण एवं दुष्टों का दमन हो तभी सर्वत्र खुशहाली तथा निर्भयता का वातावरण बनेगा। शासन में स्पष्टतः यह तथ्य प्रतिबिम्बित होता है। यथा द्रष्टव्य :-

प्रयाहि गेहं ननु भद्र! शान्तश्चित्तं समाधाय कुरुष्व कार्यम्।
भयं न रामादिह सज्जनानामसज्जनानामपि नैव रक्षा।।[49]

वैर, विरोध, वैमनस्य के स्थान पर मैत्री, सहयोग की भावना महाकाव्य में प्रतिफलित हुई है। यथा :-

पृथ्वीमिमां स्वर्गसमृद्धितुल्यां विधातुमिच्छामि निजैः प्रयासैः।
प्रजाजनानां सहयोगभावस्त्वपेक्ष्यते तत्र सदैव भद्र!![50]

(17) लोकतंत्र की सर्वोच्चता का संदेश :- महाकाव्य में लोकतंत्र की सर्वोच्चता का बखूबी प्रतिफलन हुआ है। राजा निरंकुश नहीं है।[51] अतीव महत्त्व के विषयों पर प्रजा संसद में विचार किया गया है। जिसमें कुल गुरु, आठ मन्त्रिमण्डल के सदस्य, सेनाओं के प्रमुख तथा सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करने वाले जैसे ब्राह्मण, यशस्वी, जौहरी धनाढ्य व्यापारी वर्ग, सार्थवाह, बढई, शिल्पी, कारीगर वर्ग, मजदूर वर्ग तथा कलाकारों का समावेश था। ऐसी जनप्रतिनिधित्व सभा के मध्य में जानकी के लोकपवाद विषय पर विचार किया गया जो लोकतान्त्रिक व्यवस्था का पोषक है। यथा -

इयं सभा लोकमतैकनिष्ठा लोकानुगा लोकसमिद्धतन्त्रा।
गवेषणे लोकमतस्य नूनं न राजभीतिर्न च दैन्यभावः।।[52]

यह संसद एक मात्र जनमत में निष्ठा रखने वाली है, लोकमत का अनुगमन करने वाली तथा लोक के ही द्वारा विकसित व्यवस्था वाली है, अतएव इस सभा में लोकमत की गवेषणा करने में, निश्चित रूप से न तो राजा का भय होना चाहिए और न ही दैन्यभाव।

महाकाव्य में स्पष्टतः लोकतन्त्र की सर्वोच्चता की स्वीकारोक्ति है-

एकं मतं नैव मतं समेषां निरर्थकं तत्खलु लोकतन्त्रे।[53]

लोकतंत्र में मात्र एक व्यक्ति का मत, जनसमूह का मत नहीं माना जा सकता है।

परममहिषी निर्धारण भी संसद में लोकमत के आधार पर ही होगा। कैसा शोभन लोकतंत्र का आदर्श प्रसारित किया गया है।-

न दण्डनीया रजकापवादात् न चापि पत्युः परुषाधिकारात्।
मतैः प्रजानामिह सांसदीनां निर्णेष्यते भाग्यमथो महिष्याः।।[54]

(18) आदर्श राज्य का सन्देशः- शासक उत्तम गुणों से सम्पन्न हो तब राज्य को सुराज्य बनते देर नहीं लगती। जानकीजीवनम् महाकाव्य में यही ध्वनित किया गया है कि राम राज्य समान आदर्शन राज्य वर्तमान समाज की महती आवश्यकता है, युगीन अपेक्षा है। कवि ने उन घटकों को भी बताया है, जिनके द्वारा लोकतंत्र को सच्चे अर्थों में आदर्श बनाया जा सकता है। यथाः-

(1) नागरिक धर्म, संस्कृति, शील, सौजन्य, सद्भाव, संस्कारानुप्राणित हो जाये। कल्याण की कामना करने वाले सभी मनुष्य, लौकिक अभ्युदयों एवं प्रशस्त पारलौकिक कल्याण की प्राप्ति में लग जाये।[55]

(2) व्यक्ति अपनी-अपनी परिस्थिति से सन्तुष्ट रहें। कोई भी व्यक्ति किसी दूसरे के दोष-पाप का कारण नहीं बने।[56]

(3) वर्णाश्रम-धर्म में प्रतिष्ठित समाज अपने-अपने करणीय कर्मों को पूर्ण तत्परता एवं ईमानदारी से निभायें। यथा -

स्वेषु कर्मसु निर्भरं सर्वेऽपि ते राघवेऽवति मेदिनीं भक्त्यार्पिताः।
येन राघवशासनं सर्वोदय स्वर्गमप्यतिचक्रमे दिव्यैर्गुणैः।।[57]

(4) जब शासक प्रजाहित को ही अपना सौभाग्य माने, यथा -

स एव रामो भगवान् नृपेन्द्रः प्रजोपकाराय हुतात्मसौख्यः।[58]

राजा निरंकुश न होकर प्रजा का विनम्र सेवक मात्र रहे। प्रजा राजा के अधिकारों से नियंत्रित नहीं होकर प्रत्युत राजा स्वयमेव प्रजा के अधिकारों से आबद्ध रहे।[59]

संदर्भ सूची

1. जा. जी. 11/101

2. जा. जी. 15/78

3. जा. जी. 18/71

4. जा. जी. 11/101

5. जा. जी. 11/30

6. जा. जी. 12/69

7. जा. जी. 17/48

8. जा. जी. 18/57

9. जा. जी. 17/49

10. जा. जी. 4/15

11. जा. जी. 4/18

12. जा. जी. 4/20

13. दनुजौ मखविध्नकारकौ जननी चापि तयोर्नुताऽका।

निखिलः पिशिताशनान्वयः सकृदाभ्यां यमसेवकीकृताः।। जा. जी. 5/37

14. जा. जी. 11/44

15. जा. जी. 11/31

16. जा. जी. 12/26

17. जा. जी. 7/55

18. जा. जी. 4/43

19. जा. जी. 5/40

20. जा. जी. 7/33

21. जा. जी. 2/35

22. चन्द्रिका विधुसङ्गतेव दधत्प्रकाशा मेधवारितवैभवा कुमुदाभिनन्द्या।
मैथिली प्रययौ वनं रघुनाथनाथासौधसौख्यमपास्य कान्तपदानुरागा।। जा. जी. 11/1

23. जा. जी. 11/6

24. जा. जी. 15/61

25. जा. जी. 15/80

26. जा. जी. 4/8 द्रष्टव्य 9, 10, 12, 13

27. जा. जी. 5/26 द्रष्टव्य 27, 28, 30, 41

28. जा. जी. 8/23

29. जा. जी. 11/11

30. जा. जी. 16/52

31. जा. जी. 18/33, 34, 35

32. जा. जी. 19/34

33. जा. जी. 19/43

34. जा. जी. 19/44

35. जा. जी. 18/45

36. जा. जी. 18/67

37. प्रजाहितार्थी न बभूव कश्चिन्न वास्ति नो वा भक्ति त्रिलोक्याम्।
य ईदृशं ह्यकृषाणकार्यं समाचरेदाहुरिति स्मलोकाः।।जा. जी. 1/35

38. जा. जी. 18/38

39. जा. जी. 18/46

40. जा. जी. 17/54

41. जा. जी. 18/73

42. जा. जी. 18/65

43. जा. जी. 18/48

44. प्रदीप्त वैश्वानरवेदिकाथा स्यिताऽपि कञ्चिनवामवाप।

तां देववन्द्यामपि मैथिलीं त्वं जानासि सत्यं चरितावलीढाम्।।जा. जी. 18/53

45. जा. जी. 18/94

46. जा. जी. 18/96

47. जा. जी. 18/114

48. जा. जी. 18/111

49. जा. जी. 18/112

50. जा. जी. 18/113

51. जा. जी. 18/45, 46

52. जा. जी. 18/44

53. जा. जी. 18/68

54. जा. जी. 18/69

55. जा. जी. 17/5

56. जा. जी. 17/6

57. जा. जी. 17/7

58. जा. जी. 18/38

59. जा. जी. 18/45, 46े

उपसंहार

डॉ॰ अभिराज राजेन्द्र जी मिश्र द्वारा प्रणीत महाकाव्य जानकी जीवनम् उत्कृष्ट कोटि का है, रस भाव, भाषा की दृष्टि से यह महाकाव्य समृद्ध है। कवि की यह तीव्र अभिलाषा होती है कि जो अनुभूति उसके अन्तस्तल में जिस रूप में उदित हुई है, उसी रूप में वह उदित अनुभूति सहृदयों को झंकृत करे। जब कवि का शोक श्लोक में परिणित हो जाता है तो वह प्रथम तो कोन्वस्मिन साम्प्रतं लोके की तत्परता से किसी महत् की खोज करता है। और फिर उसके चरित्र को इस रूप में प्रकट करता है कि वह तावत स्थाई रहे।

जानकी जीवनम् महाकाव्य के प्रणयन के मूल में माँ वैदेही की व्यथा का कवि की हृत्तन्त्री को झंकृत कर देना है।

आलोच्य महकाव्य युग प्रतिविम्ब को तो चित्रित करता है, उससे भी अधिक वह व्यक्ति के हृच्चित्र को प्रस्तुत करने में सफल रहा है। इस महाकाव्य की यही उत्कृष्टता समीक्षा का एक ठोस आधार निर्मित करता है।

जानकी जीवनम् महाकाव्य काव्य शास्त्रीय निष्कर्ष पर खरा उतरता है। यह महाकाव्य सर्ग बद्ध है। महाकाव्य के कथानक में परम्परागत मान्यताओं के प्रतिफलन के साथ ही उर्वरर्णी नवीन दृष्टिकोण का भी समावेश रहा है। जानकी जीवनम् महकाव्य का कथानक आदि काव्य से अनुप्राणित हो ते हुए भी सर्वथा नवीन है। नायिका जानकी का जीवन ही महाकाव्य का वर्ण्य विषय है। महाकाव्य में जानकी के जीवन की सभी अवस्थाओं की सुन्दर झलक प्राप्त होती है। महाकाव्य में द्वितीय सर्ग के अन्तर्गत कवि ने बालिका सीता की चपल क्रीड़ाओं, सखियों के साथ आमोद-प्रमोद, जन केलियों, पिता की रुचि के अनुसार स्वादिष्ट व्यंजन बनाना आदि क्रियाओं का सुन्दर, सजीव वर्णन किया है। महाकाव्य के अन्तर्गत नवयौवना सीता का नयनाभिराम नख-शिख सौन्दर्य वर्णन एवं स्मराकुर प्रादुर्भाव, पूर्वराग अवस्था का प्राञ्जल विवेचन प्राप्त होता है। सीता को केन्द्रित करके रचे गये इस महाकाव्य के ये प्रसंग कवि की अभिनव देन है, जो अन्य राम परक काव्यों में प्राय: प्राप्त नहीं होते।

जानकी जीवनम् महाकाव्य के कथानक का वैशिष्ट्य इस दृष्टि से भी है कि इसमें सीता निर्वासन प्रसंग का सर्वथा परिहार किया गया है। लोकापवाद रूपी अंकुर उत्पन्न होते हुए ही गुरु वशिष्ठ की ज्ञानाग्नि में स्वाहा हो जाता है।

इस प्रकार जानकी जीवनम् महाकाव्य क्रान्तिकारी तथा साहसपूर्ण साहित्यिक परिकल्पना की उपलब्धि है, जिसमें प्राचीन सत्यों का परीक्षित एवं संशोधित सर्वग्राह्य समाधान प्रस्तुत किया है। महाकाव्य का कथानक सुग्राह्य, रोचक एवं अनवरत प्रवाह से युक्त है। कथानक अन्विति हेतु इसमें यथावसर सन्धियों की योजना है। डॉ॰ मिश्रजी ने आधुनिक दृष्टि से सामाजिक औचित्य

को आधार बनाकर राम कथा के प्रचलित स्वरूप में यथेष्ट परिवर्तन नवीन व्याख्यायें की हैं। नारी की अस्मिता की पहचान कराने का उनका यह प्रयास श्लाघनीय है। कथानक प्राचीन होते हुए भी आधुनिक तार्किक दृष्टि तथा यत्र-तत्र सामान्य जन जीवन की छाया से मण्डित होने के कारण रोचक एवं जीवन्त बन पड़ा है। जानकी जीवनम् का कथानक रसपेशल एवं पाठकों को भाव-विभोर कर देने वाला है।

यह महाकाव्य नाम वर्णनीय चरित्र के आधार पर है, तथा सर्गाभिधान भी वर्णनीय कथा के अनुसार होने के कारण परम्परागत है। महाकाव्य में सगन्ति रूप से कवि परिचयात्मक पद्य प्राप्त होते हैं। सरसता की दृष्टि से महाकाव्य श्रेष्ठ कोटि का है, जानकी प्रधान इस महाकाव्य में श्रृंगार रस की अंगी रस के रूप में समावेश निस्संदेह चमत्कृत कर देने वाला है, सागर समान गम्भीर राम एवं करुणा भूयिष्ठ वैदेही के जीवन पर आधारित साहित्य कृतियों में अब तक शान्त या करूण रस का प्रतिफलन रहा है, किन्तु डॉ॰ मिश्र को क्रान्त दृष्टि ने इस रूढ़ धारणा को तोड़ डाला एवं जानकी जीवनम् महाकाव्य में यथा स्थल सभी रसों का रुचिर समावेश हुआ है। वीर, करुण, अद्भुत, हास, भयानक, रौद्र एवं शान्त रसों के रमणीय परिपाक से सहृदयों को अलौकिक आनन्द से आप्यायित कर देने में जानकी जीवनम् महाकाव्य पूर्ण सफल रहा है। महाकाव्य में उदात्त चरित्रों का पल्लवन हुआ है। गौरवमय इन चरित्रों का चित्रण पूर्ण औदात्य एवं मनोहरता के साथ रहने की कसौटी पर महाकाव्य सफल कहा जा सकता है। जानकी जीवन महाकाव्य में सत्कुलोत्पन्न जानकी जी को प्रधान पात्र बनाकर महाकाव्य का प्रणयन किया गया है। जो कि एक क्रान्तिकारी कदम कहा जा सकता है। शील गुण समन्विता धरणिजा मुग्धा नायिका है, जिनके प्राचीन गौरवमय स्वरूप को स्वाभिमानिनी तेजस्विनी नार्योचित गौरव से ओत-प्रोत भास्वर एवं मुखर चित्रित की गई है, राम विदेहजा की पतिनिष्ठा एवं चरित्र की भास्वरता को जगत् के समक्ष उदाहरण रूप में प्रस्तुत करने हेतु ही अग्नि परीक्षा लेते हैं, मिश्रजी ने जानकी के निर्वासन को दिखलया ही नहीं अतएव राम का दैतत्व निर्विवाद ही रहा। मर्यादा सिन्धु राम के चरित्र में रसिक नायक की उद्भावना करना निस्संदेह अभिनव स्पर्श है। सागर सम गम्भीर राम के व्यक्तित्व में विनोद का पुट देना, राम चरित्र में विलक्षणता का सर्जन करना ही है। इसी प्रकार लक्ष्मण के चरित्र में विलक्षण का समावेश किया गया है। भाभी सीता के चरणरविन्द का दर्शन करने वाले लक्ष्मण फागोत्सव के उल्लास में सीता के कपोलों पर रंग मलते एवं नृत्य करते चित्रित किये गये हैं।

जानकी जीवनम् महाकाव्य में इन अलौकिक चरित्रों का वर्तमान युग के समानान्तर साधारणीकरण किया गया है। रामायण में चित्रित लोकोत्तर चरित्रों को महाकाव्य के कलेवर में संकलित करना चातुर्य पूर्ण संयोजन कहा जा सकता है।

महाकाव्य में किये गये विविध वर्णन रोचकता का संवर्धन करने में समर्थ है। जानकी जीवनम् में तपोवन अयोध्या, मिथिलापुरी, पुष्प एवं अशोक वाटिका, यज्ञ, सरिता, गिरि, सागर, वनयुद्ध का जीवन्त चित्रण किया गया हैं, सम्पूर्ण महाकाव्य में लोक परम्पराओं लोकगीतों का समावेश मधुरता का संचार करता है। महाकाव्य में जन्मोत्सव, राम लक्ष्मण की मिथिला यात्रा, स्वयंवर, मण्डप की शोभा का वर्णन, सप्तपदी, प्राजापात्य विधि से विवाह, विदाई फागोत्सव नवीन उन्मषे है। महाकाव्य का अत्यन्त प्रशस्त शिल्प विधान है। भावों की सफल संप्रेषणीयता शिल्प–विधान के द्वारा ही सम्भव हो पाती है। महाकाव्य की भाषा सरस, भावोपेत, मसृण, परिष्कृत एवं अभिजात के साथ लोकाभिव्यञ्जक है। कोमल कान्त पदावली में सुन्दर भावों की अभिव्यञ्जना है। कोमलकान्त पदावली में सुन्दर भावों की अभिव्यञ्जना ने दोनों ही महाकाव्यों को रमणीय एवं सुग्राह्य बनाने में सहयोग किया है। महाकाव्यों की भाषा सरल स्वाभाविक, सुभाषित युक्त है। महाकाव्यों की व्यञ्जना प्रधान भाषा भाव चित्र को नयनों के समक्ष उपस्थित कर देने में सक्षम रही है।

प्रस्तुत महाकाव्य का अलंकार विधान शोभातिशयी रहा है। स्वाभाविक अलंकार योजना ने काव्य सौन्दर्य को द्विगुणित कर दिया है। आलंकारिक भाषा भावानुरूप है। एवं रसों की अभिव्यञ्जना में प्रेरक बनी है। भाषा कामिनी अलंकारों से बोझिल नहीं हुई अपितु अंलकृत हुई है। अलंकारों का ऐसा सुन्दर उपयोग ही महाकाव्य के शिल्प विधान की उत्कृष्टता का परिचायक है।

छन्दोविधान की दृष्टि से महाकाव्य अनुपमेय है। भावों के अनुरूप छन्द योजना हृदय हारी है। महाकाव्य के कतिपय छन्द तो परम्परा से प्राप्त भावों के अभिव्यञ्जक के रूप में ही प्रयुक्त हुए हैं तथा कतिपय छन्द सर्वथा नवीन रूप में उपयोग में आए हैं, जानकी जीवनम् में मैथिली एवं स्यन्दिका नामक दोनों ही छन्द सर्वथा नूतन प्रयोग हैं, इसी प्रकार मुक्त मात्रिक छन्दों का प्रयोग सुमधुरता का समावेश करने में पूर्ण सक्षम रहा है। अभिराम छन्दोबद्ध महाकाव्य हृदय की हृत्तन्त्री को झंकृत कर जाते हैं।

महाकाव्य का उद्‌देश्य सहृदयों को आनन्द से आप्यायित करने के साथ ही उदात्त सन्देश प्रदान करना होता है। अतएव आलोच्य महाकाव्य इस कसौटी पर पूर्ण सफल है। जानकी जीवनम् में कवि ने जिस उदात्त दाम्पत्य प्रेम को स्वर दिया है, वह युगीन अपेक्षा है। चारित्रिक सुदृढ़ता, सत्य का परिपालन, निर्भयता, धैर्य, नारी गौरवगान, समाज के उपेक्षित एवं दलित वर्ग के उन्नयन का प्रयास महाकाव्य में इतने प्रभावशाली ढंग से व्यञ्जित किया गया है कि वे सीधे हृदय पर प्रभाव डालते हैं एवं व्यक्ति उन्हें आचरण में लाये बिना रह ही नहीं सकता। सम्बन्धों की मर्यादा, योग्यता का वरण राजनैतिक क्षेत्र में नैतिक मूल्यों की संस्थापना, वैयक्तिक अधिकारों का समर्थन, जीवन

में राष्ट्र हित की सर्वग्राह्यता, नेतृत्व में आदेशों की प्रतिष्ठा जैसे चिरन्तन, सार्वभौमिक उत्कृष्ट संदेशों का जानकी जीवनम् में सफल प्रतिविम्बन हुआ है। महाकाव्य में बाल्यावस्था को संस्कारित करने का सशक्त तया प्रतिपादन किया गया है, जो वर्तमान युग की महती आवश्यकता है।

जानकी जीवनम् महाकाव्य का कथानक, रस, चरित्र चत्रिण, विविध वर्णन, शिल्प विधान, उदात्त जीवन मूल्यों के अभिव्यञ्जन की दृष्टि से ही अतिशय प्रभावशाली है, जो सहृदयों को आह्लादित करने के साथ ही, उनके हृदय में अमित छाप अंकित कर देने में समर्थ है।

इस प्रकार कविवर्य ने वाग्देवी सपंर्या, अपनी अविरलश्रम साधना, अपनी भावित कल्पना से भाषित, जानकी प्रेरणा से उद्‌बुद्ध अमृत निस्यन्दनीय जिस राम कथा रूपी कल्पवृक्ष का वर्णन किया है, यह कथा भी वाल्मीकि राम कथा के सदृश ही भूतल पर प्रसृत व आदृत होगी। महाकवि ने राम कथा में सीता निर्वासन के प्रसंग को जिस नव्य एवं दिव्य रूप में उत्कीर्ण किया है, उसका अन्याय विकल्प असम्भव है। महाकवि ने अपने सारस्वत साधना के शास्त्राराधन से, माँ शारदा के कृपा प्रसाद से, जानकी की अभिप्रेरण से, ईदृशी प्रीतिदायक कथा रूपी कविता कामिनी को उपायन के रूप में प्राप्त किया है जिसका कोई अन्य प्रतिमान उपलब्ध नहीं हो सकता है। रामायण के पारायणोपरान्त हृदय के सत्वोद्रेक को द्रवीभूत कर देने वाली कारूणिक अनुभूति का महाकवि की इस कथा ने हृदय सत्वोद्रेक को परमप्रीतिदायक, परमतोषदायक, परमसुखदायक बना दिया है। प्राक् मूर्धन्य महाकवियों ने सीता निर्वासन पर उठे नाना तर्कों, आक्षेपों, अनुत्तरित प्रश्नों का समाधान नहीं किया है। किन्तु महाकवि ने अपने तलस्पर्शिनी प्रज्ञा और प्रौढ़ विवेचन से सीता निर्वासन सम्बन्धी समस्त भ्रान्तियों और आक्षेपों का निराकरण कर दिया है। महाकवि ने अपनी कवित्व बीजभूत संस्कार विशेष शक्ति (प्रतिभा) से लोकशास्त्र काव्यावेक्षणात् निपुणता से, काव्यज्ञ शिक्षयाभ्यास से, शब्दार्थ सौष्ठव के वाग् विकल्पों के वाङ्गमाधुरी से प्रत्यक्ष रूप से सरस्वती की सिद्धार्थता की सिद्धि की है।

अभिराज राजेन्द्र मिश्र जी रामकथा के अनिभव स्रष्टा हैं। भारतीय साधना संस्कृत के प्रचंड सूर्य हैं। साहित्य कल्पतरू के वे उत्कृष्टतम पुष्प है। हम उन्हें नवयुग की ही विभूति नहीं कह सकते बल्कि उन्होंने आने वाले युगों पर अपने व्यक्तित्व की अमिट छाप अंकित कर दी है। यह कथा भी युग-युगान्तरों तक स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

क्र.	ग्रन्थ नाम	ग्रन्थकार/टीकाकार सम्पा.	प्रकाशन	संस्करण वर्ष
1.	अग्निपुराण	व्यास	गुरुमण्डल प्रकाशन	1957
2.	अथर्ववेद–संहिता	सं. श्रीकण्ठशास्त्री	माधवपुस्तकालय, कमलानगर, दिल्ली सं.	2035 वि.
3.	अण्डरस्टेंडिंग ह्यूमन नेचर अलफ्रेड			1946
4.	अध्यात्मरामायणम्		मुम्बई, पाण्डुरंगजावजी	1933
5.	अनर्घराघवम्	मुरारि	पाण्डुरंगजावजी, निर्णय सागरप्रेसे, बाम्बे	1937
6.	अभिनव भारती	अभिनव गुप्त	गायकबाड प्रेस बड़ौदा	1956
7.	अभिज्ञानशाकुन्तलम्	कालिदास	डॉ. कपिलदेव द्विवेदी साहित्य संस्थान मोतीलाल नेहरु रोड, इलाहाबाद	1979
8.	अभिषेक नाटकम्	भास	भासनाटकचक्रे, सी.आर.देवधर, ओ.मु.डिपो पूना	1951
9.	अमरकोश	अमरसिंह टी. भानुजी दीक्षित	जयपुर संस्कृत पाठशाला जयपुर	
10.	अमरकोश: प्रथम भाग:	टी. श्रीरघुनन्दनप्रसाद	भार्गव पुस्तकालय गायघाट, वाराणसी	
11.	अमरकोश:	अमरसिंह	अडिहार लाइब्रेरी एवं रिसर्च सेंटर, मद्रास	1972
12.	अरिस्टोटिल्स थियो आफ पोइट्री एण्ड फाइन आर्ट	प्रो. बूचर	नेशनल पब्लि. हा. दिल्ली	
13.	अरस्तू का काव्यशास्त्र	हिन्दी विभाग, दिल्ली वि.वि.	डॉ. नगेन्द्र	
14.	अलंकार शेखर	पं. केशव मिश्र	पाण्डुरंग जावजी बम्बई	1926
15.	अविमारकनाटकम्	भास	भासनाटकचक्रे, सी.आर.देवधर, ओ.बु. डिपोपूना	1951
16.	अष्टांगहृदयम्	वाग्भट्ट	चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी	1975
17.	अष्टाध्यायी–सूत्रपाठ: पाणिनि		श्रीरामलाल कपूर ट्रस्ट, सं.पं. ब्रह्मदत्तजिज्ञासु, सोनीपत (हरि.)	1969
18.	उज्ज्वल नीलमणि	रूपगोस्वामी	पाण्डुरंगजावजी, बाम्बे	1932
19.	उत्तररामचरितम्	भवभूति:	साहित्य संस्थान, इलाहाबाद	1974
20.	उत्तररामचरितम्	भवभूति:	ट्री. ब्रह्मानन्द शुक्ल साहित्य भण्डार, मेरठ	1969
21.	उन्मत्तराघवम्	भास्करभट्ट	काव्यमाला टीका निर्णयसागरप्रेस, बाम्बे	1925
22.	ऋग्वेद	स्वामी दयानन्द सरस्वती	सार्वदेशिका आर्यप्रतिनिधि सभा, नई दिल्ली	1974
23.	औचित्यविचार चर्चा	आ. क्षेमेन्द्र	कृष्णदास संस्कृत सीरीज व्या. डॉ. रमाशंकर त्रिपाठी, वाराणसी	
24.	कठोपनिषद्	टी. सर्वानन्द स्वामी	रामकृष्ण मठ मद्रास, सं.सं.	1952
25.	करुणरस: मध्ययुगीन हिन्दी राम काव्य के परिवेश में	डॉ. ब्रजवासीलाल श्रीवास्तव	शोधप्रबन्ध आगरा वि. वि	
26.	करुणरस विवेचन	डॉ. कैलाशचन्द्र जैन	शोध प्रबन्ध आगरा विश्वविद्यालय	
27.	क्लासीकल संस्कृत लिटरेचर	कीथ	कलकत्ता ऐसोसियेशन	1927
28.	कालीदास एवं भवभूति	द्विजेन्द्रलालराय	हि. ग्रं. रत्न प्रा. लि., बम्बई	
29.	काव्यदर्श	दण्डी	ओरि. बुक सप्ला. ऐजें. पूना	1924
30.	काव्यदर्पण	रामदहिन मिश्र	अभिनवसाहित्यशास्त्र बाँकीपुर ग्रन्थमाला कार्या.	1947
31.	काव्यानुशासन	हेमचन्द्र	निर्णयसागरप्रेस, बम्बई	1934
32.	काव्यप्रकाश	मम्मट सं. डॉ. नगेन्द्र	ज्ञानमण्डल लि. वाराणसी	1960

33. काव्यप्रकाश-प्रश्नोत्तरी	पं. साधुराम शास्त्री	भारतीय संस्कृत भवन, जलंधर	सं. 2012 वि.
34. काव्यमींमांसा	श्रीराजशेखर हरिदत्तशास्त्री	दिल्ली भारतीय बुक कारपोरेशन	1975
35. काव्य का रूप	गुलावराय	आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली	1958
36. काव्य का स्वरूप	रामानन्द तिवारी	भारती मंदिर, भरतपुर	1968
37. काव्यालंकार	भामह, न्या. देवेन्द्र नाथ	विहार राष्ट्रभाषा परि. पटना.	1962
38. काव्यालंकार	रुद्रट	चौखम्बा विद्याभव, वाराणसी	1966
39. काव्यालंकार सूत्र	वामन	व्या. आचार्य विश्वेश्वर आत्माराम एण्ड संस	1954
40. काव्यालोक	रामदहिन मिश्र	ग्रन्थमाला कार्या. बाँकीपुर	सं. 2001 वि.
41. कुन्दमाला	दिङ्नागाचार्य	सं. कैलाशनाथ भटनागर दिल्ली सरस्वती भवन	1955
42. चिन्तामणि	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	इण्डियन प्रेस लि. प्रयाग	1950
43. चन्द्रालोक	जयदेव, सं. सुबोधचन्द्र पंत	मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली	1966
44. चारुदत्तम्	भास सी. आर. देवधर	ओ. बु. ऐं. पूना	1943
45. छान्दछान्दोष	आनन्दगिरि भाष्य	आनन्दाश्र संस्कृत ग्रन्थावलि	1934
46. छान्दग्योपनिषद्	शांकरभाष्य	गीताप्रेस गोरखपुर	दि. सं. सं. 2011 वि.
47. ट्रेजडी	ल्यूकस		
48. तर्कभाषा	केशव मिश्र	चो. सं. सीरिज, वाराणसी	1971
49. तापसवत्सराज नाटकम्	मायूराज	यदुगिरि स्वामी	मैसूर
50. तापसवत्सराज नाटकम्	मायूराज	बालकृष्ण प्रेस, कलकत्ता	
51. तैत्तरीयोपनिषद्	आनन्दगिरि टीका	आनन्दाश्रम मुद्रणालय, पूना	1927
52. थियोरी आफ ड्रामा	प्रो. निकोल एलार्डाइस	रिपब्लिशिड दोआबा हाउस, दिल्ली	1964
53. दशरूपकम्	धनंजय डॉ. भोलानाथ व्यास चौ. सं. सी. वाराणसी		2011 वि.
54. दशरूपकम्	धनंजय सुदर्शनाचार्य शास्त्री	मोती. बना. दिल्ली	1971
55. दि रिपब्लिक्स	प्लेटो		
56. दूत घटोत्कचनाटकम्	भास रमाशंकर त्रिपाठी, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली		1971
57. ध्वन्यालोकः	आनन्दवर्धन चो. सं. सी. द्वि. सं.		1953
58. नंजराम यशोभूषण	नरसिंह देव	गायकबाड़ संस्करण बड़ौदा	1930
59. नवरसों का एक प्राचीन विवरण	श्रीनाइटा सरस्वती जैनागम अनुयेगमई-		1959
60. नवरस	बाबू गुलावराय	नागरीप्रच. सभा. आरा	
61. नागानन्दनाटकम्	हर्षदेव	जयकृष्णदास, हरिदास गुप्त बनारस द्वि. सं.	1947
62. नाटकलक्षण रत्नकोष	सागरनन्दी	आक्सफोर्ड यूनी. लंदन	1937
63. नाट्यकला की दृष्टि से अध्ययन,	सुरेन्द्रदेवशास्त्री	साहित्य भण्डार, मेरठ	1964
64. नाट्य दर्पण	रामचन्द्रछुणचन्द्र	गायकबाड़ संस्करण, बड़ौदा	1929
65. नाट्यशास्त्रम्	भरत दी. प्राध्यापक बाबूलाल शुक्ल	चो. सं. सी. वाराणसी	1972
66. निरुक्तम्	यास्काचार्य टी. शिवदत्त शर्मा	वैंकटेश्वर मुद्रणालय बम्बई	सं. 1982 वि.
67. नीतिशतकम्	भर्तृहरि	टी.पी.पी.शर्मा, रामनारायणलाल इलाहाबाद	1949
68. पाणिनीयाष्टाध्यायी	सं. ब्रह्मदत्त जिज्ञासु	रामलाल कपूर ट्रस्ट, अमृतसर	1969
69. पाश्चात्यकाव्यशास्त्र की परम्परा	महेन्द चतुर्वेदी		
70. प्रतापरुद्रयशोभूषण	विद्यानाथ	राजकीय ग्रन्थमाला, बम्बई	
71. प्रतिमानाटकम्	भास टी. तारिणीश झा	रामनारायण लाल वेनीप्रसाद, इलाहाबाद	1967
72. प्रतिज्ञायोगन्धरायणम्	भास-नाटक चक्रम.	सी. आर. देवधर, पूना	1951
73. प्रबोधचन्द्रोदयम्	कृष्णमिश्र	सरोज प्रकाशन कानपुर	1970
74. प्रेक्टीकल क्रिटिसिज्म	टी. ए. रिचार्ड्स		
75. भारतीय तथा पाश्चात्य काव्यशास्त्र-	सत्यदेव चौधरी	अशोकप्रकाशन दिल्ली	1971
76. भारतीय काव्यशास्त्र (नई व्याख्या)	डा. राममूर्तित्रिपाठी	विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन	

77. भारतीय साहित्यशास्त्र	बलदेव उपाध्याय	प्रसाद परिषद, काशी	सं. 2005 वि.
78. भाव प्रकाश	शारदातनय	गायकबाड़ संस्करण, बड़ौदा	1930
79. भासनाटकचक्रम्	सीर. आर. देवधर	ओरियण्टल बुक ऐजेंसी पूना	1951
80. भोजप्रबन्ध	श्रीबल्लाल	वाराणसी विश्वविद्यालय प्रकाशन	1963
81. मध्यकालीन संस्कृत नाटक–	राजी उपाध्याय	सागर विश्वविद्यालय	1974
82. महाकवि भवभूति (समीक्षण करुणरस)	डॉ. गंगासागर राय	चौ. वि. भवन वाराणसी	1965
83. महाभारत महाकाव्यम्	व्यास	पुणे, चित्रशाला प्रेस	1929
84. मालविकाग्निमित्रम्	कालिदास	आर. डी. करमाकर, पूना	1950
85. यजुर्वेद–संहिता	दयानन्दसरस्वती परोपकारिणी सभा	स्वामिना वैदिक यंत्रालये	सं. 1999 वि.
86. रघुवंश महाकाव्यम्	कालिदास	व्य. पं. हरगोविन्द, चौ. सं. सी. वाराणसी	1961
87. रत्नावली नाटिका	श्रीहर्षदेव	प्रकाश टीका, वाराणसी	1953
88. रसकलस	अयोध्यासिंह उपा. हरिऔध	बनारस हिन्दी साहित्य कुटीर	दि. सं. 1931
89. रस गंगाधर (भाग 1 एवं 2)	पंडितराज जगन्नाथ	चौखम्बा प्रकाशन, वाराणसी	1955
90. रसगंगाधर	चंन्द्रिका टीका पं. राज जगन्नाथ	चौ. विद्या भवन, वाराणसी	1955
91. रसतरंगिणी	भानुदत्त	वैंकटेश्वरप्रेस, बम्बई	सं. 19
92. रस प्रदीप			
93. रस–मीमांसा	आचार्य रामचन्द्र शुक्ल	का. ना. प्र. सभा	सं. 2017
94. रस रत्नप्रदीपिका्	अल्लराज	भाव विद्याभवन, बम्बई	1985
95. रस विलास	भूदेव शुक्ल	ओरियण्टल हाउस, पूना	1952
96. रससिद्धान्त	डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित	राजकमल प्रकाशन, दिल्ली	1960
97. रससिद्धान्त के अनालोचित पक्ष	डॉ. ब्रजमोहन चतुर्वेदी	अजन्ता पब्लिकेशन	1978
98. रस सिद्धान्त के नये सन्दर्भ–	डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी	मेकमिलन	
99. रस सिद्धान्त के नये सन्दर्भ–	आचार्य नन्ददुलारे वाजपेयी	राका प्रकाशन इला.	1974
100. रस सिद्धान्त	डॉ. नगेन्द्र	नेशनल पब्लिशिंग हाउस	1964
101. रसाभास	प्रशान्तकुमार वेदालंकार	शोधप्रबन्ध प्रकाशन दिल्ली	1950
102. रस संख्या	सुन्दरलाल कपूरिया	पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली	1978
103. रसार्णव सुधाकर	शिंगभूपाल	संस्कृत परिषद् सागर विश्वविद्यालय	1938
104. रसिक प्रिया	आचार्य केशव टी. सरदारकवीश्वर	(हस्तलिखित) प्रति. महाराज कुंवर इन्द्रजीत सिंह	
105. राघवन प्रबन्ध	शारदा तनय		
106. रामाभ्युदयनाटकम्यशोवर्मा	(अप्रकाशित एवं अप्राप्त लक्षणग्रन्थों से उद्धृत)		
107. रसशास्त्र और साहित्य समीक्षा	डॉ. कृष्णदेव झारी	भारतेन्दु भवन, चण्डीगढ़	1965
108. रसिकप्रिया–सटीक केशव ग्रन्थावली से संगृहीत		हिन्दुस्तानी एकेडमी, इलाहाबाद	
109. रीतिकाव्य की भूमिका			
110. लघु सिद्धान्त कौमुदी	श्रीवरदराजाचार्य चौ. सं. सी. वाराणसी		1950
111. वक्रोक्ति जीवितम्	कुन्तक	चौ. सं. सी.	1924
112. वाचस्पत्यम्	कोश तारानाथ भट्टाचार्येण	चौ. सं. सी.	1962
113. वाग्भट्टालंकार	वाग्भट्ट	निर्णयसागर प्रेस, बम्बई	1903
114. वाल्मीकीय रामायण महाकाव्यम्	वाल्मीकि	गीताप्रेस, गोरखपुर	1977
115. विक्रमोर्वशीयम्	कालिदास	गवर्नमेंट सेंट्रल बुकडिपो बाम्बे	1901
116. विदग्धमाधवम्	रूपगोस्वामी	व्या. पं. रमाकांत झा, चौ. सं. सी.	1970
117. वेणीसंहारनाटकम्	भट्टनारायण प्रबोधिनीटीका	चौ. स. सी. वाराणसी	1969
118. वेदान्तसार	सदानन्द	ओरियण्टल बुक ऐजे. पूना	1928

119. व्यक्तिविवेक   महिमभट्ट   जयकृष्णदास हरिदास गुप्त बनारस   1936
120. शब्दकल्पद्रुम   राधाकान्तदेव बहादुर सं. वर्धाप्रसादबसु 71, पाथुरियाघाटस्ट्रीट, कलकत्ता   शकाब्द 1808
121. शुक्लयजुर्वेदः   सायण   सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी   1978
122. शृंगारतिलकम   रुद्रट अनु. कपिलदेव पाण्डे, प्राच्य प्रकाश जगतगंज, वाराणसी   1978
123. सरस्वती कण्ठाभरणम्   भोजदेव   नारायण प्रेस, कलकत्ता   1874
124. साहित्य दर्पण   विश्वनाथ   विमलाटीका, मोतीलाल-बनारसीदास, दिल्ली   1977
125. साहित्यलोचन   बाबूश्यामसुन्दरदास   सं. रामचन्द्र वर्मा काशी   1979
126. साहित्य की झांकी   प्रो. सत्येन्द्र   साहित्यरत्न भण्डार, आगरा   1938
127. साहित्यसृजनरंजन   डा. राकेश गुप्त   लोकभारती, इलाहाबाद   1973
128. सांख्यकारिका   ईश्वरकृष्ण   सं. महामना विंध्येश्वरीप्रसाद द्विवेदी चौं.सं.सी वाराणसी
129. साहित्य कौमुदी
130. सिद्धान्त और अध्ययन   बाबूगुलावराय   आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली   1970
131. संस्कृतसाहित्य का इतिहास   आचार्य बलदेव उपाध्याय   शारदा मन्दिर, वाराणसी   1973
132. संस्कृत साहित्य का इतिहास   ए.बी.कीथ   मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली   1960
133. स्वप्नवासवदत्तम्   भास   चौ. सं. सीरीज सप्तम संस्करण, वाराणसी   1965
134. हनुमन्नाटकम्   श्रीमद् हनुमताविरचितम् चौ. सं. सीरीज, वाराणसी   संवत्/2024
135. हरिभक्तरसामृत सिन्धु   रूपगोस्वामी, दुर्गमसंगमनीयुक्त अच्युत ग्रन्थमाला काशी   संवत् 1988 वि.
136. हिन्दी अभिनव भारती   आचार्य विश्वेश्वर   दिल्ली विश्वविद्यालय   1960
137. हिन्दी नाटक साहित्य का इतिहाससोमनाथ गुप्त   हिन्दी भवन जालंधर और इलाहाबाद   1951
138. हिन्दी नाट्य चिन्तन   साहित्य साधना कुटीर, इन्दौर
139. हिन्दी रस गंगाधर द्वितीय भाग   पुरुषोत्तम शर्मा   चतु. का. ना. प्र. सभा   सं. 1995
140. हिन्दी रसगंगाधर प्रथम भाग   पुरुषोत्तम शर्मा   चतु. इण्डियन प्रेस, प्रयाग   सं. 1986
141. हिन्दी संस्कृत लिटरेचर   (दास गुप्ता)
142. संस्कृत महाकाव्य की परंपरा   केशवराय मुसलगांवकर   चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस वाराणसी
143. जानकी जीवनम्   अभिराज राजेन्द्र मिश्र   वैजयन्त प्रकाशन, 8 बाघम्बरी मार्ग, इलाहाबाद   1988
144. वामनावतरणम्   अभिराज राजेन्द्र मिश्र   अक्षयवट प्रकाश, इलाहबाद   1995
145. श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण   आदिकवि वाल्मीकि   गीताप्रेस, गोरखपुर   2054 वि. सं.
प्रथम भाग (बालकाण्ड किष्किन्धाकाण्ड)
146. श्रीमद्वाल्मीकिय रामायण   आदिकवि वाल्मीकि   गीताप्रेस, गोरखपुर   2054 वि. सं.
द्वितीय भाग (सुन्दरकाण्ड उत्तरकाण्ड)
147. श्रीमद्वाल्मीकि रामायणम्   पं. शिवराम शर्मा वसिष्ठ   चौखम्बा विद्या भवन चौक, वाराणसी   1992
148. श्रीरामचरितमनास   गोस्वामी तुलसीदास/हनुमान प्रसाद पौद्दार गीताप्रेस, गोरखपुर   2063 वि. सं.
149. उत्तरसीताचरितम्   डॉ. रेवाप्रसाद द्विवेदी   कालिदाससंस्थानम्, वाराणसी-5   1990
150. वैदेहीचरितम्   विद्यावाचस्पति रामचन्द्र मिश्र   कामेश्वर सिंह दरभंगा, संस्कृत विवि दरभंगा   1985
151. रामकथा : विविध आयाम   डॉ. भागीरथ मिश्र   श्रीहरिकृष्ण गुप्त, आर.पी.4, प्रीतमपुरा, दिल्ली   2000
152. जानकीमङ्गल   गो. तुलसीदास   गीताप्रेस, गोरखपुर   2056 वि.स.
153. सीताचरितम्   डॉ. रेवतीप्रसाद द्विवेदी   मनीषा प्रकाशन डी. 35/310 जंगमवाडी वाराणसी   1935
154. श्रीमद्भागवत पुराण   महर्षि वेदव्यास   गीताप्रेस, गोरखपुर   2056 वि. सं.
155. वामण पुराण   महर्षि वेदव्यास   गीताप्रेस, गोरखपुर   2056 वि. सं.
156. संस्कृत साहित्य का इतिहास   डॉ. विश्वनाथ शर्मा   आदर्श प्रकाशन, जयपुर   2003
157. संस्कृत साहित्य का इतिहास   डॉ. मिथिलेश पाण्डेय   उपकार, प्रकाशन, आगरा   2005
158. काव्यालङ्कार   प्रो. देवेन्द्रनाथ शर्मा   बिहार राष्ट्र-भाषा परिषद्, पटना   2019 वि.सं.
159. काव्यादर्श   श्रीदण्डी   नागरी -प्रचारिणी सभा, वाराणसी   1960
160. दशरूपकम्   धनञ्जयाचार्य   चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी   1998